



बहुत इदनां से हमारी हार्दिक अभिलाषा थी कि पूज्य श्री गुरुदेव के त्रय ताप-हारी पावन चरणरेणु से अपने नगर को पवित्र करूं और गत वर्ष हमारी वह लालसा सफलीभूत भी हुई। गुरुदेव ने अपने शुभागमन तथा वर्षावास से हमारी मनोकामना पूरी कर दी। चातुर्मासके वे सारे दिन जिस आनन्द, उल्लास एवं उत्साह के साथ धीरे और उससे मुझको जिस तरहकी खुशी प्राप्त हुई उसको मूर्त रूपमें स्मृति पट पर अंकित करने के लिए मैंने पं० श्री दुःखमोचनजी 'मा' से अपने भाव प्रकट किए कि पूज्य गुरुदेव की कोई कृति मिले तो मैं उसका प्रकाशन कर पाली चातुर्मास की सुखद स्मृति को अचल और अटल बनाऊँ। पंडितजी की कृपा से प्रश्न व्याकरण की नूतन प्रति जो गुरुदेव की गंभीर गवेषणा और सतत सच्छास्त्र चिंतन के परिणाम हैं मुझको मिली, जिसको प्रकाशित करते हुए आज मुझे कितना आनन्द मिल रहा है वह वर्णन से बाहर है।

हमारी आन्तरिक अभिलाषा है कि इसी तरह भविष्य में भी पूज्य गुरुदेव की कोई भी कृति मुझे मिलती रहेगी तो मैं उसके प्रकाशन से अपने जीवन को सार्थक और सफल बनाऊँगा। भविष्य ही बताएगा कि हमारी यह कामना कहा तक और किस अंश तक सफल होती है ?

इस पुस्तक को मैं अमूल्य उपहार के रूप में वितरण करना चाहता था किन्तु बिना मूल्य की वस्तु का योग्य आदर नहीं होता है, अतः इसका अल्प मूल्य रखा गया है। इसके विक्रय से जो भी आय होगी वह साहित्य प्रकाशन में ही लगायी जायेगी।

अन्त में, मैं पंडित श्री दुःखमोचनजी 'मा' का महान आभारी हूँ जिनके सह-योग से मुझको गुरुदेव के निकटतम सेवा लाभ का सौभाग्य प्राप्त हुआ, साथ ही उनके सुपुत्र पं० शशिकान्तजी 'मा' ने इस चातुर्मास में अजमेर रह कर इस सारे

प्रकाशन कार्य को शीघ्र और सुचारु रूप से सम्पादन करने में पूर्ण सहयोग दिया है। अगर उनकी यह निरन्तर सहायता प्राप्त नहीं होती तो प्रकाशन इतना शीघ्र और इस रूप में कदाचित् संभव नहीं होता अतः उनको भी धन्यवाद है।

जिस अभिलाषा से मैं 'स प्रत्येक को प्रकाशन करवा रहा हूँ वह सभी सार्यक हागी अब कि बिन्दु-बग इसको अपनाकर कुछ लाभ उठायेगा। ~

प्रार्थी—

हस्तिमध्न सुगन्धा

(पाक्षी मारवाड)



पूज्य श्री हस्तिमल्लजी महाराज सांख्य कृत भाषाटीका तथा विशिष्ट परिशिष्ट सहित यह प्रश्न व्याकरण सूत्र, जो बन्ध और मोक्षके तत्व का पथ प्रदर्शक है, प्रकाशित हो गया। पुस्तक कैसी बनी तथा इसकी कैसी उपयोगिता और विशेषता है ? आदि विविध प्रश्नों का समाधान तो इसको अच्छी तरह अवलोकन करने वाले विज्ञ पाठकको अनायास ही होजायगा, मगर जहातक मेरी जानकारी है मैं भी इतना निस्संकोच कह सकता हूँ कि यह एक ऐसे उज्ज्वल व्यक्तित्वकी गवेषणापूर्णकृति है, जिनका अनवरत समय विविध शास्त्रावलोकन, गंभीर चिंतन और तत्त्वगवेषण तथा तदनुकूल आचरण में ही बीतता है। वर्ष महीने और दिन का ही नहीं जहा घटे, मिन्ट और सैकेण्ड का भी ज्ञानपुरस्सर कभी दुरुपयोग नहीं होता। मात्र मेरे इतने निवेदन से भी विज्ञ पाठक प्रस्तुत पुस्तक की प्रबल प्रामाणिकता को हृदयङ्गम कर सकते हैं।

इस पुस्तकके प्रकाशनमे आवश्यकतासे अधिक देर हुई। वि०स० १९६३के अजमेर चातुर्मासमें ही समिति सम्पादित प्रति के आधारपर पूज्यश्री ने इसका कार्यान्वयन कर दिया किन्तु उसी बीच पूज्य श्री रत्नचन्द्रजी महाराज के सम्प्रदाय पूर्ववर्ती धर्माचार्यों की जीवनी कारण विशेष से तैयार हुई, जो इन दिनों जयपुर में छपी है। इसके साथ ही बृहत्कल्प सूत्र का अनुवाद तीर्थङ्करों के जीवनचरित्र तथा तत्त्वार्थाधिगम सूत्र का पद्यानुवाद हुआ। इसतरह पूज्यश्री का ध्यान भिन्न भिन्न आवश्यक कार्यों में घट गया फिर भी पूर्वार्ब्ध प्रश्न व्याकरण की प्रेस कापी भी तैयार की गई। वि० सं० २००२ के जयपुर चातुर्मास में सातारा के दीवान बहादुर श्रीमान् शेठ मोतीलालजी मुथा की इच्छा इसको पूना के आर्य भूपण प्रेस में छपवाने को हुई किन्तु किसी कारण से ऐसा नहीं हो सका। इस तरह कई वर्ष तक इसका मुद्रण कार्य स्थागत रहा। इसी बीच बम्बई चातुर्मास में पं० रत्नकुमारजी से इसका

शम् कोप लिखवाया गया। व्यावर चातुर्मास में दिल्ली विराजमान उपाध्याय कवि भी अमरचन्द्रजी म० सा को इसकी प्रेस कापी दिखायी गयी।

वि० सं० १००६ का चातुर्मास पाली में हुआ। यहाँ पर देवगुरु धर्म में मद्धा भक्ति सम्पन्न श्रीमान् रोठ हस्तिमल्लजी सुराणा ने अपन अभिप्राय प्रकट किए कि इस चातुर्मास की रसुतिका अमिट बनाने के लिए पुष्पभी की कोई कृति मिल तो हम प्रकाशित करूँ। चातुर्मास पूरा होने पर व्याया बा, फिर भी दुर्गा प्रेम अमरेर में सुदृण का कार्य प्रारम्भ किया गया, किन्तु एक तो प्रेस में टाइप की कमी थी दूसरे वात्कात्मिक संराधक, बीमार होकर बेरा पसे गए, जिससे कार्य अथस्थित रूप में भागे नहीं सका। मध्य में पं० धमपालजी ने कार्य भार उठाया किन्तु अन्त्य अद्यतियाँ रह जाने के कारण कार्य को रोक दिया गया।

इस वर्ष पीपार चातुर्मासमें यह अस्तव्यस्त कार्यभार मरे माये व्याया, और भाद्रकृष्णमें अजमर आकर मैंने उसटुटी पुरानी गृहज्ञाको जोड़कर कार्यवाही प्रारम्भ करी। कार्यकी अधिकता और समय की कमी तथा पुष्प भी के दूराबन्धित होने के कारण सुश्रवणेन्य आवश्यक ज्ञातव्यादेशा मासिसे मैं बंधित रहा फिर भी किसीतरह और जिस, किसी रूप में उस विप्रारम्भ अथ का इति कर पाया इससे भी शुभ कुछ कम संतोष नहीं। विशेष विरलेपक्ष तो तीरक्षीरविषकी विज्ञ पादक ही रह्ये।

अन्त में हम अपन कृपाशु पाठकों को बिना किसी संकोच के यह बतलाने की प्रस्तुत है कि इस पुस्तक की सारी अक्षरारण्यो का एकमात्र भेष परम प्रज्ञापी पुष्प भी का है तथा इसकी गूटियों तथा अस्तव्यस्तता आदि समस्त दोषों का एक मात्र भेष प्रबन्धक और संशायक होने के बात मुझ पर और अरा रूप में दुर्गा प्रेस के श्रीरामचन्द्र श्रीराकावरों पर भी है, अिनक सहयोग से गूटियों की मात्रा आवहे हुए भी कम नहीं हो पायी।

मुझे हर तरह का सहयोग देकर मरी प्रबन्धकता को कायम रखनेवाले अरार हव वरुण भी अीठमल्लजी सुराणा व भी अमरावमल्लजी साहब उहा अजमेर को मैं नहीं भूल सकता। साथ ही दुर्गा प्रेस के कमठ मैतवर पाखू भूपेन्द्रसिंहजी का आभार-मानता ही पड़ेगा जिन्होंने रात दिन एक बनाकर नियत समय पर इस विराण कार्य को पूरा किया। शिवमिति।

प्राणी—

शशिकान्त झा "शास्त्री" व्या बा



श्रीमान शेठ हस्तिमल्लजी 'सुराणा' पाली (मारवाड)

प्रकाशक का संक्षिप्त परिचय

मारवाड का अतिशय प्राचीन नगर "पाली" ब्रिस्काल से व्यापार का केन्द्र रहा है। वहाँ 'फतेहचन्द मूलचन्द' नामका फर्म सौ वर्षसे भी अधिक समयसे आज तक अपनी व्यवसाय प्रामाणिकता और नीति कुशलता तथा धर्म प्रमुखता के साथ चलता आ रहा है। फर्म के आदि संस्थापक फतेहचन्दजी के देवलोक वासी होने पर उनके सुपुत्र मूलचन्दजी साहब फर्म के अधिष्ठाता बने और जीवन पर्यन्त व्यवसाय में धृष्टि के साथ साथ धर्मवृद्धि में भी जी खोलकर हाथ बटाए। सन् १९६१ में मूलचन्दजी ने पाली निवासी वस्तीमलजी को गोद लिया तथा व्यवसाय का सारा काम उनके जिम्मे कर दिया। आपने भी देव गुरु धर्म में निष्ठा रखते हुए व्यापार को आगे बढ़ाया और पूर्वजों की परम्परा कायम रखने में रस्ती भर भी कसर नहीं की। सन् १९७५ में वस्तीमलजी साहब ने श्रीमान् हस्तिमल्लजी साहब को जिनका जन्म स्थान "आडआ" है गोद लिया। श्रीमान् हस्तिमल्लजी साहब का स्वभाव बचपन से ही धार्मिक तथा धृष्टि व्यवसायात्मिका थी, फलतः उन्नति के साथ साथ कृपाति फैलने में कोई विशेष देर न लगी। कार्य दक्षता और व्यवहार कुशलता एवं अदम्य उत्साह तथा थट्ट लगनसे सफलता आपकी दासी बनी और देखते २ आप एक बड़ी धनराशि के अध्यक्ष बन गए। कपड़ा, बमोशन, ऊन और आढत के कामों में आपकी गहरी दिलचस्पी है। योंतो आपके व्यवसाय मारवाड़के छोटेबड़े अधिकतर शहरों में किसी न किसी रूप में प्रसारित हैं ही लेकिन प्रमुख रूप में पाली और बम्बई दो जगहों में प्रचलित है जिसमें पाली फर्म का नाम 'फतेहचन्द मूलचन्द' तथा बम्बई का 'मूलचन्द वस्तीमल' तान्वाकाटा हनुमान बिल्डिंग २ पलोर बम्बई है।

अधिकतर देखा जाता है कि लोग लक्ष्मीपात्र बनकर धर्म के प्रति विमुख हो जाते हैं किन्तु आप बराबर इस नियम के अपवाद रहे। जैसे जैसे व्यापार चलता जैसे जैसे धार्मिक लगन भी बढ़ती गयी और यही कारण है कि आज आप के एक प्रमुख व्यापारी ही नहीं किन्तु समाज के कुशल एवं अर्थव्यवस्था के हैं। पाली में समब ही ऐसा कोई पारमार्थिक काम होगा जिससे आपका हित चंदाया हो। आत्म कल्याण के लिए ब्रत, तप के साथ धर्म के

प्रभाव नहीं करते और जब जहाँ जैसा आवश्यक समझते हैं मुक्त हस्त होकर दिया करते हैं। विभिन्न संस्था और समाज को बड़ी बड़ी रकमें दान आपने अनुमोदित किया है। वि० २० २ में पूज्य भी हस्तिमंजुजी व पूज्य भी गणेशीलासजी महाराज के पाक्षी सम्मिलन में भी आपने बहुत बड़ा हाथ बटाया था।

आपका हृदय स्वच्छ, सुलोकित प्रसन्न सदा मस्तिष्क शुद्ध भूक्त से भरा हुआ है। स्पष्टवादिता, मिलनसारिता तथा निरमिमानता एवं सद्भावता आपमें कूट कूट कर भरी हुई है। जो बात हृदय में अँध जाब उसको पूरी करने में शायद ही कसर करते हैं।

परिवारके प्रति भी आपका प्रेम सराहणीय है और इसी कारणसे आपके परिवार तथा व्यवसायिक कार्यकर्ता आपमें पूर्ण श्रद्धा रखते हैं। आप छोटे छोटे बच्चों के साथ भी अक्सर विलोद किया करते हैं जिसमें आपकी विलोद प्रियता की मज्जा स्पष्ट दिखाई देती है। आप अपने छोटे भाई भी केशरीमंजुजी साहब को दिल से चाहते हैं और हर छोटे बड़े कामों में उनकी सम्मति का सम्मान करते हैं। आपका यह भाव-प्रेम देखकर राम और भरत का स्मरण हो आता है।

धर्म और गुरु के प्रति आपकी आत्मा असीम है। गुरुवर्ष आपने पूज्य गुरुदेव भी हस्तिमंजुजी महाराज साहब का आशुमांस पाक्षी में करवाया और उसको जिस सुन्दर ढंग से निमाया वह धिर स्मरणीय होगा। आशुमांस की स्मृति को अमर बनाने के लिए प्रस्तुत पुस्तकका प्रकाशन किया है तथा भविष्यके लिए भी आरम्भ कर दिया है कि ऐसी कृतियों का भविष्य समाज का कल्याण समर्थ है लोकोपयोगी बनाने में यादग्रीवम वृत्त बिन्दु रहूँगा।

आपका भविष्य महान है। समाज को आपसे बड़ी बड़ी आशाएँ हैं। आपकी उम्र अभी केवल ४६ वर्ष की है जब उस पर कुछ अधिक कहना सम्भव नहीं लेकिन आपके वर्तमान व्यवहार का दृष्टिकरण भी आशा कर सकता है कि समाज के उन सभी बिन्दुओं का सुधार आपके कर कमलों से होता निश्चित है जिस पर आपकी दिव्य दृष्टि एक बार पड़ जायगी। शासन एवं आपकी धर्म निष्ठा, सक्षिप्त आर जीवन का दीपक एवं सफल बनाए रहें।

इसी अमर कामना के संग—

शशिकान्त 'म्हा'

“आगमज्ञ मुनिराजों से आवश्यक निवेदन ”



तीर्थङ्करों व अतिशयज्ञानियों के अभाव में आज समस्त श्वेताम्बर जैन सत्त्व का आधार प्रमुख रूप से आगम ही है। हमारे मन्दपुण्य के कारण प्रथम तो आगमों का पूर्ण अंश ही प्राप्त नहीं। फिर यथा तथा करके पूर्वाचार्यों की कृपा से जो भी अंश हमें प्राप्त हैं उसमें लेखन व सशोधनों के प्रमाद ने बहुत से स्थलों में बुद्धि भेद के कारण उत्पन्न कर दिए हैं। परन्तु व्याकरण का काम करते समय हमें भी ऐसा ही अनुभव हुआ है। इतने पाठ भेद अन्यत्र कम मिलेंगे। इस कार्य में संस्कृत टीका के अलावा आगम मन्दिर से प्रकाशित प्रति का भी पाठनिर्णय में हमने साहाय्य लिया जो आगम के विशिष्ट अभ्यासी स्वर्गीय सागरानन्द सूरि द्वारा सशोधित है। इसमें कई स्थल ऐसे हैं जिनकी संगति नहीं होती। विद्वानों के ज्ञानार्थ वैसे पाठों की तालिका प्रस्तुत करके आशा की जाती है कि आगमज्ञ विद्वान् इनका उचित समाधान करेंगे।

(१) प्रथम आस्रव सूत्र १० २ में हिंसा के नामों में 'विष्णासो, शब्द प्रयुक्त है, प्रतगानुसार इसका अर्थ नाश होने से यह सगत है, किन्तु आ० म० में यहाँ 'विष्णाणो, पद छपा है, इसकी सगति कैसे होगी ?

(२) सूत्र ३ 'सरीसृप के प्रकरण में 'वाउप्पिय, पाठ आता है जिसका संस्कृत नाम वायुप्रिय बन सकता है। आ० म० ने 'वाउपइय' ऐसा पाठ माना है। यह किस तरह ?

(३) सूत्र ७ द्वितीय आस्रव के मृषावादी प्रकरण में—'भणति अलियाहि सधि सन्निविट्ठा' के स्थान पर आ० म० की प्रति में—'भणति अलिया हिंसति सन्निविट्ठा, पद प्रयुक्त है, पहिले के वाक्य में 'अलियाहि सधि सन्निविट्ठा, पद मृषावादीका विशेषण होने से सङ्गत है किन्तु 'अलिया हिंसति सन्निविट्ठा, पद में 'हिंसति' क्रिया के साथ इसकी सगति कैसे होगी ?

(४) इसी प्रकरण में 'गामधातुयाभ्यो के स्थ न पर गामधातुयाभ्यो आ० म० में प्रयुक्त है प्रसंग से इसकी संगति कैसे होगी ?

(५) सूत्र १५ चतुर्थ आख्य द्वार के युगलिक दण्डन प्रकरण में 'रुद्धन निरुद्धनका' ऐसा पठ है। इसके छिमे आ० म० की प्रति में 'रुद्धन निरुद्धनका' प्रयुक्त है जो अशुद्ध साध होता है, क्योंकि 'नरुद्धा' में वित्त्व विधान लाक्षणिक नहीं है।

(६) सूत्र १९ में पञ्चम आख्य के परिग्रह संज्ञय प्रकरण में 'अस्य नत्व इत्यस्यच्छरूपवाच्य' के स्थान में आ० म० न 'अस्य इत्यस्यच्छरूपवाच्य' माना है, सा क्या 'सत्य पद झूटा है ? या इसी पठ को संगत माना गया है ?

(७) सूत्र २३ प्रथम संवर द्वार के भावना प्रकरण में 'मयेष्ट अपाचरण्य' के स्थान पर आ० म० की प्रति में 'मयेष्ट अपाचरण्य' प्रयुक्त है। इसी प्रकार तीसरी भावना में 'वदीते पाविद्याते' के स्थान पर आ० म० की प्रति में 'वदीते अपाविद्याते' पाठ प्रयुक्त है। तो किस तरह ?

(८) प्रथम संवर के भावना प्रकरण में 'निकित्यव्यं' पद आया है आगम मन्दिर में इसके स्थान पर 'निकित्यव्यं' प्रयुक्त है। पहला प्रयोग वहाँ स्वार्थ में है वहाँ दूसरा प्रयोगार्थ में प्रयुक्त है प्रसंगवधान से पहला प्रयोग वहाँ उचित माना होता है किन्तु दूसरे प्रयोग की संगति कैसे हो सकती है ? इसका आशय स्पष्ट करें।

(९) द्वितीय संवर द्वार के सत्य निरूपण प्रकरण में 'आरण्यस्य समय सिद्ध विम्बं' पद आया है जिसके स्थान पर आ० म० में 'आरण्य समय समय सिद्ध विम्बं' प्रयुक्त है। अर्थात् दृष्टि से पहला पाठ ही सङ्गत है। टीकाकार न भी ऐसा ही माना है। फिर आ० म० में 'आरण्य समय के बीच में 'गमय' पद का प्रयोग किस आशय से किया गया है ?

(१०) तृतीय संवर द्वार के चतुर्थ भावना प्रकरण में—'अविज्ञा वाण वय निवस वरमण्य' एवं के स्थान पर आ० म० की प्रति में 'अविज्ञा वाण (विरमण्य वय निवस मण्य' इव निवस वरमण्य' वा०) इव' प्रयुक्त है। दोनों पाठों में अर्थ अस्पष्टता रहता है। इनमें संगत और शुद्ध कौन पाठ है ?

(११) सूत्र २९ में चतुर्थ संवर द्वार—प्रत्यय अपमा निरूपण प्रकरण में—'हिमवतो वेव ओसदीर्य', के स्थान पर आ० म० की प्रति में—'हिमवतो वेव नगाण्य, वम्मी ओसदीर्य' ऐसा पाठ प्रयुक्त है। इतना लिखित प्रति में हिमवान को औपविष्टों के

स्थान में उत्तम मानकर आठवीं उपमा में इसको माना है और रथिको में सांघात्मिक महारथी को ३२ वीं उपमा में प्रयुक्त किया है। आ० सं० की प्रति के अनुसार हिमवान् पर्वतो में उत्तम और ब्राह्मी औपधियों में उत्तम मानकर पृथक् दो उपमायें दी गई हैं। इस प्रकार महारथिक की अन्तिम उपमा अधिक होती है। इसलिये इसकी संगति किस प्रकार करनी चाहिए ?

(१२) सूत्र सं० २७ चतुर्थ संवरद्वार ब्रह्मचर्य निरूपण प्रकरण में 'वेलंबक जाणिय' के स्थान पर आ० म० की प्रति में 'वेलंबकजाणिय, प्रयुक्त है। ह० लि० प्रति में 'वेलंबक, को स्वतन्त्र मानकर आगे 'यानिच, माना है, आ० म० की प्रति में 'वेलंबक, को कार्य मानकर 'वेलंबक जाणिय' प्रयोग किया हो ऐसा संभव है।

(१३) सूत्र सख्या २६ के पञ्चम संवर द्वार 'अपरिग्रह व्रत निरूपण प्रकरण में 'गय गवेलग च न जाण जुम' आदि के स्थान पर आ० म० की प्रति में 'गय गं ला कबल जाण जुम, प्रयुक्त है। प्रथम पाठ प्रसंगानुसार उचित मालूम होता है, किन्तु आ० म० की प्रति में 'गवेलग कबल, पाठ माना है। गवेलग और कबलको पृथक् मानना प्रसङ्ग से उचित नहीं दीखता, लेकिन 'गवेलगक और बल इस प्रकार क को स्वार्थ में मानकर 'बल, पढ़का सैन्य अर्थ में प्रयोग माना जाय तो किसी तरह संगत हो सकता है।

(१४) सू० सं० २९ पञ्चम संवरद्वार के अपरिग्रह व्रत निरूपण प्रकरण में 'वेडिम वर सरक चूर्ण' के स्थान पर आ० म० की प्रति में 'वेडिम वसरक चूर्ण, प्रयुक्त है। ह० लि० प्रति का प्रयोग जहाँ वेडिम वर सरक चूर्ण रूप श्राव्य पदार्थ के अर्थ में प्रयुक्त है, वहाँ आ० म० की प्रति में 'वसरक चूर्ण मानने पर अर्थ क्या माना जायगा।

(१५) सू० सं० २६ के पञ्चम संवर द्वार अपरिग्रह व्रत निरूपण प्रकरण में 'वल विउल कक्खड पगाड दुक्खे' के स्थान पर आ० म० की प्रति में 'वल विउल तिउल कक्खड पगाड दुक्खे, प्रयुक्त है। यहाँ 'तिउल पढ़का प्रयोग किस अर्थ में किया गया है ? विपुल के साथ अर्थ संगति कैसे ?

(१६) सू० सं० २६ के पञ्चम संवर द्वार के भावना प्रकरण में 'एवमादिणु फासेसु, के स्थान पर आ० म० की प्रति में 'एवमादिणु गिम्मियन्व न फासेसु,

प्रयुक्त है। यहाँ 'गिमिक्त्यब्ध', का प्रयोग अस्थानीय है, इसका प्रयोग मुश्किलार्थ आदि क्रिया पदों के साथ होना चाहिए।

(१६) सू० सं० ६ के पञ्चम सर्वर द्वार क भावना प्रकरण में 'मणुज मरपसु' क स्थान पर आ० सं० की प्रति में 'मणुज मरपसु' अनुपयुक्त है। ज्ञात होता है कि म के स्थान पर भूल से म प्रयुक्त हो गया है।

(१८) सू० सं० ७ द्वितीय आक्षेप के इसी प्रकरण में 'गाम चातियाओ' क स्थान पर आ० सं० की प्रति में 'गाम चातयाओ' ऐसा प्रयुक्त है। प्रसंग के अनुसार अर्थ में इसकी सगति कैसे होगी ?

(१६) सू० सं० ७ द्वितीय आक्षेप क इसी प्रकरण में "दासी दास भयक भाइ झका" क स्थान पर आ० सं० की प्रति में १ 'दासिदास भयक भाइझका' प्रयुक्त किया है 'इसमें दासि को ह्रस्व विधान किंच नियम क अनुसार होगा।

विद्वान् मुनिराज और भागमायासी भ्रमसोपासकों से निवेदन है कि उपराक्त पाठ मेरों में जहाँ असंगति है उनक क्षिये अपनी युक्ति और चारणा का उपयोग करें इससे ज्ञानावरणीय दमक अयोपशमके साथ ही सहजी आगम सेवा भी होगी। तथा हानवाले प्रकारान् भूल स वचेंगे और मुद्रित संस्करणों में संशोधनार्थ मार्ग दर्शन होगा। अतएव एम आगम सेवा क कार्य की शोधा की वस्तु नहीं समझें। आशा है श्य मू और श्ये० स्वा० दोनों समाज के आगम रसिक इस ओर लक्ष्य करेंगे।

सुमेषु पद्मवितेनालम्
अनुवादक



प्रति परिचय

संशोधन में प्रयुक्त प्रतियाँ



श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र के संशोधन में निम्न लिखित मुद्रित एवं हस्त लिखित प्रतियों का उपयोग किया गया है।

१--श्री वर्द्धमान जैन आगम मन्दिर पालीताणा द्वारा प्रकाशित एवं आगम मन्दिर के शिलालेखों की प्रतीक स्वरूप जो कि तपोगच्छीय श्री सागरानन्द सूरि द्वारा संशोधित है। यह लम्बे साईज पत्राकार में मुद्रित पृष्ठ संख्या १९ है। 'त' अक्षर का विशेष प्रयोग है। अनवधानता एवं मुद्रण दोष से कई स्थलों पर पाठस्खलन दृष्टि गोचर होती है।

२--आगमोदय समिति, सूरत से प्रकाशित सटीक प्रति पत्राकार रूपमें मुद्रित यह प्रति प्रायः शुद्ध है।

हस्त लिखित प्रतियाँ—

३--प्रश्न व्याकरण हस्त लिखित 'अ' प्रति इसमें १०४ पत्र हैं। सार्थ होने पर प्रत्येक पत्रके दोनो बाजू ६-६ पक्तियाँ हैं। इसकी लम्बाई करीब १० ईंच और चौड़ाई प्रायः ४ ईंचकी है लिपि सुवाच्य होनेपर भी पूर्ण शुद्ध नहीं है। इसकी प्रशस्ति 'सर्व' १८४६ ना भाद्रपद मासे कृष्ण पक्षे सप्तमी मृगुवासरे। लिपिकृत सा जोड़तादा सेवासा झाती पोरवाढ वृष सारत।

४--प्रश्न व्याकरण हस्तलिखित 'ब' प्रति का लेखन दो हिस्सों में समाप्त किया गया है। प्रथम हिस्से में पाँच आक्षेपद्वार का वर्णन है। सार्थ होने में प्रत्येक पत्र दोनो बाजू ६-६ पक्तियाँ हैं। पत्रों की लम्बाई लगभग १० ईंच और चौड़ाई प्रायः ४ ईंच है। लिपि सुवाच्य है एवं पाठ प्रायः शुद्ध है। प्रथम हिस्से की पत्र संख्या ३ और द्वितीय हिस्से की २८ है। द्वितीय हिस्से में सप्तद्वार का वर्णन है। इन

लेखन कार्य मेरुता नगर में पूर्ण किया गया है। इसकी प्रशस्ति निम्न प्रकार से है—
 “संवत् १८५६ रा वर्षे मिति आसोज सुष द्वादसमी बुधवार तिथि कृत्वा चतुर्मास
 रिप दुरग हासेण आत्मार्ये ।” निम्न लिखित तीन प्राचीन हस्त लिखित प्रतियाँ भी
 खे० स्या० जैन मन्थ भण्डार, जयपुर से प्राप्त हुईं। इन प्रतियों का संकेत क ख और
 ग प्रति रखते हैं। इन प्रतियों का उपयोग अन्य प्रतियों में विशेष पाठ भेद दृष्टिगत
 होने पर किया गया है।

५—हस्त लिखित ‘क’ प्रति—इस प्रति में अणुचरोषवाह के उपसहार-पाठ के
 बाद ‘खमो अरिहंताय’ से सूत्रारम्भ किया गया है। यह मात्र मूल पाठ की प्रति
 है। पत्र सं० २१ है। प्रति पृष्ठ में प्राय १६-१७ पंक्तियाँ हैं। लिपि सुभाष्य और कई
 अक्षर पढ़े मात्रा के प्रयोग वाली है। स्थान स्थाप पर पद विभाग के चिन्ह किए
 हुए हैं। अंतक क प्रभाव की स्मरणना के अलावे प्रति बहुत कुछ प्रमाण में होने
 योग्य है। इस प्रति का प्रशस्ति लेख निम्न प्रकार है ‘संवत् १६०० वर्षे कार्तिक सुदी
 पंचमी रवियासरे श्री त्याठ पुत्र तांतसा हासन लिखित गौडाम्ये ।’

६—हस्त लिखित ‘ख’ प्रति—यह प्रति संवत् १६९० की लिखी हुई है। इसमें
 मात्र मूल पाठ है। लिपि सुन्दर सुभाष्य एवं पढ़े मात्रा की हासे हुए भी प्राय शुद्ध
 है। कहीं कहीं अर्थ सम्बन्धी टिप्पणियाँ अंकित की हुई हैं। पत्र संख्या ५६ है।
 प्रति पृष्ठ में ११ पंक्तियाँ हैं। अंतक की प्रशस्ति निम्न प्रकार है—“संवत् १६९० वर्षे
 शाके १४८६ प्रवर्त्तमाने महा मांगल्य प्रव। वैशाख सुदी ११ शनि दिने। महा अयि
 अपिराय अपि श्री नानकी प्रसादात् नावर मुनि पठनार्थ। वीरजी मुनिना लिखित।
 श्री शुभं भवतु लेखक पाठकयो। कल्याण मस्तु श्री रस्तु ॥

७—हस्त लिखित ‘ग’ प्रति—यह प्रति सटीक और सर्व भेद्य है। लिपि की
 सुन्दरता क साथ साथ पाठ प्राय शुद्ध है। त्रिपाटी होने से प्रति पृष्ठ में मूल पाठ
 और ऊपर नीचे टीका लिखी गई है। पत्र संख्या ६९ है। प्रति पृष्ठ में ४-६ और
 कहीं-यूनानिक मूल पाठ की पंक्तियाँ हैं। पत्र की लम्बाई चौड़ाई प्राय १०×४
 इंच है। अंतिम पृष्ठ नहीं होने से प्रशस्ति लेख नहीं माहूम किया जा सकता फिर
 भी प्रति का पढ़े मात्रा में लेखन एवं कीट कवचित हात देखते हुए लेखन-समय
 कम से कम ४००-५०० वर्ष पूर्व प्राप्त होना है।

सुत्रित प्रतियों में एक ज्ञान विमल सूरि कृत टीका की सटीक प्रति है जो
 मुक्ति विमल जैन मन्थाला के मन्थाद्व ७ में अक्षमहापाद से प्रकाशित है। अमर

देव सूरि की टीका से इसमें विशेषता है कि प्रति शब्द देकर कुछ सहजियत की गई है। मूल पाठ आगमोदय समिति के आधार पर है। केवल उसमें छोटे छोटे विभाग कर के प्रकाशित किया है। इसमें दो खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में पांच आस्रव और दूसरे भाग में संयम इस प्रकार दो भागों में छपा है। कहीं २ टिप्पण में ६ दिन शब्द का गुजराती नामान्तर भी दिया है। इति।



प्राक्कथन—

श्रुतसेवा—

यह एक निर्विवाद सत्य है कि श्रुत सेवा बड़े पुरुष का कार्य है। सांयोर्य के बिना श्रुत संसाधन अवसर प्राप्त नहीं होता। मर्यादित श्रुत श्रुत श्रुत है कि श्रुत कृपा से मुझे ऐसा अवसर प्राप्त हुआ था कि यदि एक मनुष्य के साथ विद्वानों का भी सहयोग मिलता रहा जिससे प्रस्तुत कार्य में बड़ा फल मिला है। मैं अनुभव करता हूँ कि श्रुत सेवा संसार के तापत्रय से सम्पन्न प्राणिमों को शान्ति प्रदान करनेवाली है। आरोग्य, शोक एवं दुःख को भूलना चाहें उनको अथवा विधि पूर्वक श्रुतसेवा करना चाहिए। शास्त्र ने इसी को बचन श्रुति का प्रधान कारण कहा है। जैसे कि—ज्ञान का प्रकाश होने पर अज्ञान एवं मोह सूर्य किरण में अन्धकार की तरह विघ्नित हो जाते हैं और मोह के अभाव से जब राग, द्वेष का विच्छेद हो जाता तब एकान्त सुख रूप मोह की प्राप्ति होती है। यह महिमाशाली ज्ञान प्रकारा श्रुत सेवा का ही परिणाम है। स्वर्गीय विषय वैभव का प्रत्यक्ष दर्शन, अमरत्व यमयातना का रोमाञ्चकारी वर्णन तथा निगूढ़ गुहामिहित सम आत्मवत्त्व, सिद्ध गति आदि का प्रवर्तन सिवाय श्रुत सेवा के दूसरा कौन कर सकता या कर सकता है? बिना श्रुत सेवा के ऐसा ज्ञान प्रकारा सुलभ नहीं।

श्रुत प्रत्यक्ष या शास्त्र किसी नाम से कहें, इसके दो प्रकार हैं। एक सत्य श्रुत और दूसरा मिथ्या श्रुत। अन्धों के द्वारा भी स्वेच्छापूर्वक केवल श्रुति और कल्पना के बल पर किये गये हैं। जिसको पढ़ने व सुनने से काम, अथ, मोह की वृद्धि हो जैसे कामराज्य अथवा काम या काम उपन्यास आदि सत् शास्त्र नहीं है। इनको पढ़ने या सुनने से श्रुत सेवा का लाभ नहीं होता क्योंकि य राग द्वेष की वृद्धि के कारण होन स करार हैं। लौकिक कला और अपन विषय की जानकारी के अतिरिक्त इनसे काश्चित्क लाभ प्राप्त नहीं होता। क्योंकि प्रत्यक्ष पद लेनेपर भी

१. गायत्री सन्ध्या स पगासगाण अथवा मोहस्त विचक्षणाय।

रागस्य व सन्ध्या सैतलपथं १ एगम साक्यं समुपद मे कर्तुं। २० ३२।२।

ये सुशास्त्र के एक श्लोक के बराबर भी नहीं होते। कहा भी है—‘श्लोकोवरं परम-
तत्त्व पथ प्रकाशी, न ग्रन्थ कोटि पठनं जनरंजनाय। सजीवनीति वरसौपधमेकमेव,
व्यर्थश्रमस्य जनतो न तु मूढभारः ॥१॥ अर्थात् परम तत्त्व को प्रकाशित करनेवाला
एक श्लोक भी अच्छा किन्तु जनरंजन के हेतु करोड़ों ग्रन्थों का पठन अच्छा नहीं।
संजीवनी जड़ी का एक टुकड़ा अच्छा परन्तु व्यर्थ श्रम देनेवाला मूला गाड़ी भर भी
अच्छा नहीं। सुशास्त्र की कितनी महिमा है? मनोरंजक साहित्य करोड़ों भी सुशास्त्र
के एक पद की तुलना में नहीं आ सकते। सुशास्त्र का वह एक श्लोक आत्म-जागरण
करता है, जो अन्य साहित्यों से नहीं होता। ऐसे परम पदों का पठन मनन ही
संगतमय श्रुत सेवा है।

जैन साहित्य में आगम—

यों तो अधिकांश जैन साहित्य ही ‘परमतत्त्व पथ प्रकाशी, इस उक्ति के अनु-
सार त्याग विराग की शिक्षा देनेवाला है, क्योंकि इनके प्रणेता प्रायः त्यागी साधु
थे। अतः इनको सुशास्त्र कह सकते हैं, फिर भी इन सब साहित्यों में ‘आगम’ का
स्थान बहुत ऊँचा है। वैदिक साहित्य में वेद और इस्लाम साहित्य में कुरान शरीफ
की तरह जैन साहित्य में आगम का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आगम का अर्थ है विधि-
पूर्वक जीवादि तत्त्वों को समझानेवाला प्रामाणिक शास्त्र। अन्यत्र कहा गया है—
‘आप्तवचन मागम, आगमश्चोपपत्तिश्च सम्पूर्णं दृष्टिलक्षणम्। अतीन्द्रियाणामर्थानां
सद्भाव प्रतिपत्तये ॥१॥ आगमोऽप्राप्तवचन—माप्तं वोपच्याद्विदुः। वीतरागोऽनृतं
वाक्यं न प्रयाद्वेत्त्वसमभवात् ॥२॥ दश०। अर्थात्—अतीन्द्रिय पदार्थों की सत्ता
समझने के लिये आगम और उपपत्ति ही सम्पूर्ण दर्शन का लक्षण है। ॥१॥
आप्त वचन को आगम कहते हैं और जिनके दोनों का क्षय हो चुका वे आप्त हैं।
वोप नहीं रहने से वीतराग असत्य वचन नहीं बोलते, क्योंकि वहाँ असत्य का कोई
कारण नहीं रहा ॥२॥ उपरोक्त विचार से पाठक समझ गये होंगे कि वीतराग धारणी
को आगम कहते हैं। अतीन्द्रिय विषयों का प्रामाणिक निर्णय आगम से ही हो सकता
है। अतः धर्म मार्ग से * इसी को प्रामाणिक पद प्राप्त है। समस्त साहित्य में
आगम की विशिष्टता इसलिये है कि—“आगम युक्ति विरुद्ध नहीं होता और सद्-

* जम्हा न धम्ममागगे, मोत्तूणं आगम इह पमाण
चिज्जइ छच्चमत्थेण, दम्हाण्थेव जइयव्व ॥

युक्ति भी आगम से विमुख नहीं जातो। एक-दूसरे का अनुगमन करते हुए आगम और युक्ति ये दोनों सत्य के ज्ञान को स्थिर करने में समर्थ होते हैं। जैसे कि—
 जुष्टीए अभिरुद्धो सदागमो, सावि तप भिरुद्धसि। इम अय्योएखानुगमं, उमयं पडिवसि हेउसि। पंचाशक ॥४५॥

इस प्रकार का गुणसम्पन्न आगम बीतराग बचन ही हो सकता है अन्य नहीं।

शास्त्र का नाम

प्रमव्याकरण्यानि—पण्हावागरण्याई वा पण्हावागरण वसा है। न-ही और समवायाङ्ग सूत्र में पण्हावागरण्याई नाम रक्खा गया है। प्रम का अर्थ पूछना और व्याकरण का अर्थ उत्तर है। बहुतसे प्रश्नोत्तर ज्ञान से इसका नाम प्रम व्याकरण्यानि ऐसा बहुवचनान्त पद रक्खा गया। जैसा कि टीकाकार अभयदेव सूरि ने लिखा है—प्रमं प्रतीत, सन्निर्बचन-व्याकरणम्। प्रमानाङ्ग व्याकरण्यानाङ्ग योगात् प्रम व्याकरण्यानि, (सम० १४५) नन्वी और प्रमव्याकरण के टीकाकार ने भी इसी अर्थ को माना है।

दूसरा नाम है पण्हा वागरणवसा, इसका प्रयोग स्थानाङ्ग में मिलता है। स्थानाङ्ग के दशम खान में कहा है कि पण्हावागरण वसा के दश अभ्ययन हैं, 'टीकाकार भी इसी नाम से अर्थ करते हैं, जैसे—प्रम व्याकरण दशा इहोक्त रूपा न। दोनों नाम प्राचीन हैं फिर भी ज्ञात होता है कि प्रम व्याकरण दशा यह नाम प्रम व्याकरण्यानि से कम भिन्न था। कारण भगवती समवायाङ्ग और नन्वी में प्रम व्याकरण नाम का ही उल्लेख मिलता है। इसके ५ आक्षेप और ५ संवर रूप से दश अभ्ययन मिलत हैं। अतः इसका नाम प्रम व्याकरण दशा अधिक ठीक लगता है किन्तु श्रुताम्बर परम्परा के भाषाचार्यों ने प्रायः प्रम व्याकरण नाम ही प्रामाणिक माना है। अधिकांश शास्त्रीय प्रयोग और विगम्बर साहित्य में भी 'पण्हा वापरण' तथा उल्लेख है, अतः प्रम व्याकरण नाम ही अधिक सम्मान्य चाहिए। आप कहेंगे कि इसमें प्रम विद्या का सम्बन्ध नहीं है, फिर प्रम व्याकरण वह नाम कैसा? उत्तर यह है कि सुप्रभा स्वामी ने अपने शिष्य जम्बू के प्रम पर आश्रय, संवर का प्रतिपादन किया है, इसलिए इसको प्रम व्याकरण कहने में बाधा नहीं है। दण्डिप—गाम्मद्वयार की टीका में भाषार्थ में लिखा है कि—शिवप्रदानात्पुत्रपदा अपारपतुर्बिधा व्याक्रियन्त परिमन्—उग-प्रम व्याकरणम्।

प्रश्न व्याकरण का स्थान

प्रस्तुत प्रश्न व्याकरण शास्त्र में उपरोक्त आगम लक्षण मिलते हैं इसलिये इसको आगम कहने में कोई बाधा नहीं है। अब यह विचारना है कि प्रश्न व्याकरण का आगम में कौनसा स्थान है ? वह कितना महत्त्व रखता है ? (दृशबैकालिक सूत्र की भूमिका में यह धत्ता दिया गया है कि) श्वे० सम्प्रदाय की मूर्ति पूजन और अमूर्ति-पूजन दोनों सम्प्रदायों के भान्य आगम ३२ हैं। आवश्यक से अतिरिक्त अङ्ग, उपाङ्ग, मूल और छेद के विभाग से ३१ आगम होते हैं। उनमें अङ्ग का स्थान सर्व प्रथम है। सामान्य रीति से देखा जाय तो सभी आगम अङ्ग प्रविष्ट और अङ्ग बाह्य इन दो भेदों में आ जाते हैं। कालिक एवं उत्कालिक रूप से अङ्ग बाह्य शास्त्रों को दो श्रेणी में विभक्त कर नन्दी सूत्र में अङ्ग प्रविष्ट १२ कहे गये हैं। जैसे कि--से किं त अग पविष्टं १ दुवालसविह ५० त०--“आयारो १ सूर्यगडो २ ठाणं ३ समवाओ ४ विद्याहपन्नत्ती ५ नायाधम्मरूहाओ ६ उवासगदसाओ ७ अतगडइताओ ८ अणुत्तरोववाइयदसाओ ९ पण्हावागरणाइ १० विवगसुय ११ दिट्ठिवाओ १२” इनमें प्रश्न व्याकरण का स्थान दशम है। गण०ओं के मङ्गलमय शब्दों में तीर्थंकर भगवान् की वाणी का इसमें समावेश है। इसका मूलरूप सरुवायङ्ग सूत्र और नन्दी में द्वादशाङ्गी का परिचय देते हुए, प्रश्न व्याकरण का भी वर्णन आता है--

प्रश्न व्याकरण सूत्र के दो रूप हैं एक प्राचीन और दूसरा अवर्धित। समवा-याङ्ग और नन्दी आदि सूत्रों में द्वादशाङ्गी के अन्तर्हित जो प्रश्न व्याकरण का परिचय मिलता है वह इसका प्राचीन रूप है। पूर्वकाल में अङ्गुष्ठ आदि प्रश्न विचार्यों और दिव्य संवाद इसमें कहे गये थे। जिसके लिये नन्दी सूत्र में कहा है कि १०८ प्रश्न पूछे हुए और १०८ अप्रश्न बिना पूछे तथा १०८ प्रश्नाऽरत-पूछे या बिना पूछे दोनों तरह से शुभाशुभ कहनेवाली विद्या है। अङ्गुष्ठ प्रश्न, बाहु प्रश्न और आदर्श प्रश्न विद्या कही गई। ऐस अन्य भी विविध अतिशय विचार्यों और नाग कुमार सुपर्ण कुमार आदि के साथ दिव्य संवाद बताये गये हैं। परिमित वाचना और इसका एक ही श्रुत स्कन्ध है। ४५ अध्ययन और ४५ ही उद्देश व समुद्देशकाल कहे गये हैं। उसका पद परिणाम ६२ लक्ष १६ हजार लिखा है। समवायाङ्ग में कुछ विचार्यों और आचार्यों भाषित, प्रत्येक बुद्धभाषितादि का विशेष उल्लेख मिलता है। इन दोनों में ४५ अध्ययन बताये गये हैं, किन्तु स्थानाङ्ग सूत्र के दशम स्थान में प्रश्न व्याकरण

के दश अध्ययनों का चरहस्य मिलता है इसिये—‘पण्ड्यावागरण दशार्ण वस अम्म
 दग्गा प त० उपमा सत्ता, इसिमासिगाई, आयरिय भासियाई, जोमग पसिगाई,
 कामज पसिगाई, अहाम पसिगाई, अंगुट्टपसिगाई, बाहुपसिगाई ।’ उपरोक्त दश
 अध्ययनों में म प्रथम दश का द्वाङ्कार शेष ८ विषय और नाम की दृष्टि से सम-
 वायाङ्ग के साथ मल खाते हैं । फिर भी यह प्रम कहा रहता है कि नन्ही और सम-
 वायाङ्ग में इमके १५ अध्ययन रहे हैं और स्थानाङ्ग में दश । विषय की समानता
 जान पर भी यह अन्तर कैसे ? टीकाकार ने इसका कोई समाधान नहीं किया, कथक
 ‘अस्य वाक्ता प्रम व्याकरण द्वारा यहाँ नहीं है, इसना ही लिखा है । जैसे कि—
 ‘अथ व्याकरण द्वारा इहोच्छ्रुता न, स्वा० १० ठा ॥ अपस्तम्ब प्रमव्याकरण के अन्त
 में लिखा गया है कि—‘पण्ड्यावागरणे यं एगो मुखकर्मणो इस अम्कद्वया पण्ड्यरगा
 म्मु घव दियम्मु उरिसिम्भति,—प्रमव्याकरण में एक कुत स्थ और दश
 अध्ययन हैं दश विनों में ही इसका उल्लेख होता है । आदि ।

यसै निष्पन्न यह निकलता है कि प्रम व्याकरण ही है । इन दोनों में वरुं
 मान काल में दश अध्ययनवाला प्रम व्याकरण ही उपलब्ध है । आखिर जब संवर
 का नमै प्रतिपादन किया गया है । ४५ अध्ययन पर व्याख्या करते हुए टीकाकार
 भाष्यनयन मूर्ति लिखते हैं—‘यद्यपीह अध्ययनानां वस्तुवाद् दशोद्देशान्तात्ता
 भवति । नवार्प वाचनान्तराभ्युपेक्षया पञ्चवर्गवर्तिशक्ति संभाव्यते, इति पक्षपाती
 स च विकल्पः ।

मान में अध्ययन दश होने से उद्देशान्तात्ता काल भी दश होते हैं,
 की अपक्षा ४५ का कमन सम्भव होता है । उपरोक्त विवरण
 कि टीकाकार के समय में प्रम विद्यावाला सूत्र वाचनान्तर माना
 इन व्याकरण का दूसरा रूप है ।

[में श्वेताम्बर सम्प्रदाय की तरह दिगम्बर सम्प्रदाय भी द्वाङ्कार
 शास्त्री का मानती है । दोनों के नाम और कुछ विराष्टता
 के साथ विषय मिलान-जुलते हैं । अस्पष्टता ही अन्तर
 म कहा के ध्यान पर ‘याह यम्म कहा’ ‘ववासग दसा’ के स्थान
 और ‘पण्ड्यावागरणाई के स्थान में पण्ड्यावरण, नाम मिलता
 प्राय मिलती है । स्थानाङ्ग और समवायाङ्ग आदि की वह संख्या
 किम्बु इसमें सत्यम यह अनुश्रुतिमें धाम्नि ध्यान कारण ठाठ होता

है। अगु, हमे यहाँ प्रश्न व्याकरण के लिये ही विचार करना है। प्रश्न व्याकरण के लिए श्री वीरसेनाचार्य अपनी धवलो टीका में निम्न परिचय देते हैं—‘परमार्थ-रक्षणं नाम अंगं तेणोर्दलकल सोलह सहस्र पदेहि ६३१६००० अक्षरेषु, निक्षरेषु, संक्षरेषु, विक्षरेषु चेदि चउविंशदो कथावो वरणेदि। तन्म अक्षरेषुणाम छद्मव शवपयत्थाण सख-दिगन्तर-समया-तर गिराकण सुद्धि करेती परुवेदि।’ उक्त च—‘आक्षेपणी तत्त्वविधान भूता’ विज्ञपणी तत्त्व-दिगन्तशुद्धिम्। संवेगिनी धर्मेफल प्रपञ्चा, निर्वेगिनी चाह कथा विरागाम। ॥२॥ भगवादे। हृदय-मुष्टि-चिन्ता-लह लाह-सुह दुःख-जीवित-मरण-जय-पराजय-म-दवायु-सखच परुवेदि। अर्थात् प्रश्न व्याकरण नाम का अंग तेरा नवे लाख स लह हजार पदों के द्वारा आक्षेपणी, विज्ञपणी, संवेदनी, निर्वेदनी इन चार कथाओं का तथा (भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल सम्बन्धी धन, धन्य, लाभ, अलाभ, जीवित मरण, जय और पराजय सम्बन्धी प्रश्नों के पृच्छने पर उनके) उत्तर का वर्णन करता है, जो नाना प्रकार की एकान्त दृष्टियों का और दूसरे समयों (सिद्धान्तों) का निराकरण पूर्वक शुद्धि कर के छ द्रव्य और नाना प्रकार के पदार्थों का प्ररूपण करती है उसे आक्षेपणी कहा कहते हैं। कहा भी है—तत्त्वों को निरूपण करनेवाली आक्षेपणी कथा है। तत्त्व से दिशान्तर को प्रस हुई दृष्टियों का शोधन करनेवाली अर्थात् परमत की एकान्त दृष्टियों का शोधन करके स्वसमय की स्थपना करनेवाली विज्ञपणी तथा है। विस्तर से धर्म के फल का वर्णन करने-वाली संवेगिनी कथा है और वैराग्य उत्पन्न करनेवाली निर्वेगिनी कथा है। यह प्रश्न व्याकरण नाम का अंग प्रश्न के अनुसार इत-नष्ट-मुष्टि-चिन्ता-लाभ-अलाभ-सुख, दुःख, जीवित, मरण, जय, पराजय, नाम, द्रव्य, आयु और सख्या का भी प्ररूपण करता है। धवलाष्ट १०४ से १०६।

उपरोक्त धवला के उल्लेख से प्रकट होता है कि प्रश्न व्याकरण में आक्षेपणी आदि चार कथाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन था और प्रश्न के अनुसार इत, नष्ट, मुष्टि, चिन्ता, लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, जीवित, मरण, जय, पराजय, नाम, द्रव्य, आयु और सख्या का भी प्ररूपण किया गया था। इसमें प्रघटनता से चार कथाओं को कह कर उन्हीं के साथ प्रश्न-विद्या का भी होना कहा गया है। किन्तु गोमट-सार में प्रश्न-विद्या को मुख्यार्थ मान कर पक्षान्तर में शिष्य प्रश्नानुरूप से चार कथाओं का वागरण माना गया है। जैसे कि—‘प्रश्नस्य दूतवाक्यं नष्ट मुष्टि चिन्ता, वि

रूपस्थायिकतास गोचरो धनधान्यादि सामानास मुखमुख जीवित मरण जय परा
जयादि रूपो व्याक्रियते—व्याख्यायते यस्मिन् रत्न-प्ररन व्याकरणम् । अथवा शिष्य
प्रनानुरूपतया अयक्षेपणी विक्षेपणी, संवेदनी, निर्बन्धनी भवति कथाभ्युत्थिधा
व्याक्रियन्ते यस्मिंस्तत् प्ररन व्याकरणम् नाम । गाम० जीव-हाय० जी० प्र० टो०

प्रथमतो नष्ट गुण्यादि प्रम का सामानास आदि रूप फल जिसमें कहा जाय
वह प्ररन व्याकरण है । अथवा शिष्य के प्रनानुरूप जिसमें अक्षेपणी आदि अर
कथार्थे कही जाय वह प्ररन व्याकरण है । उपरोक्त बिचर से कलित हत है कि
दिगम्बर परम्परा में भी प्ररन व्याकरण के दो रूप मान गये हैं ।

सूत्र का वर्तमान रूप प्ररन व्याकरण का परिचय पढ़ कर पाठक विचारेंगे कि
कब से और क्यों ? इसमें से प्ररनविद्या क्यों आरंभ कब चली गई ? और यह
इस रूप में कब से है ? यद्यपि इस प्ररन का व्योरेवार
समाधान करना हमारी शक्ति और उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री से बाहर की बात
है तथापि ब्याख्यातृ सचत साधनों से कुछ विचार किया जाता है । नन्दी
और समवायाङ्ग के उल्लेख से चलते हुए प्रतीत होता है कि इनके लेखन काल में
प्ररन विद्यावाले प्ररन व्याकरण की ही प्रति द्वा है । आखिर संवर का प्रतिपादन
वर बाबा यह सूत्र यदि शाकतेजन के समय हुआ तो अवरय उसका द्वादश ज्ञ के
परिचय में उल्लेख होता किन्तु नन्दी से समवाय ज्ञ के सूत्र परिचय में कुछ बातें
निक्षेप बता कर भी आखिर संवर का वर्णन की नहीं दिखाया गया । दिगम्बर
परम्परा के बबला सन्धम में जैसे प्ररन विद्या के साथ अतुर्विध कथाओं का प्ररन
व्याकरण में परिचय दिया गया, वैसा भी वा यहाँ निर्देश नहीं । इससे हमारे जैसे
छ प्ररन निपादक की तो यही धारणा हावी है कि वैश्वकिण्णी के द्वारा जोर निर्वाण
९- ने का शास्त्रों में पुस्तकाकार लेखन कराया गया उसमें समवायाङ्ग के लेखन
तक वा प्ररन विद्यावाला प्ररन व्याकरण था किन्तु उसका ज्ञान सबवाधारण्य को
मुन्नम नहीं था । केवल परम्परा से परिचय मात्र सब का था । जब शास्त्रों का सङ्ग
होना तथा सङ्ग संश्लिष किया गया तब अनुयगधारी आचार्यों ने आभरक के
स पुत्रों का अतिहाय ज्ञान के योग्य न जान कर अंगुष्ठ आदि प्ररनों का विकास
दिया । जैसे कि टीकाकार आचार्य अभयदेव सूत्र लिखते हैं—“इदानीं त्वाख्य
पंचम संवर पञ्चक व्याकृतिरेवोपलभ्यत । अतिशयानां पूर्वाचार्यैरेतदुगीनानाम
पुष्टालम्बन प्रतिपत्तिं पुष्टपाठ्येवोत्तारितत्वात्-इति ।” अतएव अंगुष्ठ आदि प्ररनों के

स्थान में आसन्न एवं संवर के विचार को रक्खा हो। कारण यह कि प्राचीन समय में गुरु शिष्य परम्परा से श्रवणानुश्रवण ही शास्त्र रक्षा का साधन था। जब त्रिशिष्ट ज्ञान के धारक गुरु अपना ज्ञान किमी को विना दिये ही स्वर्गवासां हो जाते तब उनका गूढ़ ज्ञान उन्हीं के साथ विलीन हो जाता था।

टीकाकार अभय देवसूरी के प्राप्त प्रश्नव्याकरण की दूसरी पुस्तक में जो उपोद्घात ग्रन्थ हैं, उससे अवश्य प्रश्नव्याकरण में पांच आसन्न और पांच संवर का वर्णन ज्ञात होता है। उसमें प्रश्न विद्या का नाम ही नहीं है, जो मुद्रित उपोद्घात ग्रन्थ से देख सकते हैं। इस पर से अनुमान होता है कि पुस्तकान्तर में उपोद्घात के साथ मिला हुआ प्रश्नव्याकरण वाचनान्तर का हो। समवायाङ्ग में जिनका परिचय दिया गया वही वाचना लेखन काल में अधिक मान्य हो और गौण मानकर वाचनान्तर के प्रश्नव्याकरण का परिचय उसमें नहीं लिखा गया हो। जो कुछ हो इतना तो सत्य है कि देवर्दिगणी के बाद और टीका विधान से बहुत पूर्व ही वर्तमान का प्रश्नव्याकरण भी लिपिबद्ध होकर प्रकट हो चुका था।

ग्रन्थ कर्ता—

शास्त्र के मूल प्रणेता श्रमण भगवान् महावीर हैं, क्योंकि उन्होंने अर्थ रूप से इसका प्रथम कथन किया है। जैसे कि कहा है—“अथ भासद् अरहा, सुत्त गथति गणधरा निडण । सासणस्स हियट्ठाए, तथो सुत्त पवत्तर” अर्थात्—तीर्थङ्कर भगवान् के वहे हुए अर्थ को गणधर कुशलता से सूत्र रूप में ग्रथन करते हैं। आदि। अतः अर्थ दृष्टि से प्रश्नव्याकरण के कर्ता भी महावीर हैं किन्तु सूत्ररूप से शब्द रचना करने वाले गणधर कहे जाते हैं। दिगम्बर परम्परा में माना गया है कि गणधर इन्द्रभूति ने ‘अन्तर्मुहूर्त्त’ मात्र काल में द्वादशाङ्ग की रचना की और फिर उन्होंने दोनों प्रकार का श्रुत सुधर्माचार्य को दिया। अतः गौतम गणधर ही ब्रह्म श्रुत के

१ पुणो तेण्हिदमूदिणा भाव सुद पज्जय परिखदेण बार हंगाण चोहस पुव्वाणं च गंगाणमेवकेण चैव मुहुत्तेण कमेण रयणा कदा । तदो भाव सुदस्स अत्थपदाण च तित्थयरो कत्ता ॥ धवला ८।१।१। पृ० ६५।

तथया—तटोतेण गोजम गोत्तेण इदमूदिणा अतो मुहुत्तेणावहारिय दुवाल सगत्थेण तेणेव कालेण कय दुवालसग गथ रयणेण गुणेहि सगसमाणस्स सुहुमारि-
जस्स गयो वक्खाणिदो । जय ध० अ० पृ० ११।

यनाई, हिन्दु ग्रन्थानुसार परम्परा का मत है कि भगवान् महावीर स त्रिपदी को सुनकर सभा गणधर्मी न चतुर्दश पूर्व की रचना की। इन इगारह गणधर्मों के द्वारा नव पापनाशें दूर कियीं जा सकनाये समान हुए थीं। इस मायता में वतमान आगम सुधम पापना के समस्त आत हैं। अब उपलब्ध कङ्क-शास्त्री के कर्त्ता सुधर्मा पात हैं नव धरन्यावरण के भी सूत्ररूप से सुधमा स्वामी ही कर्त्ता समझने चाहिए। जैसाकि अमर १३ मूर्ति कहते हैं—“कस्य च भी मन्महावीर वर्तमान स्थामि मन्दग्री पद्मस गण नायक भी सुधम स्वामी सूत्रना जम्बुद्वीपदिन प्रति प्रणतं पिच्छिन्नु सम्बन्धपादमिधयप्रयाजन प्रतिपादनपरं जम्बु ? इत्यामग्रण पूर्वा गाथाभाह”।

इसमें सुधमा नामो सूत्र रूप में जम्बु का शास्त्र का कथन किया, यह बताया गया है।

शास्त्र की भाषा जम्बुत भाषा यद्यपि अर्धमागधी है, तथापि आचार्य ने भाषा अ हि म इसकी भाषा शैली में अवश्य अगार है इसकी भाषा वाङ्मयी का मन्त्र प्रष्टुष्टुमुक और मादिरिक है। वर्ध्मी रीति का अन्तर्गत म इसमें समान की कटुता है। विषय मनीषवागी हाइर भा भाषा की कठिनाता न गण मापागण के नियम गुनम नहीं है। सामान्य प्राकृत के ज्ञान मात्र में इसमें प्रवेश नहीं हो सकता है। कहा जा सकता है कि प्राकृत में शास्त्र निर्माण का यह अर्थ है। अब — प्राकृतान्तरकर्म गिद्वान् प्राकृत है — अनुवाद करना है। नव इगार जमा दुष्टों को बनावता गया ? १० शास्त्रकार का मभी प्रकारक भाषाओं का अन्तर्गत है। अन्तर्गोत्री नव दुष्ट विद्वानों भी विद्वानों का समाचार मिल, संभव है इसके निमित्त में यही अन्तर्गत है। गणधर्म का मादिरिक भाषा भी वाङ्मयी हो सकता है।

शास्त्रकार के माप गुणना यद्यपि प्रातः दशहरण आचार्य और संवर को बरनवाया कान्ती शैली का एक ही है अन्तर्गत जमा गतत्र विचार मही मिलना फिर भी यह शास्त्र इसकी आदिरिक गुणना में आता है। प्रथम अन्तर्गत में कहा है नव अन्तर्गत जम्बुद्वीप का मापागणी और अन्तर्गत अन्तिम बरनवा के प्रथम पाद में अधिवासी किया है। अन्तर्गत आति के नामों में दुष्ट १०११ है। उस अन्तर्गत के नियम बरनवा में निम्न और मोह किया है। अन्तर्गत है। अन्तर्गत आति के अन्तर्गत में अन्तर्गत इतिहास और विद्वानों के, निवे

चिल्लल है। अरोस को पन्नवणा मे हरोस और पोकरण के लिये वोक्कण लिखा है। रोम मास के लिये रोम पास रोस ऐसा पाठ दिया है। वकुस को पडुम और चुंचुया के स्थान पर वंधुयाय ऐसा पाठ है। चूलिका के स्थान पर स्यलि और महुर् के स्थान मगर है। मरुट्ट मुट्टीय और आरघ के स्थान पर केगल मोंड इतना ही है। डोविलग के स्थान पर डोविलग लओस और प ओस है। केकय के स्थान ककोस और अक्खाग तथा रुठ के स्थान मे भरु पाठ भेट है। मृषावादी दार्शनिको का वर्णन सूत्रकृताङ्ग के प्रथम अध्ययन से मिलता जुलता है। युगलिक नरनारिओ का वर्णन जो चतुर्थ आस्रव में है, जीवाभिगम के युगलिकाधिकार के समान है। अहिंसा के वर्णनसे जिन मुनिओंका परिचय है उस पाठकी उबवाई से तुलना होती है। सधरा-ध्ययन की पचीस भावनायें आचाराग के भावनाध्ययन में संक्षिप्त कही गई है। पञ्चम संवर में एकविध असंयम से लेकर तैंतीस आसातना तक जो उल्लेख मिलता है उनका स्पष्ट परिचय समवायांग में और कुछ दशाश्रुतस्कन्ध मे मिलता है। ये शास्त्र प्रश्न व्याकरणगत विषय के पूर्तिरूप हैं।

देश और अनार्य जाति का महाभारत में भी विशद वर्णन है। नारक वर्णन सूत्रकृताङ्ग और उत्तराध्ययन के नरक वर्णन से भावत. साम्य रखता है।

प्रस्तुत शास्त्र परिचय—

सुख्य त्रिपय भेद के अनुसार इस शास्त्र को हमने दो खण्ड में विभक्त कर लिखा है। प्रथम खण्डमें ५ आस्र १ अर्थात् हिंसा, कूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रहका वर्णन है। प्रत्येक आस्र १ को स्वरूप, नाम करने का प्रकार, कर्ता और फल के भेद से ५ द्वारों में बताया है। फिर उत्तर खंड में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पाच संवर का कथन है प्रत्येक व्रत को पाच भावनाओं से सुरक्षित बताया गया है। इसमें सर्व प्रथम मूल, फिर संस्कृत और पञ्चात अन्वयार्थ एवं भावार्थ लिखा गया है। पाठान्तर मूल मे कोष्ठक से और अधिकांश, विशिष्ट स्थलो के टिप्पण से बताये गये हैं ॥ पीछे परिशिष्ट में शब्द कोश, विशिष्ट स्थलो के टिप्पण ऐतिहासिक नाम, पाठान्तर और कथा भाग दिया गया है।

अन्तरङ्ग परिचय—

प्रथम आस्रव मे पहले हिंसा का रूप बताकर उसके ३० नाम कहे गये हैं, फिर हिंसकों के वर्णन में कहा है कि वे असयमी अविरती एव चञ्चल परिणाम वाले तथा पर दुःख देने में तत्पर होते हैं। मारे जाने वाले जन्तुओं की गणना में १३ जलचर ३२ चतुष्पद ८ उरग १६ मुज परिसर्प और पक्षियों की

अतिथियाँ ४७ गिनाई गई हैं। इसके बाद प्रसन्नोर्ध्व की हिंसा के विविध कारणों को बताकर पाँच स्वावर्तों की हिंसा के भी पृथक् पृथक् कारण बतलाये हैं। चैत्र, वैश्व कुम्भ और मठ आदि धर्म साधन कहे जाने वाले भी प्रथम आत्मव में पृथ्वी की हिंसा के कारण बताये गये हैं। हिंसा पक्ष स्वपरा, परपरा या अर्थ एवं अनर्थ से की जाय, हास्य, रति, धैर्य से हो अथवा क्रोध, शोक, मोह से हो, सभी प्रकार की धर्म, अर्थ या काम निमित्त से होने वाली हिंसा अधर्म का द्वार है। उसे करने वाले इत दुःखि व निवृत्त हैं।

दिनों में विविध प्रकार के शिठारो, पाट्ठी, और मच्छीमार आदि अनैक गिनाये गये हैं। हिंसा प्रधान ५२ ग्रेन्ड अतिथियाँ और पक्ष पक्षी मत्स्य आदि जीव इस हिंसा के आस कर्ता कह गये हैं।

अन्त में हिंसा के फलस्वरूप मित्रनवासी नरक गति की रोमाञ्चकारी यम यातनायें विस्तार से कही गई हैं। यमपातना सुगत कर नरक से निकलनेवाले नार कीय जीव पशुगति में आकर ३ से भी अधिक प्रकार की पराधीन यत्नायें भोगते हैं फिर पंचेन्द्रिय से अतुरिन्द्रिय वेदन्द्रिय आदि क्रम से पञ्चेन्द्रिय तन्त्र के भयभङ्ग दुःखों का वर्णन किया गया है। हिंसकों के किय मनुष्य अमर ऐसा दुर्लभ हो जाता है कि किसी किसी को तो अनन्त काल जैसे सुदीर्घ काल के पश्चात् मनुष्य भव का लाभ होता है। मनुष्य लोक में जो कुछे कगड, खरूह, घामन बहरे, कावे तथा गूमे हैं वे तमाम भिरूप हिंसा के कारण से ही हात हैं। रोग, व्याधि, बिन्ता और अक्षय्य तथा अकाल मरण हिंसा के ही दुष्परिणाम हैं। हिंसा से ही जीव निर्धन, कुम्भ और सुख सामान्यहीन होता है। इस प्रकार हिंसा के दुःख पीर प्रभु ने बताया है।

द्वारे अथम द्वार में मूठका वर्णन पाँच प्रकार से है। प्रथम मूठ का स्वरूप और फिर उसका ३० नाम हैं। आघ, शोक, भय और हास्य से मूठ चलनवाले चार आदि २७ फलीय वृक्षवहारिक पुरुष गिना कर फिर पञ्चान्तवादिभ्यो का परिचय दिया गया है। मास्तिकवादी आदि उनमें प्रधान हैं। कुछ लोक काल स्वभाव या भवितव्यता को ही कर्ता मानते हैं तो कोई यम या इश्वर को ही कर्ता बता हर्ता मानते हैं। य सभी पञ्चान्त बचन शास्त्र में मिथ्या कह गये हैं। व्ययहारपाद, निधय बार और शानबाद एवं क्रियापाद यो भी ऐसा ही समझना चाहिए। निम्ना, पैशुन्य के अतिरिक्त कन्याभीक, अथानीक, भूम्यक्षीक तथा गयालीक का बड़ा मूठ और

दुर्गति का कारण कहा है। हिंसाकारी वचन सत्य होकर भी मृषा के समान है। पशुओं का दमन करो, अश्व्यादि खरीदो, और घेचो, खेत जोतो, आदि ३० प्रकार के मायद्य उपदेश सत्यव्रती मुनि के लिये बाधक कहे गये हैं। इसकी जीविका बन्द कर दो तथा कुछ भी दान मत दो यह भी भूठमा है।

भूठ भोगनेवाला दुर्गति में भटकता है। शरीर और वचन से विकल होता है। परार्थीन नीच भी सेवा करनेवाला धर्म-अवग्रह से घञ्चित रहता है। सत्सेप में समझना चाण्डि नि दु ख, दीर्घाय, अवीर्ति और तिरस्कार भूठ के मुख्य फल है। तीसरे अध्ययन में चोरो का वर्णन है

धिता दिये तथा ग्यासी की अनिच्छा से क्रिमी पदार्थ को ले लेता चोरी है। चोरी का स्वरूप और नाम कह के फिर चोर एवं चोरी के प्रकारों का कथन है। सालने आनेवाले का मारनेवाले १ ऋण लेकर नहीं देनेवाले २, सन्धि को तोड़ने-वाले ३, राजनिषिद्ध कार्य को करनेवाले ४, ग्राम घातक-पुर घातक पन्थ घातक ५, राजकीय हासिल लेनेवाले अधिकारी आदि अनेक प्रकार के चोरकहे गये हैं। चोरी के प्रकार-लोभी राजा लोग सैन्य बल से लूट कर दूसरों का द्रव्य हठान् हण्ड करते हैं। वैसे कुछ चोर समूह बना कर अट्टरी में पथिकों को और दृग्ग्या चलनेवाले जहाज एवं सार्थ को लुटते हैं। ग्राम नगरादि में निर्दयता से लूट मचाते हैं। यहा युद्ध और समुद्र का विस्तृत वर्णन किया गया है। काल विकाल में घूमते हुए चोर, पर्वत, नदी, श्मशान अथवा वन के शून्य स्थानों में क्लेश सहते रहते हैं। ये लोग स्वजन जनों से दूर और अशान वसन के अभाव से धिक्कल निन्दित जीवन से जीते हैं। जब कभी पकड़े जाते हैं तब राज्य-पुरुषों द्वारा विभिन्न प्रकार के बध बन्धन शूलारोपण आदि नरकतुल्य दु खों को एक ही साथ भोगते हैं। यहा पूर्वकाश में दिये जानेवाले अनेक प्रकार के दण्डविधान बताये गये हैं। परलोक में तथा नरक तिर्यञ्च योनि में और मनुष्य भव में चोरो के लिये दुर्गति दिखाई गई है। चोरी के फल में मनुष्य होकर भी जीध अनार्थ क्रूर एवं वर्म रहित जीवन बिताता है। परिणाम स्वरूप संसार समुद्र में वह दीर्घ काल तक भटकता रहता है। संसार समुद्र का यहा सर्वाङ्ग पूर्ण वर्णन किया गया है।

चौथे अध्ययन में मैथुन का वर्णन है-

यह तप सयम का विघ्न और रोग, शोक, जरा, मरण का हेतु है। चिरपरिचित होकर इसका परिष्काम महा दु खदायी है। इसके ३० नाम गिनाकर फिर-सेबन

करने वालों का परिचय दिया गया है। जैसे—४ ज्ञाति, ६ वय, मनुष्य और पन्धे-
न्द्रिय तिर्यग् इसका सामान्य रूपसे आसंबन करने वाले हैं। अत्यन्त शुभ लक्षणों
से विराजमान और ब्रह्मण्ड की विशाल राश्व लक्ष्मी के मोक्ष बनकर भी प्रक-
वर्ती भोगों से अग्रगृहीत रह जाते हैं।

मैथुन सदा में आसक्त मनुष्य परस्पर लाड़ते हैं। वैभव नारा और स्वजन नारा
को प्राप्त करते हैं। इस मैथुन के आचरण से मित्र भी शत्रु बन जाते हैं, और शत्रु
का नारा होता है। इस दुराचार के द्वारा कीर्तिमान भी अकीर्ति के अधिकारी होते,
सर्वथा स्वस्थ भी दीर्घरोगी बन जाते। कुशील से उभय लोक विगड़ते हैं। मैथुन के
निमित्त से जनसहारकारी बड़ २ संग्राम हुए हैं। यह लोकोक्ति वरात है कि—“वैर
तक दो बियां हो जब हैं। इन हुए संग्रामों में सीता, श्रौपदी, पद्मावती आदि ८-१०
के नामों का जलजल किया गया है। अतुल्य संसार में सुदीर्घ काल तक भवभूता
इस विकृत कुशील मन्त्र का बुरा फल है। लोकशास्त्र दानों से निन्दित है। भय
शास्त्र तो निषेध करता ही है। साय ही नीति भी इसे गद्दित कहती है। पंचम अष्ट
यन में परिग्रह का वर्णन है। समता के साथ वस्तुओं के संग्रह करने को परिग्रह
कहते हैं। इसका मूल है तुष्ट्या और काम भोग है फलफूल। बुरा के रूप से बढा
कर प्रकृत सून में इसके ३० भाग कहें हैं। चारों जाति के देव इसको अपनाते हैं
और विशालतम वनराशि का पाकर भी संतुष्ट नहीं होते। चक्रवर्ती से लेकर माघा
राश्व धनरति और मन्त्री ये सब परिग्रह का संभव करते हुए दुःखमय संसार गर्भ में
दूषित हैं। इसी परिग्रह के लिये विविध कलाकलाप की कल्पना और उसकी आरा
धना की जाती है। इसी के लिये सकाम कष्टकारी उपस्थापों, समुद्र लंपन, सुदूर
प्र १५ भयदूर मुद्र आदि किये जाते हैं। इस विषय का कह कर उदुत्तर अन्तरङ्ग
परिग्रह के रूप से दण्ड, शाल्य, कपाय और क्षेपण आदि दुर्वासनायें प्रदर्शित की
गई हैं। परिग्रह रूप प्राह स प्रसिद्ध प्राणी पशुगति संसार सागर में उन्मत्ता, दूबता
और भयङ्कता है। यह परिग्रह रूप विष बुरा का विषमय बहुत फल दे।

उपमहार में आश्विन के फलों का विगृहण कराने के बाद कहा गया है कि
हिमा आदि पांच आश्विनों का जोड़कर या अदिसादि संवत्सों का पावन करते हैं।
यही मय प्रकार के कर्मों का चयन करीणुता अथवा सुखास्पद सिद्धपद के भागी
बनते हैं।

प्रदुःखपयनमें अदिसाका वर्णन है, जो अदुःखमय मनोहर ब्रह्मण्डमय करने योग्य है

यह सूत्र के उत्तर खण्ड का पहला अध्ययन है। स्पष्ट कहा गया है कि ये अहिंसादि पञ्च महाव्रत अविश्रान्त चिरसञ्चित कर्मरजो का प्रमार्जन कर भय-मय भव प्रपञ्च से जीवको पृथक् कर देते हैं और भव भ्रमण को समूल मिटा देते हैं। महा महिमशाली इन पञ्च महाव्रतों में अहिंसा का प्रथम स्थान है, यह भव सागर में द्वीप के समान है। अहिंसा के ६० नाम बताकर इसकी महिमा दर्शाई गई है, जैसे— यह त्रिलोकी पूजित तीर्थङ्करों से कथित है। वैसे ही बड़े ज्ञानी, विपुलध्यानी, तप-शाली, तप्यधारी और क्रियाधिकारी सन्तों से पाली गई है। इसकी रक्षा के लिये मुनिगण भिक्षा के विभिन्न दोषों को टालते हैं। सब जीवों की रक्षा रूप दयाके लिये भगवान् ने यह प्रवचन कहा है। हमको रक्षा के लिये पाच भावनायें कही गई हैं जो बहुत माननीय हैं।

दसरा व्रत सत्य है—इसको जगत् का आधार-धर्म का मूल और भगवान् पदसे भाषित किया है। सिद्धियों का स्थान और इन्द्रों से भी पूजित है। इसके सहस्र में शास्त्र का उल्लेख मनन पूर्वक पढ़ने योग्य है, सत्यव्रती के लिये अपनी थाप (आत्म-प्रशंसा) और पर निन्दा निषिद्ध है। सत्य वचन की पूर्णता के लिये ठाकरणज्ञान से शब्द शुद्धि की आवश्यकता दिखलाई गई है। असत्य वचन से आत्मरक्षा के लिये भगवान् ने यह प्रवचन कहा है। इसकी पाच भावनायें, विस्तार पूर्वक कही गई हैं। जो ध्यान से पठनीय हैं।

तीसरे संवर में अदत्ता दान विमण्य व्रत का कथन है। अल्प या बहुत, छोटा या बड़ा, सचित्त अथवा अचित्त कोई भी द्रव्य चाहे गाव में हो या अरण्य में, पड़ा हुआ, गिरा हुआ एव खोया गया हो बिना दिये न लेना, यह अचौर्य व्रत रूप है। इसीलिये पञ्च महाव्रतियों को प्रति दिन अनुज्ञा लेना कहा है। निन्दा करना दूसरे के नाम से लाभ उठाना और दान में अन्तराय एव दान का लोप करना, एक प्रकार की चोरी है। अतः अचौर्य व्रत में वैसे अप्रीतिकारी व्यवहारों का निषेध है। जो पाई हुई चीजों का अपने परिवारों में सविभाग नहीं करता हो वैर विशेष और असमाधि करने वाला हो वह इस व्रत की आराधना नहीं कर सकता। अचौर्य व्रत साधकों को यह आवश्यक है कि वह शक्ति पूर्वक बाल, वृद्ध एव रोगी की सेवा करे। दूसरे के लिए जो अप्रीतिकारक हो वैसे कोई भी आचरण नहीं करे। आदि। इसकी पञ्चम भावना स्वधर्मियों में विनय करना है। यहा के सभी विचार पूर्ण माननीय हैं।

चतुर्थ संवर ब्रह्मचर्य है। तप, नियम, एवं ज्ञान, वरान आरित्र का यह मूल है। इस एक आराधना में सब की आराधना है। शील विनयादि गुण और यशस्कीर्ति आदि सभी इस पर प्रतिष्ठित हैं। इसकी ३२ उपमाएँ हैं। इसकी शुद्ध आराधना करनेवाला ही भ्रमण ब्राह्मण या मुसाधु है। ब्रह्मचर्य के साधक को राग द्वेष और माह वद्वानेवाला विमूषा आदि शोभापूर्ण व्यवहार निषिद्ध हैं। उसकी जीवनचर्या और साधनाओं का विचार हृदयप्राप्ति परम गरीर है। पंचम संवर में अपरिमह का वर्णन है। योगशास्त्र के शास्त्रों में जिस यम कहा है जैन शास्त्र की माया में वह संवर है। कर्मों के अणु को भी अन्तःकरण में नहीं आने देना यही संवर का निष्कर्ष है।

अपरिमह साधु आरम्भ परिमह से दूर और काच मात माया लाम से दूर होत है। एक विध असंयम से लेकर २३ आराधना तक के सब मायों पर शंका, कांक्षा छोड़ कर प्रती मन्दक मद्रा करता है। फिर अपरिमह का कुछ क रूप से निराल किया है। सबका परिमहत्यागी मुनि हिरण्य मुक्त्यादि बहुमूर्त्य और दूसरे को स्वप्नवाली वस्तुओं को ग्रहण नहीं करते। फल फल और विविध प्रकार के धान्य औषध के निमित्त भी सम्पूर्ण परिमह स्व गी मुनि ग्रहण नहीं करे। इसको समुचित समझाया है। वस्त्रनीय भोजन आदि का भी मुनि को समझ नहीं करना चाहिए। इसके बाद निष्ठा ग्रहण करने की विधि बताई गई है। रोगादि कारण की स्थिति में भी औषध और आहार पानो का रात्रि में संवर निषिद्ध कहा गया है। आवश्यकता से गृहीत भण्डापकरण भी संयम रक्षा के लिये राग द्वेष रहित धारण करना चाहिए। अपरिमहत्व की स्वरूप और विविध उपमाओं से उसके गुण बताये गये हैं। फिर पाँच भयनाओं के साथ अपरिमह की समाप्ति की गई है। अन्त में शास्त्र का उपरिहार और वाचन विधि के साथ शास्त्र की समाप्ति की गई है।

विभिन्न संस्करण और हमारा प्रयत्न—

यह सत्य है कि विभिन्न शास्त्रों की तरह भ्रम व्याकरण के भी कई संस्करण निकल चुके हैं जिसमें सब प्रथम राय चतुर्थ सिद्ध ब्रह्मादुर भरमुद्रापाद का सटीक। दूसरा आगमादय समिति सूरम से प्रकाशित सटीक। तीसरा ज्ञान विमल टीका संहिता मुक्ति विमलश्री जैन ग्रन्थ १ वा आहमशापाद। चौथा पूज्य अमातर अपित्री महाराज इन भाषाभाषा सहित और पाँचवां गुजराती भाषान्तरवाला इन पाँच

के अलावे रतनाम से प्रकाशित केवल अनुवाद और आगम मन्दिर का मूल संस्करण भी विद्यमान है, किन्तु हिन्दी भाषा के पाठकों को शुद्ध पाठ के साथ भाव का पूर्ण बोध इनसे प्राप्त नहीं होता, क्योंकि इनमें तीन तो संस्कृत रहे और एक हिन्दी व एक गुजराती पदार्थ मात्र ही। अतएव पाठकों को सुलभता से बोध प्राप्त होने के साथ मूल पाठ भी शुद्ध मिले एतदर्थ हमारा यह प्रयत्न है। पाठ शुद्धि के लिये ४ हस्त लिखित १ सदीक और १ आगम मन्दिर पालीताणा से प्रकाशित मूल इस प्रकार ६ प्रतियों का उपयोग किया गया है। अशुद्ध और भिन्न पाठों के संशोधन में टीका का आधार लिया है, और पाठान्तर सूची में प्रत्यन्तर के उपयुक्त पाठ भेद भी घतला दिये हैं।

हमारे ध्यान से प्रश्न व्याकरण जितनी संशोधन में जटिलता अन्यत्र क्वचित् ही हो। आगम मन्दिर जैसी प्रामाणिक प्रति जो शिलापट्ट और ताम्र पत्र पर अङ्कित हो चुकी है, वह भी अशुद्धि से दूषित देखी गई है। इसके लिये १७ पाठों की एक तालिका बनाई गई जिनमें कुछ तो ऐसे हैं जिनकी अर्थतः रगति नहीं बैठती और कुछ हैं स्वतन्त्रस्थल। गीतार्थ एवं तज्ज्ञ विद्वान् इसमें कुछ मार्ग प्रदर्शन करें ऐसी आशा से पांच स्थान पर तालिका भेजी गई। १ व्यवस्थापक आगम मन्दिर पालीताणा। २ पुण्य विजयजी महाराज जैसलमेर। ३ मेरौदानजी सेठिया बीकानेर। ४ जितनाम प्रकाशक समिति और उपा० श्री अमर मुनि व्यावर। ५ सम्यग् दर्शन में प्रकाशनार्थ सैलाना। पांच में से ३ की ओर से पहुँच के अतिरिक्त कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। पुण्य विजयजी म० ने पीछे उत्तर देने को लिखा किन्तु पत्र देने पर भी कोई उत्तर नहीं मिला। आगम मन्दिर से तो पत्र की पहुँच भी नहीं। अस्तु। पाठों की तालिका सम्यग् दर्शन (सैलाना) प्रथम वर्ष के ११ वें अंक में देख सकते हैं।

इस प्रकार साधन और सहाय हीन दशमें हमने जो यह महान् प्रयत्न किया, वह केवल आगम सेवा की भावना से ही।

कृतज्ञता प्रदर्शन

सर्व प्रथम जैनाचार्य पूज्य जैन धर्म दिवाकर आत्मारामजी म० जिनका कि समय २ पर हमें सहयोग मिलता रहा उपकार भावना आवश्यक है। उपाध्याय कवि श्री० अमरचन्दजी म० ने दिल्ली विराजते समय प्रअव्याकरण के कुछ पत्र देखे और मुभाय प्रस्तुत किये।

इसके उपरान्त आगम संघामें जिसनेका परिणम उठाने वाला विद्वान् और सदा एक सत चिन्तकी सेवा के सहयोग में यह कार्य पूर्ण हो सका है तथा त्रिन २ ग्रन्थों से सहयोग लिपा है उन सभी ग्रन्थ कर्त्ताओं के और सहायकों के प्रति में हृदय से कृतज्ञता प्रदर्शित करता हूँ। संशोधन और पदार्थ की सुलभ करने में यादत-शर्क्य प्रयत्न किया गया है।

इस सूत्र के संपादन में आ कुछ मुख्य सहाय्य हुआ हो उसके फल स्वरूप में अग्रस्त-में हमें आगम सेवा सुलभ हो तथा अन्य जन सम्पद् ज्ञान का लाभ प्राप्त करें वही सन्निध्या है।

समय की अल्पता और साधन की दुर्लभता से अनार्य देश आदि पर वाह्य हुए भी कुछ आवश्यक विचार नहीं कर पाया। अस्तु, इसमें विवशतासे आ वृत्ति रह गई हों उनके लिये "मिच्छामि शुक्लं" होता हूँ।

अन्तिम आभ्यर्थनां है—

अशेषो नैको भतिरतिथला चंचलतर
मनश्चात पक्षाऽपरिचित ममा प्राकृतगवी
नयोना दानाऽयं दुरधिगम जेनाऽगमनिधौ
वृत्ति एतु याम्या कृत्तु पुनोवप्तिधिनयात्

निधरको मुनिवरी

इन्तिमम्



संशोधन सम्पादन में प्रयुक्त ग्रन्थों का परिचय ।

- १ प्रश्न व्याकरण सूत्र-अभयदेव सूरिकृत टीका-अ.ग.मोदय समिति प्रकाशित ।
 २ " " " -ज्ञानविमल सूरिकृत टीका-मुक्ति विमल जैन प्रथमाला,
 अहमदाबाद
 ३ " " " -मूल-शिलाकृत का-प्रवीर-आगम मन्दिर पालीताना ।
 ४ " " " -हस्त लिखित उच्चा-प्राचीन मुनियों द्वारा लिखित ।
 ५ अभिधान राजेन्द्र कोष-राजेन्द्र सूरि-रतलाम से प्रकाशित ।
 ६ सृष्टिवाद और ईश्वर-भारतरत्न, प० मुनि श्री रत्नचन्द्रजी महाराज
 ७ मनुस्मृति -भाषाटीका ।
 ८ समवायाग -अभयदेव सूरिकृत टीका ।
 ९ पञ्चवक्त्रा -गुजराती अनुवाद अहमदाबाद से प्रकाशित ।
 १० षट्-खण्डागम -धवला टीका १।१।१-हीरालाल जैन-अमरावती प्रकाशित ।
 ११ सूयगङ्गा -सटीक आगम० समिति प्रकाशित ।
 १२ कल्याण -महाभारत अष्ट गीता प्रम गोरखपुर ।
 १३ जीवाभिगम सूत्र -सटीक-समिति से प्रकाशित ।
 १४ बोल संप्रह -मैरो हानजी सेठिया-बीकानेर से प्रकाशित ।



श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र की विषयानुक्रमणिका

गाथा व सूत्राङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
गा० १	प्रतिज्ञा	१
पद्यकुण्डलिका	मंगलाचरण	१
शेषक टीका	उपोद्घात	२
पाठवृद्धि टीका	पाठवृद्धि	३-४
गाथा- २	व्याख्य क परिभाष्य और नाम	५
गाथा- ३	प्राश्नातिपात क पाँच प्रकार	६
सूत्र- १	द्विसा का स्वरूप	७ ८
सूत्र- २	प्राश्नवच क तीस नाम	८ से ११
सूत्र- ३	प्राश्नवच क चारख व प्रमाजन	११ से २५
सूत्र- ४	प्राश्नवच को करनेवाले कदु द्वार का विचार	२५ से ३३
सूत्र- ५	नारकीय मोक्षद्वय बुद्धि वर्णन	३१ से ४५
सूत्र- ६	द्विसा का परिणाम	४५ से ५३
१-१	असत्य का स्वरूप	५५ से ५६
२-६	असत्य क शुद्ध निष्पन्न ३० नाम	५६ से ५७
३-७	असत्य भाषी जीव वर्णन	५८ से ७०
४-८	असत्य भाषण का फल वर्णन	७० से ८१
१-३	चोरी का स्वरूप वर्णन	८२ से ८४
२-१०	चोरी के छीस नाम	८४ से ८५
३-१०	चोरों का वर्णन	८६ से ८८
४-११	चोरी का विनाश वर्णन	८८ से १०१
५-१२	चोरी का फल वर्णन	१०२ से ११३

गाथा व सूत्राङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
६-१२	चोरी का परिणाम	११३ से १२४
१-१३	अब्रह्म का स्वरूप वर्णन	१२५ से १२६
३-१४	अब्रह्म के तीस नाम	१२६ से १२७
३-१५	अब्रह्म सेवियों का वर्णन	१२८ से १३४
४-१५	अब्रह्म सेवन का परिणाम	१३४ से १४२
५-१५	अब्रह्म सेधी मादलिक व युगलिक नरनारी वर्णन	१४२ से १५९
६-१६	मैथुन सेवन प्रकार	१५६ से १६४
१-१७	परिमह का स्वरूप	१६५ से १६७
२-१८	परिमह के तीस नाम	१६७ से १६६
३-१८	परिमह का सेवन	१६६ से १७५
४-१६	परिमह का सञ्चय	१७५ से १७७
५-२०	परिमह का परिणाम	१७७ से १८०
गा १-५ तक	पञ्च अधर्म द्वार का निगमन	१८० से १८२
गा १-३	प्रतिज्ञा	१८३ से १८४
१-२१	सवरूप अहिंसा का स्वरूप और नाम	१८४ से १८६
२-२२	अहिंसा का महत्त्व	१८६ से १८५
२-२२	अहिंसा की साधना	१९५ से २०१
३-२३	अहिंसा व्रत की पाँच भावना	२०१ से २११
१-२४	सत्य का स्वरूप	२१२ से २१८
१-२४	अप्रिय सत्य निषेध वर्णन	२१८ से २२०
१-२५	सत्य व्रत की पाँच भावना	२२० से २२९
१-२६	अस्तेय व्रत का स्वरूप वर्णन	२३० से २३३
१-२६	अस्तेय व्रत पालक वर्णन	२३४ से २३७
२-२६	अस्तेय व्रत की पाँच भावना	२३७ से २४६
१-२७	ब्रह्मचर्य व्रत निरूपण	२४७ से २५३
२-२७	" " "	२५४ से २५७
२-२७	ब्रह्मचर्य व्रत की पाँच भावना	२५७ से २६८

गाथा व सूत्राह	विषय	पृष्ठाङ्क
१-२८	अपरिग्रह व्रत निरूपण	२४६ से २७२
२-२८	अपरिग्रह व्रत वर्णन	२७२ से २७७
३-२८	" " "	२७७ से २८८
१-२६	अपरिग्रह व्रत की पाँच भाषना	२८८ से ३११
१-३०	सूत्र परिषद और वाचना विधि	३१६ से ३१७
श्लोक	प्रत्यन्त संग्रहापरणाम	३१७

आवश्यक निवेदन



प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशन में समय की शीघ्रता तथा संशोधक की कार्यकालीन शारीरिक एवं मानसिक अस्वस्थता के कारण त्रुटियाँ कुछ अधिक मात्रा में रह गयीं जिनके लिए शुद्धि पत्र ही प्रमाण हैं। इसके साथ ही पुरातनशीलकाक्षरानुवृत्तं कन दोप से भी कतिपय स्थानों में मात्रा, अनुस्वार और रेफ की त्रुटियाँ खटकनेवाली हैं, पाठक ऐसे प्रसंगों पर धिवेक बुद्धि से काम लेंगे। उदाहरण के तौरपर मात्रा त्रुटि के आत्मरूप, छाया, पक्षा, कित, सराश, आदि, भार्या, जल्दा, कठाण, प्ररखा, शारीरिक आदि को आत्मारूप, छाया, पक्षी, किते, सराश, आदि भार्या, जल्दी, कुठाण, प्रेरणा और शारीरिक समझना चाहिए, ऐमे ही अनुस्वार के सम्बन्ध में सश्रितान, मच, एच, बहुल, खडित, चचल, भाव, मूल, बश तथा चौर्य की जगह सश्रितान, मंच, एच, बहुलं, खडित, चचल, भाव, मूलं, वंश तथा चौर्य पढ़ना चाहिए। रेफ दोप से निमलै, र्पश, गभ, प्रार्थनीय, पूष, सहसै, धम, अथ, दृष्टि तथा आसव की जगह निर्मलै, स्पर्श, गर्भ, प्रार्थनीय, पूर्व, सहस्रै, धर्म, अर्थ, दृष्टि तथा आसव समझना चाहिए। पाठक ऐसे स्थलों पर विषय स्थिति को समझ लेंगे। इसके अतिरिक्त खङ्ग की जगह खङ्ग तथा स्निग्ध की जगह स्निग्ध और प्रकार की जगह प्रकार एव ससान, ससात की जगह समान और समाप्त तथा पराङ्ग की जगह पराङ्ग एव सहा की जगह सहा समझेंगे।

प्रार्थी---

प्रबन्धक



शुद्धि पत्रम्

पृ०	पं०	अशुद्धि	शुद्धि
१	३	कॅर	करे
२	से लेकर २३ तक सूत्र और प्रकरण का नाम कूटा		
३	१३	संपत्ति	संपत्ति
॥	१६	अव्य	अव्य
॥	२६	संपत्तियाँ	संपत्तियाँ
२	१२	परिणाम	परिणाम
६	१७	प्राणि	प्राण
८	१४	कुमा	है
॥	२०	गम	एव
॥	१३	(इमामि)	य
१०	१	मच्छू	मच्छू
१५	१७	कुम्पा	कुम्पा
१५	२३	शास्त्रिक	शास्त्रिक
१५	२६	वेप	होप
२१	५	सालपट	सालपट
२२	५	समूह	समूह
२४	१७	गन्धक	गन्ध
२४	१८	पावनकर	पावनकर
२६	१५	हैस	मुस्सरेसुप
२७	२	शौकारिका	शौकारिका
२६	१	के	से
३३	२८	मा ककारी	रोमाञकारी
३४	३३	लटको	लटका
३५	८	वेद	वेदि
३६	१२	केशव	कश्यप

पृ०	प०	अशुद्धि	शुद्धि
३८	५	यमाकथिका	यमकाथिका
३८	२७	सरद्	रसद्भीम
३९	१	गाग	वरुण
३९	१५	दना	चदना
४२	२१	हृए	हुए
४६	२३	फसि	फरिस
४९	४	अणतकलं	अनन्तकालं
५५	१५	मप्रत्यय	मप्रत्यय
५५	१६	पर	परम
६३	२८	युक्ता	युक्त
६४	५	भदेक	भेदक
६४	१३	कतोपां	कपोतां
६४	१७	हंश	हस
६५	२३	वदन्तिः	वदन्ति
६६	७	भासी	गामा
६६	७	लकडी	लडकी
७१	२७	सन्त्र	मन्त्र
७२	२१	परिज	परिजन
७३	२०	स्तपन	स्तपन
७४	११	जिविक	जीविक
७७	१४	तसय	तस्सय
७७	२४	वज्जिया	वज्जिया
७८	८	भयं	भयं
७८	१३	(त्तिवेमि) दारं	त्तिवेमि
७९	२	धिष	चीर
७९	३	कथयि	कथयिष्यति
८९	६	कारकं	कारकं

पृ०	प०	अगुधि	शुधि
७६	७	दुन्तमं	दुन्त
७६	७	प्रथिमी	प्रथीमि
७६	६	पप	पप
७६	१६	रदीत	रदित
८०	१२	अमना राम	अमनारम
८०	१४	पर्यंतन	पर्यन्त
८०	१३	संयम्यी	सम्बन्धी
८१	२४	सुरय	सुरय
८२	१७	हाप	होम
८२	२१	रामिचां	रामितम्
८२	२३	बहुमसां	बहुमतम्
८३	१	द्वितीय	द्वितीय
८३	१६	विपस	विपस
८३	२०	हाप	होस
८४	३	अप्रिति	अप्रिति
८४	३	तस्य	तस्य
८४	६	लोडिकर्क	लोडिकर्क
८४	१६	अवसेधो	अवसेधो
८५	२८	अपरच्छातिविद्य	अपरच्छातिविद्य
८६	१६	गात्वा	गात्वा
८६	१६	आवसिका	आवसिका
८६	२१	कप	कप
८७	११	त्वके	त्वके च
८७	२७	संपता	संपत्ता
८८	२०	आवात्	आवात्
८९	११	निष्पुजल	निष्पुजल
८९	१६	इय हासप	इय हेमिप

पृ०	पं०	अशुद्धि	शुद्धि
६०	२३	निरवलं	निरवलवं
६१	४	केहिं	तरकेहि
६२	१८	सीतकृष्ट	सीतकृत
९२	२७	(चित)	(चिल्लत)
६३	३	न्धाकार	न्धकार
६३	७	सागरमूमि	सागरमूर्मि
६३	१०	गुण्यदुच्छलत्प्रत्यावर्त	गुण्यदुच्छलत्प्रत्यावर्त
६३	२५	प्रह्नाति	गृह्णन्ति
९४	१०	ईव	इव
६५	४	मण्डताग्र खर्ग	मण्डताग्र खर्ग
६५	४	फैं	फैंक
६५	५	एहु	हुए
९१	१६	धगातर तुग	धगात तुरग
६८	२२	समुदा	समुद्राय
६६	३	निवतिन	निवतित
६६	-६	धुग्	धुग् धुग्
६६	१७	सायत्रिक	सायात्रिक
१००	१	मडव	मडव
१००	११	शिक्षिषा	शिक्षिषा
१०१	२६	काले	वाले
१०२	२	सैनिक	सेना
१०३	२४	दंडालछर	दंडलछर
१०५	७	सयणस्य	सयणस्स
१०५	१२	च्छलनाना	च्छलना
१०५	१६	वरत्र	वरत्र
१०६	२	मोदित	मोदिता
१०६	१४	धाड्यमाना प्रेर्य	धाड्यमाना -प्रेर्यया-

पृ०	प०	अशुद्धि	शुद्धि
१३३	१६	पञ्जवल	उज्ज्वल
१३४	२०	०	रस
१३५	१६	चंढ	चन्द
१३७	१	ऽऽ०	ऽऽभ्रम
१३७	२५	लजित	ललित
१३८	१०	वृप्त	अवृप्त
१३८	२४	सास	सस्स
१३८	२६	कर्षड	कर्षट
१३६	१३	गम्भीरध्व	मधुरध्व
१४३	१	मुप	मुप
१४३	११	०	चक्षपायिलेहा
१४६	८	सरित्च्छ	सरिच्छ
१४६	२२	सहता	सहताऽङ्गुलीका
१४६	२७	ख कनक	खर कनक
१४८	१८	पार्श्वी	पार्श्वी
१५०	६	गति	गती
१५०	११	निरुवले	निरुवलेया
१५०	२४	भषोदरा	भषोदर
१६०	२६	गधा	गधा
१६१	२	पथशिज्ज	पथशिज्ज
१७२	२४	भूमिपू	भूमिपू
१७७	२१	होतो हैं	होते हैं
१७६	२६	कहेगा	कहेते
१८०	२२	क्रुष्ट	क्रोष्ट
१८०	२५	छत्तिप्त	छत्तिप्त
१८२	११	श्लेष्मामेलदी	श्लेष्म और मेलही
१८६	२१	मणुदिट्ट	मणुदिट्ट

पृ०	प०	अशुद्धि	शुद्धि
१३१	६	कुम्भ	कुम्भ
२८१	११	सम	सम्भ
२०१	२४	गवसिमयकष	गवसिमयकष
२१	टिप्पण	संक्लिष्ट	संक्लिष्ट
२०४	२०	पापतेख	पापतेख
२०१	२७	मरु	कम
२०२	६	पपणाय	पसणया
२०६	२६	बाहन	वहन
२६	२४	अकरोव	अकरो
२६	२२	अणुगु	वज्रगुण
२७	१६	अकलुप्तो	अकलुप्तो
२८	१७	परिक्लृप्त	परिक्लृप्त
२०३	७	आमरणत	आमरणत
१२	३	पद्देशक	पद्देशक
२१७	१३	गंधामावणाधो	गंधामावणाधो
२२१	१७	तत्त्वाम	तत्त्वत्स
२२१	९	कीतयन्	कीतये य,
२२१	१४	हान	होत्र (हो बार)
२२२	२०	असंक्लिष्ट	असंक्लिष्ट
२३३	११	अणुप्य	अणुप्य
२३६	२५	अरुद्ध	अरुद्ध
२६	२०	पञ्चधा	पञ्चधा



प्रश्नन्याकरणे प्रशस्तिश्लोकाः



आर्यावर्ते वर्तते धन्वभूमि-दृष्टे रम्या नैव सर्वं सहेयम् ।

धर्माऽऽधारा धार्मिकैराधृतापि सन्धत्ते तु प्रासुकी भावमुच्चैः ॥ १ ॥

अस्य क्षोणितलस्य निर्मलगुणान् संवीक्ष्य जैनो मुनि-

अस्मिन्नत्र समागतः समयतः शिष्यप्रशिष्यैर्युतः

वर्षावासमनेकमत्र शमतोऽनैषीत्स्वसङ्घौषत-

स्तस्माज्जैनजनानुगो जनपदो धन्वाभिधानोद्बभूव ॥ २ ॥

सद्धर्मोऽत्र समेधते समयते सद्धर्मशीलो जनः

स्थेमानं स्थितितोऽधितिष्ठति जने श्रामण्यभाजोऽनुगः

पार्थक्यं पृथुलं न चेज्जनपदे द्वात्रिंशता सङ्घके

स्वाधीनं जनतन्त्रशासनमियाज्जैनस्य हस्ते स्थितम् ॥ ३ ॥

श्रमणः स च योऽत्रजने सततं यतते निजसंयम शुद्धिविधौ,

तदनु प्रतिपूर्णा जिनागमतश्च सुबोध्यतयाऽधिगमैकनिधौ ।

व्रतपालनभात्र निमित्ततया तनुगोपनकृत्यमर्तिं निदधौ

मनसा वचसा वपुषा समितः श्रमणः खलुसत्यतरः श्रमणः ॥ ४ ॥

अधि धन्वधरं श्रुतकेवलिकल्पसभाः श्रमणाः कतिचित्सुबभूवुः

समितैरविपालित सङ्घगणे मुनिरत्न समाह्वयमत्र दधुः ।

कति पूज्यवराः कुशलप्रमुखा व्यहरन्-जनतार्तिनिराकरणाः

अधुना खलु पूज्यवरः सुचक्रास्ति चरित्रचणोऽत्र गजेन्द्रमुनिः ॥ ५ ॥

पद वाच्यविषौ भ्रमशीलनतोऽध्ययन प्रतिपूर्णाववापदयं
 प्रमितावयतिष्ठ मदेष्ट विधावपठत्कठिनं गुरुशास्त्रचयम् ।
 यत्तमान इहाध्ययने पदवी ममियाभिञ्ज सक्तजनावधृता
 नयते नियतां भ्रमणैः सहतां प्रगतौ यमसंयमत सहिताम् ॥ ६ ॥

निजतन्त्र चयेऽपरतन्त्रतया महर्जैरुमुबोधविधे सुप्रतिष्ठा,
 पद्धता वचने मनसो दमने प्रमुखादिगुणवितताऽऽगमनिष्ठा ॥
 गुणतो मुनिमानस शोषवतोऽवहदेय विशेष जनेषु प्रतीतिं
 भ्रमशानुगतां भ्रमणामिमतां परिपालयते निजतन्त्रविभूतिम् ॥ ७ ॥

इह यत्र मदीय परिभ्रमणं विहितं खलु ऽत्रतदीय विधान
 मदतीति जगन्ति विदन्तिस्ततोऽधृतपूज रदरो निजशास्त्रनिवान
 प्रयम दरावै-पर-कालिकश्च मयोऽपर मन्त्र न यमिधानं
 परब्रह्मदशा परिशीलनतोऽररचत् सुविशुद्धि सुवृद्धि निदानम् ॥ ८ ॥

द्वितय तदिदं कृत चन्दनभूषणं खलुमुद्रयतोऽनुगृहीत
 ततयं कठिनार्थकप्रश्नपुरस्मर व्याकरणं दशमाङ्गपरीतम् ।
 प्रतिपूर्णापुरातन पद्धतिः प्रतिपाठमयोजयदात्मसुनिष्ठ
 कषयिष्यतिर्जनशुषो गुणमण्डिर मुन्त्रमेतदतीवनिधिष्ठम् ॥ ९ ॥

जनितेन जननं यदाचरितं जगदतदवस्थति सर्वमपूज
 प्रकृति स्वप्नशरलसाऽनलमै प्रणिपापयते कृतिवर्ममस्त्रवम् ।
 विरलन नरण निधीयत आत्मसमृज्जितितुङ्गण्येऽपि पर्दाव
 कुशस्तरिह शुद्धमनीषिर्नर्ननिधीयत आत्महितार्यमर्वाच ॥ १० ॥

विरति समिति शुचिगुप्तिरथोऽनुपमापरमा सुचकास्ति च पत्र,
 न च दापचये सयनश इह प्रथतं गुणशेषधिरात्मनि तत्र ।

सुसमीक्षित शास्त्र चयः स प्रतीक्ष्यवरः स्वसमः सुशमः स्वयमेव
प्रतिपालयते निजसङ्घमतन्द्र गजेन्द्रमुनिः सुगुणैः सविशेषः ॥११॥

प्रशास्ति सङ्घमात्मधुर्य धैर्य शौर्य योगतः
प्रतीक्ष्य हस्तिमल्ल साधुतल्लजो नियोगतः ।
प्रतीति-नीति शान्ति-कान्ति-रीति-कीर्ति-सद्गति
ब्रजैक सङ्गतिर्विराजतेऽत्र साधुता-नतिः ॥ १२ ॥

तत्परीपारपुरं सचापिजनकः श्रीकेवलेन्दुश्च सा,
घन्या मान्यगुणाऽजनिष्ट जननी रूपाऽतुरूपं सुतम् ।
ख्यातिं ख्यातगुणां सुसंयमधनां धत्ते स सत्तेजसा
निर्मानां च विपतिं पूज्यपदवी श्रामण्यपुण्यौजसा ॥१३॥

चिरञ्जीवतु जीवातुरूपः पट्काय जीवने ।
पञ्चाननायभानोऽयमार्हताऽऽगम कानने ॥ १४ ॥

पूज्यः श्रीहरितमल्लोऽयं महामुनि शिरोमणिः ।
समेधतां लसत्तेजा यथाराकानिशामणिः ॥१५॥

भवतोऽभ्युदयाऽऽसक्त हार्द मानसलोचनः ।
श्लोकैःपञ्चदशैर्वक्ति द्विजन्मा दुःखमोचन ॥ १६ ॥

प्रार्थी-ब्रह्मुदयाभिलाषी
दुःखमोचन भा, “मैथिल”

श्री प्रश्नव्याकरणसूत्रस्य

पूर्व-खण्डम्

पंच आस्रव द्वाराणि



श्रीः

अथ प्रश्नव्याकरणसूत्रं सञ्ज्ञायं भाषा-टीका-सहितम् ।

मूल—जंबू ! इणमो अण्हय-संवर-विणिच्छयं पणयण्हस्स
निस्संदं । वोच्छामि णिच्छयत्थं, सुहाम्मियत्थं महेस्सीहिं ॥१॥

छाया—(हे) जम्बू ! इदमाप्तव संवर-विनिश्चयं प्रवचनस्य नित्यम् ।
वक्ष्ये निश्चयार्थं सुभाषिताऽर्थे महर्षिभिः ॥ १ ॥

अथ मङ्गलाचरणम्

दोहा—केवल धी-किरणावली, आलोकित सब लोक ।

कैंर हमारे केवली, मानसतल निश्शोक ॥१॥

कुरुदाक्षिया—मानसतल निश्शोक बनादें केवल ज्ञानी,
महावीर गम्भीर दया सागर हितवाणी ।
निष्प्रमाद अथवान धीर होये मेरी धी,
साध्य साधिका सिद्धि दायिनी दो केवल धी ॥ १ ॥

भाषानुवाद—हे जम्बू ! (इणमो) इस (अण्हय-संवर) का संवर और संवर का
निश्चय अर्थात् ज्ञान कराने वाले, (पण-) प्रवचन के (निस्संद-) सार को (वोच्छा-)

बहुंगा (बो) मदेसीहिं तोर्यहुं गणपरी के द्वारा (मिच्छ) निष्पन्न के छिये
(सुरा-) कहे हुए अर्थ बाछा है।

दूसरी प्रति में इससे पहले निम्नलिखित उपोद्घात ग्रन्थ मिलता है, उस काछ
में अर्थात् सुधर्मा स्वामी के समय में चम्पा नामक नगरी थी, इसमें पूर्णभद्र चैत्य
वनराज अक्षोकरवृक्ष और दृष्टीशिक्षा पट्ट था। उस चम्पानगरी में कौलिक
नाम का राजा था, धारिणी नामकी उनकी महाराणी थी। उसी समय में समय
भगवान् महाबोर के जन्मेवासी—शिष्य आर्य सुधर्म नामके स्वधिर जो जाति कुल
अर्थात् मातृकुल व पितृकुल से निर्मल ये वल्लभात् मुरूप और चित्तवशील ये।
तथा विमल ज्ञान, दयान, चारित्र, उम्मा और कायधर्म से युक्त ये। फिर श्रीकृष्ण
तेजस्वी, वचस्वी एवं यशस्वी ये। क्रोध, मान, माया शोभ और निद्रापर जिन्होंने
विजय प्राप्त की थी, एष शिरोम्रिय, जित परीपद् ये तथा जीवन की आशा और मरण
के भय से भी रहित थे। तपस्या गुण सुखि, विद्या, मन्त्र, ब्रह्मचर्यव्रत मय, नियम
और स्वयं शौच ज्ञान दर्शन तथा चारित्र्यगुण की सितमें प्रधानता थी, और जो
चौदह पूर्वी व चार ज्ञान के धारक थे। ऐसे महा प्रभावी श्री सुधर्मा स्वामी पांचवीं
साधुओं के साथ पूर्णपूर्वो भक्तों हुए एक गाँव से दूसरे गाँव में होते हुए क्रमशः
वहाँ चम्पा नगरी है, वहाँ पहुँचे। और साधु के योग्य अचमल को ग्रहण कर संयम
व तप से अम्मा को आश्रित करते हुए बिचरते लगे। उस समय आर्य सुधर्म स्वामी
के शिष्य आर्य जयू नाम के मुनि जो काश्यप गोत्री एवं सात हाथ जितने हँसे
थे। यावत् विलीज तेमोलेयवा को संश्रित करके रखे हुए थे।
आय सुधर्म स्वधिर के पास योग्य सीमा में कट्टू पत्रादि प्रकार के ध्यान मम
थे। संयम व तपस्या से आत्मा को आश्रित करते हुए बिचरते थे। किसी समय आर्य
जयू को भद्रा के साथ तात्त्विक संशय एवं कृतज्ञ हुआ फिर भद्रा संशय और
कृतज्ञ प्रकट तथा विकसित रूप में उत्पन्न हुए। भद्रा संशय व कृतज्ञ से युक्त
से उत्पन्न से बड़े और बठकर वहाँ आर्य सुधर्म स्वधिर से वहाँ आए। और
आर्य सुधर्म स्वधिर को तीनबार पक्षिण बाजू स प्रदक्षिणा करके बन्दन व नमस्कार
दिया फिर स अविद्यम समीप और स अधिक दूर इस प्रकार योग्य आसन से
वसित स्थान में बैठकर विमल पूजक हाथ जोड़कर सदा करते हुए इस प्रकार बोले—

हे भगवान् ! जब श्रमण भगवान् महावीर यावत् मोक्ष प्राप्त प्रभु ने नवमें अनुत्तरीप पातक दशाङ्ग का पूर्वोक्त भाव वर्णन किया है । तब दक्षवें प्रश्न व्याकरण अङ्ग के, श्रमण भगवान् यावत् मोक्ष प्राप्त महावीर ने, क्या भाव परमाये हैं ?

दूसरी प्रति में निम्नलिखित पाठ अधिक मिलता है । (टीका)

“तेषां काक्षेयं तेण समपणं चपा नाम नगरी होत्था, पुषणभदे चेहए, वणसंढे, मसोगवरपापके पुवविसिळा पट्टए, तपण चपाए नयरीए कोणिए नाम राया होत्था, धारिणी देवी, तेषां काक्षेयं, २ समणस्स भगवभो महावीरस्स भतेवासी अज्जसुहम्मे नाम येरे जाह-सपन्ने कल-सपन्ने मल्लसपन्ने रुयसपन्ने विणयसपन्ने नाणसंपन्ने दसणमपन्ने चरित्तसपन्ने छज्जासंपन्ने छावधसपन्ने भोयसी तेयंसी यणमी जससी जियकोहे जियमाणे जियमाए जियलोभे जियनिहे जियहदिए जियवरीसहे जीवियास मरणभय विप्पमुक्के तवप्प-हाये गुणप्पहाणे सुत्तिप्पहाणे विज्जाप्पहाणे संतप्पहाणे वधप्पहाये ववप्पहाये नयप्पहाये नियमप्पहाये सच्चप्पहाये सोयप्पहाये नाणप्पहाये दसणप्पहाणे चरित्तप्पहाये चोहसपुड्डी चटनाजोवगए पंचहिं भणगारसएहिं सद्धिं संपदिबुडे पुब्बाणुपुट्ठिं चरमाये गामाणुगाम दूइज्जमाणे जेणेव चपा नगरी तेणेव उवागएछह, जाव अहएदिहए उवाह उगियाहत्ता सजमेण तवसा अप्पाण भावेभाणे विहरति । तेण काळेण तेषां समपण अज्ज सुहम्मरस भतेवासी अज्जजबू नाम भणगारे कासवगोतेण सत्तुस्सेह जाव सखित्त-विपुल्लतेयवेस्से अज्ज सुहम्मस्स येरस्स अहए सामते उट्ठ जाणू जाव सजमेण तवसा अप्पाण भावेभाणे विहरह । सपण से अज्जजबू जायसद्धे जायसंसए जायकोटइस्से, उप्पजसद्धे १ सजायसद्धे ३ सत्तुप्पन्नसद्धे ३ उट्ठाए उट्ठेह २ ता जेणेव अज्ज सुहम्मे येरे तेयेव उवागएछह २ अज्ज सुहम्म येर मिक्खुत्तां भायाहिण-पयाहिण करेह २ पदह वमसह, वसासन्ने नाइवूरे विणपण पजलिपुडे पज्जुवासमाये एव वेयासी-‘जह्ण्य मते ? समणेण भग० मदा० नाव सपत्तेण जवमस्स धमस्म अणुत्तरोववाहय दसाण अयमहे प० दसमस्स थ अरास्स पण्हावागर णाय समयेय जावमपत्तेण के अहे प० ? जवू ! दसमस्स अमस्स समयेण जाव सपत्तेय दो सुयवत्तथा पण्णत्ता-आसवदारा व सवरदारा व, पलमस्स ॥ मते ? सुयवत्तवस्स समयेय जाव सपत्तेय कह अज्जयणा पण्णत्ता, जवू ! पलमस्सण सुयवत्तवस्स समयेण जाव सपत्तेण पच अज्जयणा पण्णत्ता, दोव्वस्स थ मते ? सुय० एव चेव । एएसि ण मते ? अण्हय सयराय समयेय जाव सपत्तेण के अहे पत्तये ? ततेण अज्जसुहम्मे येरे जवू, नासेण मणगा-रेण एव तुत्ते समाये जवू अण्णार एव ययासी ‘जवू ! एणभो, इत्थादि ॥

उत्तर—हे बन्धू ! भगवत् मोक्ष प्राप्त प्रभु ने वसमें जज्ञ के दो भुवस्कन्ध कहे हैं । वेसे—आसन्न वार और संवर वार ।

प्रभु—हे पूज्य ! प्रथम भुवस्कन्ध के भगवत् मोक्ष प्राप्त ने कितने अभ्यसन कहे हैं ?

उत्तर—हे बन्धू ! प्रथम भुवस्कन्ध के भगवत् मोक्ष प्राप्त ने पाँच अभ्यसन करमाए हैं ।

प्रभु—हे पूज्य ! दूसरे भुवस्कन्ध के कितने अभ्यसन हैं ?

उत्तर—इसके भी पाँच अभ्यसन हैं ।

प्रभु—हे गुरुदेव ! इन आसन्न और संवरों का भगवत् मोक्ष प्राप्त ने क्या स्वरूप कहा है ? इसके बाद बन्धू नाम के मुनि से पूछे गए स्वविर भाय सुधर्म स्वामी बन्धू मुनि को उत्तर में इस प्रकार बोले—“बन्धू इषमी-इत्यादि ।”

विशेषण—सुधर्मस्वामी कहते हैं—हे बन्धू ! आसन्न और संवर का निर्णय करने वाले इस शास्त्र को कर्तुंगा जो शास्त्राज्ञ रूप जिन प्रवचन का सार है ।

यहाँ आत्मरूप तात्त्वात् में जिन १ कारणों से प्राप्ताविपाद आदि कर्म प्रवाह जाता हो वसे आसन्न समझना चाहिए ।

यथा आत्मरूप तात्त्वात् में जाता हुआ वही कर्म जज्ञ जिन परिष्ठा आदि साधनों से बहता हो अर्थात् जिनसे कर्म प्रवाह का प्रतिरोध हो इनको संवर कहते हैं ।

कर्म बन्ध और कम-प्रबन्ध के हेतुओं—कारणों को समझना ही जिन प्रवचन का सार है । क्योंकि कि इस शास्त्र में आसन्न और संवरों के त्याग व आसेवस का विधान किया गया है ।

चरण रूप होने से यह प्रवचन का सार है । कहा गया है कि ‘—आमायिक से छेकर बिन्दुसार पर्यन्त भुव ज्ञान है । उस भुव ज्ञान का सार चरण-चरित्र है और चरित्र का सार मोक्ष है ।

शास्त्र का अभिप्रेत यह कर भगवत् प्रयोजन बताते हैं—प्रयोजन कथन,—
प्र०—प्रस्तुत शास्त्र क्यों कहते हैं? त० “आसन्न आदि का निश्चय करने तथा कर्म बन्ध से मुक्त होने के लिये प्रस्तुत शास्त्र कहा जाता है । आमायिकता लिखाते हैं—“सर्वज्ञ और तीर्थ प्रवक्तृ महाम् ऐसे ऋषिर्षों से याने तीर्थस्थलों से कहा हुआ है, अवश्य

(एवं) यह राग द्वेष और संशय विपर्यय आदि दोषों से रहित होने से सुभाषितार्थ है। इस गाथा में सूत्रकारने सम्बन्ध, अभिप्रेय और प्रयोजन रूप तीन बातों का विचार किया है।

सम्बन्ध—‘नवमे अङ्ग में ऊँची साधुता की आराधना करने वालों के लिये अनुत्तर गति कहा गई है और वह ऊँची साधुता, आस्रव के निरोध व संवर के पूर्ण आराधनसे प्राप्त होती है। इस लिये दशमे अङ्गमे आस्रव व संवर का वर्णन किया जाता है।

ऊपर की गाथा में कहा गया है कि आस्रव और संवर का निश्चय कराने वाले प्रवचन के सार को कहूंगा, इस प्रतिज्ञा वाक्य में पहले आस्रव का उद्देश-कथन किया है। एक सामान्य नियम है कि उद्देश के अनुसार ही निर्देश वर्णन करना चाहिए। इस लिये यहाँ पहले आस्रवों पर विचार किया जाता है।

आस्रव के परिणाम और नाम—

गाथा—“पंच विहो पण्यत्तो, जिरोहिं इह अणहञ्चो अणादीञ्चो
हिंसा मोस मदत्तं, अन्नञ्चंभ परिगहं चेव ॥२॥

छाया—‘ पञ्चविधः प्रज्ञप्तो, जिनै-रिहास (स) वोऽनादिकः ।

हिंसा मृषाऽदत्त-मन्नञ्च परिग्रहञ्चैव ॥२॥

अन्वयार्थ—“ (जणेहिं) राग द्वेष आदि पर त्रिजय पाने वाले जी जिनेन्द्र देव-तीर्थङ्करोंने (इह) यहाँ-इस आगममे अथवा इस लोकमे (अण्हो) आस्रव (पंच विहो) पाँच प्रकार का (पण्यत्तो) कहा है, जो (अणाइञ्चो) अनादि याने प्रवाह रूप से सदा रहने वाला अर्थात् आदि रहित है। उसके पाँच भेद हैं जैसे— (हिंसा मोसमदत्त) हिंसा १ झूठ २ अदत्त का ग्रहण ३ (चेव) और इसी प्रकार (अन्नञ्चंभ परिगह) अन्नञ्च विषय-खेवन ४ परिग्रह ५ ये आस्रव के पाँच भेद होते हैं।

विवेचन— वीत राग प्रभु ने आस्रव पाँच प्रकार का बताया है ! प्रवाह रूप से इसका हर समय में सद्भाव रहता है। इसलिये सामान्य रूप से यह अनादि है। सब जीवों की अपेक्षा से इसका कमी अन्त नहीं होता है। इसलिये आस्रव को अनन्त भी समझना चाहिए। एक जीव की अपेक्षा यह अनादि साम्त और जीव राशि की अपेक्षा अनादि अनन्त है। टीका करने अनादिक पद को ऋणावीत और

अणादि रूप से भी माना है। ऊर्ध्वमे भव पद का अर्थ पाप किया है और मिथ्या-
त्व आदि पाप आत्मन का आदि कारण है इसलिये आत्मन को अणादि भी कहा
है। हिंसा १ शूठ २ जोरो ३ मैथुन ४ और परिग्रह ५ ये पाँच मेव आत्मन के हैं।
दूसरी जगह आत्मन के ४९ मेव भी किये हैं जो पाँच इन्द्रिय ॥ कर्मात् ५ अविरति
हिंसा शूठ आदि २५ क्रिया और तीस योग मिलकर ४९ होते हैं।

आत्मन का स्वरूप और उसके हिंसा आदि पाँच प्रकारों का वर्णन किया गया,
अब पाँचों आत्मनोको अन्तः कर्षण करने की इच्छा से शास्त्रकार प्रथम प्राजा
तिपात आत्मन को कहते हैं।

हर एक आत्मन द्वार पर केसः १ क्या नाम २ और किस प्रकार किया जाया
तथा क्या फल देता है ३-४ और कौन उसको करते हैं ५, इस प्रकार पाँच बातों
का विचार किया गया है। इन में से प्राजातिपात का पाँच प्रकार से वर्णन करने
के लिये सूत्रकार कहते हैं—

मूल—'१ जारिसओ २जनामा ३जहय कओ ४जारिस फल देंति ।

५ जेविष करोंति पाधा, पाणवह त निसामेह ॥३॥

अर्थात्—प्राजातिओ जनामा यथा च कुलो योऽर्थः फलं ददाति ।

येऽपि च कुर्वन्ति पापा, पाणवह त निसामयत ॥३॥

अन्व—'प्राणिवन् रूप पहला आत्मन (जारिस ओ) केसा है (जनामा) जिस
नाम वाला है और प्राणिओं के द्वारा (जहय कओ) जिस प्रकार किया गया है
(जारिस फल देंति) दुर्गति में गिराने रूप जैसे वह फल को दता है (य)
और (जेविष करोंति पाधा) जो भी पापी लोग उसको करते हैं (त पाणवह)
उस हिंसा रूप आत्मन को इ दिव्य ? तुम सब भक्षण करो ॥३॥

वि०—'सुप्रम स्वागो महाराज अपने शिष्य सब से कहते हैं कि हिंसा रूप प्रथम
आत्मन द्वार केसा है ? उसके क्या नाम हैं ? और किस प्रकार वह किया जाया है
दुर्गतिरूप केसा कटुफल देता है, तथा कैसे लोग उसको करते हैं यह सब मैं कर्तूंगा
इ शिष्य तुम उसको सुनो।

एक नियम है कि तख्तमेव व पर्वों से व्याख्या होती है। इसके अनुसार पाट
सक, इस पद से यहाँ हिंसा के स्वरूप बाने तख्त को कहन को प्रथिमा का गई और
जनामा, इस पद से पर्वों का व्याख्यान किया गया है, बाँकी के तीन द्वारों से

आत्मव के भेद बताये गये हैं, इस प्रकार आत्मव प्रवृत्तिकाँ, क्रिया और कर्म व फल आदि के भेद से पांच प्रकार की कही गई है।

उपरोक्त पांच विषयों में से प्रथम प्राणिबंध-हिंसा का स्वरूप कहते हैं—

सूक्त—“प्राणवहो नाम एस निच्वं जिणेहिं भणिओ—“पावो चंडो रुद्रो खुद्रो साहसिओ अणारिओ णिगिणो णिस्संखो महंभओ पइभओ १० अतिभओ बीहणओ तासणओ अण-उओ उव्वेणओ य णिरवयक्खो णिद्धम्मो णिप्पिवासो णिक्ख-लुणो णिरयवाससमणनिधणो २० मोहमहंभय पयइओ, मरणवेमणस्सो २२ ॥ पढमं अधम्म-द्वारं ॥ (सू० १)

छाया—“प्राणवधोनाम एष नित्य जिनैर्भणितः—पापः, चण्डः, रुद्रः, क्षुद्रः, साह-सिकः, अनार्यः, निर्घृणः, नृजसः, महाभयः, प्रतिभयः, १० अतिभयः, भापनकः, प्रासनकः, अन्याय्य, उद्वेजनकश्च, निरपेक्षः, निर्दमः, निष्पिपासः, निष्करुणः, निर-यवाससमननिधनः, २० मोहमहाभय प्रपतकः, मरणवैमनस्यः ॥ प्रथममधमं-द्वारम् ॥ ॥ सू० १ ॥

अन्वयार्थ—(प्राणवधोनाम) प्राण वध याने हिंसा नामका (एस) यह प्रत्यक्ष कहा जाने वाला आत्मव (जिणेहिं) तीर्थङ्करों ने (निच्व) सदा नीचे के विशेषणों से युक्त (भणिओ) कहा है,—(पावो) पाप कर्म के गन्ध का कारण होने से यह पाप है (चंडो) कषाय से उद्वत बने हुए प्राणियों से किया जाता है, इसलिये चण्ड है, (रुद्रो) हिंसा करते समय मनुष्य रौद्ररस में लीन होता है अतः रौद्र है, (खुद्रो) आत्मिक भाव को अपेक्षा नीच होने से और नीच, ज्ञान से तथा दुष्ट प्राणियों से सेवित होने के कारण यह क्षुद्र है, (साहसिओ) हिंसा करते समय प्राणी अच्छे बुरे का भाव छोड़कर दुस्साहसी होता है, इसलिये हिंसा साहसिक है, (अणारिओ) पाप रहित कर्म को आर्य कहते हैं, उससे विपरीत होने से अथवा अनार्य लोकों से की गई होने से हिंसा अनार्य है (णिगिणो) हिंसा करते समय पाप से घृणा-दुर्भावना नहीं होती इसलिये यह ‘निर्घृण’, है, (णिस्संखो) निर्दयता का कार्य होने से अथवा प्रशंसा करने योग्य नहीं होने से हिंसा ‘नृजस’ है, (महंभ ओ) बड़े भय का कारण होने से यह (मयक्कर) ‘महाभय’ है, (पइभओ) प्रत्येक प्राणी से हिंसक को भय रहता है, अतएव हिंसा को ‘प्रतिभय’ कहते हैं, (अइभओ)

हिंसा के समय हिंसक इस शोक व परशोक के मग को मूक जाता है इसलिये हिंसा 'असिमय' मगको मुकाने वाली है (बीहणभो) प्राणी की हिंसा भयभीत करने वाली है (वासणभो) दूसरे को कष्ट व मम में डोम पैदा करने से यह हिंसा 'प्रासमक, है, (अपश्रो) हिंसा न्याय युक्त नहीं होने से। अम्याम्य छाती है (अभ्येयणभो) वित्तमें छद्मेग को करने वाली है (य) भीर (निरभयभो) हिंसा में दूसरे के प्राणों की व परशोक की अपेक्षा नहीं रहने पाती बल्कि हिंसा 'निरपेक्ष है। (निभम्भो) मृत व चारित्र्य धर्म से हिंसा बहिर्भूत है, अर्थात् धर्म शून्य है, (निमिषासो) दूसरों के जीवन की व्यास इच्छा नहीं होने से निमिषास, है (मिच्छुभो) कल्पामात्र के बडे जाने से हिंसा 'मिच्छकृष्ण, है, (निरपवास गमक-मिषणो) बरक वास में जाने के बाहिर परिणाम वाली हिंसा है, (मोहमहम्ममपयहमो) मोह-भूलता और बडे मग को प्रवृत्त करने वाली तथा अज्ञान व मग को बढ़ाने वाली भी हिंसा है, (अरक्षावेमपसो) मरण के द्वारा यह जीवों की वीमता का कारण होती है॥

(पङ्कनं अहम्मभारं) यह प्राण वध रूप पड़का आसन्न धर्मों द्वारा हुआ।

भाव—यहाँ प्राणवैपात को पाप कह रौह आर्हि २१ विशेषणों से बताया गया है। यह मरण गति का कारण और मग व अज्ञान को बढ़ाने वाला है।

सृष्टु के द्वारा यह प्राणियों की वीम बना देता है दूसरे द्वारा में प्राण वध के मान करते हैं—इस प्रकार प्रथम अर्थम द्वारा पूर्ण हुआ।

मूल—"तस्सय नामाणि इमाणि गोणणाणि होति तीस, तजहा-पाणयहो १ उम्मूलणा सरीराभो २ अवीसभो ३ हिंस विहिंसा ४ तहा अकिच्छ च ५ घायणा ६ मारणा ७ वहङ्गा ८ उहवणा ९ तिवायणा १० आरम-समारभो ११ आठय कम्मस्तुपहो, भेयणिहवण गालणा य सपहग सस्रयो १२ मच्छू १३ असजमो १४ कडगमवण १५ चोरमण १६ परभव सकाय कारभो १७ दुग्गतिप्पवाभो १८ पावकोवो य १९ पावकोभो २० छविच्छेभो २१ जीविद्यत करणो २२ भयकरो २३ अणकरो य २४ मज्जो २५ परितापण अयहभो २६ विषासो २७ निजवणा २८ छुपणा २९ गुणाण विराहणासि ३० विय, तस्स एममादीणि

आमघेज्जाणि ह्येति तीसं पाणवहरस कलुसरस कटुय फल-
देशगाहं ॥ सू० २ ॥

छाया- तस्य च नामानि इमानि गौणानि भवन्ति त्रिंशत् । सद्यथा-“प्राणवधः १
उन्मूलना शरीरात् २ अविश्रम्भः ३ हिंस्य-विहिंसा ४ तथा अकृत्यच ५ घातना ६
मारणा ७ हननम् ८ उपद्रवणम् ९ त्रिपातनाच १० आरम्भ समारम्भः ११
आयुः कर्मणउपद्रवो, भेद-निष्ठापन-गालना च संवर्तकसंक्षेपः १२ मृत्युः १३
असथसः १४ कटक मर्देनम् १५ व्युपरमणम् १६ पर भव-सकमकारकः १७ दुर्गति
प्रपातः १८ पाप-कोपश्च १९ पाप लोभः २० छवि श्लेदः २१ जीवितान्त करणः २२
मयङ्करः २३ ऋण करञ्च २४ वर्ज्यः २५ परित्तापनास्रवः २६ विनाशः २७ नित्या-
पना २८ लोपना २९ गुणानां विराधना ३० इत्यपिच, तस्यैवमादौति नामघेयानि
भवन्ति त्रिंशत् प्राणवधस्य कलुपस्य कटु-फल देशकानि (सू० २)

अन्व-“(तस्य) और पूर्वोक्त स्वरूप वाले उस प्राण वध के (नामाणि)
नाम (इमानि) (गौण्याणि) गुणों से होने वाले (तीसं) तीस (ह्येति) हो ते हैं,
(तजहा) जैसे कि वे- (पाणवह) प्राणों का हनन होने से इसको प्राण वध कहते
हैं (उन्मूलना शरीरात्) जीव को शरीर से अलग कर देने से इसको उन्मूलन
कहते हैं (अविश्रम्भो) अविश्रान्त का कारण होने से इसे अविश्रम्भ कहते हैं,
(य आरंभ समारंभो) और जीवों का उप मर्द होने से अथवा पीड़ा पहुँचाने
के साथ जीवों को मारने से इस को ‘आरंभ समारंभ कहते हैं’ ।
(हिंस्य विहिंसा) जीवों की हिंसा अथवा प्रमादी जीवों से विशेष रूप में
होने के कारण इसे हिंस्यविहिंसा कहते हैं, (तथा अकृत्तचं) इसी प्रकार नहीं
करने योग्य होने से यह अकृत्य है (च घायना) और प्राणों की घात करने से इसे
घातना, व (मारणा) मरण उत्पन्न करने से ‘मारणा’ कहते हैं (य वहणा) और
हनन करने से इसको ‘वधन’ भी कहते हैं (सहवणा) दूसरे को दुख, पहुँचाने के
कारण इसको ‘उपद्रवणा’ कहते हैं, (त्रिपायणा) मन घाणो और कायका अथवा देह
आयु और इन्द्रिय रूप प्राणों से जीव का पतन कराने से इसको ‘त्रिपातना’ कहते
हैं (आयु कर्मसुवहवोमेयणिद्रवण गालणाय संवहग संखेवो) आयु कर्म का
उपद्रव, या उसी का भेद या उस आयु का अन्त करना और आयु को गालना,
खुदाना व आयु को संक्षेप करना इन में एक कोई या सब मिलकर प्राणि वध का

एक नाम होता है । क्योंकि आयु का ज्ञेयन करना सब में समान है । (मधू) मृत्यु (मसंयमो) समय भाव से हिंसा नहीं होती यास्ते इस को 'मसयम' कहा है (कृत्तमर्षण) सैन्य की तरह आक्रमण करके प्राण वध किया जाता है, इसलिये इसको कृत्तक मर्दन भी कहते हैं (वोरमर्ण) प्राणों से जीव का वध करने के कारण यह व्युपरमण कहाता है, (परमव संकामकारणो) प्राण से छूट जाने पर ही जीव का परमव में संक्रमण होता है, इसलिये इस को परमव में संक्रमण कराने वाला कहा गया है (दुर्गति प्पवामो) प्राणवध के कारण जीव दुर्गति में पड़ता है इसलिये 'दुर्गति प्रपाठ, कहते हैं (पावकोषो य) और पाप कर्म को बढ़ाने वाला व ज्ञेयित करने के कारण यह 'पाप कोष' कहाता है । (पावकोषो) प्राणिमों को पाप में लुभाता है इसलिये इसको 'पाप कोष' कहते हैं, (छविच्छेदो) हिंसा में वर्तमान शरीर का ज्ञेयन होता है इसलिये इसको 'छविच्छेद' भी कहते हैं, (जीविमंतकरणो) जीवन का अन्त करने से वह 'जीविताम्य करण' कहाता है (भयको) भय उत्पन्न करने वाला है (अणकोय) शून्यकर जाने पाप रूप शून्य-कर्त को करने वाला है (बधो) जीव को मारी बनाकर अचोगति-जीव गति में छेवाने के कारण प्राणिवध को 'बध' कहते हैं विवेकिमों से वर्जित होने के कारण 'बध' भी कहते हैं पाठाभ्यार की अपेक्षा सावध नाम भी होता है (परितापन मण्डो) इसकी परितापमात्रा भी कहते हैं (विनाशो) प्राणों को नष्ट कर देने से इसको 'विनाश' कहते हैं (निगमयणा) प्राणी के जाने में प्रेरक होने से इसको 'निर्यापना' भी कहते हैं (छुपणा) प्राणों के छोप करने से इसे 'छुम्पना' कहते हैं (शुजाये पिराहणत्ति) मरने व मारने वालों के गुणों का विभावक होने से हिंसा को शुर्जी का विभावक भी कहते हैं (विव, वरु कसुसरस पाजवहरस) इस प्रकार पञ्च मन्त्रित कर्म रूप प्राण वध के (एवमादिणि कामपेग्गाणि) इत्यादिक नाम (सीसं) पोस (होंति) दोते हैं, जी (कसुणकससैसगार) कटु पक्ष को देने वाले हैं ॥ सू० १ ॥

भाव—'प्राणवध' के गुण सम्पन्न तीस नाम होते हैं जैसे प्राणवध, १ कम्पूखना २, अविषमम् ३ हिंस (स्व) विहिंसा ४, अकृप्य ५ पावना ६ मारणा ७ वध ८ कसुसस ९ विपातना १० अरम्य समारम्भ ११, आयु कस-व्यवहार, भेद अन्त या गालन, सबतन अवस्था संश्लेष करण १२ मृत्यु १३, मसंयम १४, कृत्तक

मर्दन १५, व्युपरमण १६ परभव सक्रम कारक १७ दुर्गति प्रपात १८ पापकोप १९ पाप लोभ २० छविच्छेद २१ जीवितान्तकरण २२ भयङ्कर २३ ऋणकर २४ वध वा वर्ज्य २५ परितापनाम्नव २६ विनाश २७ निर्यापना २८ लुप्पना २९ और गुणों की विराधना ३० इस प्रकार इस पाप रूप प्राण वध के कटुफल बताने वाले तीसरे नाम कहे गए हैं ॥ सू० २ ॥

प्राण वध के कारण व प्रयोजन-

सूत्र ३ रा

मूल-तं च पुण करेति केई पावा असंजया अविरया अणिहु-
य परिणाम दुप्पयोगी पाणवहं भयंकरं बहुविहं बहुप्पगारं
परदुक्खुप्पायणप्पसत्ता, इमेहिं तसथावरेहिं जीवेहिं पड्डिनि-
विट्ठा, किते ! पाठीण, तिमि, तिमिंणिण-अण्णभस-विावेह
जाति मंदुक्क-दुविहकच्छ-भ-णक्क-भगर-दुविह गाहा-दिलि वेढय
मंदुय-सीमागार पुलुय सुंसुमार बहुप्पगार जलयर विहाणाकते य
एवमादी । दुरंग-ख-सरभ-चमर-संवर-उरवभ-ससय-पसय-गोण
रोहिण-हय-गय-खर-करभ-लग-वानर-गवय-विग—सियाल
कोल-मज्जार कोल सुणक-सिरियंदल गावत्त-कोकंतिय-गोकण
निय-महिम-विग्घ-लुगल—दीविया—साण-तरच्छ-अच्छ-भंल
सदुदुल-सीह-चिच्चल-चउप्पय-विहाणाकए य एवमादी । अयगर
गोणस-वराहि—मउलिका-उदरवभ—पुप्फयासाखिय-महोर-
गोरग-विहाणक कए य एवमादी । छीरल-सरंभ-सेह—सेल्लग
गोधुंदर एउल-भरव-जाहग-मुगुंस-खाडहिल—वाउप्पहय-घीरो-
लिय सिरीसिणगणे य एवमादी । कादंभक-वक-चलाका सारस
आडासेतीय-कुलल-बंजुलपारिप्पव—कीव-सउण—पिपीलिय
दीविय हंस-धत्तरिट्ठग-भास-कुली कोस कुंच-दगत्तुड-देणियालग

१—उपरोक्त तीस नाम के अलावे भी प्राणातिपात, हिंसा आदि प्राणवध के नाम हो सकते हैं, किन्तु यहां सामान्य रूप से उदाहरण के तौरके कुछ नाम गिनाए गये हैं, मूल का एवमादि पद भी अन्य नामों की सूचना देता है ।

सुईमुह कविष्ठ पिङ्गलककग-कारकग चक्रपाग-उक्षोस-गरुल
 पिङ्गल-सुय-परदिण-मयससाक-मयीमुह-मयमायग-कोरग
 भिगारग-कोबाकग-जीवजीवक तितिर-बटक-कायक-कपिजलक
 कपोतककाग पारथयग विविग हिं—कुक्कुड-वेसर-मयूग
 चउरग-हय पोंडरीय-साकग-करक-वीरसु सेणवापसा य विहग
 भिणासि-चास विग्गुलि-चम्मट्टिक-चित्तपविष्ण सहर विहा
 याकते य एयमादी । जल यल सग चारिणो उ पविदिए पसु
 गले विय तिय चउरदिए य विविहे जीये, विपजीविए, मरब
 दुक्ख पडिफूले वराए हणाति बहुसाकिमिट्टकम्मा । इमेहिं विवि
 हेहिं कारणोहिं किंते ? चम्म वसा-मस मेय सोणिय-जग-किप्पिस
 मत्तुल्लिग हितयत्त-वित्त-कोफस दत्तदठा अदिठ मिज-नह-नयण
 कयणयहाकणि नक्क-धमणि—सिंग—दाहि पिच्छु विस—विसाण
 बालहउ, हिसति य भमर मयुक्कगिणें रसेसु गिद्धा, तहेव
 तेदिए सरीरोवकरणदूयाए, कियण येविए बहवे यत्थोहरपरि
 मरणदठा, अण्णेदि य एवमाहएहिं पट्टहिं कारणमसहिं अयुद्धा
 इह हिसति तसे पाण, इमे य एहिंदिए बहवे वराए तसे य
 अण्णे तवस्मिंसेय ताणुमरिरे ममारभति अत्ताण असरण अणाहे
 अवधये कम्मनियलपद्ध अकुसल परिणाम मयुद्धिजण बुद्धि
 जाणए, पुढविमये पुढविसासिए, जलमए जलराए, अण्णलाणिक
 तणयणस्सति यण निस्सिए य तम्मय तज्जिते यय तदाहारे
 तत्परिणत-अण्ण-राव-रस-कास धोदिरूय—अपपरुस अपरुस
 य तमकाहए अमय, पावरकाए य सुद्धम-पायर-पत्तेय-सरीर
 नाम साधारण अण्णत इणति अविजाणओ य परिजाणआ य
 जीय इमेहिं विविहहिं कारणहिं, किंते ? करिसण पाप्मरणी
 वायि यप्पिणि गृय सर-तलाग-पिति-वेतिय-ग्यातिय आराम-विहार
 धूम-पासार-दार-गाउर अहाकग—चारिया—सेतु मकम पामाय
 विरूप भवण पर सरण-केय धायव-पतिय ययकुल विस-सभा
 पया आयतणापसह भूमिपर मटवाय य कए, भायव भयो

वगणसस विविहसस ग अट्टाए, पुढर्विं हिंसांते मंदबुद्धिपा,
 जलं च मज्जणय पाण भोयण वत्थ घोवण सोयमादिएहिं, पयण
 पयायण जलावण विदंसणेहिं अगणिं, सुण्ण विणण तालघंट
 पेहुण सुह नरयल्ल सागपत्त वत्थमादिएहिं अणिलं, अगार
 परिवा (या) र—भक्खभोयण—सयणासण—फलंग—मुसल-
 लखल—तत्त—वितता तोड़ज—बहण—वाहण—मंडव—विविह भवण-
 तोरणा—विडंग—देवकुल जालयद्ध चंद—निज्जुग—चंद सालिय-
 वेतिय—णिसोणि—दोणि—चंगेरि—खील—मेढक—सभा—पवा—
 वसह—गंध—मल्ल णु जेवणंथर—जुय—नंगल—मह्य—कुलिय—संदण-
 सीया—रह—सगड—जाण—जोगग—अट्टालग—चरिअ—दार
 गोपुर—फलिहा—जंत—सूलिय—लउड—मुसंडि—सताग्घि—अहु
 पहरणावरणुवक्खराण कते, अण्णेहि य एवमादिएहिं यहुहिं
 कारणसतेहिं हिंसांति ते तरुणणे, भणित्ता एवमादी सत्ते सत्त-
 परिवज्जिया उवहणंति, दढमूढा दारुणमती कोहा, माणा, माया,
 लोभा, हस्सरती, अरती, सोयवेदथी, जीयकामत्थधम्महेउं,
 सवसा, अवसा, अट्टा अणदूठाए य तसपाणे थावरे य हिंसांति
 मंदबुद्धी, सवसा हणंति, अवसा हणंति, सवसा अवसा बुहओ
 हणंति, अदूठाहणंति, अणदूठाहणंति, अदूठा अणदूठा बुहओ
 हणंति, हस्सा हणंति, वेरा हणंति, रती य हणंति, हस्सवेरारती य
 हणंति, कुद्धा हणंति, लुद्धा हणंति, मुद्धा हणंति, कुद्धा लुद्धा मुद्धा
 हणंति, अत्था हणंति, धम्मा हणंति, कामा हणंति, अत्था
 धम्मा कामा हणंति ॥ सू० ३ ॥

छाया— 'तं च पुनः कुर्वन्ति के चित्पापा असंयता अविरता अनिमृता परिणाम-
 दुष्प्रयोगाः प्राणवध भयङ्कर बहुविधं बहुप्रकार परदुःखोत्पादनप्रसक्ता',
 एतेषु असंस्थावरणु जोवेषु प्रविनिविष्टा, के ते प्रसंस्थावरा ? पाठीन तिमि
 तिमिङ्गिलाऽनेक-शेष विधिघलाति मण्डूक—द्विविध कच्छप नक मकर द्विविध माह
 दिलिवेष्टक मन्दुक सीमाकार पुलक सुसुमार बहु प्रकारान् जलचर विधान कर्ताश्च
 एवमादीन् कुरङ्ग कृसरम-वमर-सम्बरोरभ सशक—प्रशय-गोण्ड-रोहित-इय-नाज

खर-करम-खज-वानर-गवय-वृक शृगाळ-कोळ-भाजीर कोडमुनक श्रीकृष्ण-
 कावर्त-कोकनिक गोऊर्ण-मृग-मक्षि-भ्याम-ज ख-शोपिक-भाम तरसाऽऽच्छमज्ज-सादू स
 सिंह चिचल-चतुष्पद विषाम कृतम्वैवमादीन्, अजगर गोणस बराहि मुकक्षि काकोदर
 र्भपुष्पाऽऽसाक्षिक-महोरगोरग-विषामकृताहवैवमादीन् शीरस-शरम्भ-सेह-सत्यक
 गोपोमुर महुस-सरट-भाइक-मुगुस-साहदिका-वातोत्पत्तिका-गृहकोकितिका-सरीसृ
 पागणम्वैवमादीन्; कावम्भक-वक-बसाका-सारस-भासासेटीका-कुम्भ-बहुम्भ
 पारिप्लव-कोद-शकुन-दीपिक पिपीठिका इस-वातराष्ट्रक-मास-कुतोकोस
 कौञ्च इक्षुण्ड देखि शाळक सूचीमुख कपिल पिङ्गलाक्षक कारण्डक चक्रबाक लम्बोस
 गरुड पिङ्गुळ शुक्र बर्हि मयनराळ नम्बोमुख नम्बमानक कोरङ्ग सुत्तारक
 कोण्याळक बोवजीवक विशिर वर्तक सावक कपिल्लळक कपोतक वारापतक चिटिका
 डिङ्ग कुर्कुट वेसर मयूरक चकोरक इक्षुण्डीक करक बोरङ्ग दमेम बायस विहङ्ग
 भेनारित बाप वल्लुको चर्मोत्थित विततपक्षिण कचरविधानककृताहवैव
 मादीन्, अस्त्यडकचारिण्य पञ्चेन्द्रियान् पञ्चगयान् त्रिजिघमुरिद्रियान्
 विविधान् ओवान् मिषजीविताम् मग्य दुष्प्रतिष्ठान् बराकान् प्रमिष्ठ बहुसंक्रिष्ट
 कर्माण्येवमिदं विधेयं कारयेत् किन्तु ? यम वसा-मास-मेर-सोणित-यक्ष्ण-कर्त्तव्य-
 स-मस्तुष्टिङ्ग इक्षुण्डी-पिण्ड-प्रेक्ष्य इत्याऽयम्, मक्षि मज्ज मज्ज नवन कर्ण छात्रु
 नाक्षिका-वमनी गृह-इष्ट-पिण्ड-विष-विषाण-बाळ हेतु । द्विसन्ति च भ्रमर
 मनुकरी गण्यान् रसेषु गृह्याः । तथैव शोम्निषाम् सरीरोपकरण्याम् ! दूषणाम्
 शोम्निषाम् बहुम् वसोऽगृहपरिमण्डनायम् । अन्येऽवैवमादिमिर्बहुभिः कारण
 शतैरपि इह द्विसन्ति प्रसाध् प्राणान् इमंमैकेन्द्रियान् बहुन् वराकान्प्रसाध्या-
 न्यान् वराभितम्वैव वसुधरोराम् समारमन्तेऽप्राणान् अक्षरयान् अनायानवाचवा-
 न् कर्मनिगडहस्तान् अकुम्भपरिणाममन्त्रबुद्धिजनबुद्धिसेवान् पृथोमयान्
 पूरकोसवितान्-ब्रह्मयान् ब्रह्मगतान् अनन्ताऽनित्यव्यवस्तवितगणितिसूनाय
 वृत्तमयज्जोषाम्-चैव वरापादान् उत्पत्तिः-वय-गम्भ रस रस्ये बोम्भितवान्
 अवाप्तवान् आधुर्वाध प्रसकायिकान् असंख्यानं रथावरकायान् सुदमवाद्दर प्रत्येक
 शरीरनामसाधारणाम् अनन्तान् इत्येव अविज्ञानतम परिज्ञानतम जीवान्
 एतेर्दिविधे कारयेत्, किन्तु ? कथं पुष्करिणो वापो वरिणो (केदार) हू
 तारस्तवाग-पिठि-वेदिका-आविकाऽऽराम-विहार स्तूप पाकार द्वार गोपुराऽऽक्रिका
 चरिका-सेतु संक्रम-प्राध्वान्-विकल्प भवन गृह दारण-अयनाऽऽण्येव देवदुव पित्र

सभा प्रपाऽऽयतनाऽऽवसथ-भूमिगृह-मण्डपानाञ्च कृते, भाजन भाण्डोपकरणस्य विविधस्य चाऽर्थाय पृथिवीं हिंसन्ति मन्दबुद्धयः । जलं च मज्जन पान भाजन वस्त्र धावन शौचादिभिः, पचन-पाचन-ज्वालन-विदर्शनैश्चाग्निम्, शूर्पं व्यजन तालवृन्त पेहुन (मयूरपिच्छ) मुख करतल सर्गं शाकपत्र वस्त्रादिभिरनिलम्, आगार परिचार भक्ष्य-भोजन शयनाऽऽसन-फलक-मुसलोदूखञ्च ततः चिततातोच्च वहन वाहन मण्डप विविध-भवन-तोरण विटङ्क देवकुञ्ज-जालकाऽर्द्धचन्द्र-नियूहक-चन्द्रशालिका-वैदिका नि श्रेणि-द्रोणो-चङ्गेरी-कोल-मेठक (मुण्डक) सभा-प्रपाऽऽवसथ-गन्धमाल्यानुलेपनाऽम्बर मृपलाङ्गल-मलिक-कुलिक-स्यन्दन-शिविका-रथ-शकट-यान-युग्माट्टालक चरिका-द्वार-गोपुर-परिवा-यन्त्र-शूलिका-लङ्कट (लङ्गुड) मुशुण्डी (भुशुण्डो) शतघ्नो बहुप्रहरण्यऽचरणोपकरणानां (स्करणां ना) कृते, अन्यैश्चैवमादिकैर्बहुभिः कारणशतैर्हिंसन्ति ते तद्वर्णान् भस्मिणान् एवमादौ सत्त्वान् सत्त्वपरिवर्जितान् चपन्नन्ति, दृढा मूढा दारुणमतय क्रोधान्मानान्मायया लोभाद्-हास्य रत्यरति शोक वेदार्था, जीव (जोत) कामार्थं धर्महेतो स्ववशा, अवशा, अर्थाय अनर्थाय च त्रसप्राणान् स्थावराश्च हिंसन्ति मन्दबुद्धयः, स्ववशा धनन्ति, अवशा धनन्ति, स्ववशा भवशाश्च द्विधा धनन्ति अर्थाय धनन्ति, अनर्थाय धनन्ति अर्थाय अनर्थाय च द्विधा धनन्ति, हास्याय धनन्ति, वैराय धनन्ति, रतये धनन्ति, हास्यवैररतिभ्यो धनन्ति, क्रुद्धा धनन्ति, द्युधा धनन्ति मुग्धा धनन्ति, क्रुद्धा लुब्धा मुग्धा, धनति अर्थाय धनन्ति, धर्माय धनन्ति कामाय धनन्ति, अर्थं धर्मं कामेभ्यो धनन्ति ॥ सू० ३ ॥

अन्वयार्थ—“ (तत्तुणो) और फिर उस प्राणवधको (करेंति) करते हैं (केई) कितनेही जीव जो (पाषा) पापी (असज्जा) व असत्यम शील हैं (अविरया) पापसे अलग नहीं हुए या सत् क्रिया में नहीं लगे हैं (अणिदुय परिणाम दुष्पमोगो) अग्रान्त परिणाम वाले और मन वाणी व शरीर के अशुभ व्यापार वाले हैं (भयंकर) भयङ्कर और (बहुविह) शारिरिक मानसिक आदि बहुत प्रकार वाले (पाणवह) प्राणवध को (बहुष्पगार) बहुत-कई तरह से ‘करते हैं’ (परदुक्खुपायणभसत्ता) वे दूसरे को दुःख उत्पन्न करने में तत्पर तथा (इमेहिं तसयावरेहिं जोषेहिं पडिणि-विट्ठा) इन आगे कहे जानेवाले त्रसस्थावर जीवों में अभी ति डेध रखनेवाले हैं (किते) कौन जीव मारे जाते हैं या प्राणवध किसप्रकार किया जाताई ? मारे जाने योग्य जीवों के प्रकार—(पाठीन तिमि तिमिगिळ) पाठीन मत्स्यविशेष, तिमि व तिमिङ्गिल ये दो महामत्स्य हैं (अणेण शस विविह जाति मद्दुक्क) विविध मत्स्य

छोटे मत्स्य खड्गमत्स्य युगमत्स्य आदि, विविध जाति के मेढक (तुषिहकच्छम) दो प्रकार के कच्छप-मांसकच्छप और अस्थिकच्छप (पक्क मगर तुषिह गाहा) मक, मकर-मगर-सुडामगर यममत्स्य मगर के मेढ से दो तरह के होते हैं, । माह अजन्तु विशेष (विडिबेहय मंथुयसीमागार पुल्लय) विडिबेह मन्थुक, सीमाकार, और पुल्लके से सब प्राइके मेढ हैं (सुसुमार बहुप्यगारा अजयर विहाणा कते) सुसुमार, और अनेक प्रकार के बल्लवर के मेढों को करने वाले (पचमादी) इसप्रकार के पाठोन आदि जीवों को तथा (कुरंग-ख-सरम-चमर-संवर दुरधम-ससय-मस्य-गोवस रोहिय-) शृग ख-सृगविशेष सरम-बहो देह वाले जंगली पशुविशेष को परासर नाम से भी कहे जाते हैं और वे हाथी को भी पीठपर उठा लेते हैं चमर चमरी गाय, संवर-सौर, चमर-जेय-ऊनवाले मेढ मेढक, छला प्रलय-बो छुर वाले जंगली पशुओं का मेढ, गोण-गायें रोहित चौपाय जन्तु विशेष (इय गम खर करम खग वानर गवय विग सियाख) बोजा हाथी गवा, ऊँद खल्ल-इसके दोनों गन्ध पाँख की तरह चमकें छल्लते हैं और फिर पर एक सींग होता है। वानर गवय भीखीगाय या रोख वृक-हंसक जीव, युगाक-सियाख और (कोळमखार कोळ सुयग सिरियं वृकगावत कोक तिय गोकण्य मिय महिस विगय छगक होबिया सायन तरकछ अछ मल्ल सरस सीह चिल्लक जलपय विहाणाक) कोळ व फिर जैसा जन्तु माभार कोळ सुयग बहा सुमर, अथवा कोळ सुमर और शुनक-कुता लोकाद्वयक भावर्तक ये दोनों एक छुर वाले जन्तु हैं, कोकलिक खोमली अथवा की की करके रात में बोबने वाला जीव विशेष, गोकर्ण बो छुर वाला जतुप्यव विशेष, शृग-सामाम्यहरिम, पहले कइ हुए कुरग आदि सींग व बर्ण के मेढविशेष से समझने जाहिय, महिच-मैस व्याघ्र, छगक-पकरे की जाति, हो/पक-बीता आम-जंगली कुत्ते तरह अथमद मोरछा इह सिंह-केछरी-बिह, विशाल-नय बाढी पशु विशेष अथवा चित्रज-हरिय का आकृति-वाला दिसुर पशुविशेष-कुरंग आदि जिन विशेषणों से जतुप्यवों के मेढ किये गए हैं उनको (य) और (पच मादी) इस प्रकार के अन्य जतुप्यव जीवों की फिर (अकार) अन्नगर-बहा सांप (गोणछ) विमा फल के सांप, (बरहि) दष्टि विप धर्य ने कल करने में रथ होते हैं (मरुति) मुकुली-मल्ल वाले धर्य विशेष, (काठर) काकोर-एक जाति के खप, (द्रुमपुल्ल) द्रुम पुल्ल-एक जाति का धर्षकर सप (आसाजिय) आसाधिक-आसाधिया * (महोरग) बहुत बहा धर्य, (परग विदाणक य) परग जाति के मेढ को करम वाले इन जीवों को (य) और (पचमादी)

इस प्रकार के दूसरे उपरिसर्प-छातो के बल चलने वाले जीवों को तथा (छोरल-सरंव-सेह-सेलम) क्षोरल और शरम्ब बाहु के बल पर चलने वाले जीव विशेष, सेह-तोखेकांटों से भरे हुए शरीर वाला जीव जो शेला नाम से प्रसिद्ध है, शल्यक-जीव विशेष, (गोधुंदर गउल-सरद-) गोधा गोह, उंदिर चूहा, नोला और शरद-कुकलास नामका जीव, (जाहग मुगुंस खादाहल वाउपिय धी रोतिय सिरौसिवगणे) जाहक-कांटे से ढके हुए शरीर वाला जीव, मुगुस मु'गूस, खाड-हिला-टिलोडी-गिलोरी, वातोत्पत्तिका-लौकरुडि से समझे' घोरोलिय-गृहकोकिलिका-घर में रहने वाली गोह, हाथ से सरक कर चलने वाले जीवों के भेद करने व ले इन जीवों को (य) और (एवमादी) इस प्रकार के अन्य भी भुज-परि सर्प जीवों को, तथा (कादधक) इस विशेष (चक) बगुला (बलाका) विसकण्डिका, (सारस) सारस नाम के प्रसिद्ध पक्षी, (आडासेतीय) आडा सेतीक जिसको आह कहते हैं (कुलल) कुलल, (बंजुल) बंजुल (परिपष कीच सलण-दीविय (पोपीलिय) इस-) पारिपूष-सदिर चक्षु, कीच शकुन-और दीपिक ये पक्षि-विशेष हैं, पी पी घोलने वाले पक्षी को पीपोलिक कहते हैं, इस-श्वेतहस (धत्तिरुग भास कुलीकोस कुच दगतुड देणियालग) धार्तराष्ट्र-कृष्ण मुख व चरण वाले इस, भास और कुटीकोश-पक्षि विशेष, कौच, उदकतुड, देणिकालक (सूईमुह कविल पिंगलखलग कारग) सूचोमुख, कपिल, पिंगलाक्षक और कारडक-अप्रसिद्ध पक्षी विशेष (चक्रबाग उकोस गरुड पिंगुड सुय चरहिण मयणसाल) चक्रवाक, उत्कोश, कुरर, गरुड पिंगल-अप्रसिद्ध, शुक पोपद, वहीं-पांखवाले मयूर-भोर, मदनशाला-मेना, (नदीमुह-नदमाणा-कोरग भिंगारग कोणालग) नदोमुख, नन्दमानक कोरक और भृङ्गारक-अप्रसिद्ध पक्षी विशेष, भृङ्गारिका रात में श श बोलने वाला छोटा पक्षिविशेष, कोणालक-पक्षिविशेष, (जीव जीवक तित्तिर बहक लावक कर्पिजलक कबोयक पारेचयग चिडिग हिक कुकुड वेसर) जीव जीवक-चकोर, तित्तिर, वत्तक वर्तक-जिसको वतक कहते हैं

१ आसालिया इसका शरीर उत्कृष्ट १२ योजन तक लम्बा होता है और यह खंडप्रत्यक्ष के समय बड़े दाहर आदि की भूमि के नीचे उत्पन्न होता है।

२ महोरग-यह मनुष्य क्षेत्र के बाहर होता है, तथा इसका शरीर आक्षिर में हजार योजन तक लम्बा होता है।

छात्र-सत्र नाम का पक्ष विशेष फणिसलक, कपाव-कपूर पारावत-कपूर
 का हो एक सेर, चिटिका-कलत्रिका-चीड़ी विशेष ठिंका-पक्षिविशेष, कुकुर-मुर्गा,
 वेसर-अप्रसिद्धपक्षी (मयूरग-चउरग-हय-पोंडरीय-करक-धीरक-सेन-बायसय
 विहग मियासि-वास-वग्गुडि-चम्मट्टिउ-वितसपक्षि-जहपर-विहाणक)
 मयूरक-कडाप रहित भीर चकोर हृष्ट पुंडरीक भीर छात्रक या करक तथा धीरक
 ये कोई अप्रसिद्ध पक्षिविशेष हैं इयेन-बाळ बायसविहङ्ग-काकपक्षी, सेनाशित
 पक्षीविशेष, अवया कही बायस भीर विहङ्ग भेद नाशित ऐसे नाम मिलते हैं।
 चापपक्षी, वल्लुकी-बागलपक्षी चर्मोस्थि-चमगीवृक्ष या चर्म बिड़ी वितस
 पक्षी यह मनुष्य क्षेत्र के बाहर होता है, लखर के मेद करने वाले इन पक्षियों
 को (य) भीर (पयमारी) ऐसे कावक आदि पक्षियोंको पूर्वोक्तजीवों का
 संघटन वचन से कहते हैं- (अछयक-अगचारिणो व पक्षिदिप) अछ स्वच्छ-भूमि
 भीर आकाश मार्ग से चलने वाले पक्षेन्द्रिय (पशु गये) पशु जाति के प्राणियों
 को तथा (शिव तिय चउगिदिप) हो चीन भीर चार इन्द्रिय वाले (विविहरे जीवे)
 अनेक प्रकार के जीव (पिय जीविप) प्रिय जीवन वाले व (मरण दुक्क पटिक्के)
 मृत्यु के दुःख को नहीं चाहने वाले (वराप) बेषरै सुत्र जीवों को
 (बहुसंकिद्धिद्धम्मा) बहुत क्लेशयुक्त कर्मों को करने वाले हिंसक (हर्जति)
 मारते हैं। मय हिंसा के कारण करते हैं (पमेदि) इन (विहिं) आगे बढ़े
 जाने वाले अनेक (कारणेहिं) कारणों से (चिन्ते ?) ये की-ये प्रबोधन है ?
 चम्म-वसा मंज मेस-सोलिय-अग-फिरिस्-) चमडा वसा-चारी मांस, मेड-
 वेद का घात विशेष शोषित-शुद्ध बकल पेट के बाहिने बासु में रहने वाली
 मोममन्थि, फिक्कम-केरडा, (मत्तुल्ल ग-हिंगमठ-पिस-फोक्स-बंतहा) मत्तुसिद्ध-
 कदाच का महा, हृष्ट-हिरे का नाम अन्न-भोजन पित्त-क्षयोर का एक दोष,
 फोक्स भीर हाँस के लिये तथा- (अट्टि-मिज-नह-नयण-अण-आदवि-तल-यमपि
 मिग-दादि -विच्छ-बिस-विसाज-बाळ देउ) अस्थि-स्थो मरजा नल नेत्र,
 कान, स्नायु-नसें मांस, घमनी-नडी सींग बाह विच्छ-पूछ-यंय विप सप
 आदिका विराण-हाथो का दाँत भीर बाळ-केण इन सब के निमित्त मारते हैं
 (य) भीर (दिगठि) मारते हैं (यमर ममुफरो ण) यमर भीर यमरिभा के
 समूह का (रसेमुगिडा) मधु आदि रस में मृद-छाछपी शीव, (तदेव) इसी
 तरह (तैरिण) तीन इन्द्रिय वाले-नू आदि जीवों को (सरोरोवकरगठपाप)

शरीर के उपकरणों के लिये (किवणे) दया के पात्र-वेचारों को मारते हैं (बहवे) बहुत से (वेंदिए) दो इन्द्रिय वाले—जट आदि जीवों को, (वत्थोहर परिमहणत्था) वस्त्र व घर की शोभा के लिये तथा वस्त्र के-लिये घर के लिये व शोभा के लिये मारते हैं (अण्णेहि य) और दूसरे (एवमाइएहिं) इत्यादि पूर्व कहे केश आदि (बहूहिं) बहुत से (काग्खत्तेहिं) सैकड़ों कारणों से (अबुहा इह) इस संसार में अज्ञानी जीव (तसे पाणे) त्रस प्राणिओं को (हिंसति) मारते हैं (इमे य) और इन (एण्हिए) एकेन्द्रिय-स्थावर जीवों को, तथा (बहवे वराए) बहुत से बेचारे (तसे) त्रस जीव (य) और (अण्णे) अन्य (तदस्सिए) उनके आश्रित रहने वाले (तणुसरीरे चेव) जो सूक्ष्म शरीर धारो हैं तथा (अत्ताणे) जिनके कोई रक्षक नहीं हैं, वैसे त्राण रहित (असरणे) हितैषी नहीं होने से जो अशरण हैं, (अणाहे) नाथ^१ नहीं होने से अनाथ (अबधवे) बान्धव रहित (कम्मनिगलवद्धे) कर्म के बन्धन में बंधे हुए (अंकुखल परिणाम मदवुद्धिजणटुक्किजाणए) अशुभ परिणाम के उदय से जो मन्द बुद्धि हैं ऐसे प्राणिओं के लिये दुर्निज्ञेय—कठिन से जानने योग्य हैं, उन जीवों का (समारंभति) हनन करते हैं, फिर (पुढविमये) पृथ्वी कायिक (पुढवीससिए) पृथ्वी के आश्रित-अलज्जिया आदि त्रस जीवों को (जल्लमए) वायुकाय के जीव (जल्लं गए) जल में रहे हुए कीड़े व सेंवाल आदि त्रस स्थावर जीव (अण्णत्ता गिल तण वण-स्सतिगण निसिए) अग्नि वायु व तृण वनस्पति गण के आश्रयमें रहे हुए जीव (य) और (तम्मय सज्जिते) अग्निकायिक वायुकायिक और वनस्पति कायिक तथा इन योनिओं के जीव जो (तदाहारेचेव) पृथ्वी आदि के आधार वाले हैं या पृथ्वीआदिकाही आहार करने वाले हैं (तत्परिणत वण्ण गध रस फास षोंडिरूवे) उन पृथ्वी आदि के वर्ण गन्ध रस और स्पर्श से परिणत—वर्ते हुए देहाकार वाले अर्थात् जिन का शरीर पृथ्वी आदि के समान हो वण आदि वाला है । (अचक्खुसे) अचाक्षुष नजर में नहीं आनेवाले (॥) और (चक्खुसे) दृष्टि में आने वाले—चाक्षुष (असखे तसकाइए) इस प्रकार असख्य त्रसकायिक जीव (य) और (थावर काए) स्थावर कायिक (सुहुम वायर पत्तेय सरीर नाम

१ अनाथ अवस्थ वस्तु का लाल रूप योग और लब्ध वस्तु की रक्षा रूप देम, इन दोनों योग देमों को काने घाले नाथ कहे जाते हैं, जिसके वे नहीं हैं वह अनाथ है ।

साधारण अर्णवे) सूक्ष्म बाहुर-स्थूल, प्रत्येक शरीर^१ और साधारण अनन्त जीवों को (इर्षति) मारते हैं (अविजाणयो) अपने बच को नहीं जानने वाले (य) और (परिजाणयो) मुक्त हुआ आवि से मरण का अनुभव करने वाले (जीवे) जीवों को (इमेहिं) इन मीचे कहे जाने वाले (विविहेहिं) अनेक प्रकार के (कारणेहिं) कारणों से (किंसे ?) वह प्रयोजन कीनसा है ? (करिष्य पोन्नरणी बाधि वप्पिणि कूब छर तल्लम चिति वेत्तिव जातिव आराम बिहार धूम पागार हार गोहर अहाल्लग चरिषा सेतु संकम पासाय विक्कप मवण घर सरण छेव नावण वेत्तिव देव कूळ चित्त सभा पदा आयत्तणावसद्ध मुदिपर मंडवाण्यकप) जेती के छिये पुक्करिणी-कमळ वाली वा पीकोय बावडो बापो-गोळ या बिना कमल के बावडो, वप्पिणी-बेदार, कूबा, सरोवर लाछाव, चिति-मीव आदिका चपन-बमाना वा सुतक को जलाने के छिये बनाई गई चिता, वेदिका-बबूतरा, जातिका-जाई, आराम-वगीचा; बिहार-बौद्ध आदिका मठ स्तूप-स्तुति चिन्ह विशेष, प्राकार-कोट, द्वार-दरवाजा गोपुर-नगर का मुख्य द्वार, अहाल्लक-कोट के ऊपर की जटारी चरिका-मगर और उसके कोट के बीच का ८ हाथ लम्बा गंगा सेतु-पाव या पुष्पिण, संकम-विषम स्थाव से उतरने का माग मासाव-मड्ड-पमानों के भवन विक्कप-प्रासाद के सेह भवन चोखाव आदि गृह-सामान्य घर; सरण-स्थ-घास के बर, लवण-पर्वत में खोप कर बसाव घर आवण-दुकान, वेत्त-भूतिवों जगसा चित्तस्मान पर बना हुआ स्मारक देवस्तान-हिकर कुछ देवमन्दिर; चित्रसमा-सचित्र मण्डप, प्रपा-पानी को व्याक, भाव्यन-देवरथान, आवसण-परिजाणकोंका आश्रम, मूमिगृह-तल्लपर और मण्डप छाया बौरह के छिये बनाया गया कपडे का मण्डप, इन सबके छिये (य) और (भाव्य मंडोवगरणत्त विविहत्त अहाव) सोने आदि के भाजन और मिट्टी के भाण्ड आदिका किराये-लवणादि व उपकरण छल्लक आदि के और विविध-वस्तुओं के छिये (पुडिं) पुष्पों आदिक जीव की (हिंसति) हिंसा करते हैं, (मवमुदिया) कम बुद्धि वाले लोग (जलं) और जल काय के जीवों की

१ एक शरीर में एक जीव हो उसको प्रत्येक शरीरी कहते हैं ।

२ एक औदारिक शरीर में साधारण कपडे रहने वाले जनेकों जीव बावडी वनस्पति को खावतन कहते हैं ।

(मञ्जुवर्ण-पाण-भोजन-वस्त्र-घोषण-सोयमादिर्हि) स्नान भोजन, जलपान भोजन और वस्त्रों को धोने हाथ पैर धोने, शुचि करने आदि कारणों से हिंसा करते हैं (पयण पयोवण जलवर्ण विदसणेहि अगणिं) पचन पाचन रसोद्बनाने—सिद्धाने, चावल सिद्धवाने जलावन खुद या दूसरे से आग को मुलंगाने विदग्नि दीपक जलाना आदि कारणों से अग्नि को (सुप्-वियण-ताल्यटं—पेहुण सुह-कंरयल-सागपत्ते-वत्थमादिर्हि) सूप सूपना, व्यजन—वोजन तालवृन्त-पक्षा-पेहुण—मोर पीछी; मुख, करतल—हाथ, शाकपत्र—सागके पत्ते और वस्त्र आदि से (अणिलं) वायुकायिक जीवों को हिंसा करते हैं, (अगर परियार भक्क भोजणा-सयणासन-फलक-मुसल-उखलं-तत विततातोव्जं—वहण—वाहण—मडव-विविहभवण—तोरणा—विट्ठ-देवकुल—) घर, परिचार वृत्ति या तलवार आदि की न्यान, मर्ध्य मोदक आदि, भोजन—रोटी आदि; शयन—शय्या, आसन—विस्तर; फलक—पीठ व कुर्सी आदि, मुसल, उखल, तल—झींझा आदि वितत पट्ट—ढोल आदि, आढोद्य—बाजे, बहन—नौका आदि, वाहन—शकट गाड़ी आदि, मंडप, विविध भवन—अनेक प्रकार के चौशाले आदिभवन, तौरण; विट्ठ-कबूतरों के लिये बनाये हुए घर—कपोत पाठी, देवकुल—देवल (जालयद्ध चव निज्जुग—चंद सालिय वेतिय शिरसेणि दोणि-बगेरि—खील-मेटक—सभा—पवा—बसह—गंध मल्लानुलेवण—वरजुय—नंगल—मइय—कुलिय—संजण—सीया—रह—संगड—जोण—जोग्ग अट्टालग—चरिअ दार—गोपुर—फलिहा—जंत—सूलिय—छंढ—मुसंडिं—संतवि बहुपहरणावरणुवर्क्कराण कप) जालक—जालियाँ, अर्द्धचन्द्र—सोपान या सौंध विशेष, निर्यूहक—दरवाजे पर चोडे के मुह—की आकृतिवाली निकली हुई लकड़ियाँ, चन्द्रशालिका—प्रासाद के ऊपर की छाँटा वैदिका, निस्सरण—चढ़ने व उतरने की माळ, द्रोणी—छोटी नौका, बगेरी—फूल डाली या नाच विशेष, कौल—खील, मेटक—मुँडे, सभा, पवा—प्याऊ, आवसंथ—परिव्रजकों का आश्रय; गंध—पावडर आदि; मल्लिय—फूलें माँका, अमुलेपन—विलेपन, अम्बर—कपडे यूप—युग, जांगल—हल, मविक—जमीन जोतने के बाद डेला फोड़ने के लिये लम्बा कौष्ठ, जिससे भूमि बराबर की जाय कुलिक—एक प्रकार का हल स्थन्दन—युद्ध और देव यात्रा में जाने के लिये दो प्रकार के रथ, शिविका—बड़ी पालकी, रथ, शकट—गाड़ी, थान—थानविशेष, युग्म—वेदिकायुक्त दो हाथ की जपान विशेष, अट्टालक—अट्टालिका, चरिका—शहर और कोटे के बीच में आठ हाथ का चौड़ा मार्ग, द्वार, गोपुर—नगर का मुख्य द्वार, परिचा—आगल, यत्र—अरहट,

भावि, मूखिका-शुद्धी पीपने का भस्त्र वा सलक-कौशाविशेष, लज्जुट मुसुदि-प्रहरण विशेष सप्तमो पक्षो छाठी या छोप भावि और बहुत से प्रहरण—करवत भावि व भावरण भस्त्र विशेष छपकर—घर के छपकरणा मच भावि इम सबके छिये (अण्जेहिय) और अम्य-इत्यादि (बहुहिं कारणसणहिं) बहुत से सैकड़ों कारणों से (हिंसति ते तदगणे) व अल्पज जीव शुद्ध समूह-वनस्पति की हिंसा करते हैं (मज्जिताम्) ऊपर की गणना में कहे गए व बिना कहे (एवमादी) इत्यादि इस प्रकार के (सत्ते) जीवों को (सप्तपरिवर्ज्या) को सत्त्व—यज्ञ से रहित हैं, पैसों को (उद्वर्णति) मारते हैं, (द्वमूढा) द्वमूढ-पक्षे मूख और (बादणमरी) कर बुद्धिवाले (कोहा) क्रोध से (माया) मान महङ्कार से (माया) कपट से (ओमा) लोभ से (हस्स रती भरती) हास्य—मजाक रति भरति—राग मा म्मानिसे (ओय बेहत्ती) झोक और बेहानुष्ठान के लिये (ओय कामत्त वम्महेरं) भीत—जीवन या मर्णादा, धर्म अर्थ और काम-विषय के हेतु अपरोक्ष हिंसा करते हैं, (सवसा) अपनी इच्छा से या (अवसा) कई पराधीनपने से (बद्धा) प्रयोजन से (अण्णदाय) और बिना प्रयोजन से (तसपाणे) तस प्राणी (आवरय) और स्थावर—स्थिति झील पृथ्वी भावि के जीवों को (हिंसति मंच बुद्धि) मन्द बुद्धि वाले लोग मारते हैं। इसी बात को स्पष्ट करके कहते हैं—(सवसा हणति) अपनी इच्छा से कई मारते हैं (अवसा हणति) परवन्त होकर कुछ मारते हैं (सवसा अवसा दुहणो हणति) स्वाधीन और पराधीन दोनों तरह से हिंसा करते हैं। (बद्धा हणति) अर्थ से जाने प्रयोजन से मारते हैं। (अण्णदा हणति) निष्प्रयोजन हिंसा करते हैं (अद्धा अण्णदा दुहणो हणति) सप्रयोजन व निष्प्रयोजन दोनों तरह से बध करते हैं (हस्सा हणति) हास्य से मारते हैं, (वेरा हणति) वैर से मारते हैं, तत्ता (रतीय हणति) रति-अभिरुचि से मारते हैं (हस्स वेरा रतीय-हणति) हास्य वैर व लुप्पी से मारते हैं (कुद्धा हणति) क्रोध वस मारते हैं (लुद्धा हणति) लोभ के वश मारते हैं (मुद्धा हणति) मोह वस मारते हैं (कुद्धा लुद्धा मुद्धा हणति) क्रोध वस लोभ वस मोह वस बध करते हैं (अत्था हणति) धर्म के लिये बध करते हैं (वम्म्या हणति) धर्म के लिये कई हिंसा करते हैं (कामा हणति) विषय के कारण हिंसा करते हैं (अत्था वम्म्या कामा हणति) धन धर्म और सांसारिक विषय साधन के लिये हिंसा करते हैं। सू० ५॥

भाव उपरोक्त तीसरे सूत्र में यह बताया गया है कि इस प्राण बंध को कौन करते हैं व क्यों करते हैं तथा किन जीवों का बंध करते हैं ? इन सन्देहों का समाधान इस प्रकार है—“जो जीव संयम और विरति से रहित व अशान्त हैं, जिन के विचार तथा आचरण बुरे हैं, वे ही दूसरे को दुःख देते हैं और इससे खुद खुशी मनाते हैं। वे लोग ही इस भयङ्कर हिंसा-कार्य को अनेक प्रकार से करते हैं, निम्नलिखित त्रस स्थावर जीवों पर वे द्वेष रखते या अप्रति वाले होते हैं, वे जीव ये हैं—‘पाठोन मत्स्य आदि अनेक प्रकार के जलचर जीव, मृग महिष आदि अनेक प्रकार के भूमिचर पशु जीव और अजगर सर्प व आशालिक आदि सर्पपरिसर्प—पेढ के वल चलने वाले जीव, क्षोरल गोह उदिर (चूहे) आदि भुजासे सक्कर चलने वाले सुजपरिसर्प जीव, और हस काक आदि आकाश गामो-स्त्रेचर पक्षि जीव, इस प्रकार जल स्थल, और आकाश मार्ग से चलने वाले पञ्चेन्द्रिय तिर्यग् जीव, इन में बहुत से नाम अप्रसिद्ध हैं जो रुढ़ि से समझने चाहिये। दो तोन तथा चार इन्द्रिय वाले अन्य विविध जीव जिन्हें कि निज जाति समुचित जीवन परम प्रिय है और जो मरण से बहुत डरते हैं, हिंसा रखिक उन जीवों को अनेक कारणों से हिंसा करते हैं। वे हिंसा के ये कारण हैं— चमड़ा १ चर्वी २ मांस ३ मेद ४ रक्त ५ यकृत ६ फेफसा ७ भेजा ८ हृदय ९ आँतें १० पित्त ११ फोफस १२ और दात १३ हड्डी १४ मज्जा १५, नख १६, आख १७, कान १८, क्रायु १९, नस २० नाक २१ घमनी नाडी २२, सोंग २३, दाह २४, पूँछ-पंख २५, काल कूट आदि विष २६, हाथी दाँत २७ और बाल इन सब वस्तुओं के लिये हिंसा करते हैं। ऐसे ही रसमें गृह (जालची) लोग भँवरे व मधु मक्खों को मारते हैं, शरीर व वस्त्र आदि के लिये जू आदि श्रेन्द्रियों का बंध करते हैं। रेशमी आदि वस्त्रों के लिये और कीड़े और घर की शोभा के लिये शख आदि के चूने में सीप व शख आदि को हिंसा करते हैं। इनके सिवाय अन्य बहुत से कारणों से मूर्ख लोग त्रस जीव तथा बेचारे एकेन्द्रिय जीवों को हनन करते हैं, त्रसों को मारते व त्रसों के आश्रय में रहने वाले अनेक सूक्ष्म शरीरी जीवों को मारते हैं। जो अनिष्ट के निवारण में व इष्ट के साधन में असमर्थ हैं। जो अनाथ हैं, बन्धु विहीन हैं। तथा कर्म बन्धन में जकड़े हुए हैं और जो अशुभ विचार वाले मन्द बुद्धियों से नहीं जाने जाते और जैसे बहुत से लोक इनको आज भी जीव नहीं मानते हैं। पृथ्वी कायिक तथा उनके आश्रित अन्य जीव, अप्कायिक व जल में रहने वाले अन्य जीव, ऐसे अग्नि वायु और वनस्पति के

आदि, शूद्रिका-मूली-वीरने का भस्त्र वा शलक-कीर्णविशेष, लङ्कट मुहुर्दि-प्रहरण विशेष घृतगो पयो छाठी या तोप आदि और बहुत से प्रहरण—करवत आदि व आवरण अस्त्र विशेष उपकर—पर के उपकरण मय आदि इन सबके लिये (भण्डेदिय) और अन्य-इत्यादि (बहुहि कारणसपरिहि) बहुत से सैकड़ों कार्यों से (हिंसति ते वरुण्ये) वे अस्पृश जोध धूस समूह-वनस्पति की हिंसा करते हैं (भण्डिवाभ०) ऊपर की गणना में कहे गए व बिना कहे (धवमारी) इत्यादि इस प्रकार के (ससे) जीवों को (सप्तपरिधर्मिण्या) जो सप्त—ब्रह्म से रहित हैं, वेदों को (वरुण्यति) मारते हैं, (वरुमुठा) वरुमुठ-पक्षे मूल और (दारुणमयी) क्रूर पुष्टिवाले (कोहा) क्रोध से (माया) मान महद्गार से (माया) कपट से (सोमा) सोम से (हस्त रची भरती) हास्य—मन्त्राक रति भरति—राग या रत्नानिसे (सीय वेदस्यो) छोकर और वेदानुष्ठान के लिये (जीय कामस्य धम्महेतुं) जीव—जीवन या मर्यादा, धर्म अथ और काम-विषय के हेतु अपरोक्त हिंसा करते हैं, (सवसा) अपनी इच्छा से या (अवसा) कई पराधीनपने से (भट्टा) प्रयोजन से (अण्डाण्य) और बिना प्रयोजन से (तसपाण्ये) तस पाणी (धावरेष) और त्यागर—स्थिति क्षील पृथ्वी आदि के जीवों को (हिंसति संर पुष्टि) मन्द पुष्टि वाले लोग मारते हैं। इसी बात को स्पष्ट करके कहते हैं—(सवसा हणति) अपनी इच्छा से कई मारते हैं (अवसा हणति) परतन्त्र होकर कुछ मारते हैं (सवसा अवसा दुहभो हणति) स्वाधीन और पराधीन दोनों तरह से हिंसा करते हैं। (भट्टा हणति) धर्म से याने प्रयोजन से मारते हैं। (अण्डा हणति) निष्प्रयोजन हिंसा करते हैं (भट्टा अण्डा दुहभो हणति) सप्रयोजन व निष्प्रयोजन दोनों तरह से वध करते हैं (हस्मा हणति) हास्य से मारते हैं, (वेरा हणति) नेर से मारते हैं तथा (रतीय हणति) रति अनुराग से मारते हैं (वरस वेर रतीय-हणति) हास्य घेर व सुगो से मारते हैं (इच्छा हणति) क्रोध वध मारते हैं (इच्छा हणति) क्रोध के बहा मारते हैं (मुखा हणति) मोह वध मारते हैं (इच्छा इच्छा मुखा हणति) क्रोध वध सोम वध व मोह वध वध करते हैं (भत्या हणति) धन व लिये वध करते हैं (धम्मा हणति) धर्म के लिये कई जिमा करव है (कामा हणति) विषय के कारण हिंसा करते हैं (भत्या धम्मा कामा हणति) धन धर्म और सांसारिक विषय साधन के लिये हिंसा करते हैं। १७३ ॥

और कोई दोनों प्रकार से मारते हैं । कोई हास्यवश, कई वैर वश और कोई एक रतिवश मारते हैं, कई इन तानों के चढते मारते । कई क्रुद्ध होकर हिंसा करते, कई लुब्ध होकर तो अन्य मोहसे मुग्ध होकर मारते हैं, कितने हो क्रोध, लोभ व मोह तोनों के वश हिंसा करते हैं । धन पाने के लिये हिंसा करते, धर्म के लिये हिंसा करते और कितने ही कामुक बनकर मारते । दूसरे कितने ही अर्थ धर्म व काम वश हिंसा करते हैं ॥ सूत्र ३ ॥

इस प्रकार अर्थ धर्म और काम इनमे से किसी भी हेतु से इच्छा पूर्वक हिंसा करना मदबुद्धि पन कहा गया है । प्राण बध का स्वरूप, उसके नाम और जैसे वह किया जाता है, ये तीन द्वार कहे गए । चौथे द्वार में प्रतिज्ञा के अनुसार हिंसा का फल कहना चाहिए । किन्तु कर्ता के अधीन में क्रिया होती है और दूसरे इस का वक्तव्यभी अल्प है, इस लिये प्रधानतासे पहले प्राण बध को करने वाले 'कर्तृद्वार' का विचार करते हैं—

मूल—“कयरे ते ? जे ते सोपरिया, मच्छुदंधा, साउणिया, बाहा, कूरकरुमा, बाउरिया, दीवितबंधणप्पओगतप्पगल जाल वीरल्लगायसीदब्भ वग्गुरा कूड छेलिहत्था, हरिपत्ता, साउणिया य, वीदंसग पासहत्था, वणधरगा, लुद्धय-महुघात पोतघाया, एणीयारा, सर-दह-दीहिअ-तलाग-पल्लज-परिगालण-मलण-सोत्त-बंधण सलिलासयसोसगा, विसगरस्स य दायगा, उत्तण-वल्लर-ववग्गि—ण्हिय पलीवका कूरकरुमकारी, इमे य यहले मिलक्खु-जाती, केते ? सक्-जवण-सवर-वव्वर-गाय-सुळ्ढो-दभङ्ग-तित्थिय-पक्कणिय-कुलक्ख-गोड-सीहल-पारस्स कोंचध-दाविल-विल्लज-पुलिंद—अरोसडोण-पोक्कण-गंधहारग बहलीय—जल्ल—रोम—मासव उस मलया-बुंउया य-जूलिया कोंकणगा-मेत्त—पण्हव-मालव-महुर—आभासिया—अणक चीणरहासिय—लस—लासिया—नेहुर-मरहट्ट-मुट्ठिय—आरव डोविलग-कुहण-केकय-हूण-रोमग-रु-मरुगा-चिलाय विसय-वासी य पावभातिणो । जल्लयर थल्लयर सणप्फत्तोरग-खहचर संडास-तोंड-जीवोवघायजीवी, सण्णी य असण्णिणो य पज्जत्ता असुभलेस्सपरिणामा, एते अण्णे य एवमादी करेंति पाणाति-

मूत्र जीव तथा उनके आशय में रहकर पन्दी का निर्धार करने वाले की त्रस जीव है, पृथ्वी आदि आशय के अनुरूप ही जिसके रंगरूप होते हैं। जैसे हरे पौंस पर हरे कोड़े और सुखे पर पोछे होते हैं। कुछ जीव बिखरने वाले और कुछ नहीं बिखरने वाले हैं। ऐसे असंख्य उस और सूक्ष्म बाहर, प्रत्येक व साधारण भेदभावे अनन्त स्थावर जीव को मारते हैं। ये ज्ञान विशेष से हीन होकर भी सुख दुःख को अनुभव करने वाले हैं। स्थावर जीवों की हिंसा के कारण निम्नोक्त हैं—'खेरी कूमा, बाँध डी, ताकाव, तथा खरोबर, चिता-बेदिका, खार्ड, बाग मठ, तूप, कोट द्वार, नगर का मुख्य द्वार, अष्टाष्टिका सबक पुष्प, संक्रम, अनेक प्रकार के भवन, साधारण घर, चैत्य—मन्दिर,—स्मारक समा और तक्षपर व मण्डप आदि के सिये पौंस व मिट्टी के पात्र और अन्य विविध संपकरणों के किये मन्द बुद्धि लोग पृथ्वी की हिंसा करते हैं। मदाने बोलने और पीने तथा भोजन व शरीर भाँड़ की शुद्धि के किये जल—अप काविक जीवों की हिंसा करते हैं। पकाने जकाने और रोरातो आदि कारण से जल काविक जीवों की हिंसा करते हैं। सूप, वाजने, पंटे और हाथ, मुख व वस्त्र आदि से वायु काविक जीवों की हिंसा करते हैं। घर परिवार भोजन समय, भासन पीठ कपड़ा मूसल अनेक प्रकार के वायु नौका गाड़ी आदि वाहन मंडप, विविध भवन, गोरख कक्षर खाना, बेबल, जाली, सीढी दरवाजे के आगे घोटके, वेदिका, निसरखो, छोटी नौका, जगेरी, कील, समा, प्याऊ, मठ, गचक—पाठ नबर, फूलमाला, बिलेपन वस्त्र मूष, हथ रोश कोहने की ककड़ी, सामान्य हथ, स्वन्द न—सामामिकरथ, पालकी, गाड़ी—साधारण रथ, पान, पुगम, अष्टाष्टिका, चरित्र—नगर व कोट के बीच का मार्ग, द्वार, गोपुर, परिषा, बल यन्त्र—रैठ, शूको, काठी मुठुप्पी—बन्दूक, गोप की तरह का शय विशेष, अन्य महरण, समा घर के बप करण—आदि के किये ऐसे घटुतेरे अन्य कार्यों व वृत्तों को करते हैं। कई दूर से अल्प भो बलहीन प्राणिमों को मूढ मति व वाष्ण विचार वाले हाथ मारते हैं। अन्तरज कारण भी कुछ हैं—जैसे कि काय मान—माया भोग, हास्य और रति करति, तथा शोक व श्रद्ध बिदित अनुष्ठान व किये। संक्षेप से कहा जाय तो जीवन मर्षदा तथा धर्म व धर्म और काम के किये हिंसा होती है। स्वयंश या घर वस, प्रयोजन से या निष्प्रयोजन भी—अल्प बुद्धि लोग त्रस जीव तथा स्थावर जीवों को मारते हैं। अर्थात् गत विचार से कई स्वयंश मारते। कई परवश हाकर मारते हैं। और कई दानों तरह हैं। कोई भय—प्रयोजन से मारते हैं, दूसरा निष्प्रयोजन

और कोई दोनों प्रकार से मारते हैं । कोई हास्यवश, कई बैर वश और कोई एक रतिवश मारते हैं, कई इन तीनों के चलेते मारते । कई क्रुद्ध होकर हिंसा करते, कई लुब्ध होकर तो अन्य मोहसे मुग्ध होकर मारते हैं, कितने ही क्रोध, लोभ व मोह तीनों के वश हिंसा करते हैं । घन पाने के लिये हिंसा करते, धर्म के लिये हिंसा करते और कितने ही कामुक बनकर मारते । दूसरे कितने ही अर्थ धर्म व काम वश हिंसा करते हैं ॥ सूत्र १ ॥

इस प्रकार अर्थ धर्म और काम इनमें से किसी भी हेतु से इच्छा पूर्वक हिंसा करना मदबुद्धि पन कहा गया है । प्राण वध का स्वरूप, उसके नाम और जैसे वह किया जाता है, ये तीन द्वार कहे गए । चौथे द्वार में प्रतिज्ञा के अनुसार हिंसा का फल कहना चाहिए । किन्तु कर्ता के अधीन में किया होती है और दूसरे इस का वक्तव्यभी अल्प है, इस लिये प्रधानतासे पहले प्राण वध को करने वाले 'कर्तृद्वार' का विचार करते हैं—

मूल—“कयरे ते ? जे ते सोपरिया, मच्छुबंघा, साउणिया, वाहा, कूरकम्मा, वाठारिया, दीवितबंधणप्पओगतप्पगल जाज वीरल्लगायसीदब्भ चग्गुरा कूड छेखिहत्था, हरिपसा, साउणिया य, वीदंसग पालहत्था, वणचरगा, लुब्धय-मट्टघात पोतंघाया, एणीयारा, सर-दह-दीहिअ-तलाग-पल्लल-परिगालण-मल्लण-सोत्त-बंधण सलिलासयसोसगा, विस्सगरस्स य दायगा, उत्तण-वल्लर-ववग्गि—ण्हिय पलीवका कूरकम्मकारी, इमे य बहने मिलक्खु-जाती, केते ? खक-अवण-सवर-वव्वर-गाय-मुकुंडो-दभदग-तित्थिय-पक्कणिय-कुलकल-गोंड-सीहल-पारल्ल कोंबंध-दाविल-विल्लल-पुलिंद—अरोसडोब-पोक्कण-गंधहारण बहलीय—जल्ल—रोम—भासव उस मलया-चुंचुया य-चूलिया कोंकणगा-मेस—परहव-मालव-महुर—आभासिया—अणक चीण-हासिय—खस—खासिया—नेहुर-मरहट्ट-मुट्ठिय—आरव डोविलग-कुहण-केकय-डूण-रोमग-रुस-मरुगा-चिलाय विसय-वासी य पावभातिणो । जल्लयर थलयर सणप्फत्तोरग-खहचर संडास-तोंड-जीवोवघायजीवी, सण्णी य असण्णिणो य पज्जत्ता असुभलेस्सपरिणामा, एते अण्णे य एवमादी करंति पाणाति-

धाय करण पाषा-पाषाभिगमा पावर्क पाणवहकयरती पाण
 वहस्वाणुहाणा पाणवहकहासु अभिरमंता, तुहा पाव करन्तु
 होति य पदुपगार । तस्स य पावस्स फलपियाण अयाणमाणा
 पड्ढति महम्मय अविस्सामयेयण वीहकाळ बहुदुष्पन्नसकड
 नय तिरिक्ख जोरिं इथा आउफ्फण शुया असुभकम्ममहुका
 ठवघउज्जति नरएसु हुलित महालएसु घपरामयकुडुरुह निस्स-
 विवार विरदिय निम्मएसु भूमितल्ल न्वरामरिस पिसम शिरय घर
 चारएसु, महासिण सयावतत्त दुग्गवविस्मउन्वेयज्जणेसु
 पीमच्छु वरिसाणिवजेसु मिथ दिमपट्ठसीयसेसु फासोभासनु
 य भीम वामीर लोमहरिमणेसु शिरभिरामेसु निप्पायियारवाहि
 रोरा जरापीथिएसु अतीपनिषयकारातिनिस्सेसु पतिमएसु व
 वगय गह वव सुग्गयक्खत्त जोहसेसु मेयवसामस पड्ढ पीयड
 पूयडहिन्दिण्णि विहीणविधणरासियावायण कुहियाचिक्खल्ल
 कइमेसु कुट्टलानलपठित्तजाळमुम्मुर-असिपत्तुर करयत्त
 धारासु निस्सित विष्णुयत्तकनिवातोयम्म-फरिस अतिदुस्महेसै
 य अशायासरण-बडुव-दुप्पल गरितावणेसु जणुपद निरतर
 वयणसु जमपुरिसत्तकुलेसु, तत्थ य अतो मुहुत्तकद्धि भव
 पवणण निव्वत्तोति ठ ते सरीर, हुड पीमच्छुवरिसाविज्ज पीहणा
 अदिट्ठयाडवाटरोमवज्जिय असुभ दुक्खविसद, ततो य पड्जात्त
 मुवणया इदिपहिं पंप्पहिं पदोति असुभाए वेयणाए उज्जल्ल पव
 थिक्ख उक्ख दप्पर फल्ल पयड धोर वीइणग वाड्ढाए, किंत ?
 कंठु मएकुभिय पयण पड्ढण तवग तल्लण भदठ भज्जणाणि
 य लोदकलाहुहसुट्ठणाणिय काहवणिफरय कोहणाणिय, सामाजि
 तिक्खल्लण काह कटक अभिसरण पसारणाणि, फाळय पिदाळ
 णाणिय, अर्पकोरक पयणाणि लादिठसय ताळणाणि य, गल्लग
 वल्लुयणाणि सुल्लगभेयणाणिय आपसपयणाणि भिमण
 विमाणणाणि विधुदठपणिकणणाणि पड्ढमयमातिकाति य
 पवत्त ॥ ५ ॥ ४ ॥

छाया—“कतरेते ? (कृष्णादिकारणै प्राणिनो घ्नन्तीति) प्रश्न उत्तर
 माह,—‘येते शौकारिका, मत्स्यबन्धाः, शाकुनिका, व्याधाः, क्रूरकर्मणो,
 वागुरिका. द्वीपिक बन्धन प्रयोग—नप्र गल जाल बीरल्लकाऽऽयसो दर्भवागुरा-
 कूटच्छेलिका इस्ता, हरिकेशाः, शाकुनिकाश्च विदंशक पांस इस्ता, वन चरका,
 लुब्धक-मधुघात पोतघाता, एणीचारा, ग्रैणोचाराः सरोद्धर्-दोर्धिका तडाग—
 पल्लव-परिगा लन-मलन-स्रोतोबन्धन सलिलाऽऽशयगोषकाः, विषगरलस्य च
 दायकाः, उत्तृण-वल्लर-दावाग्नि निर्दय प्रदीपका, क्रूरकर्मकारिण इमे ये ग्रहवो
 म्लेच्छजातीयाः, केते ? शक-यवन-शबर-वर्वर-काय-मुरुण्ड-उद्-भङ्ग-
 तिसिक-पक्षणिक-कुलाक्ष-गौड-सिंहल-पारस-क्रौञ्च-अम्ब- (भान्ध) द्राविड-वि-
 त्त्वल-पुलिन्द-भरोष-डोंब-पोक्कण-गन्धहारक-बहलीक-जल्ल-रोम-माष-बकुश
 मलया. चुञ्चुकाश्च, चूडिकाः, कौंरुणका मेद-पहव-मालव-महुर-आभाषिक
 अणक-चीन-ल्हासिक-खस-खासिकाः, नेहर-महाराष्ट्र-मौष्टिक-भारव, डोबिलक
 कुङ्गण-केकय-हूण-रोमक-रुस-मरुका, चिलात विषयवासिनश्च पापमतयः, जलचर
 स्थलचर सतत पदोरग स्नेचर सन्दर्ग तुण्ड जीवोपघातजीविनः, सहिनश्च अत-
 झिनश्च पर्याप्ता अशुभ लेश्या परिणामा, एतेऽन्येचैवमादय कुर्वन्ति प्राणाति पात करण
 पापा पापाभिगमा पापरुचय प्राणवधकृतरतिका प्राणवधरूपाऽनुष्ठाना प्राणवधक
 कथासु अभिरममाणा. तुष्टा पापं कृत्वा भवन्ति । श्लुप्रकारम् ।

तस्य च पापस्य फल विपाकमजानन्तो बर्द्धयन्ति महाभयामविधामवेदनाम्,
 दीर्घकाल बहु दुःखसंकटा नरकतिर्यग्योनिम्, इत आयुक्षये क्युता अशुभ कर्म
 बहुला उपपद्यन्ते नरकेषु लघुक शीघ्रं महालयेषु वज्रमय कुड्य रुद्र नित्सन्धि द्वार
 विरहित निर्माद्वैव भूमितल खरामर्श विषम निरयगृह चारकेषु महोष्ण सदा प्रतप्त
 दुर्गन्ध विश्रोद्धेगजनकेषु बीभत्सदर्शनीयेषु नित्य हिमपटलशीतलेषु कालाऽवभा-
 सेषु च भीमगम्भीरलोमहर्षणेषु निरभिराजेषु निष्प्रतीकारव्याधिरोगजरा पीडितेषु
 अतीव नित्यान्धकारतमिस्त्रेषु प्रतिभयेषु व्यपगत ग्रहचन्द्र सूर्य नक्षत्र ज्योतिष्केषु,
 भेदोवसा मास-पटलतिनिविड पोद्गर पूय रुधिरौत्तौर्ण विलोम चिक्कण रसिका
 व्यापन्न कुथित चिक्खल कर्दमेषु, कुङ्कुताऽनल प्रदीप्त ज्वालामुर्गुर-ऽपि क्षुर
 कर पत्रधारासु निशित वृश्चिक दङ्ग निपातोपम्य स्पर्शातिदुस्त्रहेषु च, अत्राणाऽ
 शरण कटुक दुःख परितापनेषु अनुबद्ध निरन्तरवेदनेषु यमपुरुषसङ्कुलेषु
 तत्रचाऽन्तर्मुहूर्तलब्ध-भवप्रत्ययेन निर्वर्तयन्ति तु ते शरीर दुण्ड, बीभत्सदर्शनीय

भीजनकम् भस्मिद्यायुनय रोम विर्मितम्, बहुम दुःख विपद्म् । ततश्च पर्याप्तिमुप
 गता हृदये पात्रभिर्बेदयन्ति-भक्षुभया येदनया उग्यजल दस विपुलास्त एत पदप
 प्रपण्ड घोर भीजनक दास जया । किन्तु ? कद्दु महा कुम्भी पचन प्रकोलन तबक
 तछन भ्राष्ट्रभजनानि च, छोह कटाहोत्फासमानिच, कोटा कोट बडिचरण कोडन
 कानिच शोस्मछि तीक्ष्णाम छोह कष्ट काऽमिस्तरणाऽपसरणानि, एछटन विद्यावानि,
 भवफोटकबन्धनानि, घटिशत तादमानिच, गलकपकोल्लभनानि, दृष्टाम भेद
 नानिच आवेक्ष प्रबध्नानि, प्रिसन बिमाननानि विधुटपप्यनानि दम्पसत
 मातृकाणि चैवते ॥ सू० ४ । ३ ॥

अन्वयाय— १ (कसरे से) ये दिखा करने वाले कौन हैं ?

उत्तर— (जे) जो (ते) ये (सोयरिया) सूभरों के द्वारा शिकार करने वाले—श्री
 करिक (मच्छ बंध) मत्स्य बन्ध—मच्छमे पकड़ने वाले (सावणिया) पक्षिर्मा को
 शिकार करने वाले—शाकुनिक—पारधी (बाहा) व्याध (कूर कम्मा) कूर कर्म
 करने वाले (बाठरिया) बाळ छेकर घूमने वाले बागुरिक तथा (वीवि बंधन प
 भोग लेप गल बाळ बीरलगायसोइम यगुरा कूट छेकिइया) बी गूग मारने के
 लिये बोठा, वचन प्रयोग—पकड़ने का उपाय तम—मछली पकड़ने के लिये छोटी
 नोका गल—मछलीपकड़ने के लिये कटि पर आटा या मांस बाळ—मच्छो फसाने
 की बाळ, बीरलक—इयेन बाळ आयसो छोइमयबाळ दमवागुरा—इम को या डारो
 की बाळ, घूट—पाळ और बकरी अथवा बोठा आवि छल से पकड़ने के लिये पाछमें
 रखी हुई बकरी इन सब साधनों को हाथ में लिये हुए हैं । फिर—(हरिपचा)
 बाण्डाळ (सावणिया प) और पारधी (कसरे पाठ से सेवक) (बीइंसग पास
 इत्वा) इयेन आवि और पाछकी हाथ में रखने वाले, (वण चरगा) जंगल में घूमने
 वाले—श्वर्धमल्ल (छुटय महु भाय पोत दाया) लुम्पक—व्याध मधु छेने वाले कुरेरो,
 व पक्षियों के बंधे मारने वाले (पणोयारा) सूग पकड़ने के लिये हरिषी को छेकर
 घूमने वाले (पणोयारा) विशेष रूप से हरिषियों की छेकर फिरने वाले
 (सर वह दोइल—तछाग पल्लक—परिगाळन मछल—सोतबधन—सजिआसच—ओस-
 गा) सरोवर, छह बाबडी, ताळाव परबळ—छोटा जलाशय इस सब को मत्स्य शक,
 आवि छेने के लिये बाहर सब निकालने से, मछलने से और पानी के माग को
 रोझने से जलाशय को सुकाने वाले (विसगलस य हायगा) और जो बिप और
 गरल—मन्त्र दस्त में मिछे हुए बिप को देने वाले हैं । (उत्तण—बहुर बचमि—विह

चपलोवका) ऊगे हुए छूए और खेतों को दवाग्न के निर्दयता पूर्वक जलाने वाले (कूर-कम्मकारी इमे ॥ मधवे मिलम्सु जातो) और कूर कर्म को करने वाली ये बहुतसो म्लेच्छ जातियों हैं, (के ते ?) वे कौनसी जातियों हैं ?

उत्तर—(सक-जघण-सवर-वन्वर-गाय-मुख डोद-मडग-... तित्तिाय-पक्कणि-य-कुलक्ख-गोड-सीहल-पारस-कौंचघ-द्विल्ल-पिल्लड-पुलिंद-अरोस डोव) शक १ यवन २ शबर-भिल्ल ३ वर्वर ४ गाय-काय ५ मुख ड ६ उद ७ मडक ८ तित्ति ९ पक्कणिक १० कुलाक्ष ११ गौड १२ सिंहल १३ पारस १४, कौंच १५ अघ १६ द्राविड १७ विल्लल १८ पुलिंद १९ अरोष २०, डोव २१ (पौक्कण-गधहारग-बहली-य-जल्ल-रोम-मास-वत्स-मलया) पौक्कण २२ गन्ध हारक २३ बहलीक २४ जल्ल २५ रोम २६ माघ २७ पक्क २८ और मलय २९ (चुचुया य चूलिया) चुचुक ३० और चूलिक ३१ (कौक्कणा) कौक्कण ३२ (मेय-पण्हव-मालव-महुर-आभासिया) मेद ३३ पण्हव ३४ मालव ३५ महुर ३६ आभाषिक ३७ (अणक्क-चीण-ल्हासि-य-खस-खासिया) अणक ३८ चीन ३९ ल्हासिक ४० खस ४१ खासिक ४२ (नेहुर-मरहट्ट-मुट्ठिअ-आरय-डोविलग-कुहण) नेहर ४३ मरहट्ट-मराठा ४४ मूड या मौष्टिक ४५ आरय ४६ डोविलक ४७ कुहण ४८ (केकय-हूण-रोमग-ख-मलगा) केकय ४९ हूण ५० रोम ५१ ख ५२ मलक ५३ और (चित्ताय विसयवासी) चित्ता-त देश के रहने वाले ५४ (पाव मतिणो) जो पाप बुद्धि वाले हैं (जलयर-धलय-र-सणप्फतोरगल्लहचर-संडास-तोंड-जीवोवग्घाय जीवी) जल्लचर स्थलचर तथा नद्य युक्त चरण वाले सिंह आदि व चरग और खचर, संडास की आकृति के मुख वाले पक्षी और जीवों की हिंसा करके जीने वाले । ये कैसे हैं ? तो—(सप्पी) समनस्क-सजी (य) और (असप्पिणखो) असंजी-विना मन के जीव (य और (पज्जता) पर्याप्त-जीवनोपयोगी शक्तियों को पूर्ण रूप से पाये हुए, (असुमल्लेखपरिणामा) अशुभ लक्ष्या के परिणाम वाले, (एते) पहले-रूपर कहे हुए ये सब (अण्णे य) और दूसरे (एवमादी) इस प्रकार के जीव (करेति) करते हैं (पाणाति धाय करण) प्राण वध रूप कार्य को (पावा) पापी (पावाभि गमा) पाप कोही संपादयमानने वाले (पावरुई) पाप में रुचि रखने वाले और (पाणवहकयरती) प्राण वध करके सुख होने वाले (पाणवहस्सुवाणुट्ठाणा) प्राणवधही जिनका अनुष्ठान-नियत कर्म है ऐसे (पाणवह क्हासु अभिरमता)

हिंसा की क्रियाओं में रमने वाले (पार्श्व करेयु) वे हिंसारूप पाप को करते (बहुष्पगारं मुक्ता होंति यः) बहुत प्रकार से सन्तुष्ट होते हैं।

जो प्राण वध करने वाले हैं वे कहे गए जब प्राण वध से जो फल मिलता है उसे कहते हैं—(तस्य य पावसस) और उस प्राण वध रूप पाप के (फल विभारं) फल के समान विपाक—परिणाम को (अयाणमाणा) नहीं जानते हुए पातक जीव (महम्मयं) महामय वाली (अविस्मामवेयणं) विभाम्बिरहित—निरन्तर वेदनावाली (वीह काळ बहुदुःख संकटं) विरकात्मक शरीरिक मानसिक आदि अनेक प्रकार के दुःखों से व्याप्त ऐसी (नरय विरिक्कसोप्पि) नरक और त्रिपक्षयोनि को (ववु वि) बढ़ाते हैं फिर (इभो) वहाँ मनुष्य सबसे (आव कसप) आयु के क्षय होने पर (सुवा) मरे हुए (असुमकम्मवहुत्ता) अक्षय कर्म की अधिकतावाले (सवक्खवि मरपसु) नरक स्वामी में उत्पन्न होते हैं (हुक्खिं) क्षीय। कैसे नरकों में उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर—(महाकपसु) क्षेत्र परिमाण से व स्थिति काळ के प्रमाण से बड़े तथा (अपरामय कुरु वह मिस्संवि वार विरहिं निम्मइव भूमितल सरामरिस विस्म—जिरप—धर—वारपसु) अक्षयमीतवाले, विस्तीर्ण—विस्तार वाले, सम्मि और द्वार राहित अर्थात् जो बिना मुराक और द्वार वाले हैं कोमलवारहित—कठोर—भूमितल वाले तथा ककूट स्पर्शवाले विषम—ऊँचे नीचे ऐसे नरक धर के जो चारक—स्वचित्तवान हैं उनमें फिर (महोषिण—अयापवत्त—दुर्माव—विस्स वप्पेय—अयगोसु) अस्फुट छप्प सदा बहते हुए दुर्गन्ध और सदा हुई गन्ध के कारण जो बड़े पैदा करने वाले हैं (वीमच्छहरिसम्मिजेसु) वीमच्छ—अभङ्गुर—दृश्यवाले तथा (निव हिमपडळ जीयजेसु) अथवा हिमवर्ष के पडळ की तरह सीतल (काळो मासेसु य) और काले रंग की कम्पिवाले (मीम गीमोर कोम हरिसजेसु) अभङ्गुर—अतिराय गम्भीर होने से रोमाञ्चकारी (विरभिरामेसु) सुन्दरता रहित होने से अम को पसंद नहीं आने वाले (निपखियार—वाद्धि—रोग—अरा—वीक्षियसु) चिकित्सा के अयोग्य मरकर व्याधि रोग और अरा से पीडित (अरीव निव प्रकार विमिस्सेसु) सधम अन्वकार से जो सदा विमिसगुहा की तरह अन्वकार पूर्ण हैं (मविमपसु) प्रत्येक वस्तु में अय उत्पन्न करने वाले, (अवगय—वैद—सूर—अवजरा जोइसेसु) अन्त्र सूर्य और अक्षय व चारक रूप ज्योतिष्कों को प्रकाश से होन हैं

१—(तस्य य से ववुंति) पर्वण्त का वाद किसी किसी प्रति में ही देका जाता है। टीका—

अर्थात् जहाँ चन्द्र आदि की प्रभा भी नहीं पड़ती (मेघ बसा गेंस पबल पोचैहं
 पूय रुहिरुक्किण्ण-विलीण-चिक्खण रसिया वावरण कुहिय चिक्खल कद्दमेसु) मेदं,
 चर्वी और मांस के पटल—समूह तथा अत्यन्त गाढ पीप व रुधिर से मिश्रित
 घृणाजनक और चिकना रस्सी से विनष्ट स्वरूपवाला इसोडिये सड़ा हुआ या फूला
 हुआ, कीचड़ और गाढ कीचड़ हैं जिनमें ऐसे (कुक्कुलानल-पलित्त-जाल-मुम्मुर-
 असिक्खुर-कंरवत्त—धारा-सुनिसित्त-विच्छुयडक-निवातोवम्म-फरिस—अतिहुस्स-
 हेसु य) और कोयले की अग्नि, प्रदीप्त ज्वाला, मुम्मुर—अग्निके कण, तलवार
 तथा अस्तूरा व कंरवत्त की अतिशय तीखी धारा एव विच्छु के डंक का देह पर
 गिरना, इन सबके समान जो अत्यन्त दुस्सह स्पर्श वाले हैं (अप्ताणासरण कडु व
 दुक्ख परितावणेसु) अनर्थ की निवृत्ति और इष्ट को प्राप्ति कराने वाले सहायक
 से हीन वे जो अब जहाँ दारुण दुःखों से सताये जाते हैं (अणुयद्ध निरतरं वेयणेसु)
 अत्यन्त निरन्तर वेदना वाले (जमपुरिससंकुलेसु) अम्भ आदि असुर जाति के
 यमों से जो स्थान संकुल-व्याप्त हैं (तत्थय) और वहाँ-नरकावासों में उत्पन्न
 होकर (अतोमुद्रालद्धिभवपञ्चण) अन्तर्मुहूर्त काल वैक्रियलब्धि और नरक
 गति में जन्मरूप कारण से (निव्वसंति व ते शरीर) वे जीव शरीर को बनाते
 हैं, जो शरीर (हुड) सब प्रकार से योग्य सस्थान रहित और (बोभच्छ वरिसणि-
 ज्ज) भयङ्कर व देहने में बुरा (वीहणग) भय पैदा करने वाला तथा (अट्टिण्हारु ण्ह
 रोम वविजय) हड्डी, स्नायु, नख और रोम से रहित (असुभ दुक्खं विवह)
 अशुभ गन्धयुक्त और दुःख को सहने वाला होता है (ततोय पज्जस्सिमुवगंया)
 शरीर बनने के बाद फिर इन्द्रिय, आस्रोच्छ्वास और माया मन रूप पर्याप्तियों से
 पूर्ण बने हुए वे जीव (इदिण्हि पंचहि वेदेति) पांच इन्द्रियों से दुःख को वेदन
 करते-भोगते हैं (असुभाय वेयणाए) अशुभ वेदना के द्वारा जो (वज्जल)
 सुखरूप विपक्ष के लेश से भी अकलङ्कित होने से उज्ज्वल-उज्जलो (वड विउल)
 इतना शक्य नहीं होने से घलवती और शरीर मात्र व्यापो होने से वह विपुल है
 (वक्कड) छकट—आखिरी सीमा तक पहुँची हुई (खर फरुस) खर-शिला आदि
 के समान कठोर पदार्थ के गिरने से होने वाली, पक्षु—कुम्भाण्डो के पक्ष के
 समान कर्कश स्पर्शवाले पदार्थ से होने वाली-अति कठोर (पयड घोर वीह-
 ण्णदाहणाए) प्रचण्ड—सल्फी से शरीर में फैलने वाली और-शीघ्रही औदारिक
 शरीर युक्त जीवन का क्षय करने वाली या दूसरे के जीवन की अपेक्षा नहीं करने

बासी तथा भयानक ऐसी वायुवापदना से दुःख का अनुभव करते हैं, (किते ?) वह कौनसा दुःख है ? (कन्दु महाकुम्भिपयण) कन्दु—छोही और महाकुम्भो—बड़ो कुम्भो इन में भाव की तरह पकाना (पचयण—वपगवत्पच—भट्टमवत्पचयण) बूझा आदि को बरख पकाना, तबे पर पृथी को तरह तलना, तथा माट में बने की तरह मूचना (य) और (ओहकडाहुकडुपाणि) ओह के कडाहों में इक्षुरस के समान चखरना छि (कोट्टवटि करण कोट्टपाणि) कीडा से चण्डिका आदि के घामने पख बगैर की तरह पशु आदि की तरह भेंट धरना भयवा कोट्ट—प्रकार के छिये बकिदेना व कुटिख बनाना (य) और (सामकि विक्कगा ओह कटग भमिसरण पसारपाणि) शास्मकी हुल के ओ ओह के कटि की तरह सीले मयभाग बन पर अपेक्षा से जाना और पोछे फिरता बससे (पचयण विवाक—पाणि) पचटना और अनेक प्रकार से देह का विचारण करना (य) और (भव कोडक बीषपाणि) वाहु और शिरको पीछे से समेट कर बांधना (कट्टिसयदाक—पाणि) सैकड़ों छाठी के म्दार करना (य) और (गम्मा बल्लु बपाणि) गळक—बळोळवन—गळे में बांध कर बल पूर्वक छाका पर खटका देना (सुखग मेक्काणि) शूकके मयभाग से मेवन करना और (नायसपर्वणपाणि) सुठी आग्रा से ठगना (त्रिसण विमाणपाणि) बिसलाना निरा करना अपमान करना (विमुट्ट पविस्त्रपाणि) बे पापी अपने किये हुए पखों को पाते हैं इस प्रकार धोखते हुए यथ पोम्ब बीष को यन्म भूमि में छेजाना (बयलसय मातिकाविय) और सैकड़ों यन्म बीष जिन हुलों के मावखान—वत्पत्तिस्थान हैं (एवते) इस प्रकार वे जीव प्रायवध के कटु फळ को भोगते हैं ।

स्वशीकरय—“हिंसा कौन करते हैं ? इसका उत्तर यह है कि जो लोग सुनते से शिकार करने वाले अच्छी पकड़ने वाले, पारपो और म्माष के समान झूठ कम करने वाले हैं । तथा बाछ लेकर घूबने वाले व शृंग आदि को पकड़ने के छिये पोता, बाछ पक्ष छोटी मोका काटा भाटा बाछ, पात्र ओह और मूच को बाछ कूटपाश व बकरी इन सब को साथ में लेकर जो फिरते रहते हैं व पारपो, ठिकारी तथा पाण्डाल व हावर लोग और इन्हीं के समान हिंसाधिक व हिंसोपजी की बीष हिंसा में हूट कपट को जामने वाले तथा बलाशयों को सुग्रा देने वाले दूसरों को बिप दिखाने वाले एवं येव आदि को निर्वेचना पृथक ज्ञान वाले, ऐसे पक्षे झूठ कमों को करने वालों की प्रधान आविर्षा निम्नलिखित है— ‘श्लोक १ यथन २

शर ३ बर ४ गाय ५, मुखंड ६, उद ७ भटक ८ तित्तिक ९ (भित्तिक) पकणि १०
कुलाक्ष ११ गौड १२ सिंहल १३ पारस १४ कौंच १५ अंध (आन्ध्र)-१६ द्राविड १७
विन्डव १८ पुलिन्द्र १९ अरोप २० डॉय २१ पोक्कय २२ गन्ध हारक २३ वहलोक २४
जल्ल २५ रोम २६ माप २७ वकुश २८ और मलय २९ चुचुक ३०, चूलिक ३१ कोक-
णक ३२ मेव ३३ पन्हव ३४ मालव ३५ महुर ३६, आभधिक ३७ अणक ३८ चोन ३९
ल्हासिक ४०, खस ४१ खासिक ४२ नेहर ४३ मर हट्ट ४४ मूड-मौष्टिक ४५ आरव ४६
बोविलक ४७ कुहण ४८ केकय ४९ हूण ५० रोम ५१ ख ५२ मख क ५३ और चिलाव
वैश बासी ये ५४ जाति के लोग हिंसा करते हैं। दूसरे जलचर, थलचर तथा नख वाले
चिह्न आदि जानवर, उरग-सर्प और खचर, सहास के जैसे मुख वाले पक्षी इत्यादि
जीव भी हिंसा करने वाले हैं, हिंसा करने वालों में कई मन वाले-सज्जी और कई
असज्जी तथा अपने योग्य पर्याप्तियों से पूर्ण और अशुभ लेश्या के परिणाम वाले होते
हैं। इस प्रकार ऊपर कहे हुए और इसी तरह के अन्य मूल जीव भी प्राण बध
करते हैं। ये सब पाप की प्रधानता वाले, पाप को ही उपादेय मानने वाले तथा
पाप क्रिया में श्रद्धा रखने वाले हैं। ऐसे जीव प्राण बध करके खुशी मनाते
और प्राण बध को ही मुख्य कर्तव्य मानते हैं तथा ये हिंसाको कथाओं कोही कहते
सुनते और हिंसा के कार्यों को करके सन्तुष्ट होते हैं। इस प्रकार घातक जीवों
का स्वरूप बताया गया,

अब प्राण बध के फलों को दिखाते हैं—“वृक्ष की तरह उस हिंसा के फल को
नहीं जानते हुए हिंसक जीव अपने लिये नरक व तिर्यञ्च योनिको बढाते हैं, वे
योनियाँ महाभय देने वाली तथा निरन्तर वेदनाओं से युक्त और बिर काल तक
शरीरिक मानसिक आदि विविध दुःखों से भरी होती हैं। यहाँ से आयुक्षय
होने पर मरे हुए जीव अशुभ कर्म की अधिकता से शीघ्र नरक में उत्पन्न होते हैं।
वे नरक स्थान इस प्रकार के हैं—‘क्षेत्र और स्थिति से जो विशाल हैं, वज्रमय दि-
वाल युक्त बड़े और विना सन्धि व द्वार के हैं, जहाँ कठोर भूमितल वाले कर्कश
स्पर्शयुक्त और विषम-ऊँचे नीचे अनेक चारक-नरक घर हैं, बहुत ऊँचा सदा
तपते हुए तथा दुर्गन्ध और सडान के कारण जो उद्वेग जनक हैं, दिखने में भयङ्कर
हैं, सदा बर्फ के ढेर की तरह ठंडे और काली कान्ति वाले हैं, भयङ्कर गहरे
होन से माश्रकारी मनके प्रतिकूल और प्रतोकार नहीं करने लायक व्याधि

रोग तथा जरासे पीड़ा पहुँचाने वाले हैं। जहाँ सघन अम्बुकार होने से प्रत्येक वस्तु में भय का प्रदर्शन होता है। चन्द्र सूर्य मङ्गल आदि ज्योतिष्यों की वहाँ प्रमा नहीं पहुँचती और मेव 'चर्बी जीर' शशिर मांस पीप आदि की अधिकतासे जहाँ कीचड़ सा मचा रहता है। जहाँ का स्पष्ट कोयले की अग्नि मुमूर्छ, घबकती ज्वाला और तड़कार, जस्तूरे आदि की तोखो मार व विच्छू के डंक लगने से सा असह्यत दुस्सह है। जहाँ कोई इष्ट की प्राप्ति कराने वाले और अनर्थ की निवृत्ति करने वाले सहायक नहीं हैं। जहाँ सिर्फ भयङ्कर दुःखों से जीव पीड़ित किये जाते हैं। निरन्तर असह्यत वेदना और यमछोकोसे वे स्थान पूर्य रहते हैं। मरकावास में उत्पन्न होकर अन्तमुहूत जैसे स्वल्पकाष्ठ में वैद्विषकाष्ठ व नारक जम्म के कारण से वे जीव शरीर को बनाते हैं, जो योग्य आकृतिस हीन और दिखन में मङ्गल होता है, हाड मांस स्नायु मज्जा व रोम के बिना वह मारक शरीर भयानक तथा अशुभ और दुःख सहने वाला होता है। छीर बनने के बाद फिर शस्त्रिय श्वास आदि सभी ज्योतिष्यों पूर्य कर वे जोब पाँचों इन्द्रियों से दुःख का अनुभव करते हैं। अमोवारूप अशुभ वेदना से दुःख भोगते हैं। वह वेदना साता के छेद से जो क्षुब्ध है। तथा नहीं हटाने लायक है और शरीर भर में फैलने वाली होती है। जो बहुत छट्ठ, कठोर, पल्प और प्रपण्ड स्वरूप वाली व दूधरे के प्राणों की अपेक्षा नहीं करने से जोर और भय उत्पन्न करने वाली शक्ति है। जहाँ के दुःख कीम से हैं? कुम्भी आदि में पकाना जूहा आदि की तरह खेकना और तड़ाना भूखना तथा डोढ़ के कड़ाह में उकाड़ना एवं देवी आदि के साधने मांस की तरह बलि चढ़ाना ऐहिको पोष देना या साधमकीक तीरे अमभाग पर ले जाना व फिराना, देह का जोर काज करना हाथों को व सिरको पोठ की ओर लीप कर बाँध देना सिकहाँ छाटो के प्रहार मारना गले में बाँधकर वृक्षको साकाशों में छटकी देना मृग में बीधमा, हाड़ी माशा देकर ठगना निन्दा और अपमान करना इनको वष्य भूमि पर छेजाना इन सब दुःखों क वे मारकी जोब साता के समान उत्पादक है। इस प्रकार वे मारक जोब जैसे दुःखों को भोगते हैं जहाँ दुःखों को आते करते हैं।

१—औद्योगिक शरीर की तरह उनका शरीर जोड़ मांस का नहीं होता इसलिये जहाँ एक जोब आदि का उद्विग्न वक्ष मंदार से परिगत वैद्विष दुःखों के लिये समझना चाहिए।

मूल—‘पुण्यकर्मकय संचयोवतत्ता निरयगि-महगि-
 संपलिता, गाढदुक्खं महवभयं कक्कसं असायं सारीरं मानसंच
 तिच्चं दुविहं वेदंति वेयणं, पावकम्मकारी बहूणि पलिओवम-
 सागरोवमाणि कलुणं पालेति ते अहाउयं जमकातियतासित
 य सहं करेति भीया । किंते ? अविभाय, सामिभाय, वप्पताय
 जितव, लुय मे मरामि दुण्वलो चाहिपीलिओऽहं, किं दाणिऽसि ?
 एवं दारुणाणिइय मावेहि मे पहारे, उस्सासेतं (एय) सुहुत्तरं
 मे देहि, पसायं करेहि, मारुस बीसमामि गेविइजं सुयहं मे
 मरामि, गाढं तएहातिओ अहं पेह पाणीयं, हंता पिय इमं जतं
 विमलं सीयलंति येत्तूण य नरयपाला तवियं तउयं से देहि
 कलसेण अंजलीसु, दडूण य तं पवेपि (वि) थंगोवंगा अंस्तुप-
 गलंतपप्पुयच्छाद्धिएणा तएहाइयम्ह कलुणाणि जपमाणा,
 बिप्पेक्खंता दिसोदिसिं अत्ताणा असरणा अणाहा अवंधव
 धंधुबिप्पहूणा विपलायंति य मिगा इव वेगेण भयुब्बिग्गा
 येत्तूण यला पलायमाणानं निरणुकंपा सुहं बिहाडेत्तुं कोहडंडेहिं
 कलकलएहं वयणंसि लुभंति, केह जमकाइया हसंता, तेण दड्ढा
 संतो रसंति य भीमाई विस्सराहं, रुवंतिय कलुणगाहं पारेवतगाव,
 एवं पलावित्तविलाव कलुणाकंदिय बहुरुज रुदियसदो परिवे (दे)
 वित रुद्ध पद्ध य नारकारव संकुलो णीसट्ठो रसिय भणियकुवि-
 उक्कूइय निरयपालतड्जिय गेएहक्कम, पहर, छिंद, भिंद, उप्पा-
 डेहुक्खणाहि, कत्ताहि, विकत्ताहि य सुज्जोहण, विहण, वि-
 ञ्छुभोच्छुवम, आकड्ढ, विकड्ढ, किंण जंपसि ? सराहि पाव
 कम्माइ दुक्कयाइ एव वयण महप्पगवभो पडिसुया सहसकुलो
 तासओ सया निरयगोयराण महाणगर ढव्वभमाण-सरिसो नि-

ग्धासो सुवप अणिदठो तदिय नेरइयाण जाइजमाणं जाय
 णाहिं । किंते ? असिबण-बन्मवण-जत-पत्थर-सुइ-तळफम्मार
 वावि कळकळत वेयरणि फळव बाळुयाजळिय गुइ निरुमण
 उसिणोसिय कटइल्ल बुग्गम रहजोयण तसळोइ मग्ग गमय
 बाइयाणे इमोई विविहेहिं आयुइहिं, रिंत ? मोगगर-सुसुहि-
 करकय-सत्ति-इल्ल-गय-सुसळ वळ-कौत-तोमर-सूळ-सळक-नंभे
 भाळ-सइ (३) क-पहिस चम्मेदठ-बुइण सुदिठय-आसि, खेइण
 अग्ग-वाव नाराय-कण्ण-कण्णणि वासि परसु-उकतिक्ख । मिम्मळ
 पुण्णोहिय एवमादिणहिं अस्तुभोई वेडळिएहिं पहरसुसतेहिं
 अणुवद्ध तिण्ववेरा परोप्पर वेयण उदीरेंति अभिइयता, तत्थ य
 मोगगर पहार बुणियय सुभुडि समग्ग महित देहा जतोवपीळय
 फुरत कप्पिया केइत्थ सचम्मका विगत्ता णिम्मू (४) वृक्ष
 कण्णदट्ठ्यासिका छिण्णइत्थपादा असिकरकयातिक्ख कौत
 परसुप्पहार फळियपात्ती सताब्धितयमग्ग कळकळमाय अर
 परिसिच्चगाड उज्जमग्गत्त कुतग्ग भिण्ण जज्जरिय सव्वदेहा
 यिलाळति महीतळे निदुणियगमग्ग, तत्थ य विय-सुण्ण-सिपाळ
 फाळ-मङ्गार-सरम-वीविय-विथग्ग सुवृळ सीइ-दप्पिय
 सुइभिभूतेहिंणिक्कळमणसिएहिं घोरा रत्तमाय भीमरूपोई
 अक्कमिक्का दद दाढा-गाड उक्कदिठय सुतिक्ख मह फाळिय
 उद्धदेहा यिच्छिप्पते समत्तओ विपुळ साधि वपणापियगमग्ग
 कळ-कुरर-गिद्ध-घोर-बड्ढायसगणेहि य पुणो अरधिर दद
 णक्खलोद तुरेहिं ओणत्तिक्का पक्खइय तिक्खणप्पम विक्कि
 उक्कंछिय मण्ण निइ (५) ओलुग्ग विगत वपणा, उप्पो

संता य उप्पयंता निपतंता भमंता पुब्बकम्मोदयोवगता
 पच्छाणुसयेण डङ्गमाणा, सिंदंता पुरेकडाहं कम्महां पावगाहं
 तहिं २ तारिसाणि ओसन्नचिक्खणाहं दुक्खार्तिं अणु भवित्ता, ततो
 य आउक्खएणं उव्वट्ठिया समाणा बहवे गच्छंति तिरियवसाहिं
 दुक्खुत्तरं सुदारुणं जम्मण मरण जरा बाहिं परियट्ठणारह्मं
 जल थल खहचर परोप्पर विहिसणपवंचं इमं च जगपागहं
 वराका दुक्खं पावेंति दीहकालं । किंते ? सीउएहतएहारुहवेयण
 अप्पईकार अडवि जम्मण णिच्च भउन्विग्ग वास जग्गण बह
 बंधण ताडणंकण निवायण अट्ठिंभजण नासाभेयप्पहार दूमण
 छुविच्छंयण अभिओग पावणक संकुसार निवायदमणाणि
 बाहणाणि य मायापिति विप्पयोग सोय परिपीलणाणि य सत्थ-
 णि विसाविघाय गल गवत्त आवलण मारणाणि य गलजालुच्छि
 पणाणि पडलण विकप्पणाणिय जावड्जीविक बंधणाणि पंजर-
 निरोहणाणि य सयूह निद्धाहणाणि धमणाणि य, दोहणाणि य
 कुर्वड गलबंधणाणि वाडगपरिवारणाणि य, पंक जल निमज्ज-
 णाणि, वारिप्पवेत्तणाणिय ओधायणि भंग विसमणि बडणवव-
 रिगजालवहणाहं य, एवते दुक्खसय संपालित्ता नरगाउ आगया
 इह सावसेसकम्मा तिरिक्ख पंचेदिएसु पावेंति पावकारी
 कम्माणि पमाय-राग-दोस-बहुसच्चियाह अतीव अस्साय-
 कक्खसाह ॥ सू० ५ । ४ ॥

छाया—“पूर्वकर्मकृत सद्योपेतज्ञा निरयान्नि महारिन् सम्प्रदीप्ता गाढदुःखा
 महाभर्या कर्कशाम् असातां शारीरीं मानसीं च तीव्रा द्विविधां वेदयन्ति वेदनाम्,
 पापकर्मकारिणो बहूनि पत्न्योपस सागरोपमानि वरुणं पालयन्ति ते यथाऽऽयुष्क
 यमकायिकत्रासिताश्च शब्दं कुर्वन्ति भीता, किन्तु ? (तद्यथा) हेअविभाज्य !
 हे स्वाग्नि ! हे भ्रात ! हे पित ! हे तप्त ! हे जितवन ! मुञ्च माम्, त्रिये दुर्बलो
 व्याधि पीडितोऽहम्, किमिदानीमस्मि एव दाख्णो निर्दयो, मा देहि मम प्रहारान् उच्छ्व
 सनमेक मुहूर्त्तक मे देहि, प्रसादं कुरु, मा रु वस्व, विश्राम्यामि, त्रैवेयक मोचय मम,
 त्रिये, गाढ तूषाऽऽर्दिषोऽहं देहि शान्तिम्, इन्तं पिवेद जल विमल शीतलमेतदिति

गृहीत्वा च नरक पाञ्चारत्नं त्रयुक्तं तस्मै देवते कलसनाऽऽञ्जयेत् । एष्ट्वा च तत्प्रवेपिता-
 न्नोपाह्वा भद्रमुपलब्ध्वाऽऽश्वादिछायां लब्ध्वाऽऽश्वाकमिति कथयामि अस्पृश्या विप्रे
 क्षमाणां द्विषो विषाम् अत्राणां अक्षरणां अनाया अवाग्धवा वम्बुविप्रहीणा विपण-
 मन्ते च मृगा इव वेगेन भयोद्विग्ना । गृहीत्वा वक्ष्यात्मायमानाम् निरतुकम्पा
 मुञ्चं विद्वान् छोह वम्बे कलकलं (द्रवत्त्रयुक्तं) मु वदने क्षिपन्ति केचित् पमाकपिका
 हसन्तः । तेन दग्धाः सन्त्यो रसेन्ति च भोमानि विस्वराणि स्रग्मिन् च कलकलानि
 श्रावयन्तः इव एवं प्रक्षिपितं विक्षाप कल्प्याऽऽकम्पितं बह्वन्त्रं (छत्रं) कदितं शब्दं
 परिवेपितं स्रग्मिन् बद्धं नारकाऽऽरवसङ्कुलो निस्तृष्टो रसितं मक्षितं कुपितोत्सृजितं
 निरव पाकं वदितं—सं गृह्यन्, काम, मार, क्षिपिन्, मिन्धि सत्पटव, वरिष्ठप (वरुण)
 कन्त, विरुन्त च मूयो बहि, हन, विबहि, (विहन्) विक्षिप, स्रिष्ठप, माक्षप विरुष,
 किमि जल्पति इतर पापकर्माणि कुपुत्रानि एवं वदन् महाप्रणामः, प्रवि मुत्वाऽऽ
 वृ संकुञ्जं त्रासकं सदा निरव गोचराणां दृष्टमानं महानगरं सद्यो निर्घोषं ज्ञप
 सेऽनिष्टस्तत्र नैरयिकाणां वारवमानानां यातनामि । कास्ता ? (यातनाः) असिब
 न, शम्बन, पन्त्र, प्रस्तर, सूचोषक क्षारघापो कलकस्तत् (द्रवत्त्रयुपादि ससृज)
 वैतरणी कदम्ब वाहिका कर्षित गुहा निरोधनम् लण्णोप्य कम्पकितं दुरास रथ
 योजनं तत्र छोह मार्गं गमनं वाहनानि, एभिर्विचित्रैरायुधैः । कानि वानि ? मुद्गर
 मुमुण्डि कुरुष क्षति-इह-गदा मुसलं चक्र कुल सोमर शून् कटुट भिण्डिपात्र-सदृश
 (मल्ल) पट्टिच चर्मेट-द्रुषणं वीष्टिऽऽतिशेदकं कल्ल वाप माराच कम्प कल्पनी
 वासा परशु-टङ्क जोहम निमज्जे । अन्यैश्चोत्रमाविनि रक्षुमे वैद्विमे महरणस्यै शुभ्र
 सोत्रं चैराः परस्परवेत्तामुनीरयन्तर्माप्रन्तः । तत्र च मुद्गरं प्रहारं चूर्णितं
 मुमुण्डिं समग्नं मक्षितं देहा यन्त्रोपपोदनसुतरकस्पिता केचिदत्र सधमका
 विरुता निमूढ (खनलोह्नन) कर्णोत्तनासिकारिष्ठमद्वयपदान्, अस्ति
 कुरुष वीक्षणं मुम्ब परशु प्रहारं स्काटितं वासीं सम्यक्क्षिणाऽन्नापाह्वा कलकलायमान
 क्षार परिपिक्तं गाढं दृष्टमानं गात्रं कुम्वाऽऽ प्रभिन्नज्वरितसर्वदेहा विरुक्मि
 महीतले गान्धर्वमुकाद्रोपाह्वा । तत्र च ब्रुकं हुनठं दृगाकं काकं सामारं सरम
 द्वोषिकं वेनाम शानूळं सिंहं वपितं हुवाग्निमूर्तेरित्यकाकमनसितेर्षोरा
 सरदमीम कुर्याद्व्य एवम्पूरा गाढं दृष्टं हुपं सुतोदणं मय स्काटितायुधैरेह विक्षिप्य
 म्ते समन्ततो विमुक्तसन्निवन्धमा इवक्षिताह्वा कद्वं कुररं गृह्य पीरं दृष्टं यावसग-
 र्गं पुनः । रत्नविषरददमग्योद्वण्डैरपयय पञ्चऽऽहृतं वीक्षणं मय विधीर्न

जित्वाऽच्छिन्नयननिर्देशावरुणं विकृततना, उत्क्रोशन्तश्चोत्पतन्तश्च निपतन्तो
 भ्रमन् पूर्वकर्मोदयोपगताः पश्चादनुशयेन दृष्टमाना निन्दन्तः पुराकृतानि कर्माणि
 पापकृतानि तत्र तत्र तादृशानि—उत्सन्न चिकनानि दुःखानि—अनुभूय ततश्चायुः
 क्षये—उद्धृताः सन्तो पद्मवो गच्छन्ति त्रियंश्वसनिम्, दुःखोत्तारा सुदारुणां जन्म
 मरण जरा व्याधि परिवर्तनाऽऽरब्धं जल स्थल खचर परस्पर विहिंसन प्रपञ्चाम्
 इदञ्च जगत्प्रकट चराकाहु ख प्रप्नुवन्ति दीर्घकालम् । किन्ते ? तद्यथा—शोतोष्ण तृणा
 क्षुधा वेदनाऽप्रतीकाराऽष्टवो जन्म नित्य भोगोद्विग्नवास जागरण वध वृन्धन
 ताडनाऽङ्गन निपातनाऽस्थिभञ्जन तासां भेद प्रहार दहन—च्छिन्नश्छेदनाऽभियोग
 प्राणकशाऽङ्गुनाऽऽरा निघात दमनानि, त्वादनानि च माता पितृ विनियोग स्नातः
 परिपोदनानि च शस्त्राऽग्निविषाभिघात गच्छावजाऽवलान मरणानि च, गच्छाजालो
 तक्षेपणानि, पचनविकल्पनानि च, यावज्जीवकमन्वननि, पञ्जरनिरोधनानि च,
 स्वयूथ निर्वाटनानि धमनानि च दोहनानि च, कुण्डगतमन्वतानि, वायु, परि-
 घारणानि च, पङ्कजलनिमज्जनानि, चारिप्रवेशनानि च, अवपातनिभृङ्ग विषम निपतन
 दवाग्नि वज्रात्तादहनदीनि च । एवमेते दुःखशतसम्प्रदीप्ता नरकादागता इह
 सावेगेपरकर्मणस्तिर्यक्पञ्चन्द्रियेषु प्राप्नुवन्ति पापकारिणः कर्माणि प्रमादरामदाप
 बहुसङ्घितानि—अतीवाऽऽसातवकशानि ।

अन्वयार्थ—“(पुण्य कर्म फल सञ्चोपावतता) पूर्वकृतकर्म के सञ्चय से
 सन्ताप पाये हुए (निरयगि महिगि सपठिता) भयङ्कर अग्नि की तरह निरयश्चर
 की अग्नि से जले हुए वे जीव (गाढदुःख) अत्यन्त दुःख युक्त (महामय) महा
 भयङ्कर (कफस) कठोर इन्द्रिये (अघ्राय) असात वेदनीय के उदय-से होने
 वाली (सारीर) शरीर सम्बन्धी (मानसच) और मानसिक ऐसे (दुर्विह)
 दो प्रकार की (तिष्ठ) तोष (वेदण) वेदना की (वेदंति) अनुभव करते हैं ।
 (पावकर्मकारी) पाप कर्म करने वाले वे जीव (बहुणि) बहुत से (पञ्चोबध-
 सागरोबमाणि) पल्योपम और सागरोपमत्तक (करुण) दया जनक दशा को
 (पालेंति) पूर्ण करते हैं, फिर (ते) वे (अडात्य) बाघी हुई आयु के अनुमार
 (जमकातियतासिषा य) अंब आदि नाम वाले वहा के यमों से त्रास पाये हुए
 (सह क रंतिभोग) भय भीत होकर शब्द—आतेनाद करते हैं । (किन्ते ?) वह
 आर्तस्वर कैसा है ? (अविभाय, सामि, भाय, वप्प, ताय जितव ! मय मे)
 हे अविभाव्य—समस्त मे नही आने लायक वस्तु ! हे स्वामिन् ? हे आई ! अरे

बाप ! हे तात ! हे बिजय शील ! मुझे छोड़ो (मरामि) मैं मर रहा हूँ (दुखखो बाहिपोखिमोहं) मैं दुख-कमजोर और व्याधि से पीड़ित हूँ (एव शरणो जिएप) इस प्रकार शरण तथा निवृत्ति (किं दाण्डिसि) इस समय क्यों होते हो ? (मारैदि मे पहारे) मुझे प्रहार मत मारो (कससासेव मुहुत्तय मे देहि) पत्नी मर मुझे आस देने दो (पसाय करेहि) प्रसाव—ब्या करा, (मारुस) मेरे ऊपर क्रोध मत करो (कोसनामि) थोड़ा बिभाम लेता हूँ (गोविर्जमुयह मे) मेरे गले के बन्धनों को छोड़ो, (मरामि) मैं मर रहा हूँ (गाईतण्हासिमो अहं) मैं व्यास से खूब पीड़ित हूँ (देह पाणीयं) पानी दो (इता) अच्छा ! (पिय) पो—(इमं जळं विमळं सोखं) यह जळ निर्मल और छीतळ ठंडा है (ति) ऐसा कहकर (सरस पाछा) वे मरक पाछ देव (तवियं तवयं) तपे हुए सीसे को (चेत्तुय) लेकर (से) जळ व्यासे मारक बीच को (देंति) देते हैं (कळसेण) कळस में से (अंजळीसु) अंजलिमें मैं (इट्ठायत्तं) और उस सीसे के पानी को देखकर (पवेपियंगोवंगा) अङ्गो पात्रों से पूजते हुए और (अनुपगळंत पत्तुयच्छा) गळते हुए आहुत्यों से अर्पित करके (छिण्या तण्हाइयन्ह) हमारा व्यास मिट गई इस प्रकार (कळुणाखिजंप माया) कळुणा जलक बचनों को बोलते हुए मागत हैं (विपेक्कता दितो तिंति) एक ओर से वृक्षों दिशा की तरफ देखाते हुए (सत्ताणा) प्राण रहित (असरणा) रक्षकों से रहित (अणाहा अर्धघना) योग क्षेम करने वाले भाव तथा रत्ननों से रहित अर्थात् मिनके न कोई भाव हैं न बांधव (बंधुविपरूणा) बन्धु के बिना रहने वाले वे जीव (मिगा इव भयुक्किण्णा) हरियों के समान भय से उद्भ्रम घने हुए (बगेय) बहुत ओर से (विपळावति) भगते हैं (य) फिर (वळा) जळ प्रयोग से (चेत्तुण) पकड़ कर (इत्तता) ईंछते हुए (केइ) कई एक (कम काइया) कम जाति के असुर (मिरणुईया) निवृत्त बन हुए (पलायमागगं) भगते हुए के (गुई) मुझ को (विहादेत्तु जीहईयहि) जोहमय १०कों से कमक मृत्य दो पाल सोछ कर (कळ बळं) कळ कळ करते हुए वस सोसे को (बयनति) मृद (तमंति) ढाकते हैं, (तेण वहुत्तंगो) उस गरम सीसे के ढाकने से घसतहुए (रमति) प्रकाप करते हैं (य) और (सोमाइ विरसताइ) भगदूर विरस हाइ करते (रपतिव कळुणगाइ पारेवतगाव) और कपूर की तरह कळुणा जलक रूपा करत हैं (पय) इस प्रकार बदां और गुमा जाया दे (पजविच विम्राव कळुणा इविम बहुदमन्दिपसा) जलतल्लय के प्रकाप और विताप—मातनाइ

करने से जो करुणा जनकहै, तथा आक्रन्दन अतिशय अभुमोचन और रोने के शब्द वाला है, (परि वेवित रुद्र बद्धय नारकारबसकुलो) धूजते हुए रोके गए और नरक पालों के द्वारा बंधे हुए नारकों से व उनके आरवोंसे सकुल है (जी-सटो) जो निर्घोष नारक जीवों से छोड़ा गया (रसिय भणिय कुविष्कूह्य निरय-पाल तज्जिय-) शब्द युक्त भणित— अन्यक्त वचन वाले और क्रोध युक्त तथा अव्यक्त महाश्वनि को करने वाले निरयपालों के तर्जित—रे पापी ! अब समझेगा ! इस प्रकार की तर्जना युक्त, (रोण्ह) घरो पकड़ो (कम्भ) आक्रमण करो (पडर) मारो (छिद) काटो (भिद) भेदन करो (उप्पाडे ॥ क्वणहि) जमोन से उठाओ याने ऊपर फेंको आँख की पुतली या बाहु आदि उखाड़ फेंको (कत्तादि) नाक भादि कतरो-काटो (विफत्ताहि) टुकड़ी २ करो (य भुज्जो) और फिर किसी समय मर्दन करो (हण) मारो (विहण) विशेष ताड़न करो, (विच्छुभोच्छुभ) मुझ में सीसा डालो व अधिकता स डालो, (आकट्टु) सामने खींचो (विकट्टु) पीछे हटाओ (किय जपसि) क्यों नहीं बोलता है ? वा नहीं जानता है ? (सराहि) याद करो हे पापात्मन् ! (पाव कम्माइं तुक्काइं) अशुभ योग आदि से किये हुए दुष्कर्मों को (एव) इस प्रकार (वयण महपगम्भो) नरक पालों के बोलने से जो अति कर्कश है (पडिसुया सद् सकुलो) प्रति शब्द की आवाज से व्याप्त (सपा वासओ) सदा त्रास उत्पन्न करने वाला (निरयगोयराण) नरक स्थान बर्ती जीवों के लिये जो (महाणगर डण्णमाण सरिसो) जलते हुए बड़े नगर के समान (वहिय) वहाँ (जाइवज्जताण जायणाहिं) अनेक प्रकार की यातनाओं से पीड़ित होते हुए (नेरइयाण) नारकीय जीवों का (भणिडो निग्भोसो) अनिष्ट-बुरा निर्घोष शब्द (सुच्च) सुना जाता है (किंते ?) वे यातनायें कौनसी हैं ? उन्हें कहते हैं—(असिबण दम्भवण जत पत्थर सूइतल) असिबत खड्ग की आकृति वाले जिन में पत्र हैं, दम्भवन-बड़ा डोभ को तरह सीखे अम भाग वाले पास हैं, वह दम्भवन, पापाण का यन्त्र अथवा यन्त्र से फेंके गये पत्थर, या यन्त्र व बड़े पत्थर, सूई के अग्र भाग वाला भूमितल (क्खार वावि) खारे द्रव्य से भरी हुई वापी-बा-वटी (कल कल्ल वेयरणि) उकलते हुए सोखे आदि से भरी हुई वैतरणी नदी (कल्ल वालुया) कदम्ब फूल के आकार वाली वाल-रेत और (जणिय गुह निरुम्भ ण) जलती हुई गुहा इन सब स्थानों में रोक कर रखना (उत्तिणोसिण कटइल्ल दुग्गम रह जोरण) अत्यन्त उष्ण कण्टक वाले और मुश्किल से चलने वाले पैरों भारी

रथों में ओढ़ना (वत्सलोह मग्न गमन बाह्यायि) और तपे हुए ओढ़ मय भागे में
 जाना या बैसी की तरह हाँक कर-अपवृत्ती ले जाना इस प्रकार की अनेक यातनायें
 भी माती हैं, (इमेहि विविहेहि) इन मोचे कहे जाने वाले विविधि (आयुहेहि)
 आमुषों से परस्पर येवनाओंका खोराण करते हैं (किंते ?) ये कौन से आमुष
 हैं ?—(मोगर मुसुडि) मुद्गर-सोइका घन, मुसुंवि-मुसुंवि (करकय) करकय-कर
 कय (ससि) ससि-भिशूक (इछ) इछ (गय) गय-एक प्रकार की लाठी (मुस
 छ) घान्य कूटने का मूसछ (चक) चक (कुन) भाका (घोमर) वाय्य विशेष
 (सूछ) सूछ (सचच) सचच—बडा, (भिडिमाछ) भिडिमाछ-प्रहरण विशेष,
 (सखछ) एक प्रकार का भाका (पट्टिच) पट्टिच-प्रहरण विशेष (चम्मेड) चमडे से
 मडा हुमा पत्थर विशेष (दुहय) दुपय-दुखों को गिराने वाला मुद्गर (मुद्विष)
 मौद्विष—मुष्टि प्रमाण का एक पत्थर, (असि खेडग) खड्गार के साथ फलक
 (सग) खड्गार (चाब) चपुप (माराय) ओढ़ का वाय्य (क्याक) बाल का
 एक मेर (कप्यायि) कर्तिका एक प्रकार की कैंची (वासि) काष्ठ छिलनेका अक्ष-वस्
 का (परसु) परसु—(हंक विकस, निम्मस) पूर्वोक्त सब अक्ष छल मय भाग पर
 लीले और निर्मल हैं (अण्योहिय) और वृन्दे (वचमामियहि) इत्यादि अनेक
 (अमुमेहि) अमुम कारक (वेवमियहि) वेविव (पहरणसतेहि) सैखों प्रकार
 के खकों से (अमुवद्विभ्यवेरा) खडा अकट वैरभाव रखने वाले नारकजीव
 (अमिहर्षता) एक वृन्दे को मारते हुए (परोपरवेवण) परस्पर में दुख रूप
 वेवना को (खोरेंसि) उत्पन्न करते हैं। (वत्सव) और वहाँ नरक स्वानों में
 परस्पर के प्रहार से (मोमार पहार बुज्जिव—मुसुडि संमग्न मलित वेव) मुद्गर
 के प्रहार से पूर्ण विभूष बने हुए तथा अमुष्णी की मारसे दूरे हुए और मये हुए
 जैसे वेव बाळे (अतोव पोद्धय पुज्ज कप्यिया) घाती आदि यन्त्री से पीकने से चमकते
 हुए और कटे हुए (के इत्थ) यहाँ नरक में कई नारक जीव (सचम्पका) चमडे
 वाले (विगच्छा) चमडे से अलग किये गए (निम्मुल्लक्षण कण्णोड नासिका) मूख से
 कटे हुए जान ओठ व नासिका वाले (छिण्णहत्थपादा) और कटे हाथ पांव वाले
 (असि) खड्गार (करकय) करकय (विकसकोट) लोका भाका और (परसुटा
 हार प्यक्खि वासी संवच्छित्तगमगा) परसु—करकों से फाड़े गए और वस्त्रों से
 ढीले गए अद्भुतपन्न धाक (कककजमाणसारपरिमिदा) कक कक करते हुए

उष्ण क्षार से सिक्त होने के कारण 'गाढ दण्डांत गत कुनरग भिणग ज्वजरिय
 सव्वदेहा) अत्यन्त जलते हुए शरीर वाले और भाले के अग्रभाग से विदोर्ण होने के
 कारण जर्जर हैं सब देह जिनके ऐसे (विसूणियगमंगा) सूजे हुए फूले हुए तथा
 क्षत शरीर वाले नारक जीव (महोत्तले) जमीन पर (विलोलति) लोटते हैं,
 (तस्थ य) और वहाँ (विग सुणग सियाल) विग—ठाली नाहर, कुत्ते, शियाल
 (काक) कौए (मज्जार) बिल्ली (सरभ) मरभ (दोबिय) चीता (वियग्घ)
 व्याघ्र के बच्चे (सद्दल) शार्दूल-सिंह-व्याघ्र (सीह) सिंह (दण्णिय खुदाभिभूतेहिं)
 दत्त-मस्त और भूख से पीड़ित (णिचकालमणमिण्हि) सदा से भूखे हों उस तरह
 (घोरासमाणभीमस्वेहिं) घोर शब्द व दारुण कर्म करने वाले और भयङ्कर रूप
 वाले ऐसे ये क्रूर हिंसक जीव नारक जीवों पर (अक्कमित्ता) आक्रमण करके (दढ
 दाढा गाढ डफ कड्डिय सुत्तिक्ख नह फालिय उद्धदेहा) मजबूत दाढ़ों से गाढ़ बंधे
 हुए और खींचे गये तथा अत्यन्त तीखे नखों से फाड़ दिया—विदारण कर दिया है
 ऊर्ध्व देह जिनका ऐसे नारकों को (विच्छिप्पते स तभो) चारों ओर फेंक देते—
 बिखेर देते हैं (विमुक्क सधिब्रधणावियगमंगा) ढोलों फरसी गई है अङ्गों को
 सन्धियों जिनकी ऐसे तथा चिकल अङ्गोपाङ्गवाले (पुणो) फिर (कक) कक
 पक्षी (कुरर) कुरर-पक्षिविशेष (गिद्ध) गीघ (घोराकट्टवायसगणेहिय)
 घोर कष्ट देने वाले घायस-कौए इन सबके समूह (खर थिर दढ नक्ख लोह तुडोहिं)
 जो कठोर निश्चल और दृढ नख व लोहमय चोंच वाले हैं उनके द्वारा (ओव
 तित्ता) पास में आकर (पक्खाहय तिक्खणक्खल्लविकिण्ण) पाखों को मारसे आ-
 हत किये गये, तीखे नखों से तोचे-बिखेरे गये (जिब्भल्लिय नयण निद्भोलुग विगत
 बयणा) जीभ खोंची गई, आँखें निकाली गई, निन्द्यता से मुंह बिगाड़ा गया और
 जिन्हें घायल किया गया है ऐसे वे नारक जीव (उक्कोसता) चिल्लाते हुए या रोते
 हुए (य) और (षण्णयता) उछलते (निपतता) गिरते (भमता) फिरते हुए (पु-
 व्वक्कम्मोदयोवगता) पूर्व कृत कर्म के उदय वाले (पच्छाणुसण्ण) पश्चात्ताप से
 (दण्णमाणा) जलते हुए (पुरे कडाई कम्माइ) पूर्व-पहले किये हुए अशुभ कर्मों
 की (निदत्ता) निन्दा करते हुए (दहिं २) उधर २ रत्नप्रभा आदि पृथ्वी में तथा
 उत्कृष्ट स्थिति वाले नरकावास में (तारिप्पणि) वैसे—जन्मान्तर में मिलाये हुए
 परमाधार्मिक के बल्लते या परस्पर की उदोरणा से तथा श्वेत्र स्वभाव से होने वाले,
 (ओसन्न विक्खणाइ) अधिकता से चिकने-डु ख से छूटने योग्य (दुक्खातिं) दु खों

को (अनुभविता) अनुभव करके (ततो यः) बाह्य फिर (आवृत्तएव) आसु
 के क्षय-पूण हो जाने से (सम्पत्तियाः समाप्ता) ऊपर बाह्य निकले हुए (बहवे)
 बहुत से जीव (विरिष बसहि) विषमन्न-योनिरूप निवास में (गच्छन्ति) चले जाते
 हैं (दुष्कृत्यन्तरं) जो विषैगुं योनि बहुत दुःख से छूटती है और (सुखरूप) बहुत
 भयङ्कर है (जन्मण मरणं ब्रह्म बाहि परिकृष्टावहह) जन्म मरण ब्रह्मावस्था और
 आधि के बारंबार परिवर्तन से जो रेंट भर्मात् अग्रह की तरह पड़ती है (सद्य यद्य
 कश्चन परोपर विहंस्युपबन्ध) सत्यपर स्थस्यपर और क्षेत्र जीवों के परस्पर-हिंसा
 प्रति हिंसा का जिसमें बिस्तार है, वैसी (इमं य) और उस योनि में आगे बढ़े जाने
 बाटे (यग वागदं) यग प्रसिद्ध (दुःखं) दुःख को (बराग) बेचारे हिंसक जीव
 (वीहकाठं) अपने काष्ठक (पांथेति) पाते हैं, (किंते ?) वे दुःख कौन से हैं ?

उत्तर—(सीकण्ड) श्रोत उच्यते—ठंडो गर्मी, पछा सुह, बरुण और मूल
 से होने वाली (वेय्यप्रपहकार) उपचार बिना लो जेदना प्रसूति कर्म आदि
 (अद्विजन्मण्य) अटवी में जन्म लेना, (विष भवन्निजावास-) स्वयं रूप से
 पड़ित रहकर बचना-रहना (जगज बह ध्वनन तद्व्यपश्य) जागना, बध, ध्वनन
 छाठो आदि का ताडन और छोड़मय छडाका आदि से बचकर करना (निवाय्य भट्टि
 मन्त्रण नासाभेय-पहार इमं य) पट्टे में गिराना, इड्डी सोडना नाक में पीतल
 छाठो के प्रहार करना, जखाना (छविच्छेदन अमिमोगपात्रण) चमड़े को छेदना,
 कान आदि अवयवों को बाँधना, बहदली काम में लगाना (वसंशुसार निवा
 य इमं यानि) पातुक, चंडुड, और भार छकडो के भय भाग में लगी हुई कीड इन
 सबों से शरीर पर आघात करना व दमन करना, (वाह्याणि य) व भार चठवाना
 (मावापि विप्लवयोग) मावा पिता से विमुक्त-जुलाई होना (सोप परिपोषणाणि)
 नाक मुह आदि इन्द्रियों को पीडा पहुँचाना अथवा थोक से पीडित करना (य)
 और (सत्यमि बिसाभिप्राय गल गवस आवस्य मारणाणि) सत्य भ्रम और विप
 से इनम करना, गळे व सोग की मोहमा, अथवा गळे का नुवाकर और सीग का
 मोह कर मारना (य) और (गल आनुविष्टिणाणि) मरस्य बीधन क कटि
 और जाल व मछलियों को पानी से बाहर लीपना (पमोदक्य विधत्तानि)
 अन्न आदि को काटना और पकाना (य) और (आवमोवग वंयानि) जीवम
 मर के लिये बाँधना (वसर निराहणाणि) बीजरे में राख रखना (य) और
 (धर्मन्नाहनाणि) अपने गृह-धर्म से अलग कर देना (धम्यानि) महिष

वगैरहमे वायु भर देना—यह 'फूला नाम का नृशस कर्मभाज भी सुना जाता है' (य) और (दोहणाणि), दुध दूहना (य) और (कुदहगल-बधणाणि) कुदण्ड—बुरी लकड़ी से पीटना और वही गले में बांधना (बाहग परिवारणाणि) बाड़े से हटाना (य) और (पकजल निमज्जणाणि) अधिक कीचड़भय पानी में डुबोना, (चारिप्पवेसणाणि) पानी में डालना—गिराना, (य) और (ओवायणि भग विसमणिवडण दल्लमि जालरहणाई य) खड़े आदि में गिराने से अङ्ग आदि का टूटना, पर्वत के शिखर वगैरह से गिरना—ऊँचे, नीचे विपम प्रदेश में पड़ना और दावाग्नि से जलना इत्यादि (एवते) इस प्रकार वे हिंस्रक जीव (दुक्खसव सपल्लिता) सैकड़ों दुःखों से जले हुए (नरगाउ-आगया) नरक से आये हुए (इह) यहाँ (-सावसेसकम्मा) अवशेष बचे हुए बाकी कर्म वाले (तिरिक्ख पंचेदिएसु) तिथेञ्च पञ्चेन्द्रियों से (पाव कारी) पाप-कारी जीव, (अतीवअसायककसाइ) अत्यन्त कठोर दुःखों को (पावति) पाते हैं, जो दुःख—(कम्माणि) कर्म जन्य तथा (पमाय—राग—दोस—बहु सचियाइ) प्रमाद और रागद्वेषों से बहुत सञ्चित किए गए हैं। ५।४।

भाव—“इस प्रकार का अर्थ सहज है, इसलिये अन्वयार्थ से ही समझ लें। केवल इसका सारांश यहाँ दिया जाता है। पूर्व कृतकर्म के सञ्चय से तपे हुए जीव शारीरिक और मानसिक वेदना रूप भयङ्कर दुःख को भोगते हैं। आयु के अनुसार कई पल्योपम सागरोपम तक वे यमसे त्रास पाये हुए चिज्ञाते रहते हैं। अरे वाप ! मैं मरता हूँ, छोड़ो मैं दुर्बल हूँ, इस प्रकार निर्दय मत बनो, इत्यादि रूप से नारकीय जीवों के चिज्ञाने पर और मैं प्यासा हूँ मुझे पानी दो ऐसा कहने पर नरकपाल गण उनको तपा-गला-हुआ कीसा लाकर अञ्जलिमें देते हैं, जिसको देखते ही वेद से धूँजते हुए और आँखों में आँसू भर कर नारक जीव कहते हैं—सहाराज ! हमारी प्यास मिटगई अब हमें पानी नहीं चाहिए, ऐसा कहते हुए चारों ओर भागने लगते हैं, तब उन्हें जवर्दस्ती-पकड़कर निर्दय यमदूत हंसते हुए उकळता हुआ सीसा मुहमें डाल देते हैं। उससे जलकर वे रोते हैं, भयङ्कर क्रन्दन करते हैं, नरक पाल व नारक जीवों के चिज्ञाइट में नरकावास में बड़ा अनिष्ट शोर होने लगता है। जैसे किसी बड़े नगर के जलने से वहाँ हाहाकार होने लगता है और चारों ओर उद्विग्नता फैल जाती है वैसे अनेक प्रकार की यातनाओं से पीडित नारकों का कोलाहल उद्वेजक हो जाता है। अस्तिवन और वैतरणी आदि नरक के दुःख दायी

स्थानों में वे नारक जीव रोके जाते हैं। अत्यन्त बन्धन व कठिण दुःख रथमें बंधे जाते मुद्गर भादि अनेक वैश्विक आयुधों से वे परस्पर भी प्रहार करते और दुःख उत्पन्न करते हैं, क्षिप्त मिश्र और अज्ञानों के क्षय विध्वत हो जाने से अवरिष पैदा होकर वे मृमिदल पर छोटते हैं। इतने पर भी और नहीं कुछ हुआ और व्याघ्र भादि हिंसक पशु पक्षियों से विविध तरह से मारे और पीड़ित किये जाते हैं वेहाल बने हुए नारक जीव चिन्ताते उछलते और लीचे गिरते, एवं भँबरी की तरह चक्कर काटते हैं। प्रयासाप के बलसे बलसे एवं अपने दुष्कर्मों को निम्ना करने लगते हैं,। वह! मरकावास में अधिकता से चिन्ता करने की भोगकर आयु के पूरा हो जाने से वे मरकर विवशयोगि में जाते हैं। जो बहुत दुस्तर व हास्य है, जन्म करा मरण और व्याधियों के अनेक चक्र बारी तथा जल गर आदि बन्धनों के रूप से परस्पर दिसा के प्रपन्न बारी है। पशुगति का दुःख जग प्रसिद्ध है। वह हिंसक जीव दोषकाय तक इसकी भोगता रहता है। पशुगति के दुःख—ठंडो गर्मी मूत्र, प्यास, तथा परापोनवा से होने वाले अनेक प्रकार के रोग बन्धन वाहन, अङ्गन भङ्गारि छेदन मैदन, अस्थि मोहन आदि हैं जो सुगम है ऐसे नरक से भागे हुए जीव कम बचे रहने से तथा हार्दिक वतमान राग द्वेष से सञ्चित सैन्धवों दुःखों की विमल योगिनी जाते हैं। जो अत्यन्त कठोर होते हैं। सू० ५।४।

मूल—“अमर ममगमादिष्वमाहपसु य जाहकुल कोदिसय सहस्रसिर्हि नषर्हि चउरिदियाण तर्हि तर्हि चव जम्मण मरणाणि अप्पु मवता काख सखेज्जक अमति नेरहयसमाण तिण्वदुक्खा फरिस रसण घाण चकखुसहिया, तहेव तहदिएसु कुप्पु पिप्पी खिका अयभिकापिकेसु य जातिकुल कोदिसयसहस्रसिर्हि अहर्हि अणुणएर्हि तेहदियाण तर्हि तर्हि चव जम्मण मरणाणि अप्पु मवता काख सखेज्जक अमति नेरहयसमाण तिण्वदुक्खा फरिस रसण घाण सपउत्ता, (तहेव वेहदिएसु) गहूलय जलूय किमिय चयणगमादिपसु य जातिकुल कोदिसयसहस्रसिर्हि सत्तर्हि अणु णएर्हि वेहदियाण तर्हि २ चव जम्मण मरणाणि अप्पु मवता काख सखेज्जक अमति नेरहयसमाण तिण्वदुक्खा फरिसरसण सप उत्ता, पत्ता ए।। नियत्तणपिय पुदवि जल जलण मारुपवण्णति

सुहुमवायरं च पञ्जत्तमपञ्जत्तं पत्तेयसरीरशामसाहाय्यं च,
 पत्तेय सरीरजीविणसु य, तत्थवि कालमसंखेज्जगं भमंति अण्णत
 काल च अण्णतकाए फासिदिय भाव सपउत्ता दुक्खसमुदय इमं
 अण्णिदं पार्थिवि पुणो २ तर्हि २ चेव परभव तरुणगणं (गहणे)
 कोदालकुलिय दालण सालिख मलण खुंभण कंभण अणलाणिल
 विविह सत्थघहण परोप्पराभिहणण मारण विराहणाणिय
 अकामकाइं परप्पओगो दीरणाहिय कज्जप्पओयणेहिय पेस्स-
 पसु निमित्तं ओसहाहारमाहएहि उक्खणणउक्कथण पयणको-
 ण पीसण पिहण भज्जण गालण आमोदण सडण पुरण भज्जण
 छेयण तच्छण विलुंचण पत्तज्झोडण अग्गिदहणाहयार्ति, एवं
 ते भवपरंपरादुक्खसमणुबद्धा अइंति संसारवीहणकरे जीवा
 पाणाइवायनिरया अण्णतकाल । जेविय इह माणुसत्तणं आगया
 कहंचि (कहिवि) नरगा उव्वट्टिया अधत्ता तोविय दीसंति
 पायसो विकयविगल रूवा खुज्जा बडभा य वामणा य बहिरा
 काणा कुटा पंगुला विडला य मूका य मंसणा य अंधयगा एग-
 चक्खूविणिहयसच्चिहया चाहिरोग पीलिय अप्पाउय सत्थ
 बड्ढवाला कुलक्खणकिन्नदेहा दुव्वल कुसंघयण कुप्पमाण
 कुसंठिया कुरुवा किविणा य हीणा हीणसत्ता निचं सांक्खपरि-
 वज्जिया असुह दुक्ख भाग (गा) णरगाओ उव्वट्टिया इहं
 सावसेसकम्मा, एवं णरगं तिरिक्खजोर्णि कुमाणुसत्तं च हिंङ-
 माणा पावति अण्णत्ताइ दुक्खाइ पावकारी । एसो सो पाणव-
 हस्स फलविवागो इहलं इओ पारलोइओ अप्पसुहो षडुदुक्खो
 महम्मयो बहुरयप्पगादो दारुणो कक्खसो असाओ वाससहस्से-
 हिं मुच्चती, नय अवेदयित्ता अत्थिहु मोक्खोत्ति एवमाहसु,
 नायकुलनदणो महप्पा जिणो उ वरिवर नामधेज्जो कहेसीय
 (कहईसीइ) पाणवहस्स फलविवाग । एसो सो पाणवहो चडो
 रुहो खुहो अणारिओ निग्घिणो निस्संसो महम्मओ वीहणओ
 तासणओ अणज्जो उव्वेयणओ य णिरवयक्खो निद्धम्मो निप्पि-

वामो निष्कलुषो निरयवासगमण निषण्णो मोह मद्दमय पव
 स्वप्नो मरणवेमणस्सो । पढम अद्दम्मदार समन्न सि वमि ॥
 सू० १ । ४ ॥

छाया- भ्रमर मक्षक मक्षिकादिपुत्र जाति कुल कोटि शत सहस्रे नैवमिच्छन्ति
 त्रिषोणाम् तत्र तत्र चैव जम्भमरखानि-अनुभवन्त काष्ठ संस्वातक भ्रमन्ति
 नैरयिकसमानवीर्यदुःखाः स्पर्शेन रसन प्राण्य सङ्गुच्छा । तथैव त्रीन्द्रियेषु
 कुण्डु पिपीठिकाऽवपिकादिपुत्र जाति कुल कोटिशतसहस्रेष्टमिरन्यूनकेस्त्रीन्त्रि
 षाणाम् तत्र तत्र चैव जम्भ मरण म्यनुभवन्त काष्ठ संस्वयेयक भ्रमन्ति नैरयिक समान
 वीर्य दुःखाः स्पर्श रसन प्राण्य सङ्गुच्छा (तथैव द्वोन्द्रियेषु) गण्डलक-जडीक-कृमि
 क-पद्मन कादिष्वेषु च जाति कुल कोटिरात सहस्रेः सप्तमिरन्यूने द्वोन्द्रियमाणा तत्र २
 चैव जम्भ मरणान्स्नुभवन्त काष्ठ संस्वयेयक भ्रमन्ति नैरयिकसमान वीर्य दुःखा
 स्पर्शन रसन सङ्गुच्छा । प्राप्ता एकेन्द्रियत्वमपि च पुषिषी ब्रह्म-स्वकलन-मातृ-वनस्पति
 सूक्ष्म वादरं च पयासमपर्षास मत्स्येक शरीर नाम साधारणं च मत्स्येक शरीर जीवितपुत्र
 तत्रापि कालमसंख्येय भ्रमन्ति, अनन्तक कं चामन्तकाचे स्पर्शत्रिष मात्र सङ्गुच्छा
 दुरा समुदाय मिमर्मानष्ट प्राप्नुवन्ति, पुनः २ तत्र तत्र चैव परभव तस्याखगहने कोशक
 शुक्ति दारणं, छलिक मल्लन क्षोभण रोचनम् अनन्ताऽनित विविध शस्त्र घट्टण परस्परा
 भिद्यन्त मारण विराधनानिच, भकामकानि पर प्रयोगोद्दोरणाभिध कस्य प्रयाजनाभिध,
 प्रेष पनु निमित्तमीषणाऽऽहावशिष्टे-अस्त्रानां त्वयन पपन कुट्टन मेपण पिट्टन भजन
 गालनऽऽमोदन छटम स्फुटनऽऽमदन क्लेशन वक्ष्य विस्तुपन पत्र द्वादनानि न दाह
 नापीति, एवन्ते मधपरम्परा बुध्नमणुबद्धा भटन्ति संसारे भयङ्करे जीवा प्राजा-
 दि पात निरता जमन्त काष्ठम् । यऽपि च इह मातुपत्यमागता कथं चत्तरका
 दृढता अचम्यातंसपि च इदमन्त प्राप्नो पिष्टमपि ककक्षा कुम्भा बटभाभ्य वामना
 भ्य वधिरा, काणा, गुष्टाः, वज्रभा विच्छाभ्य मुखाभ्य मग्मना अन्धका एव च सु
 पि इवाः, सर्वा-पचष्टुपः, व्यापिरोगवोडिता कस्यापुप सख्यप्या वाक्षिणा
 (वाला) बुद्धधणाक्षोणदेहा दुयस सुसंद्मन सुप्रमाण सुसाधनाः (संधिताः)
 गुरुषा दृष्ट्याश दीना दीनसखा गिर्य सीत्यपरिपक्ता अनुभ दुरा भात्रा
 मरकादि ताप-पङ्कमाद्य । एवं मरकं त्रियगुणाणि बुभानुपक्ताप दिष्टमाणाः
 प्राप्नुवन्ति-अनन्तानि दुःखानि पाप कम कारित्वा । एष स प्राग्बधाय पञ्चविषाक
 पञ्चका इह पातार्थिकाऽप्युत्तमा बद्धु ता महाभयो बहुरजःप्रागादा दारम क-

शोऽसातो वर्षसहस्रैमुच्यते । नचाऽवेदयित्वा अस्ति हि मोक्ष इति आख्यानवान्
 ज्ञातकुलनन्दनो महात्मा जिनस्तु वीरवरनामधेयः कथितवान् प्राणवधस्य फल-
 विपाकम् । एष स प्राणवधश्चण्डो ख्द्रुद्रोऽनार्यो निर्घृणो नृशसो महाभयो भयानक-
 खासनकोऽन्याय्य (नार्य) उद्वेजनकश्च निरवकांक्षो निर्द्धर्मो निष्पिपासो
 निष्करुणो निरय वास गमन निधनो मोहमहाभय प्रवर्धकः—प्रवर्तकः मरण वैमनस्य ।
 प्रथम मधर्म द्वार समाप्तमिति ब्रवीमि ॥ सू० ४ क ॥

प्रथममधर्मद्वारं समाप्तम् ॥

अन्व—(य) और (चचरिदियाण) चतुरिन्द्रिर्बोके (भमर मसग मच्छिमाइ-
 पसु) भौरें, मशक, मच्छर तथा मक्खी आदि मे (नवहिं जाइकुल कोडि सय
 सहस्सेहिं) नव लक्ष-लाख जाति की कुल कोटिसे (तहिं तहिं चेव) चतुरिन्द्रियों
 के उन उन स्थानों मे ही (जम्मण मरणाणि) जन्म मरणों को (अणुभवता)
 अनुभव करते हुए (सखेज्जक काल) सख्येय कालतक (भमति) परिभ्रमण
 करते हैं, वे (नेरइयसमाणतिव्वदुक्खा) नैरयिक के समान तीव्र दुःख वाले
 (फरिस रस घाण चक्खु सहिया) स्पर्शन, रसन, घ्राण और चक्षु इन ४ इन्द्रियों से
 सहित हैं, (तहेव) चचरिन्द्रिय के समान ही (वे इ दिएसु) त्रीन्द्रिय=तीन इन्द्रिय
 वाली जाति में (कुशु पिपीलिका अवधिकादिसेय) कुशु पिपीलिका कीड़ी
 और अवधिका आदिकमे (अट्टाहिं जातिकुलकोडिसयसहस्सेहिं) जाति कुल
 कोटि से जो आठ लाख हैं (तेइदियाण) तीन इन्द्रियों के (तहिं २) उन उन
 स्थानों मे (चेव) ही (जम्मण मरणाणि) जन्म मरणों को (अणुभवता)
 अनुभव करते हुए (सखेज्जककाल) सख्येयकालतक (भमति) परिभ्रमण करते
 हैं, ये भी (नेरइय समाण तिव्वदुक्खा) नैरयिक के समान तीव्र दुःख वाले और
 (फरिस रसण घाण सपत्ता) स्पर्शन रसन व घ्राण रूप तीन इन्द्रियों से युक्त
 हैं । (य) फिर (गद्धलय जल्लय किमिय चदनगमादिएसु) गिद्धोला; जल्ला,
 कृमि—कीड़े और चदनक—कौड़ी आदि मे (अणूणएहिं सत्तहिं जाति कुल कोडि-
 सयसहस्सेहिं) पूरी सात लाख जाति की कुल कोटि से, (वे इ दियाण)
 वे इन्द्रिय जीवों के (तहिं २) उन उन स्थानों मे (चेव) ही (जम्मण मरणाणि)
 जन्म मरणों को (अणु हवता) अनुभव करते हुए (सखिज्जकाल) सख्येय कालतक
 (भमति) भटकते हैं, वे—(नेरइय समाणदुक्खा) नारकीय जीवों के समान तीव्र
 दुःखवाले (फरिस रसण सपत्ता) स्पर्शन व रसन रूप २ इन्द्रियों से युक्त होते हैं,

(य) फिर (एगिदियत्तर्षायि) ए केन्द्रियपत्र को भी (पत्ता) पाकर (पुढविजड
 चक्रण मारणरणनति) दुरी काय अपूकाय, अग्निकाय, पायुकाय और वनस्पतिकाय
 सम्यन्धो (सुद्रुम पायर्) सूक्ष्म और बाहर नाम कम के छव्य से जाने बाछे (न)
 और (पञ्चसगपञ्च) पचास तथा अपचास वरा (पचेय सरोरनाम) प्रत्येक सरोर
 नाम कम (सहारणप) और साधारण नाम कम के छव्य से साधारण वन को
 पाते हैं (य) और (पचेयसरोरजीविषसु) एक शरीर में एक जीव रूप से जीने
 वाले-प्रत्येक-भिन्न जीवियों में (तत्पवि) वहाँ पर भी (कात्मसंश्लेष) असंख्य
 काष्ठतक (भस्मि) परि भ्रमण करते हैं (य) और (अर्धनकाय) अनन्त काय-निगो-
 ह भादि में (अर्धसं काष्ठ) अनन्त काष्ठ तक भ्रमण करते हैं (कांसिद्वि भाय संप-
 रत्ता) स्वर्ण-द्रव्य के भाव से कुछ जीव, बड़ा- (इमं भण्ड) कहे जाने वाले उस
 भण्ड (दुष्प्रसमुषय) दुष्प्र समूह को (पुषो २) बारबार (प विवि) पाते हैं
 (तहि २ चेव) उन २ प्रत्येक भादि स्थानों में हो (परमव तत्तगण गहणे) उत्कृष्ट
 विवि कुछ कुछ समूह के भव वाले व्यवसा परमव रूप कुछ समूह से गहन पेसे
 एकेन्द्रिय वन में (कोशाल कुक्षिय वासव सल्लि मत्तप सुमण व भज) कुशाल और
 कुक्षि एक प्रकार के भूमिकानने का अन्न व द्रव्य वनसे पिदाय करना व पानी को
 मर्दन करना छुब करना तथा रोक रखना "इस कथ से पृथ्वी वनस्पति और
 अपू कायके दुःख कहे गये हैं" (अण्डा विड विविह सत्य पट्टप परोपराभि इक्षप
 मारण विराहनामि) अग्निकाय और व युक्ताय का अनेक प्रकार के दुरीकाल
 भादि सत्तों से पट्टन करना तथा परस्पर के अभिभाव से मारता, व पीटा पट्टवाना
 (अकामकाइ) इस प्रकार नहीं चाहने योग्य दुःख होते हैं, (परप्यमोगोवीरणा-
 द्विय) वृद्धों के प्रयाग से दुःख का उत्पादन और (कञ्जपमोयणादिय) कम के
 प्रयोगों से जो (पेक्षपमुनिमिषओसहाहारमाइपहि) सेवक जा और पशु
 भादि के छिने भीषण व आहार भादि कारण से (अन्तलण) छरोडना (सद्यस्य)
 तथा इतना—छीछना (पयण कोट्टण) पकाना कूटना-टुट्टे करना (पीसण पि
 ट्टण) बघी भादि में पीसना पीठना या कलल भादि में कूटना (भञ्जण गाकण)
 भट्टी में पकाना गलाना या कपड़े में छालना (आभोजन सडन) मोटा मोडना
 सुद बिखर खाना (पुण्ण मज्जण) फूटना—हो माग होना भङ्ग होना (छेय्य
 तच्छण) छेड़ना व बसुल भादि से छोडना (विट्ठ चण्ड-पचयसोडण) रोम भादि
 हटाना, तोपना, पचे गिराना (अग्निहव्याइपाति) अग्नि बहम इत्यादि इके-

न्द्रिय जीव के लिये ये सब दुःख के कारण होते हैं। (एव ते) इस प्रकार वे (भव परपरा दुःखसमणुषद्धा) भव परम्परा—अनेक जन्मों में निरन्तर दुःखवाले (जोवा) एकेन्द्रिय जीव (संसारवीहणकरे) भयदूर संसार में (पाणाइवाय-निरथा) प्राणातिपाद-हिंसा में निरत (अणतकल) अनन्त काल तक (अडवि) भटकते हैं (जेविय) और जोभा (कहिवि) किसी तरह (नरगाउअवट्टिया) नरक से निकले हुए (इह) यहाँ-मनुष्य लोक में (मणुसत्तण) मनुष्यपन—नरभव को (आगया) प्राप्त किये (तेवि अधज्जा) वेभी अधन्य-मन्दपुण्यवाले (य) और (पायसो) प्रायः (विकयविगलरूवा) विकृत व विकल रूप वाले (दोसति) दिखते हैं, इसी बान को स्पष्ट कहते हैं, (खुज्जा वट्ठभा य) कुम्भ—कूण्डे वटभ-ऊपर से वक्र-वाके देह वाले और (वामणा) वामन-बहुत छोटे (य) और (वह्मि) बहरे (काणा) काणे (कुटा) विकृत दाय वाले (पगुत्ता) पगु-चल-ने में असमर्थ (विच्छा य) और विकल भङ्ग वाले (मूका) गूगे (य) और (ममणा) मन्मन रूप से-अस्पष्ट रूप से बोलने वाले (अधिज्जगा) अघे (एगव-क्खू) एक आख वाले (विणिहय सवेज्जया) जिनकी एक आख नष्ट हो गई है ऐसे एकाक्ष, तथा-पिशाचगधा से पीड़ित (वाहि रोग पोळिय अप्पाउय सत्थवण्ण वाला) व्याधि कुष्ठ आदि, रोग—ज्वरादि इन सबों से पीड़ित और अल्प आयु वाले, व शस्त्र से मारे गए तथा मूर्ख (कुअक्खणुक्खिअदेहा) अशुभ लक्षणों से आकार्ण-पूर्ण-देहवाले (दुव्वल कुसधयण-कुप्पमाण कुसठिया) दुर्बल, उत्तम-सहनन व शरीर रचना से होत अधिक बड़े या अधिक छोटे आकार वाले (कुरुत्ता) कुरूप (किव-णा य) और कृपण अर्थात् रक्क (हीणा) जाति आदि से हीन (होणसत्ता) अल्प-सत्त्व वाले (निबं सोक्खपरिवज्जिआ) सदा सुख से रहित (इह) यहाँ (असुह दुव्वल भाग शरगाओ) नरक से निकले हुए अशुभ दुःख के भागी (सावसेस-कम्मा) अशुभ कर्म जिनके अवशेष हैं, ऐसे वे दिखते हैं, (एव) इस प्रकार (यारग) नरक (तिरिक्खज्जोणि) तिर्यञ्चयोनि (कुमाणुसत्तच) और कुमनुष्य जन्म में (हिंसमाणा) हीनते हुए (पावकारो) हिंसक लोग (अणताइ-दुक्खाइ) अनन्त दुःखों को (पावति) पाते हैं, (एसोसो) वह है यह (पाणवहस) जीव हिंसा का (फलविवागो) फलरूप विपाक जो (इहलोइओ) इस मनुष्य लोक सम्बन्धी, और (परलोइओ) अन्य तीन लोक सम्बन्धी (अप्पुहो) अल्प सुख वाला (बहुदुक्खो) बहुत दुःख वाला (महव्वभओ) महाभय रूप (बहुरयप्पगाओ)

अधिक कर्म रस के कारण भविष्याद्वा (शत्रुयो) रौद्र तथा (कक्षसो) कठोर (असाधो) असातवेदमय कर्म के उदय से दुःखरूप (वाससहस्रेहि) हजारों वर्षों से प्राप्ती उस दुःख से (मुषह) छूटता है (अवेदयिष्ठा) बिना भागे (नय अस्थिदु मोक्षलोपि) कर्म से छूटना नहीं होता, (पञ्चमाहसु) ऐसा तीव्र करने कहा है जो (नाय कुड्मण्यणो) प्रातः कुल के नन्दन (महणा) महात्म्य (जिष्णोठ) और वीरराज (वीरवरनामवेग्गो) वीरवर-महावीर नाम वाले तीव्र करने (सीह क्खेसी पाणवहस्र) सिंह के ससान कर ऐसे प्राण बध के (क्खविवाग) फलरूप विपाक को (क्खह) कहा है। उपसंहार—(एसोसो) यह पूरा कथित स्वरूप बाह्या (पाणवहो) प्रणवध (चंड) क्रूर-कूपित करने वाला (ठहो) रौद्र-म पट्टर (छुरो) नीच जनों से सेवित (अणारिओ) अनार्य कर्म (निर्मिष्यो) घृणा-रहित (निशंसो) ब्या रहित (महात्मओ) महात्म्य पैदा करने वाला (वीहय्यओ) कराने वाला और (वासण्यओ) प्राप्त देने वाला (अणवओ) म्याय से बहिर्भूत तथा (उम्मेपय्यओ) उद्देश करने वाला (य) और (विरवयक्कओ) दूसरे के प्राण की अपेक्षा रहित, (निहम्मओ) धर्म से शून्य (निप्पिवासो) पर प्राणी के प्रति स्नेह रहित (निहत्तुओ) कष्टना रहित है इसलिये (निरय बास गमय निचणो) नरक गतिमें गमन रूप अन्त वाला है (मोहमहम्मयपवहुओ) मोह तथा मय को बढ़ाने वाला और (मरणवेमजस्सो) मरण से प्राणिमों के निष्ठ में वैमनस्य - दोनता पैदा करने वाला है (पिचेमि) ऐसा मैं कहता हूँ। यहाँ प्रथम अधर्म द्वार ससान हुआ।

विशेषण—अर्ब सहजही है। इसलिये मात्र इसका सटीक लिखते हैं—पक्षेन्द्र-पक्षी तरह हिंसक जीव जलरिषिय के जो छाक कुछ कोहिमें प्रसर आदि रूप से जन्म मरण करते हैं वहाँ स्वयं रसन ग्रह और जलरूप बार इन्द्रियों से युक्त होते हैं, ऐसे त्रीन्द्रिय के ८ भाग आका कुछ कोही में कुछ पिपोकिका जाति रूप से भी जन्म मरणों का अनुभव करते हैं। ये त्रीन्द्रिय जीव स्वयं रसन और प्राण इन तीन इन्द्रियों से युक्त होते हैं। इसी प्रकार छेन्द्रिय-ये इन्द्रिय के पूरे साथ आका कुछ को-हिमें में गिबोका जलरूप जाति रूप से जन्म मरण करते हैं। स्पर्श और रसन ये दो इन्द्रियों त्रीन्द्रिय जीवों को होती हैं। इन तीनों स्थानों में नारक जीवों के समान। तीव्र दुःख भोगते और प्रत्येक के उन स्थानों में प्रसव करता हुआ अल्प संख्येय काष्ठ पाने हजारों वर्ष पूरा कर देता है। फिर येकेन्द्रिय पत को पाकर पृथ्वी जल धातु, वायु और अमरुति मेव से सूक्ष्म बाहर, पर्वत अपर्वत, प्रत्येक शरीर और

साधारण दशा में, वहाँ असंख्य तथा साधारण की अपेक्षा अनन्त काल तक दुःख समूह को पाते हैं। वृक्ष समूह से गहन परभव में कुदाल आदि से विदारण करना, जल का मर्दन करना, अग्नि वायु का सघट्टन करना ये सब दुःख का कारण हैं। निष्प्रयोजन या सप्रयोजन-प्रेष्य आदि के आहार यदि कारणों से उत्खनन आदि विविध दुःखों को भोगते हुए भव परम्परा से सम्बन्धित अनन्त काल तक इस भयङ्कर ससार में भटकते हैं। अगर कहीं पुण्यवशात् ये जीव मनुष्यपन में भी आ जाय तो अधन्य और प्रायः विकल रूप वाले कुञ्ज कुरूप आदि होते हैं। इस प्रकार नरकयोनि तिष्ठेद्योनि और पुण्य हीन मनुष्य भव को भटकते हुए पापी जीव अनन्त दुःख को पाते हैं यह प्राणवध का कलरूप विपाक है, जो उभय लोक सम्बन्धी और सुख रहित व बहुत दुःख वाला है, महाभयङ्कर कर्म रजकी अधिकता से प्रगाढ, दारुण और कठोर है, हजारों वर्ष से छूट सकता है, किन्तु बिना भोगे कर्म से छुटकारा नहीं होता, ज्ञात कुल नन्दन भगवान् महात्मा महावीर ने हिंसाके इस प्रकार फल विपाक को कहा है।

उपसंहार—यह प्राणवध^१ क्रोध से होने के कारण चण्ड रौद्र है। आत्मभाव से गिरे हुए नीच लोक ही इसे करते हैं। इसलिये यह क्षुद्र एव अनार्य कर्म है। दया व धृणा से शून्य तथा महाभय को उत्पन्न करने वाला है, हिंसा में न्याय बुद्धि नहीं होती अतः यह अन्याय्य है, उद्वेग जनक एव पर प्राणों की अपेक्षा रहित होने से यह अधर्म है मोह तथा महाभय को बढ़ाने वाला और नरकगति में निवासही इसका परिणाम है, दूसरे प्राणियों के साथ वैमनस्य पैदा करना तो हिंसा का खास कार्य है। अतएव हिंसा रूप अधर्म द्वार सर्वथा देय है। यह प्रथम अधर्म द्वार पूर्ण हुआ।
सू० ६।४॥

॥ इति प्रथममधर्म द्वारं समाप्तम् ॥

१—यहां स्कूल दृष्टि से छ काय के जीवों की शारीरिक हिंसा को ही प्राणवध में लिया है हिंसा का नाम भी प्राणवध अर्थात् दूसरे के प्राणों का वध करना रक्खा है। क्योंकि प्राणी सदा अमर है, इसलिये प्राणों का नाश करना उसके साथ वैर भाव नियत करना होता है। व्यवहार में अधिकांश होने वाली हिंसा का ही इस आक्षेप द्वार में वर्णन है। अतएव मनुष्यवध का उल्लेख नहीं किया है। क्योंकि एक तो यह किसी जाति में विहित नहीं है और दूसरा निस्संकोच भाव से किया भी नहीं जाता। (अनुवादक)

“द्वितीयास्रवद्वारमधर्माख्यमारभ्यते”

अथ द्वितीय-आस्रवद्वार

प्रकरण सम्बन्ध—

प्राणवच के बाद दूसरा आस्रव—मृषावाद है। इसमें मृषावाद-भक्त्य का वर्णन किया जाता है। हिंसा करनेवालों को झूठ भी बोलना पड़ता है अतः झूठ वाचिक-वचन सम्बन्धी-हिंसा बन जाती है। अतः अब प्रस्तुत अध्ययन में पाँच द्वारों से मृषावाद की प्ररूपणा की जाती है। श्री सुवर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामीसे इस प्रकार फरमाते हैं—“

मूल—“जम्बू ! वितियं च अक्रियवयणं, लहुसगलहु चयल भणियं भयंकरं दुहकर अयसकरं वेरकरग अरतिरति राग दोस भणसकिलेसाचियरणं, अक्रिय निघडि साति जोय बहुल नीच-जण-निसेविघ, निस्तस, अप्पवय कारक, परम साहुगरहाणि-उज परपीलाकारक, परमकियहलेस्तसहिय, दुग्गहावीणिवाय वड्ढण, भवपुण्णभवकर चिरपरिचियमणुगतं, दुरत, किञ्चित्त वितित अधम्मद्वारं ॥ ५ ॥

छाया—“हे जम्बू ! द्वितीयआलोकचचनम् । लघु स्वकलधु चपलभणित, भय कर, दु खकरमयशकर, वैरकरमरतिरतिरागद्वेषमनः संक्लेशवितरणम्, अलोक निकृति स्वाति—निर्विश्रम्भ योग बहुल, नीचजन निपेवित, नृशसमप्रमत्यय कारक, परमसाधुगर्हणीयं, परपीडाकारक, परकृष्णलेखासहित, दुर्गति विनि-पातवर्द्धन, भवपुनर्भवकरं चिरपरिचितमनुगतं, दुरन्त, कीर्तित, द्वितीयमधर्म-द्वारम् । १ सूत्र ५ ॥

अन्वयार्थ—“अथ १। हे सम्भू ? (अक्षिप्य) अक्षीक वचन-सूठ (वितर्य) दूसरा मासक है (य) और स्वरूप से वह—(छद्मसगच्छद्वयवचनार्थम्) गुण गौरव से रहित छद्म-गुण्य लोगों से भी हल्का और चपल अनुषों से मोड़ा गया (भयंकरं) भयंकर (दुर्करं) दुःकराधी (भयसंकरं) भयस करने वाला (वेरकरं) द्वेष कारक (अरति रति राग दोष मण संश्लेष विमर्षं) अरति रति, राग, द्वेष रूप मानसिक सक्रोध को देने वाला है (अक्षिप्य) निष्पन्न (नियति सातिश्रय वदुर्गं) कपट और अविश्वास जन्मक वचन के व्यापार की अविष्ठा वाला (नोमज्जय निसेवियं) और जो भीच जनों से सेवित है (निसंसं) कृपा वा स्तुष्टा से रहित (अप्यवय कारकं) विश्वास को नाश करने वाला (परमसाहु गर्हभिक्ष) उत्तम साधुओं से निन्वनीय, (निन्वित) (पर पीडा कारकं) दूसरे को पीडा देनेवाला (परमक्रिष्णलेखसहितं) परमकृष्णलेखावाला (दुग्गह विणिवाय वदुर्गं) दुग्गति व अप्रत्याय को बढ़ाने वाला, (अथ पुण्य म्भयंकरं) अन्त अन्तान्तर को करने वाला (चिरपरिणियमणुगतं) अनेक जनों का परिचित होने से घाय होने वाला (दुरतं, कित्तितं) दुःख से मन्त है जिसका पैसा कहा गया है वह (वितित मधम्म वोर) दूसरा भयंकर द्वार है। १। सू० ५।

विशेषन—सूत्र का अर्थ स्पष्ट है। इस सूत्र में कथु आदि अनेक विशेषणों से सूपा वचन का स्वरूप दिखाया गया, जब छठे सूत्र से इस सूपावाद के गुण निष्पन्न तीस नाम दिखाते हैं—“

मूल—“तस्स य णामाणि गाणयाणि होंति तीस, तजहा-
अक्षिप्य १, सह २, अणुज ३, मायामोसो ४, असतकं ५, कूड
वधदमवत्पुगव ६, निरत्थयमवत्थय ७ विदेसगरहयिज्ज
८, अणुज्जुक ९, कफणाय १० वचणाय ११ मिच्छापच्छा कवच
१२, मातीठ १३, उच्छुल्ल १४, सफकूलय १५ अट्ट १६ अज्ज
फण्या १७, किण्वित १८, वल्लय १९, गहण २०, मम्मण
२१ नूम २२, निययो (जी) २३, अप्पवओ २४, असमओ
२५, असय सवत्तण २६ विवक्खो २७, अवहीय २८, उवहिअ
सुद्धं २९, अवओयोसि ३० अक्षिप्य तस्स प्याणि प्यमाणीणि
नामपज्जाणि होंति तीस सावयस्स अक्षिप्यस्स वइजोगस्स
अणगाहं ॥ सू० १२। ६ ॥

छाया—“तस्य च नामानि गौणानि भवन्ति त्रिंशत्। तानि यथा—‘अलीकम् १, शठम् २, अनार्यम् ३, मायामृषा ४, असत्कम् ५, कूट कपटाऽवस्तुकञ्च ६, निरर्थकापार्थकञ्च ७, विद्वेष गर्हणीयम् ८, अमृजुकम् ९, कल्कना १०, वञ्चनाच्च ११, मिथ्या पञ्चात्कृतम् १२, च सातिस्तु (अविश्मम्) १३, अपच्छन्नम् १४, उत्कूलञ्च १५, आर्तम् १६, अभ्याख्यानञ्च १७, किल्बिषम् १८, बलयम् १९, गहनञ्च २०, मन्मथञ्च २१, नूतन- (प्रच्छादनम्) २२; निकृतिः २३, अप्रत्ययः २४ असमयः २५, असत्य सन्धत्वम् २६, विपक्षः २७; अपधीकम्—(आज्ञातिगम्) २८, उपभ्यशुद्धम् २९, अवलोप इति ३०, अपिच तस्यैतान्येवमादीनि नामभेदानि भवन्ति त्रिंशत्, सावद्यस्यालीकस्य चाग्योगस्यानेकानि ॥ २ ॥ ६ ॥

अन्व०—(तस्य य) और उस मृषा वादके (गौणानि) गुणनिष्पन्न (तीस) तीस (णामाणि) नाम (होंति) होते हैं, (तंजहा) जैसे कि-वे निम्न लिखित हैं—(अलियं १) अलीक-शूठ १, (सठ) मायावियों से किये जाने से शठ है २ (अणञ्ज) अनार्यों के वचन होने से अनार्य है ३, (माया मौसो ४) माया रूप कषायसे सहित होने और मृषा होने से मायामृषा है ४, (असत्क ५ असद् वस्तु को कहता है इसलिये असत्क है, (कूटकवडमवस्तुगच) दूसरों को ठगने से कूट भाषा विपर्यय होने से कपट मौजूद नहीं होने से अवस्तु, इन दोनों पदों में किसी तरह समानता होने से यह सम्मिलित ‘कूट कपट अवस्तु’ एक ही ब्रह्मा नाम है ६, (निरत्ययमवत्ययच ७) निष्पञ्जीजन होने से तथा सत्यहीन होने से ‘निरर्थकापार्थक्य है ७’ (विद्वेष गरहणञ्ज) विद्वेष व निन्दा इन दोनों का कारण होने से विद्वेष गर्हणीय है ८, (अमृजुक) छुटिल होने से अमृजुक है ९, (कल्कणाय) मायामय होने से कल्कना १०, (वञ्चनाय) ठगने का कारण होने से वञ्चना है ११, (मिच्छापच्छाकडच) झूठा समझ कर न्यायवादियों से पीछा कर दिया जाता है, इसलिये यह मिथ्या पञ्चात्कृत है १२ (सातीच) अविश्वास कारक होने से इसको ‘साति’ कहते हैं १३ (उत्छन्नं) अपने दोष को व परगुणों को ढक देने से यह ‘अपच्छन्न’ है १४, (उत्कूलं) सन्मार्ग से अथवा न्याय नदी के तट से गिरा देने के कारण यह ‘उत्कूल’ है १५ (अट्टं) पाप पीढियों का वचन होने से ‘आर्त’ १६, (अवभक्त्वाण) अविद्यमान दोषों को कहने से यह ‘अभ्याख्यान’ कहाता है १७,

(किम्विषं) पाप) कारण होने से 'किम्विष है १८, (वक्ष्यं) वक्ष्य की तरह अन्तर
 मृत्यु और देखा होने से इसको 'वक्ष्य' कहते हैं १९ (गृह्यं) श्रुते के अभिप्राय
 का पता नहीं चलने से यह समान वन की तरह 'गृह्य' है २०, (सम्मन्त्रं) बाफ
 नहीं होने से 'सम्मन्त्र' है २१ (नृम) सत्य को बक देता है इसलिये 'नृम' प्रच्छादम
 है २२, (निषर्ग) माया को बकने का वचन होने से यह 'निषर्ग' है २३ (अल्प-
 वधो) विश्वास का कारण नहीं होने से 'अल्पवध' है २४ (असमयो) सम्यक्
 व्यापार से होत होने से 'असमय' है २५ (असमयसंघर्ष) श्रुते प्रतीक्षा का कारण
 होने से 'असमय संघर्ष' है २६ (विवक्षो) सत्य और धर्म के विरोधी होने से
 'विवक्ष' है २७ (संवहोर्ष) निमित्त मुक्ति बाधा होने से यह 'संवहोर्ष' कहाता है
 (आपाह्वं)—जिन भाषणों की आशा का उल्लंघन करने से यह 'आपाह्व' है) २८
 (उवहि असुद्धं) उपनि—माया से अशुद्ध होने के कारण 'उपनिशुद्ध' है २९
 (अवलोकोपि) वस्तु के सद्भाव का लोप करने से 'अवलोक' कहाता है ३०,
 (अविष तरस) और इस मृषावाद् के इत्यादि इस प्रकार के ये तीस नाम हैं, जो
 मृषावाद् सापेक्ष सपथ और अलीक है तथा वचन का व्यापार है उसके ऐसे अनेक
 नाम हैं ।

मान-अथ स्पष्ट है, । मनत्रव यह कि इस मृषावाद् के पूर्वोक्त तीस नाम हैं
 ही किन्तु इस प्रकार और भी अनेक नाम हो सकते हैं । इस तरह इस मृषावाद्
 का अन्तर्गत द्वार कहा गया । २। ५० । १ ।

अथ भूट बोलने वाले जीवों की कहते हैं—

मूल—'तप पुण यदाति केई अनिय पाया असजया अयि
 रया कपट कुटिल कट्टय चट्टुंभाया, कुला लुदा भया य दस
 १६या य सक्की थोर चार भंडा, भडरफभा, जियजूंफरा य,
 गहियगहया, कणकुरग वारगा, पुलिंगी, ठयहिया, याणियगा
 य, वृत्तुल फडमाणी कुटकादायणोपजीधी, पडगार ककाय

कारुड्जा, वंचणपरा, चारिय चाटु थार नगर गोत्तिय परिचा-
रगा, दुट्टवायि सूयक अणत्तल भणिया य, पुन्वकालियवयणइच्छा
साहासिका, लहुरसगा, असच्चा, गारविधा, असच्चडावणाहिचित्ता
उच्चचच्छदा, अणिग्गहा, अणियता, छुंइण मुक्कवाता भवन्ति
अलियाहिं जे अविरया । अवरे नत्थिक्कादिणो वामलोकवादी
भणन्ति-नत्थिजीवो न जाह इह परे वा लोए, न य किंचिविष्णुमत्ति
पुन्नपाव, नत्थिफलं सुकय दुक्कयाण, पच्च महाभूतिय, नरीरं
भासति हे ! वातजोगजुत्तं पच्च य खंधे भणति । केहं भणं च मण
जीविकावदन्ति । बाउजीवोत्ति एवमाहभु, सरीरं सत्तिय सनि-
धणं इहभवे एगे भवे तस्स विप्पणासंमि सव्वनासोत्ति, एवं
जंपति सुसावादी, तम्हा दाण वय पोसहाणं तव संजम वभ-
चेरकल्लाणमाहयाण नत्थि फल, नवि य पाणवहे अलियवयणं, न
चेव चोरिक्क करण परदारमेवण वा सपरिग्गह-पाव-कम्म-करणं
पि नत्थि किं चि न नेरइयतिरिय मणुपाण जोणी, न देवलोको वा
अत्थि, न य अत्थि सिद्धिगमण अस्मापियरो नत्थि, नवि अत्थि
पुरिसकारो, पच्चक्खाणमवि नत्थि, नवि अत्थि कालमच्चूय
अरिहंता चक्खवट्ठी यत्तदेवा वासुदेवा नत्थि, नेवत्थि के वि (इ)
रिस्सओ धम्माधम्म फल च, नवि अत्थि किंचिवहुयं चत्थोव-
कंवा, तम्हा एवं विजाणिऊण जहा सुवहु इंदियाणुक्खोसु-सव्व
विसएसु बहह । अत्थिकाह किरिया वा अकिरिया वा एवं-भणन्ति
नत्थिक्कादिणो वामलोगवादी । इमं पि वित्तीयं कुदंसणं अल-
वभाववाहणो पणवन्ति मूढा—संभूतो अंडकाओ लोको, सय-
मुणा सयंच निम्मिओ, एवं एयं अलिय-पयावहणा इस्सरेण य
कर्यतिकेति । एवं विणहुमयं कसिणमेव य जगन्ति केहं । एवमेके
वदन्ति मोसं । एको आया अकारको वेदको य सुकयस्स दुक्क-
यस्स य करणाणि कारणाणि सव्वहा सव्वहिं च निच्चोय नि-
क्किओ निग्गुणो य अणुवत्तेवओत्ति विय । एवमाहंसु असवभावं,

जपि इह किंचि जीवन्तोके वीसह सुकयवा दुर्कयवा एव जपि-
 च्छाए वा, सहावेण वावि दहवतप्पभावओ वावि भवति,
 मत्थेत्य किंचि कयकतत्त लक्खणाविहाण नियतीएकारिय, एव
 केह जपति इच्चिदरससातगारवपरा, बहवे करणाळसा परूवोति
 धम्मवीमसएण मोस । अवरे अहम्मओ रायहुदुठ अम्मक्खाण
 भवोति-अक्षिय चोरोत्ति अचोरय कोंते, वामरिठत्तिविय, एमेव
 उवासीणं दुस्सीखोत्ति य परदार गच्छुत्ति मइत्तिंति सीखि
 कक्षिय, अपपिगुरुत्तप्पओ, अण्ये एमेव भवति उवाहणता मि
 सत्तकत्ताइं सेवांते, अयपिगुरुत्तप्पओ, इमोवि विस्संभयाहओ,
 पावकम्मकारी अगम्मगामी अय दुरप्पा बहुएसु य पावगेसु
 जुत्तोत्ति एव जपति मच्छरा । भइके वा शुबक्किस्तिनेहपरलोग
 निप्पिवासा, एवते अक्षियवयणइच्छा परदोसुप्पापणप्पसत्ता
 वेदोति अक्खातिय बीएण अप्पाण, कम्मवधेणं जुहरी असमि-
 क्खिप्पत्तावा निक्खेव अवहरति, परस्स अत्थमि गडियगिद्धा
 अभिजुजाति य पर अत्तएहिं, जुद्धाय करेति कूडसथिक्खण्ण,
 असत्ता अत्थाक्षिय य कत्ताक्षिय च भोमाक्षिय च तह गवाक्षिय
 च गरुय भवति, अहरगतिगमण, असपि य जातिरूवकुलसीख
 पथं न्नापाणिगुणं, वयसपिस्सण, परमदठमेवकमसक, विइस-
 मणत्थकारक पायकम्मूल, दुदिदठ दुस्सुप, अण्णियं निद्धज्ज
 लोकगरइणिज्ज बहवथ परिकिसेसपट्ठक जरा मरण दुक्खसा
 पन्निम्म असुद्ध परिणामसन्निदिदठ भवति अक्षियादि संपिसनि
 विद्धा, असत्तगुणवीरका य सत्तगुणनासका य हिंसाभूतोवधा
 तित अक्षियसपठणा वयण सावज्जमकुसल साहुयरइणिज्ज
 अपम्मजण्ण भवति, अण्णिगय पुत्तपाया, पुणोपि अपिकरण-

किरियापवत्तका बहुविहं अणत्थं, अवमहं, अप्पणो परस्स य
 करेंति, एमेव जंपमाण। महिससूकरे य साहिंति घायगाणं,
 सत्तय पत्तय रांहिए य साहिंति-वागुराणं, तित्तिर वट्ठक लावके
 य कविंजलकवोयके य साहिंति साउणीयं, भस्स मगर कच्छभे
 य साहिंति मच्छियाण, संवंक खुल्लए य साहिंति मगराणं,
 अयगर गोणस मंडलिदग्धीकरे मडली य साहिंति थालवीणं,
 गोहा सेहग सल्लग सरडगे य साहिंति लुद्धगाणं, गयकुल वानर-
 कुले य साहिंति पानियाणं, सुक्कराहिण मयणसाल कोइल हंस
 कुले सारसे य साहिंति पोसराणं. वध वंध जायणं च साहिंति
 गोम्मियाण, धण धन्न गवेत्तए य साहिंति तक्कराणं, गामागर
 नगर पट्टणे य साहिंति चारियाण. पारघाहय पंधघातियाओ
 साहिंति य गंठिभेयाणं कयं च चोरिय नगरगोत्तियाणं, लंछुण
 निल्लंछुण धमण दुहण पोसण वणण दवण वाहणाधियाइं साहिंति
 बहूणे गोमियाणं, धातुमणि सिलप्पवाल रयणागरे य साहिंति
 आगरीणं, पुप्फविहिं फलविहिं च साहिंति माकियाणं, अग्रघ-
 महुकोसए य साहिंति वणचराणं, जंताइं विसाइ मूलकम्मं आहं-
 वण आविंधण आभिओय मतोसहिप्पओगे चोरियपरदारगमण-
 बहुपावकम्मकरणं उक्खंधे गामघातियाओ वण दहण तलागभे-
 यणाणि बुद्धि विसवियासणाणि वसीकरणमाधियाइं भयभरण
 किलेस दोसजणाणि भाव बहुसाकिलिद्ध मलिणाणि भूतघातो-
 वघातियाइं, सच्चाइपि ताइ हिंसकाइं वयणाइं उदाहरंति-पुट्ठावा
 अपुट्ठावा परतत्तिगवावडा य असमिस्सिखयभासिणो उव-
 दिसंति, सहसा उट्ठा गोणा गवया दमंतु, परिणयवया अस्सा
 हत्थी गवेत्तगकुक्कुडा य किज्जंतु, किणावेध य, विक्केह, पयह
 य सयणस्स देह पियय, दासिदास भयक भाइल्लका य सिस्सा
 य पेसकजणो कम्मकरा य किंकरा य एए सयण परिजणो य कीस
 अच्छंति ? भारिया भे करित्तु कम्मं, गहणाइं वणाइं खेत्तखिल
 भूमिवल्लराइं उत्तण घण संकडाइं डज्जंतु, सूडिज्जंतु य भक्खा,

भिज्जतु जत भडाइयस्स उ रइस्स कारणाए पडुविइस्सय अट्ठाए
 उच्छ्रुदुज्जतु, पीठिज्जतु य निष्ठा, पपावेइ य इट्ठाउ मम
 घरदठयाए, वेत्ताइ कसइ, कसावेइ य ठहुं गाम आगर नगर
 खेइ कप्पवे नियसेइ अडधीवेसेसु, विपुलसीमे पुक्काणिय फत्ता-
 णिय कवमूलाइ काळपत्ताइ गेरइइ करेइ सत्थय परिजणदठयाए,
 सत्की र्धाही जया य लुषतु मज्जिज्जतु उप्पण्णिज्जतु य, ठहुं च
 पविमत्तु य कोदठागार अप्प मइ ठक्कासगा य इमत्तु पायसत्था,
 सेणा पिप्प्राउ जाठ डमर, घारा बहतु य मगामा, पडइत्तु य
 सगड वाइणाई, उवण्णयण बोळण विवाहो जसो अत्तुगम्मिउ
 होठ दिवमेसु करणसु मुहुत्तसु, नक्कत्तसु, तिहिभु य, अज्ज
 होठ यइवणं भुवित, बहुलउज्जविज्जकळिय कात्तुक विवहावण्णक
 सत्तिकम्मणि कुणइ सत्तिर विगहोव रागवित्तेसु सज्जण
 परियणस्स य नियकस्स य जीवियस्स परिरक्खण्हयाए पडि
 सीसकाइ च बेइ, देइ य सीसोपहारे, विविहोसहि मज्ज मम
 भक्कवन्नपाण मज्जाणुत्तेयण पईवज्जिउज्जलसुययिधूयायकार
 पुक्कल ममिद्ध पायच्छिस्त करेइ पाण्णइव यत्त यण पडुवित्ण
 विवरीउप्पययुस्सुमिण पायसेउण्णम आभरगइ चरिय अण्णक
 निमित्त पडिघायइठ वित्तिक्कय करेइ, मा बेइ । कौविशण,
 सुट्ठइओ (२) सुट्ठइओ, भित्ति उयविसत्ता पथावट्ठ करेति
 अडिय मयेय वायाए कम्पुणा य अकुसला अणउगा, जळियाणा
 अक्षियचम्मणिरया अक्षियासु कडासु अभिरमता सुट्ठ। अक्षिय
 करेत्तु होंति य पट्ठप्पयार ॥ सू० १ । ७ ॥

छाया— 'तस्य पुनरपश्चि' कश्चिदधीकं वाया असंयता अविरता कपट कुट्टि-
 कट्टक-चटुन-रथमात्रा, कुत्रा सुत्रा मय माताम्य दास्यार्थिकाय माश्रित्य श्री-
 चारमग, एण्डरकस्य त्रितयुनकारास्य गृहीतमहयका चरक गुरुक कारका
 कुसिद्धित, भोपधिका चाजिन्नकास्य वृत्तुया गृहमागिन, वृत्तकापापणापजीविन।
 पटकार—कडाइ—काकडीया चयमवगाधारिक चाटुकार मगर गाण्टक परिचारका,
 पुण्णारि एवकणरत्नभजिनास्य पूर्वकाडकवचनश्रुता साश्रित्वा, उपुरका।

अमत्या गौरविका, असत्य स्थापनाधिचित्ता, सच्चञ्छन्दा, अनिप्रज्ञा, अनियताश्छन्देन मुक्तधाचो भवन्त्यलीकाद् येऽविरताः । अपरे नास्तिकवादिनो वामलोकवादिनो भणन्ति—“नास्ति जीवो न याति इह परत्र वा लोके, नच किञ्चिदपि स्पृशति पुण्य-पापम्, नास्ति फल सुकृत दुष्कृतानाम्, पञ्चमहाभातिक शरीरं भाषन्ते हि वानयोग-युक्तम् । पञ्च च स्कन्धान् भणन्ति केचित् (रूप, वेदना, विज्ञान, सज्ञा, संस्कार-रूपान्) मनश्चैव मनोजोविका वदन्ति । वायुर्जीव इत्येवमारुहन्ति, । शरीर सादिकं सनिधनम्, इह भव एको भवः । तस्य विप्रणाशे सर्वनाश इति । एवं जल्पन्ति मृषा-वादिन । तस्मिन्प्रान्नपौषवानां तप सयमव्ययचर्यकल्याणादीना नास्ति फलम् । नापि च प्राणवध, अलोक वचन, नचैव चौर्यैकरण परदारसेवन वा, सपरिग्रहपाप-कर्म करणमपि नास्ति, काचिन्न नैरर्थिकतयैङ्गमनुष्याणा योनि । न देवलोको वास्ति, न चास्ति तिष्ठिगमनम् । मातापितरौ न स्त । नाप्यस्ति पुरुषकारः, प्रत्या-ख्यानमपि नास्ति, नैवास्ति कालो मृत्युश्च । अर्हन्तश्चक्रवर्तिनो बलदेवा वासुदेवा न सन्ति, नैव सन्ति केऽपि ऋषय धर्माऽधर्म फल च नाप्यस्ति किञ्चद् बहुक चर्योक्तं वा, तस्मादेव विज्ञाय यथा सुशङ्खिन्द्रियानुकूलेषु सर्वविषयेषु वर्तन्ते । नास्ति काचित् क्रिया वाऽक्रिया वा, एव भणन्ति नास्तिकवादिनो वामलोकवादिन । इदमपि द्वितीयं कुदर्शनमसद्भाववादिन प्रज्ञयन्ति मूढा—“सम्भूतोऽण्डकालोक्तः स्वयंभुवा स्वयञ्च निर्मितः । एवमेतद्वक्त्रिकम्—प्रजापतिना चेश्वरेण कृतमिति केचिद्वदन्ति । एव विष्णुमय कृत्स्नमेव च जगदिति केचित्, एवमेके वदन्ति मृषाम—“एक आत्माऽकारको वेदकोऽपि च सुकृतस्य दुष्कृतस्य च करणानि कारणाणि सर्वत्र संवेद्या च नित्यश्च निष्क्रियो निरुगश्च अनुलेपक इत्यपि च । एव वेदन्त्यसद्भावम् । यदपोह किञ्चिज्जीवलीके दृश्यते सुकृतया दुष्कृतया एतद्वदच्छयावा, स्वभावेन वापि दैशत-प्रभावा द्वाविभवति । नास्त्यत्र किमपि कृतक तत्त्वम् लक्षणविधान नियत्या कारितम् एव केऽपि जल्पन्ति । ऋद्धि रस सान गौरव परा बहव करणालमा प्ररूपयन्ति धमधिमर्शकेन मृषाम् । अपरेऽ-धर्मता राजदुष्ट भ्रमशुखान भणन्ति—अलोकम्—चोर इत्यचौर्यं कुर्वन्त, डामरिकं इत्यपि च वैरप्रकुर्वाणश्च । एवमेवादासोन दुश्शोज इति च परदारं गच्छतीति मलिनयन्ति शीलकलियम्—अयमपि गुरुत्त्वम् । अन्य एवमेव भणन्ति—उपन्नन्ती मित्र कलत्राणि सेवन्ते । अयमपि लुप्त रमा इमेऽपि विश्रम्भवादिन पाप कर्म कारिणोऽगम्यागामिन । अथ दुरात्मा बहुकेश पापकैर्युक्ता इति, एव जल्पन्ति मत्तरिणो भद्रकेवा गुण कार्किस्तेह परलोकनिष्ठिपासा । एवतेऽलोक वचन दक्षा परदोषो-

त्वात्न प्रसज्य वेष्टयन्ति अस्तिदिक बीजेनाऽऽत्मानं कमन्यन्तेन मुक्षरिणोऽसमोक्षित
 प्रक्षापाः । निक्षेपानपहरन्ति परस्परार्थे प्रथितं गृह्यते । अमियुञ्जते च परमसद्य मल्लं करा
 कुर्वन्ति कृतसाक्षित्वम् अथवा अर्थाङ्कोरक, कन्धाङ्कोरक मूयन्नाकस्य तथा
 गवाङ्कोरक्य गुरुकं भणन्ति-अप्ररगतिगमनम् । अम्यन्ति च जाति रूप कुड शोष
 प्रत्यय साधा निगुण चरक विष्टुन परमावतरेकमसत्कम् विष्टेयवन्नर्थका कं पाप
 कर्मम् क दुष्टं दु भूतममनोहम् अनुचितं निक्षेपं ङोकाहणोय नञस्य परिक्रान्ति-
 बहुल वरा मरणं दु कलोक मूक- (नेमम्) अशुभ परिष्कारं संक्रिष्टं मण्डितं अङ्गीका
 असी काऽभिसन्धि संनिविष्टा, असङ्गुणोशोरकास्य सङ्गुणनासकास्य हिंसाभूतोप
 पातकम् अङ्गीकृतस्मयुक्ता वचनं सावयमकुञ्चलं साधु गह्वोयमचर्मन्नतं भजन्ति,
 मतमिगत पुण्यपापाः । पुनर अक्षि करण-किञ्च प्रसक्तं बहु विषयवर्त्यमपमदेमात्मानं
 परस्परं कुर्वन्ति एवमेव अक्षय्यो महिष शूकतौ च साधयन्ति पातकानाम् । अक्ष
 प्रसय रोहितास्य साधयन्ति वागुरिकाणाम् । तिरिर वतक छात्रकास्य कपिब्रुह
 तोपास्य साधयन्ति शाकुनिकानाम् । सङ्गमकर कच्छ (क्ष) पांश्च साधयन्ति मात्स्य-
 कानाम्, सङ्गाहो भुञ्जकाश्च साधयन्ति मकराणाम् । अङ्गमर गोतस मवहति वर्षीक-
 रस्य मुकुक्षिनश्च साधयन्ति व्याघ्रपानाम् । गोषाम् सेहक स्रक्क स्रट्कास्य साध-
 यन्ति कुम्भकानाम् । गजकुड वानरकुडानि च साधयन्ति पाक्षिकानाम् कुम्भर्हि
 मदनसाक्षा कोकिल इंसकुडानि सारसश्च साधयन्ति पोषकाणाम् । वच वच
 यावनाश्च साधयन्ति गोक्षिकानाम् । वन धाम्य गवेलकास्य साधयन्ति तलहरा-
 णाम् । प्रामाकट नगर पत्तनानि च साधयन्ति कारिकाणाम् । पार पातिक पक्षि पातिकौ
 साधयन्ति च अन्धमेरुकानाम् । कुर्गाश्च चौरिका नगर गुप्तिकानाम् । छास्य
 निर्मास्यन इमानं वीहन पोषय वचन इवन बाहनादिकानि साधयन्ति बहूनि गोमि-
 कानाम् । धातु मणि शिखा मवाल राजाकरास्य साधयन्ति-आकरिण्यान् । पुण्य विधि
 फलविधिश्च साधयन्ति मात्सिकानाम् । अथ मधु कोशाश्च साधयन्ति वनेचराणाम् ।
 पन्त्राणि विपाणि मूककर्मोऽऽक्षेप्या वेधनाऽभिबीग अन्त्रोपधिमयोगान् चौरिक
 परदार गमनं बहु पाप-कर्म करणन्-अवतकम्पान् प्राम पातिका वन इहन तडाग
 मेदनानि मुष्टि विषय विनाशनानि, बलीकरणादिकानि, अथ मरणं श्लेष्ट दोष सम-
 कानि भावयन्तु समिष्ट भक्षिनानि मृत पातोऽपातकानि सत्यान्वयि तानि द्विषकानि
 वचनान्युदाहरन्ति प्रुष्टा वा अप्रुष्टा वा परतसिम्बापुतास्य, असमोक्षितभाषिण्य उपदि-
 शन्ति-सहसा बहु गानो गवया इत्यम्पाम् । परिणत धयसोऽद्याहरिजो गवेऽकड-

कुत्रैश्च कोणोत्, कापयत्, विक्रीणोत् पचत् च, स्वजनाय दत्त, पिवत्, । दासीदास-
भृतकभागहारिण शिष्याश्च प्रेक्ष्यजन कर्मकराश्च किंकराश्च एते स्वजन परिज-
नाश्च कस्मादाप्नोते ? भयं भवतः कृत्वा कर्म (कुर्वन्तु कर्माणि) गहनानि वनानि क्षेत्र
खिलभूमिश्चरारिण उत्तूष्ण धनसङ्कटानि दहन्तां सूचन्ताश्च, वृक्षा भिद्यन्ताः, यन्त्र
भाण्डादिकस्योपधे कारणाय बहु विधस्य चार्थाय, इक्ष्वो दूयन्ताम्, पीडयन्ताश्च-तिलाः,
पाचयन्तां चेष्टन्ता मम गृहार्थाय, क्षेत्राणि कृपन्, कर्षयत् च लघु, ग्रामाऽऽकर नगर
खेट कर्षटानि निवेशयत्, अटवीदेशेषु विपुलमीमानि , पुष्पाणि च फलानि च कन्द-
मूलानि कालप्राप्तानि गृहोत्, कुरुत सञ्चयम् । परिजनार्थाय शालयो व्रीहयो यवाश्च
ल्ययन्ताम्, मर्चयन्ताश्च, उत्पूयन्ता—(उपनीयन्ता) श्व, लघुच प्रविशन्तु कोष्ठागारम् ।
अल्पमहोत्सर्पकाश्च हन्यन्ता पोतसार्था । सेना निर्यातु दमरम्, घोरा वर्तन्ताश्च
समामा , प्रवहन्तु च शकटवाहनानि । उपनयन्, चूडाकर्म, विवाहो, यज्ञोऽमुष्मिन्
भवन्तु (तु) दिवसे, करणे, मुहूर्ते, नक्षत्रे, तिथौ च । अद्य भवतु स्नपन मुदित,
बहु खाद्यपेयकलितम् । कोतुक, विस्त्रापनक, शान्तिकर्माणि कुरुत, शशि रवि ग्रहोप-
राग भिषमेषु स्वजन परिजनस्य च निजकस्य च जीवितस्य परिरक्षणार्थाय प्रतिशीर्षकाणि
च दत्ता, दत्त च शीर्षोपहारान्, विविधौषधिमयमास भक्ष्यान्नपानमात्यानुलेपन
प्रदोषञ्चलितोञ्चल सुगन्धि धूपोपचार (पापकार) पुष्प फल समृद्धानि प्रायश्चित्ता-
नि कुरुत, प्राणातिपातकरणेन बहुविधेन, विपरोतोत्पात दुस्स्वप्न पाप शकुनाऽसौम्य
ग्रह चरिताऽमङ्गलानिमित्तप्रतिघातहेतोर्वृत्तिच्छेद कुरुत, मादत्त किञ्चिदानम्
सुष्ठु इत २, सुष्ठु छिन्त, भिन्त इत्युपदिशन्ति एवविध कुर्वन्त्यलीकम् । मनसा वचसा
कर्मणा च अकुशला अनार्था अलीकाश्च अलीकधर्मनिरता । अलीकासु कथास्व-
भिरसमाणास्तुष्टा अलीक कृत्वा भवन्ति च बहुप्रकारम् । ॥ सू० । ३ । ७ ।

अथ असत्य बोलनेवालोंका परिचय देते हैं—

अन्वयार्थः—“(तंचपुण) और फिर उस (अलिय) असत्य वचनको (बदतिः)
बोलते हैं (केई) कई (पावा) पापी लोग जो (अस्सजया) असत्यमशील (अवि०)
विरति रहित हैं (कवदकुदिलकडुयचटुलमावा) कपट के कारण कुटिल और
परिणाम से दारुण व पचल मन वाले (य) और (कुद्धा लुद्धा भया) क्रोधी लोभी
और दूसरों को डराने वाले, तथा स्वयं डरने वाले (हस्तड्डिया) हंसी मजाक के
अर्थी (सक्खी) साक्षो देने वाले (चोर चार भदा) चोर, गुप्तदूत व सैनिक
(खडवरखा) सायर के हाथिल लेने वाले (जिय जूई कया य) और जूभा में हारकर

फिर मूमा खेदने बाळे (गहियगहिया) गिरनी रखने बाळे (कस कुरुग कारगा) माया-बपट करने बाळे (कुसिंगी) कुतर्किया-या बेपकारी (बबहिया) ठग (बाणि पगा) व्यापार करने बाळे-बणिक् लोग, (कूब तोल कूडमानी) काट तोल माप करने बाळे (कुडकाहाबणोपजीवी) नकली मुद्रा बनाने बाळे (पडगार कसाय-काठ इत्यादि) बरत बुनने बाळे, गहना-भूषण बनाने बाळे व शिल्पी लोग-छोपे बादि (बंधण परा) दिन रात ठगाई करने बाळे (बारिब-भादुबार-भगर गोत्तिय-परिचारगा) लोक निकाछने में छोड़े हुए, झुझामव करने बाळे और नगर को रक्षा करने बाळे व अभिचार में मद्ध वेने बाळे (हुडबायि सुपक भणबल भविषा प) और लराबपक्ष छेने बाळे चुगली करते बाळे, और सदा कजहार कहाने बाळे (पुक्ककाष्ठियत्रयणइकछा) बोलने बाळे के अभिप्राय को जानकार उसके पक्षे बोलने में बहुत अवका अभिप्राय और भागममान से बिकल होने के कारण पूर्व कालिक भये को बोलने में जो अक्ष है, वैसे (साइसिका) बिना बिचारे बोलने बाळे (छहुरसगा) अस्मबलसे हीन (असबा) घरबनों के द्विजे अहितकारक (गारबिया) शक्ति आदि गौरव से युक्त (असबडाबपाहिचदा) अस्त्य की रक्ष-पना में चित्त बाळे (बचछा) भास्मोत्थर्य के बिचार बाळे (भणिगदा) इच्छाम्य (भणियता) नियम श्रित-अभ्यवर्तित जीवन बाळे (छरेण मुकवासा) इच्छा-नुसार वचन का प्रयोग करने बाळे (जे अक्रियादि) जो मूठ वचनों से (अदिरपा) अदिरत-अनिवृत्त (भबदि) होते हैं। वे अपनी इच्छानुसार मूठ बोलते हैं। अब वाद्यनिक असत्यवागो कहे जाते हैं (भबरे) छोटिक मूठ बोलने वालों की अपेक्षा छ घुमरे (भविक्काबिया) नारिक बादी-छोटकविक (बाम छोक बादी) लोक को बिप १० रूप से कहने बाळे (भणसि) बाळते हैं कि—(तस्वजीवो) जीव नहीं है (न जाइ इ परे वा छोप) अनुप्य आनि वतमान गति के जन्म में या परछोक में मही जाता (मय किचिबि पुसनि पुसपाव) और पुण्य अवका पापका किचित् ओ पक्ष मही करता है (मन्थि पछे सुक्य हुक्याण) सुकव व दुकव हैं का दुख ओ कल मही है (पंच महाभूमिय सरीर भासति) पञ्च महाभूत—पृथ्वी अज वाहि, वायु आपास इस से बना यह शरीर ही अत्मा आसित होता है (बात साग सुस) पाय वायु क वाग स विषा में छगा हुआ है (केई) और कई-बोछाचार्य (पंच प मये) पांच [रूप बदना विद्यान सज्ञा और संसार—मायक] इच्छ्यों का अत्मा (भणसि) बरते हैं (च) और कुछ बीछ विद्या (गण जीविका , मनको ही जीव

मानने वाले (मण) मण को आत्मा (वर्दति) कहते हैं, (वावर्जीवोत्ति) (उच्छ्वास
आदि लक्षण वाला जीव है, (एवमःहसु) इस प्रकार कई कहते हैं, (शरीरसादिय
सनिधन) शरीर पैदा होने से आदि वाला और मरने से अन्त वाला है (इहभवे)
इस ससर मे प्रत्यक्ष दिख पडने वाला भवही (एगेभवे) एक भव—अन्म है
(तस्स विप्पणासमि) इसके बिनाश हो जाने पर (सव्वनासोत्ति) सर्व नाश
हो जाता है अर्थात् आत्मा पुण्य पाप आदि कुछ नहीं रहता (एव) इस प्रकार
(गुप्ता धावो) झूठ बोलने वाले (जर्पति) बोलते हैं (तम्हा) शरीर के साथ
सबका नाश होता है, इसलिये (दाण वय पोसहाण) दान, व्रत, पौषधोंका (तव-
सजम वभचेर वल्लाणमाइयाण) तप, रुयम, ब्रह्मचर्य रूप कल्याण मार्ग तथा सम्य-
ग्दर्शनादि सत्कर्मों का (न त्थिपल) कोई फल नहीं है (नवि य) और न (पाण्यवहे)
प्रणवध—हिंसा, (अलियधयण) झूठबोलना (चोरिककरण) चोरी करना (वा)
अथवा (परदार सेवण) पर स्त्री गमन करना (अपरिगहपावकम्मकरण) परि-
ग्रहों के साथ पाप क्रिया का सेवन करना (पि) भी अशुभ फल का कारण (नत्थि)
नहीं है (किंचि) कुछ भी (नेरइयतिरियमणुयाण) नरक तिर्यक् मनुष्यों को
(जोणी) योनि—जन्मस्थान (न) नहीं है (वा) अथवा (देवलोको न अत्थि)
देव लोक नहीं है (नथ अत्थि सिद्धिगमण) और सिद्ध गति में गमन नहीं है
(अन्मा पिथरो) माता पिता (नत्थि) नहीं है, (नवि अत्थि पुरिसकारो) और
पुरुषार्थ भी नहीं है (पच्चक्खाणमवि नत्थि) प्रत्याख्यान—धर्म साधन रूप से त्याग
भी नहीं है, (नवि अत्थि काल मच्चूय) और काल व मृत्यु भी नहीं है
(अरिहता चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा) अरिहन्त चक्रवर्ती बलदेव और वासु-
देव (नत्थि) नहीं हैं (नेवत्थि केवि रिसमो) और कोई ऋषि—महर्षि
भी कुछ नहीं हैं (धम्माधम्म फले च नवि अत्थि) तथा धर्मधर्मों का फल भी कुछ
नहीं है (किंचि) कुछ (बहुय) बहुत (वा) अथवा (थोवक) थोड़ा पुण्य पाप का
परिणाम नहीं है, (तम्हा) इसलिये (एव) जीव को धर्माधर्म का फल नहीं
मिलता ऐसा (विजाणिउण) ज्ञान धार (जहासुवट्ट) जिस प्रकार बहुत अनुकूल हों
वैसे (इ दियाणुकुलेसु) इन्द्रियों के अनुकूल (सव्वविशएसु) सर्व विषयों मे
(वट्टह) वर्तन करो—प्रवृत्ति करो (काइ किरिया) कोई क्रिया—प्रशस्त कार्य (वा
अकिरिया) या अक्रिया अर्थात् पापक्रिया (एत्थि) नहीं है, (एव) इस प्रकार
(नत्थिकवादिणो) नास्तिक मतवाले (मणांति) बोलते हैं (वामलोगवावो)

विपरीत लोक को कहने वाले (इतिषि द्वितीय कुर्वसर्ण) दूसरे इस कुर्वसर्ण को भी (असम्भाव्य इत्यो) कुमाँ को-असम्भाव को बोलने वाले (मूढा) मूढ मति लोग (पण्यवैति) प्ररूपण करते हैं जैसे (अङ्ककामो) अण्डे से (छोको) यह संसार (संमूठो) पैदा हुआ है, (सपमुणा) स्वयम्भू मछाने (सर्प) सुइ (निम्बिभो) बनाया है (एवं) इस प्रकार (एवं) यह (अङ्किय) मृगावध है (वेति) कइवाही (पमावइया ममा पतिने (ईसरेणय) और ईश्वर ने (कयति) बनाया 'पेसाकहते है' (एवं) इस प्रकार (केई) कई वाही (पियहुमय कसिणमेव जगति) समस्त जगत ही विष्णुमय है 'पेसा कहते है' (एवमेके) इस प्रकार कई एक वाही (मोस वर्धति) मिथ्या बोलते हैं, (एको आया अकारका वेवकोय) आत्मा एक तथा अकारा और भाँटा है (मुक्यत्स) मुकुट के (य) और (दुहयत्स) दुष्कृत के (करणाणि) इन्द्रियों (कारणाणि) हेतु (सम्बद्धा) सब प्रकार से (सम्बद्धि) और सब जगह 'है' (निबोय) और यह आत्मा नित्य (निबिभो) निष्क्रिय तथा (निम्बुणो) निर्गुण अर्थात् सत्त्व रजस्तम इन तीन गुणों से रहित है (य) और (अणुवेव मोधि विषय) वम बन्ध से अक्षिप्त रहित—है (एवमाहसु—असद्वार्थ) इस प्रकार असद् भाव को कहते हैं (इह जीव सोय) इस संसार में (जिपि) जोमी (किपि) कुछ (दोसइ) दिक्का है (मुक्य) मुकुट (वा) या (मुक्य) दुष्कृत (एवं) यह (जविच्छाए) यदृच्छा से (वा) अथवा (सहायेण) स्वभाव से (इइवत्तप्पमावधो वाधि) अथवा देवता-विधि या भाव्य के प्रभाव से (भवति) होता है (नत्थस्य किपि कपक्कत्त) यहाँ छुम अक्षुम कुछ भी पुरुषार्थ से किया हुआ तत्त्व-सत्त्व नहीं है, (इक्कण विहम्य नियवीए) ब्रह्मणों से विघाम-भेद और स्वभाव से (कारियं) किया हुआ है, (एवं केई जयति) इस प्रकार कई वाही बोलते हैं (इहिरससावागारव पया) अग्नि, रस और साध के बाहर वाले जाने गये वाले (वहये) बहुत से (कय्या-ससा) क्रिया में आससी लोग (यम्म जीयमण) भ्रम के विचार से (मोस) मृगा का (परुवैति) प्ररूपण करते हैं (अवरे) दूसरे कई (अहम्मो) अपम को धम्रीकार करके (रागदुद्ध) राज दुष्ट अथात् राज विरोधी (अम्मकराण) पाप कथन रूप (अङ्किय) कुछ (मणति) बोलते हैं, जैसे (अथोरमं) थोरी नहीं (करें) करने वाले को (थोरोति) थोर ऐसा (य) और (हामरिउत्तिवि) शास्त्र को भी टहवाई करने वाला (एमेव) इसी प्रकार (अणसोण) उदासीन को (दुस्सीओति) दुश्चिन्त-दुश्वाची (य) और (परवार) परस्त्री में (गच्छतिवि)

गमनं करता है इस प्रकार (अथपि) यह भी (गुरुत्तप्यभो) गुरु पत्नी गामी है, 'ऐना कहेकर' (सौल कलियं) शीलं युक्तं को (महलिति) मलिन बनाते हैं (एमेव) इसी प्रकार (अत्रे) दूसरे (उवाहेणना) दूसरों की कीर्ति को मिटाते हुए (भणति) मृपा बोलते हैं, जैसे कि—(मिन्न कलत्ताइ) मिन्न खो मे (सेवति) गमन करते हैं (अथपि) 'कैवल्ले वे नहो किंतु' यह भी (लुत्त धम्मो) धर्म रहित हैं (इमेवि) यह भी (विस्सभं वाइभो) विस्वांस घाती (पावकम्मकारी) पाप करने वाला तथा (अगम्मं गासी) अगम्या-लकड़ों वहन आदि में गमन करने वाला है, (अयं) यह (दुरप्पा) दुष्ट आत्मा (बहुएसु पावणेसु) बहुतों से पाप कार्यों में (जुत्तोत्ति) युक्त है (एव) इस प्रकार (मच्छरी) मत्सरी लोग (जंपति) बोलते हैं (वा) अथवा (अहके) गुणों व निंदोंष पुरुष के विषय में (गुण किति नेह पर लोग निपिंवासा) गुण, कीर्ति, स्नेह और परलोक की इच्छा से रहित होकर मृवा बोलते हैं, (एव) इस प्रकार (अलिय वयण दच्छा) झूठ बोलने में निपुण तथा (परदोसुपायणोपपत्ता) दूसरों के दोष उत्पादन में तत्पर (ते) वे मृवावादी (अक्खतिवोएण) अक्षयं दुःख के कारण भूत (कम्म वंजणेण) कर्म धन्य से (अप्पाणं) अपनी आत्मा को (वेडेंति) बेर लेते हैं (मुहरो) अनर्थकारी होने से जिनका मुख ही शत्रु है, वे मुखारि वैसे (असमिक्खियप्पत्तावा) बिना विचार के बोलने वाले (परस्स) दूसरे के (अत्यमि) द्रव्य में (गदिय शिद्धा) अत्यन्त लोभ वाले (निक्खेवे) रस्ती हुई ठेक को (अव हरति) अपहरण कर लेते हैं (य) और (पेर) दूसरे को (असंतपहिं) अवैद्यमान दोनों से (अभिजुज्जति) जोड़ते हैं अर्थात् झूठे आक्षेप करते हैं (लुद्धाय) और लोभो मनुष्य (कूडमक्खित्तण) झूठी साक्ष्य देने के कार्य को (करेंति) करते हैं, (च) और (असच्चा) अहितकारी लोग (अत्थालिय) धन सम्बन्धी झूठ (कज्जालिय) और कन्या सम्बन्धी झूठ (तह) तथा (भोमालिय) भूमि सम्बन्धी झूठ (च) और (गव्वालिय) गोआदि पशु सम्बन्धी झूठ (गरुयं) स्वपर को पीडा करी होने से भारी ऐसे झूठ को (भणति) बोलते हैं, जो झूठ—(अहरगति गमणं) नीचगति का कारण है (अन्नं पिय) और कहे हुए के सिवाय अन्य भी (जातिरुव कुलसील पक्कयं) जाति, रूप, कुल और शील-आचार के कारण वाला (माया शिणुण) माया का गुण वाला या माया से निपुण (चवळ पिसुणं) विचार आदि से चपल व पिशुन लोग (परमंद्द भेदकं) जो चर्चन मोक्ष रूप परमार्थ का घातक (असकं) अविष्य मान अर्थ वालों

या—'मसंतत' शब्द रहित (विदेशमन्त्रकारण) अग्रिम और अनन्त कारक है (पाप कर्म मूल) पाप कर्म का मूल (दुष्टि) दुष्ट-मित्र्या दृष्टि बाधा, (पुस्तुय) मित्र्या दुष्ट पुष्ट (अमुषिय) ज्ञान रहित और (निष्कर्म) वक्रता से होन (छोड़ गरहमित्र) छोड़ में निम्ननीय है (यह नय परिकल्पित बहुल) नय नय और ह्येय की अभिज्ञता बाधा (जरा मरण दुष्कृत सीय निर्म) जरा-वृद्धापत्या मरण, दुष्कृत तथा छोड़ का जो मूल है जैसे (अमुष्ट परिणाम सक्तिष्ठ) अमुष्ट परिणाम से संकृष्ट मुक्त 'येसे असत्य वचन को' (अर्थति) बोलते हैं, जो (अभिप्राहि संधि संनिविष्टा) मूठे अभिप्राय में छने हुए (य) और (मसंतत गुण हीरका) असंतत गुण की वशीरणा करने वाले याने मूठे गुण कहने वाले (य) और (संत गुण नासगा) विद्यमान गुण को नष्ट करने वाले अर्थात् छिपाने वाले (हिंसा भूतोष पातित) हिंसा से प्राप्तिजों का उपपात हो वेसे (सावज्ज मकुसुल) पाप सहित और बों के बिने अकुसल कारक (साहुगरहमित्र) साधुओं से निन्दित (महम्म-कर्मण) मपमें जनक (वयम्) वचन को (मर्णति) कहते हैं (अक्षिय संप्रवृत्ता) जो मूठ के प्रयोग करने वाले हैं (अजमिगय पुत्रपात्ता) पुण्य और पाप के हेतुओं से मनजान होते हैं (पुणोषि) और (अयिकरण किरिपा पक्षका) अज्ञान के बाह्य शस्त्र भाति अभिकरण बनाने व ओढ़ने की क्रिया को करने वाले (बहुविह) बहुव प्रकार के (अण्मय) अनर्थ का कारण रूप (अण्मजी) अपने (य) और (परस्व) परके (अममहं) अपमव- हानि को (करंति) करते हैं, (एसेव) इसी प्रकार-बुद्धि के बिना (जपमाणा) बोलते हुए (चायगाण) हिंसकों के बिने (मविससूकरेय) मैसे और सूभर को (सादिति) बताते हैं (य) और (ससय पसय रोहिप) शशा, प्रसय व रोहिष—पद्म विशेष (वागुराण) वागुरी को (सादिति) बताते हैं, (विसर बटुक छावके) लीतर बर्तक-वतक तथा छावक-लवे (य) और (कविज्ज कवीव-केव) कविज्ज व कपूतरी को (सावणोण) पक्षी मारने वाले सिकारियों को (सादिति) बताते हैं (सप्त मगर वचयेय) सप्त मगर और कच्छप भाति जखरव जगु (मण्डिपण) मच्छामारी को (सादिति) बताते हैं, (संमरेके) सन्त व अन्त—जस जीव विदोष (य) और (मुज्जए) मुज्जक—कीबो के जीव (मगराण) घोवर छोड़ों को (सादिति) बताते हैं (अवगर गोलस मंडळि वन्नीकर) मगर, गोलस मंडळी और वर्याकर जाति के सप्त (मवजोष) और मुपुत्री—क्या रहित सवे ये सप्त (सावणोण) व्याख्य-कपपकडने वालों को (सादिति) बताते हैं

(गोहा सेहग सल्लग सरइकेय) और गोधा, सेह, शल्लकी और सरट (लुद्धगण) लुद्धकों को (साहिति) वताते हैं (य) और (गयकुल वानर कुले) गजकुल और वानर कुलों को (पासियाण) पात्र वालों के लिये (साहिति) वताते हैं (सुक व-रहिण मयण साल कोइल हंस कुले) तोता, मयूर, मेना कोकिला और हंस के कुल (सारसेय) और सारस पक्षी (पोसगण) पालने वालों को (साहिति) कहते हैं (च) और (गोम्मियाण) गुप्ति पालकों को (वधवधजायण) वध वध और यातना (साहिति) वताते हैं (य) और (तक्कराण) चोरों को (धणधन्नगवेलए) धन धान्य तथा पशु (साहिति) वताते हैं (चारियाण) चारिक—गुप्तचरों को (गामा-गर नगर पट्टणे य) ग्राम, आकर, नगर और पत्तन (सहिति) बातते हैं (य) और (गंठिभेयाण) ग्रन्थ छेदन करने वालों को (पार घातिय पथघानियाओ) मार्ग के अन्त में यात्रीच में मारने—लुटने—की क्रियायें (सहिति) कहते हैं (च) और (नगर गोत्तियाण) नगर रक्षक—कोटवाल आदि को (कय चोरिय) की हुई चोरी 'वताते हैं' (गोमियाण) गो आदि पशु वालों को (लळण निळछण धमण दुहण पोसण) लाछन—कान आदि कतरना या निशान बनाना, निर्लाछन—वधिया करना याने कसो करना भ्रान-भेंस आदि के देह से हवा भरना, दोहन—दुहना, पोषण यव आदि देकर पुष्ट करना (वण्ण दवण वाहणा ठियाइ) बछड़े को दूसरी गौ में लगाकर दूसरी गौ को धोखा देना अर्थात् यह वच्चा मेरा ही है ऐसा धोखा देना, हुवन—पीडा देना चाहन—गाढी आदि से जोतना इत्यादि (बहूणि) बहुत से कार्य (साहिति) कहते हैं (य) और (आगरीण) खान वालों को (धातु मणि मिल प्पवाल रयणागरे) गैरिक आदि धातु, मणि—चन्द्रकान्त आदि, शिला—पत्थर, प्रवाल—चिद्रुम—मूंगे और रत्नों की खानें (साहिति) कहते हैं (मालियाण) मालिभों को (पुण्णवि-हिं) पुष्प के प्रकार (च) और (फलविहिं) फल के प्रकार (साहिति) वताते हैं (य) और (वण्णचराण) भील आदि ज गलिभों को (अगमहुकोसए) कीमत और मधु के छाते (साहिति) वताते हैं (जवाइ) यन्त्र—लिखे हुए अक्षरों की रचना विशेष अथवा जलयन्त्र आदि (विसाइ) अनेक प्रकार के विष (मूलकम्म) मूलकर्म—गर्भपात या गर्माधान (आहेवण आविघणा आभिओग सतोमहिप्पओगे) आक्षेप-नगर में क्षोभ उत्पन्न करना, आव्यधन—ध्वन्त्रप्रयोग, आभियोग्य—वशीकरण आदि प्रयोग, मन्त्र और औषधियों के प्रयोगों को (चारिय परदार गमण बहु पाव कम्म करण) चोरी, परस्त्रीगमन और अधिक पाप वध के व्यापार करना (उक्खवे)

कथं से वृत्तेके बलको उपमर्शन करना, (गाम धोतिधोती) धाम धोतिके (वय
 वयस्य वसाग मेयपाणि) वनं बंझाना और वसाग कोबना (बुद्धि बिस बिष्वासपाणि)
 बुद्धि के बिषय को नष्ट करना (वसीकरणमाविरोह) वसीकरण इत्यादि (भयमरण
 क्रिसेस दोस वयपाणि) भय मरख, छेस और डेप को कथन करने वाले (मार्ग
 बहुसंकीर्ण मछिपाणि) जो अन्धबसाय-मात्र से बहुत दुःखप्रद और मछिन हैं
 (भूतपातोवर्षासायाह) प्रायिनों के धात और उपपात वाले (सर्वाह पि) सत्य को
 (ताह) ऐसे वन (हिंसकाह) हिंसक (वयसाह) वचनोंको (व्वाहटि) बोझने
 हैं (पुद्गावा) पूछे गये वा (अपुद्गावा) बिना पूछे गये (परतपिपे बाबडा) वृत्त-
 रेके कावोंको सोचने बिचारने में खगे हुए (व) और (असमिन्निबन्धमाविरोह)
 बिना बिचारे बोझने वाले (सहासा) कर्ममात्र (वरविचति) उपदेस करते हैं
 (वडा) कठ (गोष्ठा) गाय बैक, (गवया) गवय-बोझ कोछे गोप को (इमंतु)
 इमन करो अर्थात् इनकी मिश्रित वमावो (परिणयवया) प्रीतिवय वाले-बंझान
 (अस्सा) पीछे (इत्थी) हाथी (गर्वका कुटुंबाव) और बकरे व मुर्गी को
 (किमंतु) बरीरो (किगावेष) खरीद कराना (व) और (बिच्छेद) बेचो (व)
 और (पयह) पकाने योग्य वस्तुओं को पकाओ (सयस्यस) स्वजन को (बेह) बेमो
 (पियव) मदिरा भादि पेय वस्तु को पिओ (दासीदास अवेक माइलकाव) और
 दासी दास-नोकर मृतक-मीजन बेकर पाछे गए सेबक और भागीदार (सिस्सा)
 रिप्य (व) और (ऐवकजनी) काम पर भेजने योग्य आदमी (व) और
 (कम्मकरा) कर्म करने वाले अर्थात् नियत समय तक आशा पाछे वाले (प किंकर-
 रा) और किंकर-पूछर कर काम करने वाले (एव) ये (सव सवणपरि बंझोव) और स्वजन
 परिज (कीस) किसिये (अक्कति) बैठे हैं (भारिवा) भरण करते योग्य हैं अर्थात् इन-
 को बैठन चुका देना चाहिए ये (मे) आपके (कम्म) कामको (कर्त्तु) करें (गहणार)
 गहन-सधन (वयाह) वन (ऐवकिमभूमिबल्लराह) खेत, लिखगूमि-बिना
 छोटी गई मूमि और बल्लर-खेत बिसेय (उराण वण संकडाह) जो करो हुए पासी
 से अत्यन्त भरे हैं वनको (वयंतु) जलाओ (व) और (सूडिअंतु) पाख
 कटाओ या बल्लहाओ (अंत भंडाहस्य) विषयन्त्र - पानी और माह-कुंडे आदि
 भाजन बारीह (वरविच) उपकरण के (काटणाव) मिमिषा (व) और (बहु
 विहस्य अट्टाव) बहुत प्रकार के प्रयोजन से (वयन्ता) इसी को (मिअंतु) कटाओ
 (वय्पू) इस को (वय्पु) कटाओ (व) और (विख) विखी की (पोडिअ ह)

पोलो-उनका तेल निकालो (य) और (इष्टकाव) इटों को (पयावेह) पकाओ (मम घरट्टयाए) मेरे घर के लिये (खेत्ताइ) खेतों का (कसह) कपेण करो (कसावेह) कपेण कराओ, (य) और (लहु) शीघ्र (गाम आगर नगर खेड कव्हे) गांव आकर खान, नगर, खेडा और कर्वट-कुनगर इन सब को (निवेसेह) बसाओ (अडवो देसेसु) अटवो के प्रदेश मे (चिउलसो मे) त्रिपुल सोमा वाले 'गाव आदि बसाओ' (य) और (पुत्ताणि) पुष्प (य) और (फलाणि) फलों की तथा (काल पत्ताइ) प्राप्त काल—लेने के समय पर पहुंचे हुए (कंद मूलाइ) कन्द मूलों को (गेणहेह) ग्रहण करो (परिजणट्टयाए) परिजनों के लिये (सचयं) उनका सचय (करेह) करो (सालो) साल-चान्य (शोहो) ब्रीहि (य) और (जवा) जौको (लुधतु) काटी, (मलिज्जतु) मलो—मसलो (उपणिज्जंतु) हवा से साफ करो (लहुच) और शीघ्र (कोट्टागार) कोठार मे (पविसतु) डालो (अप्पमहळोसगाय) और छोटे, उसकी अपेक्षा मध्यम व उत्तम (पोयसत्था) नौकाके समूह—नौका व्यापारो (हम्मतु) चलो या लूँ (सेणा) सेना (शिज्जाव) निकले (डंमर) समग्र भूमि में (जाव) जावे (य) और (चोरा) भयङ्कर (सगांमा) संग्राम (वरतु) प्रवृत्त होवे (य) और (सगहवाहणाइ) गाड़ी व नौका आदि वाहन (पबहतु) चले (उवणयण) उपनयन संस्कार (चोलग) बालकका प्रथम मुंडन (विवाहो) विवाह सन्नन्ध (जजो) यज्ञ (अमुगम्मिउ) 'ये सब कार्य' अमुक (दिवसेसु) दिनों मे (करणेसु) वालव आदि करणों में (मुहुत्तेसु) अमृत सिद्धि आदि मुहुर्तों में (नक्खत्तेसु) अश्विनी आदि नक्षत्रों में (य) और (तिहिंसु) नन्दा आदि तिथियों मे (होउ) हो-होना चाहिए (अज्ज) आज (ण्हवण) जवन-सौभाग्य आदि के लिये स्नान (होउ) हो (मुदित) प्रमोद युक्त (बहु-खज्जपिक्कलिय) सब मास आदि बहुत से पेय भक्ष्य वाला (कोतुक) रक्षा या क्रीडा आदि (विण्हावणक) विविध मन्त्र मूल आदि के द्वारा संस्कृत जल से स्नान कराना (ससिरवि गहोवरागविसमेसु) चन्द्र और सूर्य का राहु से उपराग-ग्रहण होना और विषम दुष्ट स्वप्न-अमङ्गल आदि मे (सति क-म्माणि) शान्ति कर्म (कुणह) करो (सज्जणपरियणस्स) स्वजन और परिजन (य) और (नियकास) अपने (जीवियस्स) जीवन की (परिरक्खणट्टयाए) रक्षा करने के लिये (पडिसोसगाइ) अपने मस्त्क को पीठ—आटे आदि से बनी हुई आकृति (देह) देओ-दो (च) और (सोसोवहारे) पशु आदि के शिर की

बलि (वश्य) दो-चढाओ (विविहोसहि मग्ग मस भक्खम पाय मज्झाणुत्तेवया पईव
 बलि सग्गळ सुगंवि धूवावकारपुष्पफलममिहे) जो क्षोर्पोषहार विविध औषधि मद्य
 मांस मद्य अन्न पानक-वेद्य, मास्य, माछा अन्वज आदि का अनुष्ठेपन और मद्यते हुए
 सग्गळ प्रदीप, सुगंधियुक्त पूष का अंगार पर डालना तथा फूल फलों से पूर्ण है ।
 (पायच्छित्ते) प्रायश्चित्त—हुष्ट स्वप्न आदि अशुभ के प्रतीकारको (बहुविधेण)
 बहुत प्रकार के (पायाइवायकरजेण) प्रायातिपातरूप क्रिया से (करेइ) करो
 प्रायश्चित्त करने का हेतु—(विचरो कप्पाय तुस्सुमिस्स पायसच्छय मसोमग्गाह पयिय
 अमग्गल निमित्त पडिपायहेत्तं) विपरीत-अशुभमूलक-उत्पाद हुष्ट स्वप्न पाप
 शकुन-सराह निमित्त क्रूरपशुओं का संचार, अमङ्गलकारी-अशुभसुरज आदि निमित्त
 इन सबके निवारणार्थ प्रायश्चित्त करो, (वित्तिच्छेद्य) वृत्तिच्छेद औषिक का
 माया (करेइ) करो अथवा अशुभ को विविधा ठोडरो, (मादेइ किप्पिदायं) कुछ
 भी दान मत दो (सुद्ध हम्मो सुद्धहम्मो) अच्छा मारा अच्छी तरह मारा गया
 (सुद्धु छिम्मो) अच्छी तरह काटा गया (मिमत्ति) अच्छा भेदा गया पेसा (उव्वदि-
 संता) उपदेश करते हुए (एवं विहं) इस प्रकार के (अक्रियं) सुपाबाह को
 (मजेण) मनसे (वाच्चाय) बानो से (प) और (कम्मणा) कर्म—कायासे
 (करेत्तं) करते हैं (अकुसला) जो क्या बोलना व क्या नहीं बोलना इस विचार
 से हीन हैं (अपज्जा) अनार्य हैं (अस्सियाणा) झूठे सिद्धान्त वाले व झूठो भाषा
 वाले (अस्सिय घग्गखिरया) मिथ्या धर्म में तत्पर (अस्सिवासु क्कामु) झूठो कबामों
 में (ममिरसंता) रमण करने वाले (य) और (पटुप्पगार) अनेक प्रकार के (अस्सिय-
 करेत्तु) मिथ्या भाषण को करके (तुद्धा) समुत्पट (होंति) होते हैं ॥ सू० ३। ७ ॥

गाथाय—'१ ई पापो मनुष्य झूठ वासते है का समय और अव स दूर हैं । तथा
 कपटी व चछल हदभाव वाले हैं । आध, छोम भय और हास्य के प्रयोजन से झूठ
 बोलता जाता है । अधिकता से नीचे बड़े गए लोग झूठ बोलते हैं । जैसे—गवाही
 देन वाले १ और २ दून ३, भट-भाट या सैनिक ४, राहजरख ५, जुमारो ६ गिरबी
 छेने वाले ७, मायाबी-कपटी ८ धेयधारी-कुमायु ९, ठग १० वणिक-छेन देन करने
 वाले ११ मक्की गाव बोल करन वाले १२, झूठे सिधे बनाने वाले १३ वस्त्र बनाने
 वाल १४ सुनार १५, शिष्य से जोन वाले १६, ठगाई लोग, परोक्षा और मुसामह
 आदि क जिये झूठ बोलते हैं । झूठे लोग शास्त्र ज्ञान से हीन बिना बिपारे बोलने
 व स हृदय के हर्ष आर घन आदि के अभिमानी होते हैं । प्रविष्टा की रक्षा भी

मिथ्या मान मिळाने के लिये भी झूठ बोला जाता है। अपने आपको बड़े मानने वाले स्वच्छन्दचारी व अनियमित जीवी लोग भी अधिकांश झूठ बोलते हैं। कई दार्शनिक भी लोकोत्तर सृष्टावादी होते हैं। जैसे नास्तिक लोग लोक के स्वरूप को विपरीत रूप से कहते हैं और तत्त्वों का असत् प्रतिपादन करते हैं। वामलोकवादी कहते हैं कि जीव नहीं है, और न वह परभव में ही जाता है। जीव न पुण्य पाप का ग्रन्थ करता है और न उसको शुभ अशुभ फल ही भोगना पड़ता है। पञ्चभूतों का यह शरीर प्राण वायु से युक्त ऐसा भासित होता है। कई एक बौद्ध-आचार्य-विद्वान्, वेदन्ता, सङ्गा, संस्कार और रूप ऐसे पांच स्कन्धों को कहते हैं। इनके विचारानुसार आत्मा यह कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है। किन्तु नेक मतवादी मन को ही आत्मा मानते हैं। दूसरे वायु-प्राण वायु को ही जीव कहते हैं। इनके मत से शरीर सादि सान्त है और वर्तमान जन्म ही एक भव है, क्योंकि शरीर के नाश होने के साथ ही सबका नाश हो जाता है। इस प्रकार ये सब मिथ्या बोलते हैं। शरीर के साथ सब का नाश हो जाता है इसलिये दान व्रत आदि सत्कर्मों का फल भी नहीं होता। हिंसा, झूठ, चोरी, परदार गमन और परिग्रह रूप पापवध का कोई कारण नहीं है। नरक, तिर्यक्ष और मनुष्य योनि, देवलोक तथा सिद्धिगति भी नहीं है। पुरुषार्थ, प्रत्याख्यान और काल मृत्यु भी नहीं हैं। माता पिता श्रद्धा और तीर्थङ्कर चक्रवर्ती आदि भी नहीं हैं धर्म व अधर्म का थोड़ा बहुत फल भी नहीं मिलता। इसलिये इन्द्रिय के अनुकूल सब विषयों में प्रवृत्त रहना चाहिए। क्रिया वा अक्रिया कुछ नहीं है, इन प्रकार नास्तिक वादी मिथ्या कहते हैं। दूसरा कुद्शन कर्तृत्ववादो का है, वे कहते हैं कि-लोक अण्डे से उत्पन्न हुआ और स्वयं ब्रह्मा ने इसको बनाया है। कई सम्पूर्ण जगत् को ही त्रिणुमय कहते हैं, आदि। कई साध्याचार्य इस प्रकार सृष्टा बोलते हैं—“आत्मा एक, अकर्ता और भोक्ता है। सुकृत और दुष्कृतों का कारण इन्द्रियाँ हैं आत्मा तो सब प्रकार से और सब जगह नित्य, निष्क्रिय तथा सत्वादिगु—एसे रहित व कर्म बन्ध से निर्लेप है—इस प्रकार असत्य बोलते हैं। इनके विचार से जो कुछ भी ससार में सुकृत दुष्कृत या इनके शुभाशुभ फल दिखते हैं ये स्वभाव प्रकृति-सं या दैवत-विधि के प्रभाव से होते हैं, यहाँ कोई भी कृतक तत्त्व नहीं है इत्यादि कई कहते हैं, श्रद्धा, रस व सात्वाके अद्विकारी बहुत से आलसी लोग धर्म के विचार से झूठ बोलते हैं। दूसरे अधर्म से राजदुष्ट झूठा आरोप चालते हैं—चोरा नहीं करने वाले को चोर और शोलवान् कोभी दुश्शील तथा अगम्या गामो कहते

हैं। मत्र पुरुष में मन्सरी लोग गुण कीर्ति आदि की अपेक्षा नहीं रखते हुए मूठे शीप लगाते हैं। इस प्रकार ये मूठ बोलने वाले वृमरों के शीप निकालने में तत्पर अपनी आत्मा को गाढ़ कर्म बन्ध से बाँध लेते हैं। दूसरे के मन में आसक्त होकर निक्षेप-ठेप का अपहरण करते हैं और दूसरों के ऊपर असत्य कारणों से अभियोग करते हैं, सोम बस मूठो साक्षी देते हैं। असत्य के मुख्य प्रकार—'अर्थाभोक-धन सम्बन्धी मूठ १ कन्यालीक-छत्रके छत्रकी व सो पुरुष के बाह्य बोझ जाने वाला मूठ २ भूम्यलीक भूमि के विषय में बोला गया ३ गवालीक और पशुओं के छिपे बोला गया मूठ ४ इस प्रकार महा अनर्थ के कारण व नीच गति में पहुँचाने वाले घृणावाद को बोलते हैं। आति रूप, कुछ और झीठ के कारण मूठ दोषा जाता है, यह परमार्थ का भेदक और द्वेष व अनर्थ का कारण है। धावत् जरा मरत्य दुःख और झोक का मूल तथा अशुभ परिणाम से मलिन है। मूठे लोग असत्य गुण को कहने वाले व सद्गुण को छिपाने वाले हिंसाकारी सावध-वचन को बोलते हैं। जो साधु पुरुषों से निर्मित और अभय का जनक है। पुण्य पाप के अनजान व असत्य बाही फिर बहुत तरह की सख क्रिया के प्रवक्त कई तरह के अनर्थ और स्वपर का अपमर्द करते हैं। ये लोग निर्वैयता से सिंकार करने वाले सिंकारियों को उनकी सिंकार-पट्ट, पट्टी या मच्छो आदि बघाते हैं। तथा सिंकारी को उत्तेजित करते हैं। हिंसक लोग भय मरत्य और द्वेष को उत्पन्न करने वाले मलिन भावों से युक्त सत्य को भी हिंसा भय बनाकर बोलते हैं। फिर ये दूसरों के कर्मों को विचारने वाले और बिना विचारे बोलने वाले सहसा निम्न प्रकार से उपदेश करते हैं—ऊठ बैठ आदि का धमन करो। खान हाथी धोँडे आदि करो तो और खरीद करामो बेचो अमुक नीच पकाभी, स्वयंनों को दो मद्य आदि का पान करो, ये वासी दास आदि क्यों बैठे हैं? इनका पाछन करो ये आपका काम करें, गह्न बम तथा खेत आदि बछाये बाँप। यन्त्र या भायन आदि के लिये धूम्रों को काटो इधु को काटो, और तिर्की से तेज निकालो, रस निकालो। मरे घर के छिपे ईंटें पकामो रोठ कोठी तथा दूसरों से जुलवाओ। इस अटवी के मीशान में बड़े गाँव नगर आदि बसाया, पके हुए फूट फल और कच्चे मूठ आदि को मश्रु करो; तथा संघम करो, छाल आदि धाम्यों को काटो पक्षा बनाओ मर्दन करो और दवा में उबालकर साफ करो तथा दीप कोठे में भरों। छोटे बड़े जहाज बछाये जाय, संना प्रयाण करे व मुख भूमि में जाय भयभूर सपाम आद हो, गाड़ी या मोका आदि वाहन बछाये जाय। अमुक

शुभतिथि, दिन, करण, नक्षत्र और मुहूर्त में उपनयन आदि सस्कार हिने जाय, यज्ञ किया जाय । आज बधू का सौभाग्य सूचक स्नान हो, । बहुत प्रकार के खान पान वाला उत्सव किया जाय, और अभिषेक हो । चन्द्र सूर्य के ग्रहण और अमावस्यिक शकुन आदि की शान्ति की जाय । स्वजन परिजन और अपने जीवन की रक्षा के लिये वनावटी शिर चढ़ाओ । पशुओं के शिर चढ़ाओ, जो विविध ओषधि व मद्य मांस फल फूल आदि से पूणे हो । उत्पात व अशुभ स्वप्न आदि के निवारणार्थ बहुत प्रकार के हिंसा युक्त कार्यों से प्रायश्चित्त करो । इसकी वृत्ति बढ करदो कुछ भी दान मत दो । यह अच्छा काटा गया, मारा गया इस प्रकार सावध उपदेश करते हुए मन वचन तथा कर्म से सृष्टा कार्य करते हैं । ये लोग भाषा ज्ञान में अकुशल अनार्य और झूठे सिद्धान्त वाले हैं, मिथ्या धर्म में तत्पर होने से झूठी कथाओं में रमण करते हुए बहुत प्रकार से झूठ बोल कर सन्तुष्ट होते हैं ॥ सू० । ३ । ७ ॥

अब झूठ बोलने का फलदिखाते हैं—

मूल—तत्सय अलियस्स फलविवागं अयाणमाणा वड्ढेति महवभयं अविस्तामवेयणं धीहकालं बहुदुक्ख संकडं नरय तिरियजोणिं । तेषय अलिएणसमणुद्धा आइद्धा पुणवभवंध-कारे भवंति भीमे दुग्गतिवसस्सिवगया । तेय दीसंतिह दुग्गया दुरता परवसा अत्थभोगपरिवज्जिया असुहिता फुडियच्छवि धीमच्छविवक्षा खरफरुमविरत्तज्झामज्झुसिरा निच्छाया लल्ल-विफलवाया असकतमलकया अगंधा अचेयणा दुभगा अकंता काकस्सरा हीणभिन्नघोसा विहिंसा जडवहिरन्धया य सम्मणा अकंतविकय करणाणीया शीयजण निसेविणो लोग सरहणिज्जा भिच्चा असरिसजणस्स पेस्सा, दुम्मेहा लोक वेद अज्झप्प समय सुतिवज्जियानराधम्मबुद्धि वियत्ता अलिएण य तेणं पडज्झ-माणा असंतण्ण य अवमाणा पट्टिमंसादिकखेव पिसुणभेयण गुरुबंधव-सयण-मित्तवक्खारणादियाहं अब्भस्खाणाहं बहु-विहाहं पावेति, अणुवमाणि (भणोरमाह) हिययमण दूमकाहं, जावज्जीवं दुरुद्धराह । अणिट्ठखर फभस वयण तज्जण निव्वज्जण

दीर्घवदण विमणा कुभोयंणां कुर्याससा कुधरहीसु फिलिस्मता
 नैव सुई, नैव निष्पुई वधलमति । अथत विपुलेदुस्ससपनप
 लिता । ऐसो सौ अक्षियवयणस्स फलविषाओ इहओइओ पर
 ओइओ अय्येसुओ बहुत्तुस्सो मेइअओ धमुरयप्पगोहो वारुओ
 ककसो असाओ वासिसेइस्से हिं हुअइ । न य अवेवयिस्ता
 अत्तिपहु मोक्कओति एवमाईसु नार्थकुवनवणी महप्पाजिओउ
 वीरवरंमामपेओ कइसी य अक्षिय वयणस्स फल विषाग । एवतं
 वित्तिपि अक्षियवयण लहुसगलहु चवत्त मणिय मयकर तुई
 कर अयसकर वरकरण अरति रति राग दीस मण सुक्खिस्स विर
 यण अक्षियणिअदि साविजाग बहुत्त एपिअण निमाधिय निस्सस
 अप्पक्कयकारक परमसाहुगरहाणित्त परपीलाकारक परमकण्ह
 छेससाहिय तुग्गतिविमिवायवइहणं पुण्णमववर विरपरिअिय
 मणुगय वुरत्त (तिअमि) वार वित्तिअ अयम्मवार समत्त ॥
 ४ ॥ सू० ८ ॥

छाया—“तस्य चाक्षीकस्य फलविपाक मज्जानन्ती बद्धेयन्ति महामयामविनाम
 वैशना दीर्घ काष्ठवहु तुक्क मज्जां नारक विवैग्योनिप् । तेन चाक्षीकेन समनुवद्धा
 आदिग्धा पुमर्भवाभ्यकारे भ्रमन्ति मोमे दुग्गतिवसतिमुपगताः । तेन दृश्यन्ते दुर्गावा
 दुरन्ताः परबद्धा अर्थभोगपरिवर्जिता अमुलिता स्फुटितच्छवि बोमसधविदर्पा
 कर परव विरक्त ध्याम सुपिरा निष्छाया लज्जविफळवापाः असंस्तृताऽस्तृता अग-
 न्धा अवेतना दुमगा अकान्ता काक्खरा हीनमिअपोया विहिंसा अदवविराज्ज
 काअ मम्मणा अकान्त विह्वल करणा नोआ नीअ वन निवेदिणो ओकाईभोया भुत्वा
 अलदणजनस्य प्रेय्या दुमैवस ओकयेवा अयस समव-भुति-विपरिजिता नरा धमभुद्धि
 विकृताः असोकेन च तेन प्रवृत्तमाना अशास्तकेन च अजमानन-पूठमासाविसेप
 पिहम भेदम सुववाण्णव ववत्तन मित्रा पक्षारणादिकामि-अय्यात्त्वानानि बहुविधानि
 माप्नुवन्ति । अममोरमाणि हवयमनोशवकानि वावअजीव तुक्कराणि । अमिष्ट छर
 पटप वपन वज्रन मिअस्सत वीन ववत्त विमनस कुमोजना कुवासस कुवसतिपु
 द्विअम्भो नैव सुअ नैव निवृत्तिमुपलभन्तेऽप्यस्य विपुल तुक्कसवसम्भोता । एव
 याऽक्षीकवचनस्य फल विपाक वेइओकिक्कः पारओकिओऽस्समुओ बहुत्तुओ महामवो

बहुरजः प्रगाढो दाहणः कर्कशोऽसातो वर्षसहसैर्मुच्यते, नचाऽवेदयित्वाऽस्ति हि मोक्ष इति । एवमाख्यातवान् ज्ञातकुन नन्दनो महात्मा जिनस्तु बीच धर नाम वेयः कथं प्रियाति चालीकवचनस्य फल विपाकम् । एतत्तद्वितीयमपि अलोक वचनं लघु स्वक लघुचपलभणित भयङ्करं दुःखकरप्रयशस्कर वैर कारकम् भरति रतिरागदोष-मनः सङ्क्षेप विरचनम् अलीक निकृतिसाति थोग बहुल नीच जननिपेवितं नृशस-प्रत्ययकारक परमसाधु गह्वराय पर पोडा कारक परम कृष्णलेश्या सहित दुर्गति विनिपातवर्द्धनं पुनर्भवकर चिपचिचा (चिचा,) उलुगत्तं दुन्नर (दुरुक्त) इति त्रिविमी द्वितीयम धर्मद्वारतमाप्तम् ॥ २ ॥ सूत्र ४।८ ॥

अन्व—“(तस्य) ओर उत (अलियस्त्र) भूठ के (फलविभाग) फपरूप परिणाम को (अयाण माणा) नहीं जानते हुए (महवभयं) भयङ्कर (अविस्वामवे-यण) अविश्रान्त वेदना धाली (दीहफाल) दोषे फाल की स्थितियुक्त (बहु दुःख सकल) बहुत दुःखों से पूर्ण-ऐसे (नरय तिरिय जोणिं) नरक और तिर्यग्योनि को (बड्ढेति) बढ़ाते हैं, (तेणय अलिण) और उस भूठ से (समणुवद्धा) अच्छी तरह बड़े हुए (आइद्धा) अच्छी तरह से बड़े हुए (भीमे) भयङ्कर (पुणवभव फारे) पुनर्भव-जन्म न्तर रूप अन्धकार से (दुगति वधहि मुवगया) दुर्गतिवास को प्राप्त हुए (भमति) भटकते हैं (तेय) और वे-मृषावादो (दोसविह) इस सनार में ऐसे दिखते हैं (दुगया) घुरी हालत वाले (दुरता) दुःख मय अन्त वाले (परवसा) पराधीन (अत्थभोगपरिविजया) धन और धनोपभोग से हीन (असुहिया) सुख से या मित्र से रहित (फुडियच्छवि बोमच्छविबन्ना) फटो हुई चमड़ी वाले, विकार युक्त रूप और खराब वर्ण वाले हैं (स्तर फरुस विरत्तज्झाम ज्झुसरा) अत्यन्त ककश स्पर्श वाले, निरानन्द, कान्तिहीन और सारहीन शरीर वाले (निच्छाया) शोभा रहित (लल्ल विफळवाया) अव्यक्त व सफलता से रहित वाणी वाले (असकन मसकया) सत्कार और सत्कार से रहित हैं (अगधा) बड़बूदार देह वाले-दुर्गन्ध (अचेवणा) विनिष्ट चेवना से हीन (दुभगा) दुर्भग्य कमनसीब, (अकता) अशोभन (काकस्सरा) काक के समान रूक्ष स्वर वाले (हीण भिन्न घोसा) धीमी और अस्फुट-फटे हुए स्वर यानी आवाज वाले (विहिंसा) विशेष हिंसा वाले (य) और (जड बहिरवया) गूँगे बहरे तथा अन्धे व, (मम्मणा) अव्यक्त बोलने वाले होते हैं (अकत विकप्रकरणा) सुन्दरता रहित विकृत इन्द्रिय वाले (एया) नीच (नीयजण निसेविणो) नीच जनों को सेवा करने वाले (लोग

गच्छतिगच्छा) लोक में निग्वनीय (मित्रा) भृत्य (असत्सि जगत्स पेयमा) असमान
 शीघ्र बाढे लोगों के मोकर या ट्रेपवाण होते हैं (कुम्मेहा) दुष्ट मुष्टि (लोक पेद
 अक्षय्य समयसुनिवृत्तिग्या) लोकसास्त्र-भारत आदि, वेद-सूक्त साम आदि भक्ष्यभार
 शास्त्र-मनो विजय का प्रतिपादन करने वाले शास्त्र और समय-जैन बौद्ध आदि
 सिद्धान्तशास्त्र इन सबोंसे परिबर्धित अर्थात् सास्त्र ज्ञान से शून्य (धम्म मुष्टि
 विपदा) धम्म मुष्टि से विकृत ऐसे (नरा) नर (अक्षिपय व तेण) उस पूष कथिन
 अलोक भाष्य रूप पाप से (पङ्कसाणा) अक्षते हुए (असत्पण्य) भी अनुप
 शान्त शून्य व रूप पाप से (अक्षमाणप्रतिष्ठमता द्विक्लेष विमुक्त मेवण गुरु वचन
 क्षयम मित्र वरुकारणादियाह) अपमान पतोक्ष में वृषण प्रकट करना-निम्दा और
 पुगल प्राण से परस्पर का प्रेम भङ्ग और गुरु पाण्डव, स्वजन तथा मित्र जनों के
 विरस्कार वचन इत्यादि (बहु विहाई) बहुत प्रकार के (अक्षमरुक्तावाह) सुठे
 आतोषों को (पार्थेति) प्राप्त करते हैं जो (अमयो रमाह) अमनो राम (द्विप-
 मणदूमकाई) हृदय और मन को बढाने वाले-वपवाप करने वाले तथा (आब-
 वजीप) जीवन पयनन (दुर्कसाह) दुष्ट से पार करने योग्य होते हैं । (अगिद्ध
 शर फलन वचन वञ्जन निष्प्रकण्ण शेष वक्ष्य विमना) अमिष्ट और अत्यन्त
 कठार वचन से वर्जना व निमस्तेता पान के सब कारण जो दोन यदन और वश
 समन पाठे हैं (कुमोवणा कुवाससा) मांस आदि कुत्सिक मोहन और सारा वस्त्र
 बाढे हैं (कुनसहोसु किन्तिस्त्वा) कुमारों में छेद पाते हुए (नेचमुह) न द्वातीरिक
 सुख का और (नेच निष्पुह) न मांस सन्तोष को हो (वज्रमति) पाठे हैं,
 (अथ व विपुल दुष्टप्रसव संपत्तिवा) अत्यन्त विशाल सैकड़ों दुष्टों से व जोष सन्ते
 रहते हैं । (अक्षिपयण्यार) सुठ घोड़ने का (एलोतो) यह ऊपर कहा हुआ वह
 (वज्र विवागो) कर्त रूप परिणाम (इहो इमो पर कोइमो) इस लोक सम्बन्धी
 तथा परलोक सम्बन्धी (अण्मुहो गृह्णुहो) अन्तर्मुख व अधिक दुष्ट बाढा है
 (महम्मामा मदाभय का कारण (बहुदण्यगायो) कर्म रज की अधिकता से अत्यन्त
 गाढ (दाहो) दह्य को बिहाराण करने वाला (कलसो) कठार (अत्तामा) दुष्ट
 रूप (बाधसदस्से) दशरों वर्षों से (मुष्टि) दृष्टता है (मय अपेक्षिता) किन्तु
 बिना भोने (अयिष्टु मोक्षयाति) मोक्ष-वसकम से मुक्ति नहीं होश है (माव कुञ्ज
 मरुतो) मात कुञ्ज मरुत (जिजो) जिनवर (वोर वर नाम धरजा) मदाधीर माम
 बाढे (मरुता) महात्मा ने (वरमाईसु) ऐसा कहा है (व) और (अक्षिपय

रास) झूठ बोलने के (पर्यं) इस (फल विभाग) फल रूप विपाक को (कहेसी) भविष्य में भी कहेंगे । (त) वह (वितीयपि) दूसरा भी (अलिय वयण) मृपावाद रूप आसय (लहुस गलहु चवलम०) छोटे से छाटे ओर चञ्चल मनुष्यों से कहा गया तथा (भयकर) भयङ्कर (दुःखकर) दुःख कारक (अयसकर) अकोर्ति करने वाला (वेर करग) वैर का कारण (अरतिरति राग दोस मण संकिलेस विरयण) अरति रति और राग द्वेष रूप मन के संश्लेश को करने वाला (अलिय नियडि सादि जाग बहुल) झूठ निष्फल कपट और अविश्वास वृत्ति की प्रधानता वाला है (नीयजण-निसेविय) नीच जनों से सेवित (निम्सस) घृणा व दया रहित (अपश्य कारक) अविश्वास कारक (परमसाहु गरहणिज्ज) परम साधुओं से निन्दनीय (पर पीला-कारक) दूसरों को पीडा देने वाला (परम कण्ह लेस सहिय) परम कृष्ण लेश्या वाला (दुग्गति विनिघाय बहुण) दुर्गति पतन को बढाने वाला (पुण्णभवकर) पुनर्भव जन्मान्तर का कारण (चिर परिचिय मणुगय) चिर काल का परिचित होने से पोछे रहने वाला तथा (दुरत) दुःख से अन्त वाला है । ऐसा मैं कहता हूँ । (विनिय अधम्म०) दूसरा अधम द्वार समाप्त हुआ । २ । सूत्र । ४ । ८ ॥

भावार्थ—‘उपरोक्त सूत्र में कहा गया है कि असत्य वचन के कटु फलों को नहीं जानते हुए झूठे लोग लंबे काल के लिये भयङ्कर नरक व तिर्यग् योनि को बढ़ाते हैं । अभत्य से युक्त प्राणी पुनर्भव रूप अन्धकार मय कोठे में दुर्गति भोगते हुए भटकते हैं । मनुष्य होकर भी वे परवश बने हुए साधन हीनता की दशा में बुरी स्थिति का अनुभव करते हैं । शरीर से भा वे लोगों में बुरे दिखते हैं क्योंकि वे गूरे बहरे व अन्धे होते हैं । लौकिक या लोकोत्तर शास्त्र से तथा ज्ञान व बुद्धि से भी वे विकल होते हैं । झूठ रूप पाप के प्रभाव से वे अपमान और विरक्तार पाते हैं । झूठे आरोप में पड़ते हैं जो यावज्जीवन के लिये दुःखद्वार होते हैं, इससे दीन बने हुए वे लोग बुरे खान पान रहन सहन और कुपाम में छेश के अनुभव करते हैं, कभी भी शारीरिक सुख व शान्ति नहीं पाते । प्रत्युत सैकड़ों तरह की दुःखान्नि में जलते रहते हैं । झूठ बोलने के ऐसे उभय लोक सम्बन्धी कुकर्मों को ज्ञात कुल नन्दन महात्मा भगवान् महावीर ने फरमाया है जो बहुत भयङ्कर है व हजारों वर्ष तक भोगने पर ही छूटता है । बिना भोगे इससे मुक्ति नहीं होती । यह दूसरा अधमद्वार अर्थात् मृपावाद झूठे हलके और चञ्चल लोकोंसे कहा गया है । अन्य उपसहार

पूषत् है। सार यह सुपावाद् रूप महापाप नीचों से सेवित व भविष्यत कारक तथा दुर्गति में गिराने वाला और दुष्ट है ॥ इति । २ । ४ । सू० ८ ॥

“अथ तीसरा अधर्मद्वार”

सम्बन्ध दूसरे अप्ययन में असत्य भाषण रूप आसन्न को कहा, जब इस तीसरे अप्ययन में भवत्तादान—घोरी के तीसरे भाषण को कहते हैं क्यों कि चारों काने बाँधे प्रायः सुठ बोझते हैं। दूसरे पाठ असत्य भाषो जीव धर्म, समाप्त और रात्र से निषिद्ध वचन बोझते हैं, तथा दूसरे से नहीं कड़ो गई और न की गई बातें कहते हैं और पदार्थों के सत्य रूप को छिपाते हैं जो एक प्रकार से चोपे लोगो है, इसलिये सुपावाद् के अनन्तर तीसरे अप्ययन में भवत्तादान को करते हैं—

प्रथम सूत्रकार भवत्तादान—घोरी का स्वरूप कहते हैं—

मूल—“अन् ! तद्वचनं भवत्तादाय दूरं वह मरण भय कलुष तास्य पर स सिगऽभेज्ज कोममूल काष्ठविषम समिय अहो चिद्धम तयह पत्थाणपत्थोह मइय अकि सिकरण अणज्ज छिहमतरे धिधुर वसण मग्गण ठस्सव मत्तप्पमत्त पसुत वंषणफिन्धवण घायण-पराणिहुय-परिणाम-तप्परजण पटुमय, अकलुण राय पुरिसरफिन्धय, सपा साहुगरदण्डिज्ज, पियजण-मिच्छजण-भेद विप्पीति कारक, रागवाप पणुत्त पुणोय उप्पर-समर-सगाम-उमर कलि-कलह वेह करण दुग्गति विणिमाय यद्धरण, भवपुण्ण वत्थकरं चिर परिचित मणुगयदुरम, तद्वचनं भवत्तादाय दूरं सू । १६॥

छाया—‘अन् ! तद्वचनं भवत्तादाय दूरं वह मरण भयकदुर प्राप्त पर घरा’मिप्पा कोम मूल काष्ठ विषम संसितम् अया चिद्धम कृष्ण-पत्थान-पत्तोद मदिकम् अकारिणकरणम् अनाय छिद्रात्तर विधुर वसतन मार्गेशासव मत्त प्रमत्त प्रमुन वदनाऽक्षेपण पात्रम परा’निष्ठ परिणाम तापरजन वटुमत्त अकल्प्य राज पुण्य रक्षित सदा साधुगद्वीथं प्रियजन मित्रजन भद्र विमोक्षि कारक रागराग वदुर्ल पुनश्च वटु समर सगाम उमर कलिकलह वेध करण दुर्गति विनिपात यद्वत्त भव पुनश्च करण विर परिचितमनुगमे दुग्धं तृतीयमधमद्वारम् । १ ॥ सू० ९ ॥

अन्व०—“सुधमं स्वामी कहते हैं—(जन्म !) हे जन्म ! (तद्व्यय) आस्रव द्वारों में तोसरा आस्रव द्वार (अदत्तादाणं) अदत्त का ग्रहण करना—चौर्य कर्म है जो (हर दह मरण भय कलुष तासण—) अमुक के द्रव्य का हण कर, तथा जला ऐसी प्रणाली करना अथवा हरण, दहन और मरण व भयरूप पातक के त्रास उत्पन्न करने वाला (परिसतिगऽभेज्ज लोभ भूल : दूसरे के धन में रौद्र ध्यान युक्त लोभ—मूर्च्छा, ही जिसका मूल है ऐसा (काल विषम ससियं) आधो रात आदि काल और पर्वत आदि विषम स्थान में जो आश्रित है (अहोऽच्छिन्न तण्ह पत्थाण पत्थोह मइय) नीच गतिओं की ओर लोभियों के प्रस्थान करने में प्रेरणा करने वाला बुद्धि की रखने वाला (अकिंति करणं) अकीर्ति करने वाला और (अणञ्जं) अनार्य कर्म है (छिद्दमत्तर विधुर वसण मग्गण—उत्सव मत्तप्पमत्त पमुत्त वच्चणक्खिन्नवण घायण पराणि हुय परिणाम तप्परज्जण बहुमय) छिद्र-प्रवेश का मार्ग, अन्तर-समय मौका तथा विधुर-नाश-दोष, व्यसन-राजादिसे होने वाला कष्ट इन को खोजना उत्सवों में मस्त और प्रमादी बने हुए तथा सूते हुए का ठगना, चित्त को व्यग्र बना देना और मारना इन सब में तत्पर और अनुप शान्त परिणाम वाला तथा चोरों से मान पाने वाला है [वाचनान्तर में—(छिद्द विषम पावग) छिद्र और विषम समय में होने वाला पाप (अण्हिय परिणाम) सक्तेश युक्त परिणाम वाला] (अकलुण) कल्याण रहित—निर्वय (राय पुरिधरक्खिय) राज पुरुषों से रक्षित अर्थात् राज-पुरुषों से रोका गया (सया) सदा (साहु गरहणिज्ज) साधु पुरुषों से, गद्दी करने योग्य, निर्विदित (पिचज्ज भित्तज्ज भेत्त विप्पोति कारक) भियजन व मित्र जनों के भेद तथा अप्रति को करने वाला (राग दोष बहुलं) राग द्वेष की अधिकता वाला (पुणोय) और फिर (कप्पर समर सगाम डमर कल्लि कउह वेह करण) अधिकता से जन संहारक जो सप्राम मोरचा डमर-भय के कारण रख से भागता विह्वर-पाप युक्त कलह और पञ्चत्ताप इन-सब को बढ़ाने वाला (दुग्गइ विणिवाय बहुण) दुर्गति में पतन को बढ़ाने वाला (भवपुण भवकर) और संसार में बारबार जन्म कराने वाला तथा (चिर परिचिय मणुगय) चिर काल का परिचित होने से अनुगत-साथी और (दुरत) दुःख से अन्त वाला ऐसा (तद्व्यय) तोसरा (अहम्म द्वार) अधर्म द्वार है ॥ सू० १।९ ॥

भावार्थ—इस सूत्र में सुधमं स्वामी ने अदत्तदान-चोरीका स्वरूप कहा है। यह

हरण आदि से ब्रह्म पेश करने वाला है। इसका मूल छोम है। यह जोरो कम प्राय विषम स्थान और कुसमय में किया जाता है। दुर्गति के अनुकूल समस्त बाधा अकारि कारक और अनर्थ कम है। बाह्य प्रेमो मनों में भेद भार अग्नि स्रग्भ करने वाला तथा राग द्वेष की प्रधानता याज्ञा है। अनसहारक संयाम-छाई तथा पञ्चरात्र का कारक है। दुर्गति में गिराने बाधा और फिर काठ तक संसार में काम धारण करके भी दुःख से मत्त करने योग्य है। इस प्रकार उभय छाक में अद्वित कारक यह जोरो कर्म तीसरा अथम द्वार है ॥ १। ९ ॥

अथ दूसरा नाम द्वार कहते हैं—

मूल—‘तत्स य यामाणि गोप्ताणि ह्येति तीस, तजदा चोरिक
१ परहृड २ अदत्त ३ कुरिकड ४ परछामो ५ असजमा ६ पर-
घणमिगेही ७ लोलिफ ८ तप्सरत्तणतिय ९ अवहारी १० हृत्थल
(हृ) तण ११ पावकम्मकरण १२ तणिली १३ हरण विप्प-
यासो १४ आदियया १५ लुपया घणाय १६ अप्पघयो १७ आवीलो
१८ अफनेवा १९ लोवा २० विक्कयेवो २१ कूडया २२ कूलमनीय
२३ कवा २४ छात्तप्पण पत्तयाय २५ (आसमयाय) दमणं २६
इच्छाकुच्छाय २७ तयागहि २८ नियदिकम्म २९ अपरत्तुनि
३० विय तत्स एयाणि एयमाहीणि नामभज्जाणि एमि तीस
आदिता दाणस्स पाव कलिक्कुल कम्मपटुत्तस्स अप्पगाइ ॥
सू० २। १० ॥

छाया—“तस्य च नामानि गोप्ताणि मयस्मि त्रिशम् तानि यथा—“चोरिकम् १
परहृडम् २ अदत्तम् ३ कुरिकम् ४ परछामम् ५ असजम् ६ परघणम् ७ लोपम् ८
तप्सरत्तमि ९ अपदम् १० दगात्तुम् ११ पाव कम करणम् १२ तेनिका १३ हरण
विप्पयासो १४ आदानम् १५ आपना घनानाम् १६ अनयम् १७ अगमा १८
आश्रयो १९ शेष २० विक्षय २१ कूडता २२ कुलमपीय २३ कवा २४ छात्तपम
माधना २५ आगतनाय अमनम् २६ इच्छामूढता २७ तप्पगृहि २८ निवृत्ति
वम २९ अपरो (परा) भाग ३०। इत्येति तस्ये तानि परमाहीनि नामानि। अथस्मि
त्रिशम्, अदत्तानाम् पाव कलिक्कुल कम वटुत्तयाने जानि ॥ सू० २। १० ॥

अदत्तादान के नाम कहते हैं—

अन्वयात्—“(तस्य) उभ चौर्यकर्म के (गोण्णाणि) गुण-निष्पन्न (तीस) तीस (णामाणि) नाम (ह्येति) होते हैं (तन्नाहा) वे इस प्रकार हैं (चोरिकं) चुरालेने से ‘चोरिका’ कहते हैं, (परहृद) दूसरे के पास से हरण करने से ‘परहृद’ कहाता है (अदत्त) बिना दिया हुआ होने से ‘अदत्त’ (कूरिकड) और क्रूरचित्त वाले से किया जाने के कारण इसे ‘क्रूरिकड’ कहते हैं (परलाभो) दूसरे के भ्रम और आश्रय का लिया जाता है इसलिये ‘परलाभ’ (असज्जो) सदा उसमें समय नहीं रहता, वास्ते यह असंयम कहाता है (परधनमिगेही) दूसरे के धन में लालच होने से चोरी की जाती है वास्ते इसे परधनगृद्धि (लोलिक) और लौल्य कहते हैं (य) और (तत्करत्तणत्ति) चोर का कर्म होने से ‘तत्करत्त्व’ है (अवहारो) स्वामी की इच्छा बिना लिया जाता है इसलिये ‘अपहार’ कहते हैं (हत्थडुत्तण) दूसरे के धन को चुराने से जिसका हाथ कुत्तित होउ सका कार्य, अथवा हाथ की चालाकी के कारण इसको ‘हत्थलघुत्व’ कहते हैं (पावकम्मकरण) इसे ‘पाप कर्म करण’ भी कहते हैं (तेजिकं) चोर का कार्य होने से इसको ‘तेजिका’ कहते हैं (हरण विप्पणासो) चुरा के दूसरे के धन को नष्ट करने के कारण यह ‘हरण-विप्रयाश’ कहाता है (भादियणा) परधन का ग्रहण करने से इसको ‘आदान’ कहते हैं (लुपणा धणाण) धन को लुप्त करने से ‘धनलुम्पना’ कहाता है (अप्पचजो) अविश्वास का कारण होने से इसे ‘अप्रत्यय’ कहते हैं (ओवोळो) दूसरों को पीडा करने से ‘अवपीड’ (अवखेवो) पर द्रव्य को अलग रखने से ‘आक्षेप’ (खेवो) क्षेप और (विखेवो) ‘विक्षेप’ भी कहते हैं (कूडया) तराजू आदि को खोटा करना भी चोरी है इसलिये इसको ‘कूटता’ कहते हैं (कुळमसी) कुडको मलिन करने के कारण ‘कुळमसी’ (म) और (कखा) तीव्र इच्छा के कारण यह ‘काक्षा’ कहाता है (लालपणपत्थथा) निन्दित-लाभ की प्रार्थना करने से या दीन वचन युक्त प्रार्थना करने से ‘लालपन-प्रार्थना’ (य) और (वसण) विपत्ति का कारण होने से ‘न्यसन’ कहाता है (इच्छामुच्छा) परधन में इच्छा व आसक्ति होने से ‘इच्छा मुच्छा’ (म) और (तण्हागेही) प्राप्त द्रव्य का मोह व अप्राप्त की वांछा होने से ‘तृष्णागृद्धि’ कहते हैं (नियडि कम्म) कपट से यह कार्य किया जाता है इसलिये ‘निहति कर्म’ कहते हैं (अपरच्छतिविथ) और यह दूसरे की दृष्टि से छिपाके किया जाता है; वास्ते इसे ‘अपराध’ भी कहते हैं । (तस्स आदि) उस

अव्या दान कि (एयाणि) उपरोक्तये (तीस) सोस (नाम चेश्याणि) माय (होवि) होते हैं और (एषयावोणि) इत्यादि (पाप-कर्मि कलुस-कम्म बहुलस्य) पाप और कलह से मलिन मित्र होइ आदि कर्म की अधिकता वांछे मर्यादान कं (भणोगाह) अनेक नाम हैं ॥ सू. १२ । १० ॥

भावाय—इस अव्या दान के तीस नाम हैं, जैसे—चोरिका १ परवृत्त २ अपहृत ३, मूर्च्छित ४, परलम्भ ५, असंयम ६, पर धन गृही ७, छीस्य ८, त स्फुट ९ अपहार १०, इस्तप्युता ११ पापकर्मोत्तरण १२ स्तेन्य १३, हरण विप्रवास १४ आवान १५, घनलुप्यता १६, अपत्यय १७, जयपीडन १८ आक्षेप १९, खेप २०, भिक्षेप २१ छूटवा २२, कुञ्जमयी २३, कांक्षा २४ आलपन प्रार्थना २५, स्वसन २६ इच्छामूर्छा २७, वृष्णा गृह्य २८, निकृति २९ और अपराध ३०, ये अव्यादान के तीस नाम हैं । पाप और कलह से मलिन कर्म मुक्त ऐसे वस्तुके अनेक नाम होते हैं ॥ ३ । १० ॥

अथ चौर्यकर्म करने वालों का वर्णन करते हैं—

इसमें चोरी कौन और कैसे करते यह बताया जायगा,

मूल—“तपुण करेति चोरियं तत्करा परवृत्तहरा छेया कय कण्य-कद्धकज्जा माहसिया ललुससगा अति-महिद्ध-लोभ गात्थो वहर-ओषधिका य नेहिया अहिमरा अणभंजक-भग्ना संघिया रायवुद्ध-कारीय विसयनिच्छूद—लोकवस्त्रा, ठहोइक गामघायय-पुरघायग-पंधघायग-आलीवग-तित्थमेया ललुह त्वसपउत्ता जूइकरा लडरकम्पथीचार—पुरिसचोर-संविच्छपा य गंधिमेवग-परधणहरण-लोमाधहार अण्णोवी इडकारक निम्मइग-गूइचौरक-गोचोरग-अस्सचोरग । वासिचौराय, कए चोरा,—ओकहुक-सपवायक—उच्छिपक—सत्थघायक—बिक्कोलीकारकाय निर्गगाह—विप्पशुपगा पट्टविहतेविप्पहरण बुद्धी एते अण्णेय एवमाधी परस्स वड्याहि जे अविरया । पिपुष यक्क-परिग्गहा य वड्ढे रायावो परधणंमि गिद्धा सरैय वड्ढे असत्तुट्ठा परधिसए अहिर्हणाति, ते लुद्धा परधणस्स कज्जे पठ रंग-विमत्त-वड्डसमग्गा निच्छिय-धरजोह-सुद्धसद्धिय-अहम

हामिति दप्तिर्हि सेनेर्हि संपरिवृष्टा पउम-सगड-सूह-चक्र-सागर
गरुडबृहतिर्णीह अणिर्णीह उत्थरंता अभिभूय हरन्ति परधर्णाहिं

छाया—“तत्पुनः कुर्वन्ति चौर्यं तस्कराः परद्रव्यहराश्छेकाः कृतं करणलब्धं छेकाः,
साहसिकाः, लघुत्वका अतिमहेच्छलोभमस्ता ददर्शऽपनीडकाश्च, गृद्धिकाश्चाऽभिमराः,
शृणभक्षक-भग्नसन्धिका, राजदुष्टकारिणश्च, विषयनिर्घाटितं लोकवाद्या, उग्रोर्हकं
ग्रामघातक-पुरघातक-पथिघातकाऽऽदीपक-वीथ्यभेदा लघुहस्तमम्प्रयुक्ता, चूतकाराः
खण्डरक्षुःश्रीचोरकपुरुषचौर—मन्धिच्छेदकाः, मन्धिभेदक—परधनहरण—लोगप-
हाराक्षेपिणः, हुठन्त्याकाः, निर्मदक—गूढ चौर-गोचौराऽश्वचौर—दासोचौराश्च, एक-
चौराः, अपकर्षक—सम्प्रदायकाऽवच्छिन्नम्पक-सार्थघातक-विलकोलोकारकाश्च, निर्घाह-
विप्रलोपका, बहुविधस्तेनकरणबुद्धयः, एतेऽन्ये चैत्रमादयः परस्य द्रव्याद् वेऽवि-
रताः। विपुलफलपरिग्रहाश्च बहवो राजानः परधनेषु गृह्णा, स्वके द्रव्येऽवन्तुष्टाः,
परविषयानभिग्रन्ति, ते लुब्धाः परधनस्य कार्यं चतुरङ्ग-विभक्तयत्नसमग्रा निश्चित
वरयोध-बुद्धभक्षिताऽहमहमिकादर्पितैः सैन्यैः सम्परिवृताः पञ्चशकट-सूची—चक्र-
सागर-गरुड-व्यूहादिकैरनीकैरुत्तरान्तोऽभिभूय हरन्ति परधनानि। सू०। ३। १०॥

अन्वयार्थ—“(तंपुन) फिर उस (चोरिय) चोरो को (तस्कर) तस्कर (करैति)
करते हैं, जो (परद्रव्यहरा) पर द्रव्य का हरण करने वाले (छेया) कुशल (कथ-
करण लठ्ठलम्पका) बहुत बार चोरी कर्म को किये हुए और अवसर को जानने वाले
हैं, (साहसिया) साहसिक (लघुसगा) लुच्छ आत्मा वाले (अतिमहिच्छलोभ-
मत्या) बहुत बड़ी इच्छा वाले और लोभ से मस्त (य) और (वहर ओधीतका)
बच्चनों के आहम्यर से जो अपने आत्मस्वरूप को विशेष लजाने वाले या पीडा
पहुचाने वाले हैं, (गेहिया) अतिलोमी (अहिमरा) सामने आए हुए को मारने
वाले (अण भजक भग्न सधिया) शृण को नहीं देने वाले और विरोध में सन्धि
को तोड़ने वाले हैं (य) और (राजदुष्टकारी) खजाना लूटना आदि राज विरुद्ध
कार्य करने वाले (विषयनिच्छेद—लोकवर्णा) विषय अर्थात् देश से निकाले हुए
तथा लोक से बाहर निकाले गए (उग्रोर्हकं गामघातय पुरघातय पथघातय आलि-
वग तित्यमेया) घातक तथा ग्राम, नगर, और मार्ग में घात करने वाले—लूटने वाले,
जलाने वाले तथा वीथी में भेद करने वाले (लघुहर्त्य सपेता) हाथ की चाँलोंकी
से युक्त (जूईकां) जुआरी (खंड रक्खत्योचौर पुरिसचौर संधिच्छेया) चूंगी
लेने-वाले या कोतवाल, स्त्री चोर-स्वयं स्त्री को या स्त्री के पास से अथवा स्त्री रूप

बतकर चुराने वाले, पुरुष चोर-पुरुष को चुराने वाले भीर संधि छेदक-जात छोड़ने
 वाले (य) भीर (गंधिमेवग) ग्रन्थि काटने वाले (परचन हरण छोमावहार
 अस्त्रेयी) परचन हरने वाले, निर्दयता से या भय से दूसरों को मारकर चुराने
 वाले-छोमावहार, बलीकरण आदि के द्वारा आक्षेप करके चुराने वाले (हठकरणा
 हठसे चोरी करने वाले, (निम्नहग गूढचोरग गोचोरग अस्त्रधारग वासिचोरा)
 सदा दूसरे का उपहार करने वाले, गुप्त चोर, गो चोर-गौ चुराने वाले अथ चुराने
 वाले भीर वासो चुराने वाले (य) भीर (एगचोय) अकेले चोरी करने वाले
 (ओकबुक संप्रदायक चर्चिष्ठरक सत्यपायक बिजकोलोकारक) घरसे द्रव्य निकालने
 वाले या चोरों को चुकाकर दूसरों के घर चुराने वाले, भयवा चोरों को सहायता
 पहुंचाने वाले, संप्रदायक-चोरों को भोजन आदि देने वाले चर्चिष्ठरक सार्ध पावक
 समूह को छूटने वाले बिजकोलो-दूतों को बोला देने के लिये बनाशदो आवाज से
 बोलने वाले (य) भीर (निग्गाह विप्लवग) राधा से निगूरीव भीर छऊ से
 आका को छुस करने वाले (बहुविह वैष्णिक हरण बुखो) बहुत प्रकार की चोरी से
 हरण करने की बुद्धिवाले (धने) ये (जमेव) भीर पेसे ही दूसरे (एवमाही)
 इत्यादि (जे) जो (परचन) दूसरे के (इन्हाह) द्रव्य आदि में (अबिरया)
 इच्छा से अनिष्ट हूँ अर्थात् परचन की आकांक्ष रखते हूँ । (विपुलवस्तुपरिगहा य)
 भीर अधिक वस्तु व अधिक परिवार वाले (बहवे) बहुत से (रायाया) राधा जोग
 (परचनमि०) दूसरे के धन में गूढ-मूर्छावाले (सप ब दग्ने) तथा अपने द्रव्य
 में (असंतुष्टा) सन्तोष नहीं रखने वाले (परविचय) दूसरे के वेश पर (अभिह-
 मति) आक्रमण करते हैं अर्थात् चढ़ाई करते हैं (ते छुखा) वे छोमी बने हुए
 (पर पजरस कम्प) दूसरे के धन के लिये (अहरंग-विमलचरकममगा) वाट
 अज्ञो-दायी, छोड़े, रज व वैदक सेमा-रूप मेरी से विमल-बटि हुए सेम्य वस्तु से
 मुक्त (निविउय बरजोह सुखसद्विष्य भद्रमहमिति इण्णिर्हि) विभास पूज्य वराम
 योद्धाओं के साथ युद्ध करने में बढ़ावाले भीर आत्माविमान हैं रूप वाले (सेमेहि)
 मृत्यु या क्षीयों से (संपरिबुद्धा) पिरे हुए (पञ्चम-सगह-सूह-पञ्च-सागर गरुडपूहा-
 विण्णिर्हि) पद्मभ्यूह, शकटभ्यूह, सृजोभ्यूह, वाकभ्यूह, सागरभ्यूह और गरुडभ्यूह
 इनसे रचे गए (अण्णिर्हि) सेम्यसमूहों से (अबरंता) पर सेम्य को पचाते हुए
 (अभिभूय) बड़े भीत कर (दरति परपणार्हि) पर धन को हरण करते हैं ।
 सु० । ३ । १० ॥

सूत्र—“अचरे रणसीसलद्धलकला संगामांमि अतिवयंति
 सन्नद्ध—पद्परिचर-उष्पीलियचिधपद्गहियाउहपहरणा, मा-
 द्विवरचम्पगुंडिया, आविद्ध-जालिका, कवयकंकडह्या उरसिर-
 लुहयद्धकंठतोणमाहतवरफलहरचितपहकर-सरहस खरचाव—
 करकरछिय-सुनिसितसरवरिस—चडकरक—मुयंतघणचंडवेग-
 धारानिवायमग्गे, अण्णेगधणुमंडलग्गसंधिता—उच्छलिय-सत्ति-
 कण्ण-वामकरगहिय-खेडग-निम्मलनिकिद्धखरग—पहरतकौत
 तोमर-चक्र-गया-परसु मुखल-लंगल-सूखलउल-भिंडमाला-सव्वल
 पाहिस-चम्मेट्ट-दुधण-मोहिय-मोग्गर-वरफलिहजंतपत्थर-दुहण-
 तोण-कुवेणी-पीढकलिय-ईलीपहरण-मिलिमिलि मिलंत-खिप्पं-
 त—विज्जुजल-विरचित-समप्पहणभतले, फुडपहरणे महारण-
 सखभेरि—वरतूर—पउरपडुपडहाइय—णिणायगंभीरण्णित-
 पक्खुभियविपुलघोसे, हय-गय-रह-जोह-तुरितपसरितउद्धत
 तमंधकारपहुले, कातरनर-णयण-हिययबाउलकर, विलुलिय-
 उक्कडवरमउड-तिरीड-कुडलोडुदामाडेवियम्मि पागडपडाग-
 उसियउभय-वेजयंति-चाभरचळंत-लुत्तधकारगंभीरे, हयहोसय-
 हत्थिगुलुगुलाइय—रह-यणयणाइय-पाइक्क-हरहरहराइय अप्फो-
 डियसीहनाया, छेलियविष्णुहुक्कुट्ट-कंठगय-सहभीभगजिजए,
 सधराह-हसंत-रुसंत-कलकलरवे, आसूणियवयणरुदे, भीम-
 वसणाधरोट्ट-गाढदट्टे, सम्पहरणुज्जयकरे, अमरिसवस-तिव्व-
 रत्त-निहारितच्छे, वेरदिट्टिकुद्धचिद्धिय-तिवली-कुडिल-भिडडि-
 कयनिलाडे, वहपरिणय—नरसहसस—विक्रम—विधंभियथले,
 वग्गततुरग—रहपहाविय-समरभडा, आवडिय-छेय-लाघव-
 पहारसाधिता, समूसवियवाहुजुयले, मुक्कडहास-पुक्कंतपोल-
 पहुले, फुरफलगावरण-गहिय-गयवर-पार्थित-दरिय-भडखल-
 परोप्पर-पलरगजुद्ध-गव्वित-विडासित-वरासिरोसतुरियअभिमुह
 पहरित-छिन्नकरिकरविभंगित करे, अवहट्ट-निसुद्ध-भिन्न-फालिय-

पगाक्षिय-रुहिरकतमृमिकहम-थिलिषिष्ठपहे, कुच्छिदाक्षिय
 गर्हित-रुहित-निमेष्ठित-—फुरुरतऽविगलमम्माहयविकय-
 गाहदिल्लपहारमुच्छित्त-—रुवात-बेभधाविगायकतुणे, इय-ओह
 भमततुरग-—उद्वाममसकुजर-परिसाकित-जयमिष्ठुक-च्छिभ
 धयमगरहवरनद्विसि-करि कछेवराक्षिभ, पतितपहरणविकिभा
 भरणमृमिभागे, मयतकबचपठर-भयंकरवायस-परिसौत
 गिद्धमकशभमतच्छायवकारगभीरे, यसु-वसुह-विकीपितव-
 पपकलपिठवण, परमरुहवीहणा, पुष्पवेसतरंग, अभिवयति,
 संगामसकड परवण महता, अवरे पाहकवोरसया सेवावति
 चोरवदपागविहकाय अरुवीवेसदुग्गावासी काक-हरित-रक्त
 पीत-सुच्छिभ-अथेतासयविधपदवदा, परविसए अमिह्वंति
 रुद्धा, धणस्स कञ्जे वयणागरसारा उम्मीसइस्समाधाउशाकुवा
 वित्तोय-पोतकशकषेत्तकशिय, पायाधसइस्स-वायवस-वेरा
 सखिख उद्धम्ममाण वगरयरयभकार धरफण पठर धवख पुख
 पुख समुट्टियद्विहस, मारुपविच्छुभमाण पाणियजख मालुप्पी
 छट्टुधिय, आविय समंततो खुभिय-लुधिय-लोखुभमाण
 पक्खलिय वलिय विपुलजख चकवाख महानई वेगतुरिय आपू
 रमाण गभीर विपुल आवत्त ववला भममाण पुष्पमाणच्छलत
 पधेणियत्त पाथिय, पथापिय थर फरुस पपहवाठलिय सखिल
 कुट्तवीतिकल्लोव-सफुल, महामगर मच्छककञ्चभाहार गाह
 तिभि धुसुमार सावय समाहय समुद्धायमाणक पूर घोरपठर
 फापरजण त्रिययकण, घोरमारसंत महम्मय भयतर पतिमय
 उप्तासणग अणोरपार आणास येव निरवली उप्पाहय पवण
 धयित नोत्तिय उवक्यरितरग दरिय अतियेगवेग चफणुपहसुच्छु-
 रतफच्छुह गभीर विपुलगाजिय गुजिय निग्घाय गरुय निवतित
 सुदीह नीहारे पूरसुधत गभीर धुगधु। तसह, पधियहकमत
 जणपरफजसुहद विसाय कसियतज्जाय उवसग्ग सइस्स

संकुलं बहुष्पाहयभूय, विरचित बलिहोम धूवडवचार-दित्र
 रुधिरच्छायाकरणा पयतजोगेपय चरियं, परियंत जुगंतकाल
 कप्पोवसं, दुरंतमहानई नईवह महाभीमदारिसणिज्जं, दुरणु-
 च्चर, विसमप्पवेसं दुक्खुत्तारं दुरासयं जवणसल्लिल पुणं
 असिय सिय समूसियगेहिं दच्छ (हत्थ) केहिं वाहणेहिं अइ
 वइत्ता समुद्धमज्जे हणंति गतूण जणस्स पोते, परदव्वहरा नरा
 निरणुकपा निरवयक्खा गामागर-नगर-खेड-कव्वड-मडंव-दोण-
 मुह-पट्टणा-समण्णिगमजणवते य यणसमिद्धे हणंति, धिर-हियय-
 छिन्नलज्जावधिगह गोगगहेय गेहंति, दाक्यमती णिक्खिवा
 णियं हणंति छिंदंति गेहसंधि, निक्खित्ताणिय हंरति धणधन्न
 दव्वजायाणिजणवयकुलाणं णिग्घणमती परस्स दव्वार्हिं जे
 अविरया । तहेव केहं अदिन्नादाणं गवेसमाणा कालाकालेसु संघ-
 रता चियकापज्जलिय सरसदरदद्ध कड्ढिय कलेवरे, रुहिर
 लित्तवयण अखतखातिय पीतडाहणि भंमंत-भयंकरं, जंबुयक्खि-
 क्खियंते, घूयकय घोरसदे वेयालुट्ठिय निसुद्ध कह काहित-
 पहसित बीहणक निरभिरामे, अतिदुग्घिभगंघ बीभच्छुदरि-
 सणिज्जे, सुसाणवण सुन्नघर लेण अंतरावण गिरिकंदर विसम
 सावय समाकुलासु, वसहीसु, किलिस्संता सीतातव सो सिय-
 सरीरा दड्ढच्छुवी, निरय तिरिय भवसंकड दुक्खसंभार वेय-
 णिज्जाणि पावकम्मणि संविणता दुल्लहभक्खन्न पाण भोगया,
 पिवासिया, भुंझिया, किलंता, मसकुण्णिमकंद-मूल जकिंचि
 कयाहारा, उव्विग्गा, उप्पुया, असरणा अलवीवासं उव्वंति वाल-
 क्षत संकण्णिज्जं । अयसकरा तक्करा भयंकरा कास हरामोत्ति
 अज्जदव्वं इति सामत्थं करंति गुज्जं । बहुयस्स जणस्स कज्ज-
 करणेसु विग्घकरा मत्त-पमत्त-पसुत्त-वीसत्थ-छिद्घाती, वसण-
 व्मुदएसु हरणवुद्धी, विगव्व रुहिरमाहिया परंति नरवति मज्जाय
 मतिकंता, सज्जणजणदुगुल्लिया सकम्मोहिं पावकम्मकारी असुभ-

खेडग निम्मल निक्षिप्त खग-पहरंत कौत-तोमर चक्र-गया-परसु सुसल लंगल सुल
 भिन्माला सव्वल-पट्टिस-चम्मेठ-दुघण मोट्टिय सोगर-वर फलिह-जंत पत्थर-
 तोण-छुवेणी-पीठ-कलिय ईलो पहरण मिलि मिलि मिलत सिपंत विज्जुज्जल
 चित समप्पहणमतले) अनेक घनुष और मण्डलायत्तव्व विशेष, तथा फैंकने को नि
 हुई तथा उछलतो हुई शक्तियों त्रिशूल, और बाण तथा बायें हाथ में लिये एहु प
 फलक, निकली हुई उज्जवल चमकदार खड्ग, प्रहार में प्रवृत्त कुन्त-भाले, तोमर
 चक्र, गदा, परसु-कुठारविशेष, मृशल, लांगल, इल, शूल और लफुट-दडा, भिन्
 शस्त्रविशेष, शव्वल-भाला, पट्टिस-अस्त्रविशेष, चर्मेट-चमडे में बधा प
 दुघण-एक प्रकार का मुद्गर, मौष्टिक-मुष्टि से आने लायक प
 मुद्गर और बड़ी आगल-वर परिघा, यन्त्र प्रस्तर-गोफण आदि के पत्थर, दु
 धक्का देकर वृक्ष गिराने का साधन, तोण-तूणीर, छुवेणी, पीठ-भासन इन प्रहरण
 युक्त रहने वाले तथा ईलो-एक प्रकार के लवार विशेष और फैंके जाते हुए
 चिकाहट युक्त अन्य प्रहारों से उज्जवल विजली की प्रभा के समान बनी है दोमि जि
 ऐसे आकाश तल से युक्त तथा (फुड पहरणे) जहा प्रहरण शस्त्र खुले हुए हैं
 सामा मे, फिर (महारण-सख-भेरी-वरतूर-पवर-पडुपडहाइय - गिणाय-ग
 णदित पक्खुभिंय विपुल घोसे) महारण सम्यन्धी शस्त्र, भेरी और वरतूर के
 तथा स्पष्ट ध्वनिवाले बजाये गए पट्ट के गम्भीर नितान्द-ध्वनि-से जो प्रसन्न
 भयभीत लोगों के विस्तोर्ण बांघ-कोला हल से युक्त है (हय गय रह जोह द
 पसरित उदंत तमपकार बहुले) घोडे, हाथी, रथ और योद्धाओं के गमनस
 से शीघ्र फैला हुआ रज ही जहाँ अविशय प्रबल अन्धकार है वैसे (कातर नर प
 हिय वाचल करे) कायर मनुष्यों के नेत्र और हृदय को व्याकुल करने वाले (:
 लिय सल्लह-वर मल्ल-तिरोड - कुडलोडु दामो ढाविया) ढिलाई से चञ्चल
 अग्रिक ऊंचे जो उत्तम मुकुट तथा तिरोट-तीन शिखर वाला मुकुट विशेष
 कुण्डल व नक्षत्र माला नामक आभरण विशेष इन से जो चमक और आटाप
 है, (पागड-पडाग-ऊसिय ज्जाय-वेजयति चामर चलत छच्छ-कार गभीरे) :
 को गई पताका तथा ऊंची उठाई हुई ध्वजा और वैजयन्तो-विजय सूचक
 फायें-और चलते हुए चामर व छत्रों के कारण जो अन्धकार से गम्भीर अ
 क्षति अन्धकार वाला है (हय हेसिय हत्थि-गुल गुलाइय रह णण णगाइय पाइ
 हर हराइय अण्णडिय सीहनाया) घोड़ों के दिन दिनाना, हाथी का गल गल

राज्यं कृष्टकृतेष्वरे, रुधिरसिक्तवदनाऽऽश्रुतस्त्राविषपोतङ्गाकिनीभगवन्मयद्वरे सन्मुख-
कृतस्त्रीकोविदसिद्धिरे, धूतकृतधोरसम्भवे वेताकोरिष्यवमिश्रद्व (विशुद्ध) कष्टकृत्यमान-
महसिधमयानकनिरभिरामे, अतिदुरमिगन्धबोमस्तद्वर्णनीये इमशान-बन्धुम्य-गृह-
कपनान्तरापण—गिरिकन्वराविषमप्रापदसमाकुलान् वसतिषु क्रिष्यन्तः, शोवाऽ-
तप शोपितघरीराः, दग्धच्छबयो निरयतिर्यग्मबसकृतदुःखसम्भारवेदनोपानि-
पापकमाणि सन्निवन्तो दुर्लभमहत्याम पानभोजना पिपासिताः, आता क्रिष-
माना मांसकुम्भपक्वमूलपरिक्रितकृताहारा, सन्निवन्ता कृत्युता अक्षरणा अटवो-
वासमुपयन्ति क्वाकृतवत्कृतनोक्तम् । अयशस्कृत्स्तरकरा मयकृता कस्य हरामोऽप-
द्रव्यम् ? इति सामर्थ्यं कुवन्तिगुणम् । वदुक्तस्य जनस्य काय कारणयो विप्रकराः मत्त-
प्रमत्त-मसुप्त-विषस्य छिद्रपातिभो व्यसमाभ्युपययोहरणमुद्रयो वृकाईव दम्भिरमहिता
पयदन्ति, (पयन्ति) मरपतिमयोदामतिकान्ताः, सन्निवन्तः सुदुःखिताः, स्वक-
मभि पापकर्मकारिणोऽसुमपरिणताः, दुःखभागिनो मित्याऽविद्वदुन्माऽनित्य-
मानसा इहलोके यैव क्रिदन्तः परद्रव्यहराः, नरा व्यसनघट समापन्नाः ॥
सू. ४। ११ ॥

अन्वयार्थ—(अक्षरे) दूसरे-स्वयं करने वाले राजा (रणसोसक दुष्टकृता)
संघाम के अग्रभाग में अपने हाथ को पाने वाले (सगामभि) संघाम में (अतिवयति)
सुप्त ही कृत पड़ते हैं (समस्त बद्ध परिवार लपोक्षिष्य विषपट्ट गहिपाट्टपहरा)
वेवारी किये हुए, कवच बांधे हुए, पिछ पद की मस्तक पर मजबूत बांध कर वो
प्रहार करने के साधन-विषम आयुधों को ग्राह्य किये हुए हैं फिर (माहिपर बग्म
गुहिया) बलवर व उत्तम बर्मे शिरस्त्रण्य-से सुरक्षित रहने वाले (आविद्ध बाधिका)
होह की बाड़ी पहने हुए (कवच कंकटहवा) कवच से कटि मुक्त शरीर वाले (हर
सिर मुख बद्ध कंठ तीण मातृववरकलाह रचित पहकर शरहस पर बाव कर करंजिब
मुनिवित पर वरिष्ठ पद करक मुपत पण पदवेग द्वारा विवाव मगे) किन्तुति
छातो के साथ गले में लूके मुह वाले तूणीर बांधे हैं तथा हाथ में लिये हुए प्रधान
पाटियों से जिन्होंने दूसरे के शस्त्र प्रहार को विच्छेद करने केलिये समूह बना लिया है
तथा वेग वाले या हवयुक्त एवं हाथ में कठोर यन्त्र को लिये हुए हैं और यन्त्रपारिभों
से लीयेगये अतिशय तीव्रण बाणों की मेघ के समान वेग से होने वाली धारा वृष्टि
का जदों माग है (अनेक यन्त्रमण्डल संघितावच्छिद्यसति-कण्ठग-बाध कर गदिय

पगालिय रुहिर कत भूमि कदम चिलि चिल्लपहे) बाण आदि से बीधे गये, अच्छी तरह कटे हुए और जो शरीर विदारण किये गये हैं उनके देह से, गलते हुए रक्त से भूमि पर के सार्ग, फीचह से भरगये हैं ऐसे, तथा (कुच्छि-दालिय-गलित रुलित निभेलत फर फुरतऽविगल मरनाह्य विकय गाढ दिन्न पहार मुच्छित रुलत वैभज विलाव कलुणे) कुक्षि—पेट से विदारण करने से जहाँ गला हुआ रक्त बहता है और भूमि पर घायल लोग लुढ़क रहे हैं, तथा कड़कों को पेट से बाँटि निघाळदी गई है, (फुरफुरायमाण) धूजते हुए और जो जड़ से विच्छिन्न इन्द्रियों को विरह्य वृत्ति वाले हैं तथा जो मर्मस्थल में व्याहत हैं य जिनको सुरी दण्ड से गाढ प्रहार दिया गया है, इक्षीलिये जो मूर्च्छित होकर जमीन पर लौटते और विह्वल पने हैं, उन सबके विलाप से जो स्थान कल्याण जनक है वहाँ (ह्य जोह भनंय तुरग वधाम मत्त कुजर परिस्फित जण निव्वु कच्छिन्न धम भगग रह वर नद्ध पिर करि छेलेवरा किन्न पतित पहरण बिकिन्नाभरण भूमि भागे) नरे हुए सैनिकों के श्रेष्ठता से इधर उधर फिरते हुए घाटे, मद मस्त हाथों और भयभीत मनुष्य तथा 'निवुक्क चिछन्न'—निर्मूल कटो हुई ध्वजायें और टूटे रथ तहाँ दिखाई पड़ते हैं, फिर कटे हुए मस्तक वाले हाथियों के कलेवरो से भरा हुआ तथा गिरे हुए शस्त्रास्त्र और बिखरे हुए अठ्ठारों से जहाँ का भूमिदेश युक्त है (नय न कवध एवर भदकर वायस परिसेत गिद्ध मंडल भरातच्छायभकार गभीरे) नाचते हुए—कवध—विना शिर के देहों को प्रचुरता वाला तथा टराबने कीए और चारों ओर फैलते हुए गिद्धों के भ्रमण करते हुए मण्डल की छाया से जो गहरे अन्वकार पाछा है, ऐसे संगम में (बहुवसुहविकपित-व्व) देव और वसुधा को कर्मिण करने वालों के समान वे राजाडोग, (पञ्चस्स पिरवण) साक्षात् पितृवन इमशान के जैसे (परमद्वहोदण्ण) परम-सौत्र और भय उत्पन्न करने वाले (दुण्णवेसरग) सामान्य जनों के क्षिये कठिनाइ से प्रवेश पाने योग्य (संगम संकड परवण) और सप्रम से गहन पूर्ण, ऐसे परधन को (महता) चाहते हुए (अभिवयति) उस समग्र युद्ध में क्रूढ़ पड़ते हैं । (अवरे पाइक्क चोरसंघा) रक्षाओं से भिन्न दूसरे पैदल चोर समूह (सेणवति चोरवद पागडुकाय) और चोर सब को प्रेरणा करने वाले सेनापति जो (अडवी देस दुगवासो) अटवी के दुर्ग में रहने वाले (काल-हरित-रत्त-पीत-सुक्किल अणेगसय चिधपट्टवद्धा) फाले, हरे, लाल, पीले और धौले ऐसे पाँचों रंग के सैकड़ों चिह्नपट्ट-

तथा रथों का घर घराना और पैदल सैनिकों का हर हर भादि सम्भ करना ताड़ बजाना भीर सिंह नाम करना फिर (छेड़िय विपुलकुल कंठ गथ सह भीम गम्भीर) सेंटित सीत्कार करना, बिरुप घोष करना तथा लक्ष्म-भानम् की महा ध्वनि और कंठ से किया हुआ शब्द ये ही जहाँ मेघ को गर्जना है ऐसे (सय राह हसंत हसंत कल कलरथे) एक रेखा-एक वमंग-से, हंसते वा हल होते हुए जोकों के कल-कल शब्द से व्याप्त (आसुप्रिय-वयणरथे) कुछ माटे किये हुए ब फुमाये हुए मुँह से जो हर भयानक है (भीम-इसनापरोष्ठ-गाढवद्रे) भयङ्करता के साथ भिन्नोनि दाँतों से मोचे के ओष्ठ को गाढ काटा है जैसे खोग बाखा (सप्प हरणुगम्य करे) जो अच्छो तरह प्रहार करने में तत्पर घोड़ार्यों के हाथ बाखा है (धमरिच वस विम्बरत्त-निहारितच्छे) जहाँ कोप बरा भाखें अत्यन्त डाल और निकली हुई हैं (बैर-विद्धि कुल-विद्धि-विबली-कुविल-मिबलि-कय मिबाले) बैर को जपर से जो कुल और चेष्टा युक्त है लड़ाई पर तीन देखाओं से बल-देहो-जहाँ भुङ्गि बहो हुई है, ऐसे रथों से समाम भूमि युक्त है (वह परियाव नर सहस्र विक्कम विरमिप बडे) मारने के बिचार बाडे हजारों मनुष्यों के पराक्रम से जो विलुप्त बल बाळा है जहाँ प्रहार करने बाडे हजारों सुभटों का बल प्रवर्धित हो रहा है (बमोदर-तुग-रह-पहाविष समरमळा) जहाँ लड़कते हुए घोड़ों के रथ से साम्रिक घोड़ा बाख के साथ जुडे हुए हैं (आवसिय जेय ज्ञापक पहार साविता) जो लड़ने को आये हुए रथ और हथके प्रहार से साधन किये हुए हैं (समुसविषबाहुतुगल) हथ की अधिकता से जहाँ दोनों हाथ उठाये हुए हैं (मुल्ल हास-पुल्ल-वोठवद्रे) मुकाहारा-महाहारा करने बाडे और फूँकार करने बाडे मनुष्यों के कल कल शब्द की अधिकता बाख (फुर फल्लमा बरव गहिय गयवर पस्सित वरिय मड बाळ परोप्पर पळमगुल्ल गम्भित वितस्सित वरासिरोष नुरिय अमिसुल्ल पहरित सिम करिकर विर्रगित करे) स्फुर अथवा स्फुर पाने बमकते हुए फल्लक और सम्राट का प्रवृत्त किये हुए शत्रु दल के हाथियों के कुम्भस्वरा पर बल के बलको मारने की अभिलाषा करने बाडे जो रथयुक्त युद्ध घोड़ा हैं वे परस्पर लड़ने को लगे हुए हैं और युद्ध कला के विज्ञान में अद्भुत युक्त तथा उत्तम लड़नेवालों को कोप से निकाले हुए रथ से शीघ्र सामने प्रहार करते हुए जिन्होंने हाथियों को सूँ फँटवा है और जहाँ जनेकों के हाथ भी बाँधित दिखाई पड़ते हैं (अवसुल्ल भिसुल्ल धिभ फल्लिय

समान (निरवलम्ब) आधार रहित (उष्णाय पवणध्वनि-नोल्लिय-उवरुवरि-
 रगदरिय-अतिवेग-वेग-चक्खु पद मुच्छरत-कथ्यइ गंभोर विपुल गरिजय-गुंजिय-
 नेगवाय-गरुय निवतिन सुदोह नौद्वारि-दूर सुव्वंत गभोर-धुगधुगतसई) उत्पात सम्म-
 धो पवन से अतिशय प्रेरणा पाई हुई जो निरन्तर ऊपर उठने वाली तरङ्गें हैं गर्व युक्त
 की तरह सब वेगों की मर्यादा का अतिक्रमण करने वाले, जिनके वेग से दृष्टि का मार्ग
 ढका हुआ है, कहीं पर गम्भीर व मोघ ध्वनि की तरह विस्तीर्ण गर्जनारव से गुञ्जित, वाद्य
 विशेष के समान गुञ्जन और निर्घात-विजली गिरने के समान शब्द अथवा व्यन्तरकृत
 महाध्वनि एवं विद्युत् आदि भारी द्रव्य के गिरने की जैसी महाध्वनि होती है और
 बहुत दूर तक सुन पड़ने वाला जहाँ धुग इस प्रकार गम्भीर शब्द होता है (पडि-
 पइ रुंभंत-जक्ख-रक्खस-कुहइ-पिसाय-पडिगजिय-रुसिय-उव्जाय-उवसग सह-
 स्स सकुलं) मार्ग में चलने वालों के राह को रोकने वाले यक्ष राक्षस, कूष्माण्ड और
 पिशाच रूप व्यन्तर विशेषों के प्रति गर्जना और हजारों उपसर्ग अथवा यक्ष आदि
 के रोष और उनसे किये गये उपसर्ग सहस्र से जो सकुल है (बहुष्पाइय भूय)
 अनेक प्रकार के उत्पातों से युक्त (विरचित बलिहोम-धूब-उवचार-दिन्न रुधिर
 खणा-करण-पयत जोग-पयय चरियं) तथा बलिहोम और धूप से जिन्होंने देवता
 का पूजन किया एव रुधिर-अपना या अन्य का रक्त दिया और उस पूजा कर्म में
 प्रयत्नशील तथा नौका के अनुकूल दूसरे कार्यों में तत्पर ऐसे सायत्रिक-नौका
 व्यापारी से वह समुद्र सेवित है (परियत-जुगतकाल-कप्पोवम) अन्तिम युग-कलि
 युग के अन्त काल-नाश काल के समान उपमा वाला (दुरत सहानई-नइवई महा
 भोम दरिसणिज्ज) जो दुःख से अन्त मिलने योग्य गंगा आदि बड़ी नदियाँ तथा
 अन्य साधारण नदियों का स्वामी और महाभय जनक दर्शन वाला है (दुरणुच्चरं)
 दुःख से सेवन करने योग्य (विसमप्पवेसं) विषम प्रवेश वाले (दुक्खुत्तार) दुःख
 पूर्वक उतरने योग्य (दुरासय) कठिनता से पाने योग्य और (उवण सलिल पुण्णं)
 खारे पानी से भरे हुए समुद्र को (असियसिय-समूसिय गेहि-वच्छतर केहिं) काढी
 व सफेद ऊँची की हुई पताका वाले, अत्यन्त दक्ष याने वेग से चलने वाले (वाह-
 नेहिं) वाहनों से (अइवइत्ता) प्रवेश करके (समुह मन्ने गंतूण) समुद्र के भीतर
 जाकर (जणस्स पोते) व्यापारी के जहाजों को (हणति) छूटते-नष्ट करते हैं
 (परइव्वहरा नरा) दूसरे के धन को हरण करने वाले मनुष्य (निरणुक्कां)
 निर्दय (निरणयक्खा) परलोक की अपेक्षा नहीं करने वाले हैं, (धण समिद्धे)

निज्ञान के कपड़े जिन्होंने बांध रखे हैं। और (सुदा) छोभी (परबिसण) दूसरे के प्रदेशों को (धरास्त्र कम्मे) धन के लिये (अमिहणति) छुटते-मारते हैं, (रम्यागरसागर) रम्यों की आन रूप को समुद्र (सम्यी सहस्र माता सत्ताकुल विद्योय पोव कल कल्ले कलियं) हजारों तरह माता से आकुल तथा बल के अभाव से व्याकुल ऐसे लोका व्यापारियों की कल-कल ध्वनि से युक्त है (पायाल सहस्र बायवस-वेग सल्लि-कल्लममाण वग-रय-रथेधकारे) हजारों पाताल कलशों में से वायु के साथ वेग से ऊपर उठता हुआ समुद्र बल ही नहीं बलकल रूप धूमिल अन्धकार है (वरकेण-पर-वच-पुल्लु-समुद्रिपुल्लुहत्तं) उत्तम फेन हो नहीं अत्यन्त चबल और सदा बड़ा हुआ आह्लास है (मादय-विष्णुममाण पाप्मिबल मल्लुलोबुलियं) हवा से विभुष्य होते हुए बल के कारण को हीम बलमात्र के समूह बाबा है (अविध समंततो) और भी चारों तरफ से (सुमि-लुलिब लो-सुधममाण-पक्कलिय-वलि-विपुल्ल-बल-बल-महाणई-वेगुलिय-भापूरमण्य गमीर-विपुल्ल आवच बल-मममाण गुणमापुल्लसंय पयोविमल-वाप्पि पमाविब करकलस-पय-वासलिय-सल्लि-पुल्ल-वीरिक्कल्लो संकुल) वायु आदि से सुबध किया गया, लुब्ध-वीर की भूमि पर टकराता हुआ, बड़े मत्स्य आदि के कारण अत्यन्त व्याकुल किया गया और प्रसन्न-पहाड आदि से रोका गया-फिरकर अपने स्थान की ओर जाता हुआ जहाँ पानी का अधिक विस्तार में संबल है, तथा वही नदियों के वेग से जो जमीन मरा जा रहा है व गमीर और अधिक फैले हुए भागों में चपलता के साथ प्रमाण करते हुए, व्याकुल होते उछलते, या नीचे गिरते हुए पानी तथा जीवों से युक्त है वेग युक्त गतिवाली अत्यन्त कठोर, रौद्र तथा व्याकुलता युक्त बलबाली और विधीने होती हुई तरह माता से जो संकुल है, (महामगर मण्य कल्लमोहार-गाह-विमि-सुसुमार-सावय-वमाहय समुद्रममायक वूर-धोर पर) फिर महा मगर, मत्स्य कल्लप, मोहार-बल जम्मु विशेष प्राह, विमि-बला मल्ल सुसुमार और आपह-विधक वीर इनके परस्पर एक दूसरे से मारे गये और प्रहार करने को लगे हुए बहुत समूहों से जो मयामक है। (कबर जल विच बलप) कबर समुद्रों के हृदय को सुनाने बाबा (धोरमारसंय) मयहूर सप्प करने बाबा (महम्मथ) परम भय देने बाबा (मयकर) मयहूर (वसिमथ) प्रवेक वस्तु में भय पैदा करने बाबा (वतासण) डराने बाबा-शास अत्यन्त करने बाबा (अयोपर) बिलक और विजाई नदी वेता वेता (आगासवेव) और बाकास

कन्दरा रूप (वरुहीसु) निषामस्थानों में (किलिस्तता) छेश पाते हुए (सीतातप-
सोसियसरारा) शीत-सर्दी व गर्मी से सुखाये हुए बरोर वाले (दहुच्छवी) जली
हुई चमडो वाले अर्थात् सर्दी आदि से जले शरीर वाले 'वे लोग' (निरय-तिरिय
भव संकट-दुःख सभार वेयण्णज्जाणि) नरक तिर्यञ्च भव रूप गहन वन में होने
वाले निरन्तर दुःख की अधिकता से वेदन करने योग्य (पाव कम्मणि) पाप कर्मों
को (सचिणता) सचय करते हुए 'रहते हैं' (दुल्लह-भक्खज पाण भोयणा) भक्ष्य-
खाने योग्य अन्न और जल आदि का खाना पीना भी जिनको दुर्लभ है (पिवा-
सिया) प्यासे (हु सिया) भूखे (ञिलता) थके हुए (मव कुणिमकद-मूल जकिचि-
कयाहारा) मांस, शव-मुर्दा और फन्द मूल जो कुछ भी मिला उसो का आहार
करने वाले हैं (उव्विग्गा) उद्वग युक्त (उप्पुया) असुखता वाले (अस्सराणा)
रक्षक से हीन (अडवी वास) अटवो के निवास को (उव्वति) प्राप्त करते हैं, जो
(धाल सत सकण्णज्जं) सैरुहों मुजग आदि से अङ्का जनक है (अजसकरा)
अकीर्ति करने वाले (भयकरा-तफरा) भयङ्कर चोर (अज्ज) आज (कास) किस
का (उव्व) उव्व (हरामोत्ति) हरण करें (इति) इस प्रकार (सामत्थ गुज्ज)
शुभ मन्त्रणा-विचार (करेंति) करते हैं (बहुप्पस जप्पस) बहुत से मनुष्यों के (कज्ज-
करणेसु) कार्य करने में (विग्घकरा) विघ्न करने वाले (मत्त-पमत्त-प्रसुदा-वीसत्थ-
छिद्धान्ता) मत्त-तथे में प्रमत्त वे सुध सोये हुए और, विश्वास किये हुए जोकों का
समय पर हतन करने वाले (वसण्णमुदणसु हरण बुद्धी) व्यसन—विपत्ति और
अभ्युदय-वन्नति के प्रसङ्ग में हरण करने को बुद्धो वाले (विगव्व रुहिर महिया)
शृङ्खलान्त के जैसे रक्त का चाहने वाले (परेंति) चारों ओर भ्रमण करते हैं (नर-
वाति मज्जाय मतिक्कता) राजाओं की मर्यादा को उल्लंघन करने वाले (सज्जन जण-
दुगुछिया) सज्जन लोगों से निन्दित (पाव कम्मकारी) पाप कर्म करने वाले (स-
कम्मेहि) अपने कर्मों के कारण (असुभ परिणया) असुभ परिणाम वाले (य)
और (दुक्खमागी) दुःख के भागी होते हैं (निष्ठाइल-दुहमनिव्वु इमणा) सदा
मलिन, दुःख का कारण और अशान्त मनवाले (परदव्वहरानरा) दूसरे के धन
को चुराने वाले मनुष्य (इह लोके चेव) इस संसार में ही (किलिस्तता) छेश पाते
हुए (वसणसय समावण्णा) सैरुहों कटों से घिरे रहते हैं ॥ सूत्र ४१११ ॥

भावार्थ—“ सूत्र के आदि में चोरों के स्वभाव, प्रवृत्ति और चोरी करने के
प्रकार से, चोरों के अपान्तर भेद बताये गये हैं । तत्पश्चात् सैन्य बल को साक्ष्य लेकर

धन से समृद्ध (गामागर मगर-खेड-कन्नड-मंडन-दोणमुह-पट्टणसम-निगम सण-
 बतेय) ग्राम, बाकर-सोन चाँदी आदि १८ उत्पत्ति स्थान नगर, टेड-धूली के कोट
 बाधा, कबट-छोटा मगर मंडन पार्श्वे और जिसके पास कोई दूसरा गाँव नहीं हो
 द्रोण मुह—कल माग व स्थल माग दोनों से आने योग्य सहरपत्तन—रत्न भूमि या
 कल स्थल गत दोनों मार्गों में स किसी एक माग से आने योग्य, आनम-तापस आदि
 का निवास स्थान या तापसों से बसाया गया निगम-व्यापारिक क्षेत्र और जनपद
 देस को (हणति) वे छूटते-नष्ट करत हैं (१४ हिमय-छिन्न हज्जा) ध मपने
 अथ म स्थिर चित्त-हृद जिहार बाडे-भीर खडा रहित होते हैं (प्रदिगाह गोम-
 देय) अनुभ्य को बन्वा बनाना और गौनों का पकड़ने रूप कार्यों को (गेण्ठति)
 करते हैं (बाइनमती-खिचिया) दारण मुक्ति बाध से निवृत्त (विष) छुट को
 या निमो कोर्को को भी (हणति) मारते हैं (छिदति गेइसविं) घर में सेंब लगाते हैं
 (य) और (सणवय कुआण) कोर्को के घर के (निस्त्रिचाणि) रखे हुए (यण
 वम-दम्बजावाप्ति) धन धान्य रूप द्रव्य समूर्तों को (खिचियसमती) निवृत्त मुक्ति
 होकर (हर्ति) हरण करते हैं (जे) जो (परस द्वाहिं कानिरवा) दूसरे क
 द्रव्य को छेन से निवृत्त नहीं हैं अर्थात् जिन्होंने दूसरों के द्रव्य को छेना नहीं छोडा
 है (तहेव केई) इसी प्रकार कई जाग (अश्मना दायं गयेसमाया) बिना दिवे
 द्रव्य को हटते हुए (काजा कालेसु संवरता) समय और असमय में क्रियते हुए
 (चिक्का-पत्रसिय—सरस वरवहु—कहुव कलेरे) चित्तों में चलते हुए
 मांस जाइ मुख, बोडे चलते हुए और मतलब से बहर लीच गए कलेवर बल्ले तथा
 (दहिरसिस्त-वस्य—अक्षत—काविय—पीत—बा गि मर्मत भयकर) रक्त से मरे
 हुए सुह बाडे अक्षत—पूरे सुवक्त, लाये हैं और जिन्होंने इनके रक्त का पान किया
 है ऐसी जाकितियों के भ्रमण स जो भयकर है (सनुयसिस्तियते) अनुक भी
 लीली रूप जनि बाडे तथा (धूणकय धार सह) अनुबी के पीर सहरों से मुख
 (वेयाहृद्वि—निमुह कल—कहित—पहसित—मोहयक निरपिरामे) वे तार से
 किया गया सप्टान्तर बाधा को कल कल रूप प्राइमन से भयकर और असोमनीक है
 (धति मुक्तिमग—मोमच्छ—इरिसफिजे) अमन्त तुगम्य और भयकर दर्शन
 बाडे इमसान में तथा (मुसाणव—मुजपर-छेण अतदावर्तगिरि कहर-विषम-
 धावय समकुछेसु) समझाम तथा जगक का मृत्यु घर, कथन-पवत में जाइ हुए घर,
 ग्राम के मध्य की मुकानों और विवमता तथा हिसक अनुभों से व्याप्त पर्वत की

कन्दरा रूप (वसुधीसु) निवासस्थानों में (किलिस्सता) छेश पाते हुए (सीतावप-
 सोसिग्रसरा) शीत-सर्दी व गर्मी से सुखापे हुए तारों वाले (ददुच्छवी) जली
 हुई चमडो वाले अर्थात् सर्दी आदि से जले शरीर वाले 'वे लोग' (निरय-तिरिय
 भव सकद-दुक्ख समार वेयण्णज्जाणि) नरक तिर्यञ्च भव रूप गहन वन में होने
 वाले निरन्तर दुःख की अधिकता से वेदन करने योग्य (पाव कम्मणि) पाप कर्मों
 को (सचिणता) सचय करते हुए 'रहते हैं' (दुल्लह-भक्खज पाण भोयणा) भक्ष्य-
 खाने योग्य अन्न और जल आदि का खाना पीना भी जिनको दुर्लभ है (पिवा-
 सिया) प्यासे (सु सिया) भूखे (णित्ता) थके हुए (मल कुण्णिमकंद-मूल जकिचि-
 कयाहारा) मांस, श्व-सुर्दा और कन्द मूल जो कुछ भी मिला उसी का काहार
 करने वाले हैं (उव्विग्गा) उद्वग युक्त (उप्पुवा) प्रसुक्ता वाले (असरणा)
 रक्षक से हीन (अडवी वासं) अटकों के निवास को (उर्वति) प्राप्त करते हैं, जो
 (धाल सत सकण्णजं) सैकड़ों भुजंग आदि से शृङ्गा जनक है (अजसकरा)
 अकीर्ति करने वाले (भयकरा-तफरा) भयङ्कर चोर (अग्ग) आज (काच) किस
 का (वव्व) व्रव्य (हरामोत्ति) हरण करें (इति) इस प्रकार (सामत्थ गुग्ग)
 शुभ मन्त्रणा-विचार (करेति) करते हैं (अहुयस्स जणस्स) बहु से मनुष्यों के (कज-
 करणेसु) कार्य करने में (विग्गकरा) विघ्न करने वाले (मत्त-पमत्त-पमुत्ता-वीसत्थ-
 छिद्वाती) मत्त-मत्त में प्रमत्त वे सुध सोये हुए और शिखास किये हुए लोगों का
 समय पर हनन करने वाले (वसण्वमुदप्पु हरण बुद्धी) व्यसन—विपत्ति और
 अभ्युदय-वन्तति के प्रसङ्ग में हरण करने की बुद्धी वाले (विगव्व रुहिर महिया)
 वृक्षव्याघ्र के जैसे रक्त का चाहने वाले (परेति) चारों ओर भ्रमण करते हैं (नर-
 वाति मज्जाय मतिक्कता) राजाओं की मर्यादा को उल्लंघन करने वाले (सज्जन जण-
 दुराहिता) सज्जन लोगों से निन्दित (पाव कम्मकारी) पाप कर्म करने वाले (स-
 कम्मेहिं) अपने कर्मों के कारण (असुभ परिणया) असुभ परिणाम वाले (य)
 और (दुक्खभागी) दुःख के भागी होते हैं (निष्ठाइल-दुदमनिव्वु इमणा) सदा
 मलिन, दुःख का कारण और अशान्त मनवाले (परदव्वहरानरा) दूसरे के धन
 को चुराने वाले मनुष्य (इह लोके चेव) इस संधार में ही (किलिस्सता) छेश पाते
 हुए (वसणसय समावण्णा) सैकड़ों कष्टों से घिरे रहते हैं ॥ सूत्र ४।११ ॥

भावार्थ—“सूत्र के आदि में चोरों के स्वभाव, प्रवृत्ति और चोरी करने के
 प्रकार से, चोरों के अघान्तर भेद बताये गये हैं। तत्पश्चात् सैन्य बल को साथ लेकर

परचक्र पर आक्रमण करने वाले छुटेरों का वर्णन किया गया है। वे छुटेरे चतुर द्विणी-इष्ट, गज, रथ और पैदल रूप इन चार प्रकार की सेनिकों से चक्र, सक्क आदि विविध व्यूह बनाकर परचक्र को छूटते हैं। इनमें कई साहसिक राजा सेना को सहायता के बिना ही स्वयं मयङ्गर साम्राज्य में प्रवेश करके दूसरों का मन हरण करते हैं। केवल परचक्र के आक्रमण से साम्राज्य करके दूसरों को छूटते हैं। राजाओं से मित्र पैदल और रथ सेनापति आदि भट्ठा के दुर्ग स्थानों में रहकर विविध वर्णों के सिद्धपट्टों को बांधे हुए दूसरों के प्रवेश को मोड़ते करते हैं। जो हजारों चक्राक चक्राक से दुरवगाह है, ऐसे सागर में प्रवेश करके भी नौका आदि प्रचक्र जहाजों से सम्मिलित होकर कई दूसरे के जहाजों को छूटते हैं। अनेक प्राप्ति को लूट कर लेते हैं। पर की दीवारों को फोड़ते कोलों को मारते और सर्वस्व बर्बाद कर लेते हैं। ऐसा महान आक्रमण वे कोय करते हैं जो परचक्र से अभिरक्ष हैं अर्थात् जो परचक्र की आक्रमा से बचना नहीं हुए हैं। अक्ष-विना दिये हुए-बन को लोभते हुए वे छुटेरे समस्तान में जाते और गुप्तस्थानों में प्रवेश करते हैं वहाँ पर छद्मी, गर्मी, भूक, प्यास, परिग्रम आदि सैकड़ों प्रकार के दोष रहते हैं। रक्षत्रों ने ऐसे जड़वी बास को भी स्वीकार करते हैं। चोरों के समुद्र युद्ध तथा छूटने के प्रकार का विवरण बणन मूक के अनुसार अन्वयार्थ में कहा गया है। जो स्पष्ट है। सू० ४।११॥

मूल—तदेव केह परस्स वज्ज-गवेसमाणा गाहिता य हया य वद्धद्धा य तुरिथ अतिभाडिया, पुरवर समप्पिया, चोरगह चारमह-चाडुकराव तेदिय कप्पवप्पहार-मिहय-आरक्खिय कर करुस-वयण-तज्जण-गलच्छ-गुच्छल्लवहि विमया चारग वसहि पवेसिया, मिरयवराहि सरिस तत्थवि गोमिय-प्पहार वूमण-निम्मकल्लण-कडुय-वदण-मेसयग मयाभिभूया अक्खि-त मियंसवा मक्खिणवहि कव-मिबसया उक्कोडालय-पासमग पयापेहि [बुक्क समुदीरयेहि] गोम्मिय अवेहि विविहोहि वधयेहि, किंते १, हाडि-निगड-चाळरक्खुयकुदवगवरत्त-कोह संकख-इत्थंयुय-वज्जकपहवाम कप्पिणोडणहि, असेहि य पवमा-दिपहि गोम्मिक अक्कोवकरयेहि बुक्क समुदीरयेहि संकोडण

मोडणाहिं बलभ्रंति मंदपुरणा । संपुङ्ग-कवाड-लोहपजर भूमि-
 यर-निरोह-कूब-चारग-कीलग-जूय-चक्र-वितत-बंधण-स्वभा-
 तण उद्धचलण-बंधण-विहम्मणाहि य विहेडयंता अवकोडक-
 गाढ उरसिरबद्ध-उद्धपूरितफुरंत—उरकडग मोडणा मेडणाहिं
 बद्धा य नीससंता सीसावेढ-उरुयावल-चर्पडगसंधि बंधण-तत्त-
 उलाग-सूहया कोडणाणि-तच्छण-विभाणणाणिय खार-कडुय-
 तत्त-नावण-जायणा-कारण-सयाणि पडुयाणि पावियंता, उर-
 कलोडी-दिन्न-गाढपेन्नण अट्टिक-संभग्ग-सुपंसुलीगा, गलकालक
 लोहदंड-उर-उदर-वत्थि पैरिपीळिता, मत्थंतहियय संचुण्णि-
 यंगमंगा, आणत्तिरिक्किरेहिं केति अधिराहिय वेरिणहिं जेमपुरिस
 सन्निहेहिं पड्या, ते तत्थ मंदपुरणा बडवेला-वज्जपट्ट-^१पाराहं-
 छिबकस लत वरत्त ^२नेत्तप्पहारसय-तालियंगमंगा, किवणा
 लंबंत-चम्म-धण वेयण विमुहियमणा धणकोट्टिम-नियल-जुयल-
 संकोडिय-मोडिया य, कीरंति निरुचारा एया अलाय-एवमा-
 दीओ वेयणाओ पावा पावेंति, अदंनिदिया वसट्टा बहु मोह
 मोहिया परधर्णमि लुद्धा, फासिंदियविसय तिक्कगिद्धा, इत्थि-
 गय-रूव-सद्द-रस-गंध-इट्ट-रति-महित-भोग तणहाइया य धण-
 तोसगा, गहिया य जे नरगणा पुणरवि ते कम्मदुब्बियद्धा, उव-
 णीया राय-क्किराण तेसिं वहसत्थग पाडयाण, विलउली कार-
 काणं, लंचसय-गेणहगाण कूड-कवड-माया-नियडि आपरण-
 पणिहि वंचण-विसारयाणं, बहुविह अलिय-रुत जंपकाण पर-
 लोक-परम्मुहाण, निरयगति गामियाणं, तेहि य आणत्त-जीय
 दंडा तुरिय उग्घाडिया पुरवरे सिंघाडण-^३तिय-चउक्क-चच्चर-चउ-
 म्मुह-महापह पहेसु, वेत्त-^४इंछाल उड-कट्ट-लेट्टु पत्थर-पणालि-
 पणोळि-मुट्टि-लया-पाद-पण्हि-जाणु-कोप्पर-पहार संभग्ग माहिय

१—क वज्जपट्ट ।

२—क. पिडि परिपीळिया ।

३—क. पंगु पंगा ।

४—क. पोरा इति वा ।

५—क. वेत्त ।

गच्छा, अङ्गारस कर्मकारणा, जाह यगमणा कलुणा सुकोट्टकट
 गच्छक ताजुजीहा जायता पाखिय विगय जीवियासा, तयहा
 दिता वराणा तपिय ण कभति बज्जपुरिमेहिं पाखियता तस्थ य
 खर करुस पडह घट्टित कूडगगठ गाठ रुठ निसह परामुहा बज्ज
 करकुडि जुय नियस्था, सुरत्त कणवीर गहिय विमुकुल कठेणुण
 यकभरुत अ विद्ध मल्लवामा, मरण भयुप्पणण सद आयतयेहुतु
 पियकिलिधगता, जुयणगुहिय सरीर रय रेणुभरियकेसा कुसु
 भगाक्षिप्त मुद्धया छिन्नजीवियासा, घुलता बज्जपाण्ये भीता
 तिष्ठे ताव अथ छिन्नमाणा सरीर विक्कल लोहिओछिता कायापि
 संमाणि आविधता पाषा खरकरुपएहिं ताज्जिजमाणवेहा,
 पातिक नर नारे सपरिबुद्धा, पेक्खिज्जता य नागरजणेषु बज्ज
 न वस्थिया पण्डेज्जति नयरमम्मेण कियण कलुणा अत्ताया अस
 रणा, अण्णाहा अवधवा बहु विप्पहीया विपिर्विस्सता विसोर्विस्सि
 मरण भयुप्पिग्गा आघायण पडिबुवार सपाविया अवसा सुलग्ग
 विक्कगन्निजदहा, तयतस्थ कोरति परिकप्पियगमगा ठल्लविद्ध
 ति उवस्ससातासु कई कलुणाहं विक्कवमाणा अबरे यउरग वणिय
 पद्धा पव्वय कडगा पमुचंते वूरपात बहुविमम पत्थरसहा अल्लय
 गयः क उ-महण य निम्मदिया कीरति पावकारी, अङ्गारस खडिया
 य कीरति मुणपर सूहिं केह उवस्स कन्नाह नामा, उप्पाविय
 नयण-दसण वसणा, जिह्मविण्णिकिया छिन्न-कल्लमिरा, पणि
 र्ज्जते, विद्धजत य असिणा मिह्विसया, छिन्न इत्थपाया । पमु
 चंते, जायज्जीव वधणा य कीरति केह । पर वव्वहरणकुद्धा,
 कारगगल-नियकमुयककद्धा, चारगायहतसारा सयणविप्पमुक्का,
 भित्तजणनिरिक्खिण्णा निरासा बहुजणविकार सदकज्जापिता,
 (मल्लज्जाविया अण्णपट्ट-खुहा पारसू सी उयह-तयह वेयण
 दुग्घट्ट-घट्टिया, विवन्नमुह-विच्छ्रविया, विह्वल मातेक दुग्घसा,

किलंता, कासंता, वाहिया य आमाभिभूयगता, परुड नह-
 कस-मंसुरोमा, छेगमुत्तंमि शियगंमि खुत्ता तत्थेव मया अका-
 मका वंधिऊण पादेसु कद्धिया खाइयाए छूढा, तत्थ य वग-
 सुणग-सियाल-कोल-मज्जार-वंद संदंसगतुड पक्खिगण-
 विविहमुह सयल विलुत्तागत्ता कय विहंगा केइ किमिणा य कु-
 हियदेहा अणिह वयणेहि सप्पमाणा सुहुकय जं मडति पावो
 तुडण जणेणं हम्ममाणा लज्जावण तायहोति सयणस्यवि दीह
 काल मया सता ॥ सू० ५।१० ॥

छाया—तथैव केचिद् परस्य गवेष यन्तः द्रव्यं गृहीताश्च हताश्च वद्ध रुद्धाश्च त्वरित
 मति धाढताः (भ्रामिताः) पुरवर समर्पिता औराह चार भट चाटुकाराणाम् ।
 तैश्च कर्पट प्रहार निव्याऽऽरक्षक खर परुष वचन तर्जेन गलप्रहणो (च्छलो)
 च्छलना नाभिर्विमनसश्चारक वसति प्रवेशता निरय वसति सदृशीम् । तत्रापि
 गौलिमक प्रहार-वचन-निभत्सन कटुक वचन भेषणक भयाऽभिभूताः, आक्षिप्त
 निवसना मलिन दण्डि-खण्ड-निवसना, उत्कोचा लज्ज पाश्वर्ग मार्गेण पराधणैः
 (दुःख समुदोरणै) गौलिमक भटैर्विविधैर्वन्धनैः, किं तानि ? (तद्यथा) काष्ठ
 (इडि) निगड-बालरज्जुरु-कुदण्डक-वरत्र-लोहसङ्कल-हस्तान्दुक-वधपट्ट-दामक
 निष्कोट नैरन्यैश्चैवमादिकै गौलिमक भण्डोपकरणैः, दुःख समुदोरणैः सङ्कोचन मोदना-
 भिवेध्यन्ते मन्दपुण्या, सम्पुट कपाट-लोहपखुर-भूमिगृह निरोध-कूप-चारक-
 फीलक-यूप-चक्र-वितत बन्धनरतम्भाऽऽलिङ्गनो—ध्वंशरण बन्धन-विधर्मणा-
 भिक्षु विहेष्यमाना (बध्ममानाः) अवकोटक गाढार-शिरो बद्धोर्ध्व पूरित-स्फुर
 दुर-कटक मोदनाऽऽन्नेदनाभिर्यस्त्राश्च, निश्चसन्तः शीर्षाऽवेष्टकोरुकाऽऽवडन-
 चप्पडक-सन्धि बन्धन-तप्तशलाका-सूचीनामा-कोटनानि च (तानि प्राप्यमाणाः)
 सक्षण विमाननानि च क्षार-कटुक-तिष्ठ-दापन (न्यावण) ज्ञातना-कारणज्ञानानि
 बहुकानि (बहूनि) प्राप्यमाणा । परसिस्त्रोडी (दीर्घकाष्ठ) दत्तगाढ प्ररणाऽस्थिक-
 समग्न-सुपार्थाऽस्थिका गल कालक जौह्वण्डोर उदर-चस्ति परिपीडिता, मध्यमान
 हृदय सञ्चर्युताङ्ग प्रत्यङ्गा, आज्ञसि-किङ्करै केचिद् विराधिव-वैरिदैर्यम पुरुषसन्निभै
 प्रहृतास्तेव मन्दपुण्या, चढवेळो (चपेटा) वर्धपट्ट पाराइ (लाह कुसो) छिवा-

कच-कच-वरत्र-भत्र-महारक्षत ताहिताऽङ्ग मत्स्यज्ञा कृपणा हम्बमान चर्म ज्ञप
 वेदना-विमुल्लिव-मामसाः धन कुट्टिम-निगड-युगल-सङ्कोटित-मोहितम् क्रियन्ते
 निवधाराः । एता अयाज्ञैवमाहिका वेदना पापा प्राप्नुवन्ति । अद्यान्तेम्विवा बसार्ता
 (विषय पीडिता) बहु मोह मोहिता, परधनेल्लुब्धाः, स्वर्गेन्द्रिय विषय तीव्र गूढा,
 रोगरूप-शब्द-रस-गन्धेष्टरति-महित मोग लुण्ठारिताश्च जनतोपका गृहीताश्च
 ये नरगणा । पुनरपि ते कम बुर्बिदग्धा कपनीता-रामकिङ्करणा तेषा वचसास्त्र पाठ
 काना, विदपाङ्गक कारकायां कक्षास्रत प्राहकारां कूट कपट माया-निकृति काऽऽच
 रण-प्रसिधिविद्वान-विहारवाना, बहुविधाश्लोक स्रत अल्पकानां, परलोके पराङ्ग-
 मुखानां, निरयगति गामिनान् । विद्वन्माम्भ जीन (जीवित) दण्डरवरित मुद्
 धादिता पुरवरे सृङ्गाटक त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुस्त्र महापथ पथेषु, क्षेत्रदण्ड
 ककुट-काष्ठ तेषु प्रस्तर-पञ्चाशो-प्रणोदी मुष्टिकतो-पादपायिण्य-जानुहूपर प्रहार संम
 त्माऽऽमविदगात्रा अष्टादश कम कारणात्-याहिताङ्ग-मत्स्यज्ञा, कस्या, हुम्बैष्ट
 कण्ड गलक-तालु जिह्वा बाधमाना पानीय विगत जीविताशालुप्यारिता बरा
 कास्तरपि म लम्बन्ते, बम्बपुङ्खे बाह्यमानाज्येयमात्राः । तत्र च खर परुष पटह पट्टित
 कूट प्रह गाढ हट निस्तुष्ट पराभृष्टा बम्ब कर कुटो युग निवसिताः । सुरल कजबीर
 प्रथित विदुक्क कण्ठे गुण बम्ब वृत्ताऽऽविद्व मास्यदामानः मरण भयोत्पन्न स्वेहायव
 लक्षित हुतुपित ? क्रिम गात्राः, लूणगुल्लित शरीर रवारेपुष्टव केसाः कुसुम्भ
 कोत्कीर्य मूष्वमादिछमत्रीविताऽऽशा पूर्णमानावध केभ्यो मीतालिङ्ग विङ्ग वीव
 छिद्यमाना शरीर म्युत्पन्न्य छाहितोन्निमानि काकिणी मांसाभि प्राद्यमाना पापा
 शरपरुषे (सरकरशते) ताह्यमान वेहा, वादिक नर-नारी संपरिहृता मेक्ष्यमाणाय
 जागरभमेन बम्बने पथिवता प्रनीवते मगरमम्बेन कृपण कस्या अत्राणा-भक्षणा
 कमाया-अवा-धवा-बम्बुविषहीना-विशेषमाणा-दिशोदिदी मरणमयाह्रिमाः, आपा-
 वन प्रतिहार सम्प्राविश अयस्या शूराय विद्वन्निभन्न द्वा, स्ते च तत्र क्रियन्त परि-
 कल्पिताङ्ग मत्स्यज्ञा । ब्रह्मभ्यगते बुद्धशारतासु केचित्कल्याणि विद्वन्तः, अपरे चतुरङ्ग
 दद बदा पवत कटकात्ममुच्यन्ते दूरात बहुविषम प्रस्तरधराः जम्बे च गज
 चरण मछन निमर्दिता क्रियन्ते पापकारिणः, अष्टादश पण्डिताश्च क्रियन्ते, मुण्डप
 शृभिः केपिदुरकोण कपोतनाद्या कत्यादित मयन-दसम रूपना त्रिद्विद्रवामिष्टाः,
 छिम कम तिराः, मणीयन्ते छिद्यन्ते चाऽसिना, निर्बिषया-छिम हलपादा प्रमुच्यन्ते

आवधजोव बन्धनाश्च क्रियन्ते, केऽपि परद्रव्य हरणं लुब्धाः, कारागंला-निगल-युगल
 रुद्धाश्चरकाऽपहतसाराः, शयन (स्वजन) विप्रमुक्ता मित्रजन निरीक्षिता (निरा-
 कृता) निराशा बहुजन धिक्कार शब्द लज्जापिता अलज्जा अनुबद्ध क्षुधाः प्रारब्ध
 शोतोष्ण तृष्णा वेदना दुर्घटा घट्टिना-विवर्णमुख विच्छिन्नयो विफळ मलिन दुर्बलाः,
 क्लान्ताः, काशमाना व्याधिताश्च आमाभिभूतगात्राः प्ररूढ नख-केश श्मश्रुलोमानः पुरीष
 (छग) मूत्रे निजके क्षिप्ताः, तत्रैव मृता अकामका बध्वा पादयोराकृष्टा खातिकायां
 क्षिप्ताः, तत्र च वृक शुनक-शृगाल-कोल-मार्जार चण्ड सन्दंशक तुण्ड पक्षिगण
 विविध मुख शकल बिलुप्तगात्रा कृतविभागाः, (विभगा) केऽपि कुमिमन्तश्च
 कथितदेहा, अतिष्टवचनैः शप्यमाना, सुश्रुत यन्मृत इति पापः तुष्टेन जनेन हन्य-
 माना, लज्जापनाश्च भवन्ति स्वजनस्यापि दीर्घकालमृता सन्त । सू० ५११२ ॥

अब चोरी का फल वर्णन करते हैं ।

अन्व०— (तद्देव) पूर्वोक्त प्रकार से (केह) कई (परस्पर दृक् गवेसमाणा) दू-
 मरे के द्रव्यों को दूढ़ते हुए (गहिया) पकड़े गये (य) और (हया) सारे गये
 (बद्धरुद्धा) डोरी आदि से बांधे गये और रोके गए (य) और (तुरिय अतिघा-
 दिया) जल्दी २ घुमाये गए तथा (पुरवर) नगर में पहुँचा कर (चोरगह-चार-
 भड-चाडु करण समपिया) चोरों को पकड़ने वाले, जेल के अधिकारी और चाडु-
 कार-सिपाही वगैरह को सौंपे जाते हैं (तेहि य) और उनके द्वारा (कपट-कपडे
 निहय-आरक्षिय-खर-कहसबयण-तवजण गलुच्छुल्लच्छणाहिं विमणा) कपट-कपडे
 के कोरडे का प्रहार, दयारहित कोतवालों के अत्यन्त कठोर वचन आर तर्जना तथा
 गला पकड़ के पीछे हटाना, इन सब कष्टों से उदास होकर (चारक बसहिं) चारक
 बसति—जैलखाने में (पवेसिया) ले जाये जाते हैं, जो जैलखाना (निरयबसहि-
 सरिस) नरकावास के समान है (तत्थवि) वहाँ पर भी (गोम्मिय-पहार-दूमण-
 निवमच्छण-कडुय वदण-भेसणग भयाभिभूता) गुप्ति पाल के प्रहार, पीडा, आक्रोश
 और कटु वचन तथा भय जनक-दराधने मुखाकृति आदि भय से अभिभूत होते हैं
 (अक्खित्त निर्यसणा) जिनके वस्त्र खींचे गए (मलिन-ददि खड-निवधणा)
 मलिन और फटे हुए चियडे पहने हुए (ल्लोडालच-पास-मगाण-परायणेहिं) लीनों
 से रेशवत व नजराना मांगने वाले [दुखों की उद्दीरणा करने वाले] (गोम्मिय-
 भडेहिं) गुप्तिपाल-अधिकारियों के द्वारा (विविदेहिं बंधणेहिं) अनेक प्रकार के

वर्धनों से बांधे जाते हैं (किते) वे बंधन कीन से हैं ? 'बसर' — (इति निगट
 बाज रग्मुय कुर्वहग-वरत्त-ओहसंक्षस हर्यदुय वसपट्ट-दाम-कणिषोहणेहि) बाज
 का छोटा, निगट-ओह को चेडो, बाज-केसों की रग्मु-डोरी कुण्ड भन्त में डोरी
 बासा पाशा, वरत्ता, -चमडे की डोरी और लोहे की सफ़ल तथा इलास्टिक—एक
 प्रकार का बंधन बधपट्ट चमडे की पट्टी, डोरी का बना हुआ पाँव का बंधन और
 निष्कोट रूप बंधनों से (अग्रहि य एवमादिर्हि) और अन्य इस प्रकार के
 (गोम्मिक-मडोयकरणेहि) गुप्ति पाख के अडापकण्य-विविध साधन (दुक्क ससुरी-
 रणेहि) को दुक्क को उत्पन्न करने वाले हैं उनसे (संकोड मोडणाहि) देह को
 सिकोडने व मोडने से (वग्नति) बांधे जाते हैं (मंडपुष्पा) मण्ड पुष्प वाले
 (सपुड कषाह-ओह पंजर भूमिपर-निरोह इव चारग कोकग-जुष-वक्क-विहित-वधय्य
 संमाहय-वट्टकछण-बंधण-विहम्मणाहि य) और काष्ठमय संपुट कपाट लोहे के
 सिंजरे और लकड़ परमैं रोक रचना कूप अम्यकूप चारक बन्तो जामा कोल जूप, मुग
 गाडो का जुमा को मैलों के कपे पर दिया जाता है और एक से पोडा पहुँचाना, बाहु
 व बंधा का प्रमर्दन करके विशेष पोडा देना, धंभे में बांधना, पैर ऊपर करके
 बांधना इन सब कथनानामों से (विहेडधंथा) पीड़ित किये गए-अज्ञ प्रत्यज्ञों से
 मोडे-सिकोडे जाते हैं (अक्कोडक-गाड छर-सिर वट्ट इड्ड पुरित्त-पुरित्त-छ-कडग-
 मोडया—मेडणाहि) गवन को नीचे छेड़ा कर जो हृदय और मस्तक में गाड-बड
 पूषक बांधे गये तथा हवा भर गये या खारे २ को धूँक के नीचे बंधाये गए हैं धूँकती
 छाती बांधे, देह को मोडने या वल्लट पुष्ट करने अर्थात् ढँचा सीधा करने से (वट्टाव)
 बांधे गए और (भीससंथा) आस गिराते हुए (सोसावेड-ऊड-बावक—वप्पहग
 संधि वधय-उत्तससमग-सुहसा कोडयापि) चमडे से शिर को कपेट का बाँधना
 कपों को विहारण करना या जखाना पुठनों आदि पर काष्ठ के यन्त्र विशेष की
 बाँधना तपी हुई लकड़ा—कील और सूई के अग्रभाग को कूटकर देह में चुभोना
 भीकमा (तक्कण-विमाणयाप्तिम) बसुंछे से ककड़ी की तरह छीकना-दरारना, अप
 मार्मित करना और (कार-कडुप-विश-नावय-जायया-कारण सयाप्ति) धार-विक-
 धार आदि, मरणी आदि कटुक, और निम्न आदि तिल पदार्थों के देने से सेकड़ों
 पोडा के कारण (बडुवापि) ऐसे बहुत से कारणों को (पाविसेथा) प्राप्त करते हुए
 (उरक्कोजो-विम-गाडपेजय-मडिक—संमग—सुप्पुजोगा) छाती पर बांधे गये

वदे काष्ठ को मजबूत चोट से जो टूटो हुई अस्थि और पांसली वाले हैं (गाल कालक-
लोह दड-उर-उदर-चत्थि-परिपोलिता) मत्स्य वेधो अस्त्र की तरह घातक होने से
जो काले लोहमय दण्ड से वक्षःस्थल, पेट और गुह्य प्रदेश तथा पीठ पर पीटे गये हैं
(मच्छन—हिय सचुष्णिग्यंग मंगा) मथा गया है हृदय जिनका धीर अङ्ग चूर्णित
किये—पीसे गये हैं (आण्त्ती किक्केहि केति) कई आज्ञा करने वाले किंकर पुरुषों
से (अविराहिय वेरएहिं) विना अपराध के बैरी बने हुए एवं (जमपुरिख सनिहेहिं)
यम पुरुषों के समान जो कठोर हैं उनसे (पहया) ताड़ना पाये हुए—पीटे गए
(ते) वे (मदपुण्णा) मन्द पुण्य वाले (तत्थ) वहाँ (चडवेला—वज्जपट्ट—पारा-
इ—छिव-कस-लत-वरत्त-वेत्तप्पहार सय तालियंग मंगा) धपेटा, वर्धपट्ट—चमडे
की पट्टी, पारा—लोहमयकुशी, छिवा-चिकनी चाबुक, कप-चमडे का चाबुक, लता-
बैत ओ छडो, चमडे की बडी डोरो, बैत, इन सबके सैकड़ों प्रहारों से जिनके अङ्गो
पाङ्ग टाड़ित किये गये हैं वैसे (किक्का) बुरी दशा वाले (लंत्त-चम्मवण-वेयण-
निमुहियमणा) लटफती हुई चमडी वाले घावों को पीडासे जो चोरी में विमुख मन
वाले हैं (घण कोट्टिम-नियल-जुयल—सकोडिय मोडियाय) और लोहमय घन के
मारने व बेडो के युगल से जो संकुचित और मोडे हुए अंग वाले हैं (निरुचारा)
भ्रमण रहित या रुकी हुई जवान वाले तथा जिनका टट्टी पेशाब तक रोक दिया गया
है, ऐसे (कौरवि) किंकरों के द्वारा-किये जाते हैं (एवा अन्नाय) ये और ऐसी दूस-
री (एवमादी) इत्यादि (वेयणाओ) वेदनायें (पावा) पापी (पावत्ति) पाते
हैं (अवत्तिदिया वसट्टा) असयत इन्द्रिय वाले एवं विषय की परतंत्रता से पीड़ित
(बहुमोह मोहिया) मोह कर्म की तीव्रता से मुग्ध बने हुए (परघणमि लुद्धा) जो
परधन में लुब्ध हैं (कासिदिय विषय तिव्वगिद्धा) स्पर्श इन्द्रिय के विषय तीव्र
आमक्ति वाले (इत्थियगय रूव सद्द रस-गध-दद्ध—रति महित भोग-तण्हाइयाय) स्त्री के
रूप—सौन्दर्य, मनोहर शब्द, रस व गन्ध सुगन्ध में मानी हुई जो रति तथा स्त्री
के इष्ट भोग में लृप्ता रखने वाले और (धण तोसंगा) धन से सन्तुष्ट होने वाले
(गहिया य) और राज पुरुषों से पकडे गए (जे नरगणा) जो घोर मनुष्य (पुण-
रवि ते) फिरभी छूट कर वे (कम्म-टुडिबयद्धा) कर्म के बर्त्तीभूत हुए (उवणोया
राय किंकराण) राज पुरुषों के पास पहुँचाये जाते हैं (तेसि बह सत्थंग पाठयाण)
उन दण्ड शास्त्र के जानकार (विल्लल्ली कारकाण) वृद्धों को शौकों देने वाले या
व्याकुल करने वाले या (लंत्तसय गेण्हाणा) सैकड़ों प्रकार के घूस लेने वाले (कूड-

कपड माय-नियति—आवरण—पणिहि-बचन बिसारमाण) कूट—छाटे माप आदि
 कपट—येव व भाषा बखलना, भाषा-उगबुझि निकृति—बूतवा, बचन क्रिया इनका
 आचरण करने वाले अर्थात् एक पिय होकर सदा कपट बाजी में बिसारण (बहुवि
 द अन्धिय-सत्त्व लपकाण) बहुत प्रकार से सँकड़ों मूढ मोहने वाले (परलोक परम्पु
 हाय) परलोक से पराङ्ग मुक्त अर्थात् परलोक विगडने की अपेक्षा मही करने वाले
 (निरध गति गामिण्य) एवं भरक गति में जान वाले हैं (तेहि य) और उन राज
 पुत्रों के द्वारा (आयात चीय रूढ) कोहुष्ट निम्रह के जिये किया गया वण्ड या बोलन
 वण्ड रूप आवेश वाले (तुरिपक्या जिया पुरबरे) अन्धा से भयर क राज भाग में
 झुटे किये गए (सिधाहाग-विष-बठक-बबर बरम्पुड-महापद-पईसु) सृष्टाटक
 सिधोहे के आकार का त्रिकोण स्थान त्रिक, बसुण्ड-बीक, बत्सर-मैरात्र बसुमुस
 चारों ओर मार्ग बाढा, देवकुंड आदि महान् भाग और साधारण भाग इन सब भगईं
 में (येत-बद-खबड-कठ-खेडु-पत्तर-पणाहि-पयोहि-मुडि-कवा-पात्र पधि-बालु
 कोप्पर-पहार संमग्ग महियगत्ता) येत्र वण्ड, झकुट-ईडा काष्ठ, डेका, पत्तर, पणाहि
 सरीर प्रमाण छाठी, मणोकी-भार आदि की डकड़ी, मुष्टि, कवा वादपाय्मि-पैर को
 पेडी, बालु-कूर्पर-मुटना व कोहनी इन सब के प्रहारों से भङ्ग किये और मये गये
 देहवाले (भट्टारस कम्मकारणा जाइयंग मंगा) भट्टारह प्रकार के कर्मों के कारणों
 से कर्धित भङ्ग प्रत्यङ्ग वाले (कण्ठगा) शोन (सुबोद्ध-कठ-गम्क-साछु बीडा)
 जिनके ओठ कण्ठ, गळा, साछु और बीम सूखे हैं ऐसे (पाणीयं आबंदा) पानी
 को सँगते हुए (बिगय बीविवासा) बोलन की भासा छोड़े हुए (जण्ढाविता बरागा)
 लम्पा से पोडित बेचारे (तपिय न समति) उस पानी की भी नहीं पाने हैं (बक्क
 प्रसिद्धि पाडियेता) बक्क-पुलसी पर नियुक्त अधिकारियों से प्रेरणा पाये हुए (वत्त
 य य) और इस प्रेरणा में (खल-कदव-पडइ-महित-कूडगगह-गाड-रुड
 निमट्ट परामुद्धा) अत्यन्त कठिन पदह-डोड से चरने के लिये पड़े गये तथा
 अत्यन्त रूढ कर्मकारियों के द्वारा छुड पूरक पकड़ने के कठिन साधन—पाश विरोध
 से मझून पकड़े गये (वत्तडर कुडि-सुय निवत्ता) बक्क के योग्य करकुलीमुग-बत्त
 का बोडा बिसेव-पहने हुए हैं (सुत्त-कण्ठोर-गहिय-बिसुडक-कंठे गुय बक्क-
 दूत-आविद मझरामा) पिछे हुए-सूख जाड कनेर के फूडों से गूये गये सुवण हार
 के समान कंठ में बक्क के दूत की तरह पूरमाखा की भी पहने हुए हैं (मरण

भयुष्पण्य-सेद-आयत्त-गेहृत्तु पिय किलिन्नगत्ता) मरण भय से हतप्र पसीने के कारण जैसे किसी ने थक कर तैल से शरीर मसजा हो वैसे गोले शरीर वाले (घुण्ण-गुण्डिय सरार) रयरेण भरिय केसा) राख आदि के चूर्ण से भरे शरीर वाले तथा हवा से चढो हुई धूलि के कणों से जिनके केश भरे हैं (कुसुम-गोकिन्न मुद्रया) कसूवा के रंग से व्याप्त केश वाले (छिन्न जीवियासा) जीवन की आशा जिन की छूट गई है (घुन्नता) भय की अधिकता से जो धूज रहे हैं (वन्ध्याण भीता) बातक पुरणों से ढरे हुए (वन्ध्याण पीता) वध्य और दूसरे के प्राणों का पान करने-नाश करने वाले (तिल तिल चैव छिन्नमाणा) तिल जैसे टुकड़े २ कर के काटे गये (शरीर विक्रित—लेहिभोलित्ता कागाण मंसाणि) शरीर से तत्काल फाटे हुए भतपव रक्त स्नायु से लित ऐसे मांस के छोटे २ टुकड़ों को (खाबियता) खिलाये जाते हुए (पावा) पापी जीव (खर फरसर्हि) अतिशय कठोर अथवा (खर करसर्हि—) सैकड़ों कठिन हाथों या पत्थर आदि से भरी हुई थैली से (ताळिज्जमाण वेहा) पीटे जाते हुए शरीर वाले (वातिक नर नारि सपरिवुडा) वातिक-स्वच्छन्द स्त्री पुरुषों से घिरे हुए (पेच्छिज्जंता य नागर जणेण) और नागरिक लोकों से घेरे जाते हुए (वन्ध सेवत्थिया) वध्य के पूर्ण वेश वाले शोर (नयर मज्जेण) शहर के बाब से 'वध्य भूमि में' (पणेज्जति) ले जाये जाते हैं (किवण कलुणा) अत्यन्त हीन (अत्ताणा,—असरणा—अणाहा—अवधवा—बधु विप्पहोणा) भ्रास रहित, असरण गृह हीन, तथा नाथ बन्धु और बान्धवों से विप्रहीण अर्थात् प्रियजनों से दूर किये गए (विसोर्विसि विपिक्खता) एक दिशा से दूसरी दिशा की ओर देखते हुए (मरण भयु विवगा) मरणभय से चट्टिग्न (आघायण पण्डिदुवार सपाविया) वध्य भूमि के प्रतिद्वार पर पहुँचाये गए (सुलगा-विलगा भिन्न वेहा) शूली के अग्रभाग पर लगे होने से बिदीर्ण-छिदे हुए शरीर वाले (अधन्ना) जो अधन्य-विफल हैं (ते य तत्थ) और वे वहाँ पर (परिकप्पियम मगा कीरति) छिन्न भिन्न अङ्गों पाङ्ग वाले किये जाते हैं (कम्भ-सात्तासु लल्लिज्जति) वृक्ष की शाखाओं में लटकाने जाते हैं (केई कलुणाई विलगमाणा) कई करुणा जनक विलाप करते हुए और (अवरे) दूसरे (चउरग धणिय वद्धा) हाथ पांव रूप चार अङ्गों में टूट बाँचे गए (पन्वय कडगा पमुच्चते) पर्वत के शृङ्ग-शिखर से गिरा दिये जाते हैं (दूरपात-वहुविसम—पत्थरसहा) और दूर से बहुत भिन्न पत्थर पर गिराये गये पत्थर के टुकड़ों को सहने वाले हैं (अन्ने) दूसरे

(गय बछ्म मलय निमहिमा कोरति) हाथों के पैर नोच मसखने के कारण मर्दिन
 किये जाते हैं (पावकारो, अठारस खंडिया य) और चोरी के पाप को करने
 वाले अठारहों स्थान में अक्षिण (कोरति) किये जाते हैं जैसे—, मुसुडि पर
 सुर्हि) मुसुडि-कुण्ठित कुठार और परशु स (के) बध्म-कमोद भासा) कई काटे
 गये कान ओष्ठ और नाक बाळे (कपाक्षि-मयण-वसण-वसया) भाँख, दाँत
 और धूपन-अडकोल जिनके चिकाळे गये हैं वैसे (विर्मिमाव्यष्टिमा शिष कन्न
 सिरा) खोचो गई बीभ बाळे, कटे हुए कान और नाडो बाळे (पणिरत्रते) बध्म
 भूमि में छाये जाते हैं (छिम्बते य असिपा) और तलवार से काटे जाते हैं
 (निरिखया) बैस से निकाळे गये (छिन्न हत्वपाया पशुचरते) हाथ पाँव काट
 कर राज पुदपी से छोड़े जाते हैं (आवन्वीव बध्मनाय कीरति कइ) और कई
 चोर आजीवन क किये बंधी किये जाते हैं (परवन्व हरण छुद्रा) ये वृत्तों के
 घन को हरण करने में लोभो (कारधाल निषक-शुषकच्छा) जेठ के कटहरे
 और दो चेड़ियों से रुके हुए (चारगावहतसारा) चारक कैर में छीने हुए द्रव्य
 बाळे (सयण विष्णुमुखा) स्वर्णों से छोड़े गये (मिचवन निर्दिक्त्र [रकि] या
 निरासा) मित्र जनों से बेने-गये या हटाये गये अवयव निरास (बहुव्ययविचार
 दर कवचायिता) बहुत से छोटी के विचार दण्ड से छत्रा पाये हुए (अक्षरश
 निखन्न (अणुबद्धकुश) सदा भूमे (पारस-सीकण्ड वेणु दुग्ध-वह्नि) मारव्य
 के योग से सुसर्त्री गर्म और तृषा को दुर्घट बेहना स मुक्त हैं (विवन्नमुह्निच्छयिषा)
 विरूप मुख और कान्तिहीन शरीर बाळे (बिहक मणिग दुग्धर) विरक्त मनो-
 रथाबाळे मर्दिन और असमय हैं (किर्कया कांसवा) स्थानियुक्त तथा आसते हुए
 (बाहिया य) और कुछ आवि व्य वि बाळे (आसमिभूषणा) आ १-अवकमस
 रूप-रोग से आक्रान्त कायबाळे (पसदभद-केस-ससुरोमा) बसे रहने से जिनके
 नख, केस दाढ़ी व रोम बड़े हुए हैं (छगमुत्तमि विषगमि भूता) अपने वही पैसाव
 में पड़े हुए (वल्लेव) परवन्व होकर पहाँ-मछ भूव के स्थान पर ही (मया अकाम
 का बधिर्य पावेसु) बिना हच्छा के ही अविमिश्र मरवाने से जो पाँव में बाँधकर
 (कठिया काहवाय छुद्रा) खोचे गए और साई में गिरा दिये गये (वल्लेव य) और
 बहाँ गिराने के बाद (वग-मुसुग-सिवाळ-कोछ-मग्नार चंड संदर्भग दुष्ट पत्तिगम्य
 विविदमुह सयल-गिष्ठगता) डुक, कुपा धूगाक, कोछ बिलो के समूह और

सहाशे के समान मुख वाले पक्षि समूह के अनेक प्रकार के सैकड़ों मुखों से उनके शव नोचे जाते हैं। (कयविहगा) उन मांस भक्षी जीवों से टुकड़ि किये गये। (केह क्रिमणा य) और कई क्रमियुक्त शरीर वाले (कुहियदेहा) सड़े हुए देह वाले अणुद्वयणेहि सम्पमाणा) लोकों के द्वारा अनिष्ट वचनों से छेस पाते हुए (सुदुकर्य ज मरुत्तिवावो) अच्छा किया जो पापी मर गया इस प्रकार (सुदुर्ण जणेण हम्म) सन्तुष्ट हुए मनुष्य से मारे जाते हैं (सयणस्स विय) और स्वजन, वर्ग को भी बेचारे (दोहकाळ) लम्बे समय तक (लज्जावणकाय होति) शरमाने वाले होते हैं (मया सत्ता) मरे हुए क्या दशा भागते हैं ?। ५।१२॥

भावार्थ—दूसरे के धनको उड़ते हुए चोर पकड़े जाते व मारे जाते हैं, बांध कर रोक रखे जाते हैं। शोधना से चारों ओर घुमाना नगर में पहुँचाये जाते हैं और फिर अधिकारियों को सौंपे जाते हैं। अधिकारियों के द्वारा दिये गये विविध प्रहार और तर्जन से उदास बने हुए नरकावास के समान दुःख प्रद ऐसे बन्धवृह मे गौलमकों के प्रहार आदि से अभिभूत पोहा को भोगते हैं। वहाँ जो बध, बंधन, ताडन आदि दिये जाते हैं उनका वणख सहज है। अठारह प्रकार के चाँये कर्मों के कारण कई चोर शूलो पर चढ़ाये जाते, कई आजीवन सजा पाते हैं और कुछ अन्धकूप आदि यातनाओं से सताये गये बिना इच्छा के ही मृत्यु पाते हैं। अन्य प्रकरण सुलभ है। सू०।५।१२॥

मूल—“पुणो परलोक समावन्ता, नरए गच्छन्ति निरभिरामे,
अंगार पलित्तक-कप्प-अचत्थ-सीतवेदण-अस्सा उदिन्न-सयत-
सुक्खसय समभिदुत्ते, ततोवि उब्बट्ठिया समाणा पुणोवि पवज्ज-
ति तिरिय जोषि, महिं पि निरयोवम अणु हवन्ति वेयणं। ते अणंत
कासेण जति नाम कहिं पि अणुयभावं लभन्ति णे मेहिं शिरियगति-
गमण-तिरिय अव-सयसहस्स परियट्ठेहिं, तत्थावि य भवन्तऽणा-
रिया नीच-कुल-समुप्पण्णा अरिय जणेधि खोगवज्झा, तिरिक्ख
भूता य अकुसला, काम भोग तिसिया, जहिं निवर्धन्ति निरय-
वत्ताणि, भवप्पवंचकरण-पणोहि पुणोवि संसारा वत्तणेम जूल
धम्मसुति विवज्जेजया अणज्जा कूरा मिच्छत्त सुति पवन्ना य

होति, एगत बंध रुहणो वेहेता, कोसिकार कीडोव्य अप्पग अहुकम्म
तनुघण्य बधयेण्य एवं नरग तिरिय-मर-अमर-गमण्य पेरंत चक्रबाह,
जम्म-अरा-भरण-करण ग मीर वुक्क पखुभिय पठर-सल्लिह, सजो
ग विद्योग-वीची-विंता पसग पसरिय वह-बंध-महद्ध विपुल बद्धो
ह-कत्तुण-विहवित-कोम-कल कर्षित बाह बहुलं अवभाण्य फेण,
तिव्व सिसव-पुल पुलप्यभूय-रोग वेयण-पराभव विधिवाल
कदस-परिसव-समावडिय-कठिय कम्म-पत्थर-तरग-रगत-
मिह मळुभय-तोपपट्टं कसाय पायाल सकुल, मवसय सहस्स
जल सचय, अयंत ठव्वेयण्य अवोरपार, महम्मय भयकरं पड-
भय, अपरिमिय-महिच्छ-कलुसमति-बाडवेग-ठद्धम्ममाण
आसा पिबास-पायाल-कामरति-रागदोस-बधय बहुविह
संकप्प विपुल वग-नय-रयधकारं, मोह महावत्त भोग भममाव
गुप्प माणुक्कल-बहुगम्मवास-पडोणियत्त पायिय पया
वित-वसण्य समावज-कल बंध-माक्य समाहया मल्लुल वीची-
बाहुवित भग-फुरत निह-कल्लोह-सकुलजवं पमात बहुबह दुह-
सावय समाहय उद्धापमाण-पुरपोर बिद्धसण्यत्तबहुल, अयण्य-
ण भमत मच्छ परिहत्थ, अनिहुतिविप महामगर-सुरिय-वरिय
कोलुज्जमाण मत्ताव-मिचय-वत्त ववत्त-वचत्त-अत्ताण्यऽसरय
पुव्वकयकम्म-संचयोदिज बज्ज वेहज्जमाण्य-दुहसय विपाक
बुलंत जल समूहं, इडिहरस साय-गार बोहार-गहिय कम्म पाडि
वद्ध सत्त-कडिहज्जमाण मिरयत्त-हुत्तसत्त-विसत्त बहुला, अरह
रह भय-विसाय-सोग मिच्छत्त-सेल सकद, अयाति सताय कम्म
बधण्य किलेस-विपिखण्य सुहुत्तार, अमर-मर-तिरिय मिरय गति
गमण्य कुडिल परिपत्त-विपुल वल, हिंसाधिय अवत्तावाय मेहुय
परिगहारंभ करण-कारावण्यण्य मोदण्य-अहुविह अयिह कम्म
विहित-गुह भारण्य-दुग्ग जल्लोप दूर पडोखिज्जमाण्य ठम्मग्ग
निमग्ग-दुल्ल भतल, सारीरमयो मयाण्य-दुक्खणि उप्पियता, मात
रुण्य परितावण्यमय उप्पुदु मियुड्यं करेता, यउरत महत्त नय

वयग्गं, रुद्धं संसार सागरं अट्टिय अणाल्लण्णं सपत्तिठाणं मप्प-
 मेयं, पुल्लमिति जोषिं मयसहस्सं शुचिलं, अणाल्लोकं मंधकारं,
 अणंतं कालं निच्चं उत्तत्थं सुण्णं भय-सण्णं संपत्ता 'वसंति
 उव्विगावांसं वसहिं । जहिं आउयं निबंधंति पाव कम्मकारी पंध
 वज्जण-सयण-भित्तं पारिवाज्जिया अणिट्ठा भवति अणादेज्जं दुव्वि-
 र्णाया कुठाणासण-कुसेज्जं-कुभोयणा, असुहणो कुसंघयण-कुप्प-
 माण-कुमाठिया, कुब्बा, बहुकोह-माण-माया-लोभा, बहु मोहा
 धम्मसत्त-सम्मत्तं पवभट्ठा, दारिद्रोवहवाभभूया, निच्च परकम्म
 कारिणो, जीवणत्थराहिया, किंविणा, परपिंडतक्कका दुक्खलद्धा-
 हारा, अरस-विरस-तुच्छकयं कुच्छिपूरा, परस्स पेच्छंता, रिद्धिस-
 क्का-भोयणं विमोस-समुदयविहिं, निंदता अप्पकं कयं तच्च, परि-
 चयंता इह यं पुरेकडाइ कम्माइ पावगाइ, विमण्णो सोएण उज्झ-
 भाणा परिभूया होंति सत्ता परिवज्जिया य, लोभा-सिप्पकत्ता
 जमय-सत्थं परिवज्जिया, जहाजाय पसुभूया, अवियत्ता पिच्च-
 तीय कम्मोव जीविणो, लोयं दुच्छाणिज्जा, भोचमणोरहां, निरासं
 बहुला आसापास पाडिमद्धं पाणा, अत्थोपायाण-काममोक्खेय
 लोयसारे होंति अफलं वत्तका यं सुट्ठुविय उज्जमंता तदिव सुज्जु-
 त्त-कम्मकयं दुक्खं संठावि-सित्थं पिह-संचय-पक्खीणदव्वं-
 सारा, निच्चं अधुवधण-धण-कोस-परिभोगं विवज्जिया, रहियं
 कामं भोगं परिभोगं सव्वमोक्खा, परसिरिभोगोवभोगं-
 निस्साण-मग्गणं परायणा, वरागा अकामिकाए विणेंति दुक्खं,
 एवमुहं, एव निव्वुत्तिं उवल्लभंति अचंतं विपुलं दुक्खं सयं संप-
 पत्तिता । परस्स दव्वेहिं जे अविरया । एसोसो अदिण्णादाणस्स
 फलविवागो, इहलोहओ, पारलोहओ, अप्पसुहो बहुदुक्खो
 भव्वभओ वहरयप्पगाहो, दाक्खो कक्कसो असाओ वाससहस्सेहिं
 सुचति । न यं अवेयहत्ता अत्थिहु मोक्खोत्ति, एवमाहंसु णायकूलं

एवयो महत्पा जिष्ठा उधीरधर-नाम धेज्जो, कहस्ता य अदियणा
 दाखस्त फलधिवाग, एय न तनियपि अदियणादाण इरदइ-मरण
 भय-कलुसतासण-पर सत्तिक भज्ज खा म मूल एव जाय षि।
 परिगतमणुगत दुरत । ततिय अइम्मदार समस्त सिवमि ॥ १ ॥
 ६ ॥ सूत्र १९ ॥

छापा—पुन परलोक समापना नरकेगच्छति निरमिशमे, भङ्गाप्रशोक्त
 कल्याण्यय स्त्रीवचनाऽसातादार्ण-सतत दुःख दान सममित्तुत तताऽप्युर्विता
 समाता पुनरपि प्रप्रवन्ति तियन् योनिम् । तत्राऽपि निरयोपमामनुभवन्ति वेदनाम् ।
 तेऽनन्त काष्ठेन यदि नाम कापि मनुजमाद्य लभन्त मीरु निरवगति-नामन-तियन्
 मवसत सहस्र परिवर्तेयुः । तत्रा पि च भवन्तोऽनार्था नाच कृच्छ्र ममुत्पन्ना आयत्र
 नेऽपि लोके बाह्यालियन् मूलस्य भङ्गसङ्गा, कामयोग तृपिता यत्र निरवन्ति निरय-
 वर्तिमवपद्य करण प्रणोकोनि । पुनरपि समाराधतेनेमि मूत्रानि । धमभुनि विवर्जिता
 भताया क्रूरा निष्पातव्युतिप्रपन्नाऽभ्यन्ति । एकाञ्च-दण्ड दण्डो वष्टयन्ति काशि
 काऽऽकार कीटा इवार्मानमष्टम तन्नु-धनव-धनेम । एवं नरक तियन् नराऽमर
 गमन-पयन्त चक्रवाक जन्म करा-मरण-कावे-गन्धोर् बुद्धिदुःख-प्रचुरसर्जितं
 संयोग-विद्यो-बीबी-चिन्ता प्रसङ्ग प्रसृत वध-वर्ध महा (३३) विपुल क्लौक
 कल्या विवर्जित-लोभ कलकटावमान-मोक्ष बहुलम् अवमानन केन तीव्र क्षिप्तन
 [पुच्छ पुम्] प्रमत-रोग वेदना-पराभव विनिपात पश्य पश्य समापतित-कठिन-
 कर्म प्रसृष्ट रङ्ग तज्ज नित्य मृत्यु-भय तोष पुष्टय, कषाय पाताळ संदुल्ल भवस्रव
 सहस्रप्रस्रवस्रव मनन्त मुद्रेजनक मनरीकपाट महाभय भयदूर प्रतिभय अपरि-
 मित महच्छा बहुपमर्ति-वासु वेगोद्यमानाऽऽज्ञा-पिपासा पाताळ-कामरति-राग
 हाव-वर्धन-बहुविध सङ्कल्प-गिण्डादक रज्जोरथाग्नकार मोहमहावत-भाग-प्रोम्बद
 सुपदुष्पद बहु गमकास प्रत्यय गिण्डतपानीय प्रधावितव्यसम-समापन्न-रहित-
 चण्ड मादक-ममाहिताऽमनोऽय वायो-व्याकुलित-भङ्ग क्षुब्धवामिनि-वज्राड
 सङ्कलप्रस्र, प्रमाद बहु चण्डबुध-घात समहितातिष्ठार-पोर विष्वमा-नयबहुलम्
 अज्ञान धमरमाय परिहृतम् । अनिष्टोद्विग्न-सहामकरत्वरित-परित पाशुस्त्रनाय
 मगाव निवध-वसाधरव चञ्चलाऽत्राण दारुण एवञ्च कम् मज्जयादोष-वय वधमान
 दुःखगत विपाद-पूर्णपानबलसमूह-वद्वि-रस सात गो वापदर गुरीव कम् प्रति

बल सत्त्वाऽऽकृष्यमाण नरक तलाभिमुखसन्न विषण्ण बहुलाऽऽरति-रतिभय विपाद
 शोक-मिथ्यात्व शैल सङ्कटम्, अनादि सन्तान कर्म बन्धन क्लेश-चिकित्सल सुदुस्वारम्,
 अमर-नर-तिर्यङ् निरयगति गमन कुटिल-पर्यस्त-विपुलबेलम्, हिंसाऽलीकाऽदत्ताऽ-
 दान मैथुन-परिग्रहाऽऽरम्भ करण-कराणाऽनुमोदनाऽष्टविधाऽनिष्टकर्म-पिण्डित-गुरु
 भारोऽऽक्रान्त दुर्गजलीध दूर [निमज्जमान] प्रणोद्यमानोन्मग्न-निमग्न-हुलभतलम्,
 शरीर मनोसयानि दृष्टान्मुत्पिबन्त, साहाऽसात-परितापनमयम्, उन्मग्न-निमग्ने
 कुबन्त, चतुरन्त महान्त मनवदन्, रुद्र, संसार सागरम् । अस्थिताना मनालम्बन
 मप्रतिष्ठानमप्रमेयम्, चतुर शीति योनिशत सहस्र गुपिलम्, अनालोकमन्धकारमनन्त-
 कालम्, नित्यमुत्तन्जून्यभयसजा-सम्प्रयुक्ता वसान्त-वद्विरनवासवसतिम् । यत्राऽऽ-
 युर्निबध्नन्ति पाप वम कारिणो दान्धवजन-स्वजन मित्र-परिबर्जिता, अनिष्टा
 भवन्ति-अनादेय दुर्विनीता कुष्ठानाऽशन-कुञ्ज्या-कुभोजना अशुचय, कुसहनन-कु
 प्रमाण-कुसथाना, (स्थिता) दुरूपा. बहुक्रोध मान माया लोभा, बहुमोहा, धर्म
 सजा-सम्यक्त्वप्रभ्रष्टादारिद्र्योपद्रवाऽभिभूता नित्यपर कर्म कारिणो जीवनाऽर्थरहिता,
 कृपणा, पर पिण्डितकका, दुःखलब्धाऽऽहारा, अरस विरस तुच्छ कृत कुक्षिपूरा,
 परस्य प्रेक्षका, श्रद्धा सत्कार भोजन विशेष समुदयविधि, निन्दन्त-आत्मानं कृतान्तं
 च परिवदन्त, इह च पुराकृतानि कर्माणि पापकानि विमनस शोकेन दक्षमानाः
 परिभूता भवन्ति-सत्त्वं परिबर्जिताश्च [क्षोभण्योय] क्षोभशिल्प-कला-समय-शास्त्र
 परिबर्जिता, यथा जात पशुभूता, अप्रणीता नित्य नीचकर्मोपजीविनो लोक कुत्स-
 नीश मोघ मनोरथा, निराशा-बहुला, आशा पाश प्रतिबद्ध प्राणा अर्थोपादान
 कामसौख्ये च लोकक्षारे भवन्त्यफलवन्तश्च । सुष्ठूपि च पश्यच्छन्तस्तद्विषयोद्युक्त-
 कर्मकृत-दुःख सस्थापित-सिक्थ-पिण्ड सञ्चय-प्रक्षीण द्रव्यसारा, नित्यमधुव्र-धन-
 धान्य कोश-परिभोग-विवर्जिता, रहित-काम भोग-परिभोग सर्वसौख्याः, परश्री
 भोगोपभोग-निष्ठाण मार्गण परायणा, वराका अकामिकया विनयन्ति दुःखम् ।
 नैव सुख नैव निर्वृतिमुपलभन्ते, अत्यन्त विपुल दुःखशत सम्प्रदीप्ता, परस्य द्रव्याद्
 येऽविरता । एष सोऽदत्तादानस्य फल विपाक ऐहिलौकिक पारलौकिकोऽल्पसुखो,
 बहुदुःखो महाभयो, बहुराज प्रनादो दारुण कर्करोऽसातो वाससदृशैमुच्यते । न
 चाऽवेदयित्वाऽस्ति मोक्ष इति, एवमाख्यातवान् ज्ञातकुलनन्दनो महात्मा जिनस्तु
 वीर वरनामवेय कथयिष्यति चाऽदत्तादानस्य फल विपाकम् । एतत् तत् तृतीयमप्य-

वृत्ताऽभ्यासं हरवह मरण-मय कालुष्य त्रासन पर सत्का मया छीम मूलमर्ष मावत्
 चिर परिगत मनुगेतं हुरन्तम् । सुवीममवमभारं समाप्तम् । इति ब्रह्मि ॥ ३ ॥
 सूत्र । ६ । १२ ॥

अन्वयार्थ— (पुणो परलोको समापत्ता) मरवाने के बाद फिर परलोको गये हुए
 वे और (नरप गच्छति) नरक में जाते हैं (निर्गमिरामे) जो नरक सुन्दरता से
 हीन है और (अंगार पक्षितक-कल्प-अवन्त-सीत वेद्य अस्मा त्विन्न-मयत पुक्क
 सप्तममिदुते) अग्नि से जलते हुए पर के समान जो अत्यन्त छोटा वेदना बासा
 और असाठा-दुःख से उदीरणा पाये हुए लगातार सैकड़ों पुत्रों से व्यस्त घिरा
 हुआ है (ततोवि कल्पद्विधा समाप्ता) उस नरक स्थान से निकले हुए (पुणोवि
 पवञ्जति) फिर भी प्राप्त करते हैं (तिरियञ्जोवि) तिर्यक धानि को (त्विपि)
 वहाँ पर भी (निरयोवमवेण) नरक के समान वेदना को (अनुपति) अनुभव
 करते हैं (अणतकाळेण) अनन्त काल से (अतिमाम) अगर् कदाचित् (ते) वे-
 चोर के बीच (क्विपि) किसी प्रकार या कहीं भी (मनुवमार्च) मनुष्यता को
 (नेगेहि) अनेक (निरय गति गमण तिरियमवसय सहरस पारक्केहि) नरक गति
 में जानेरूप और तिर्यक भव के छात्रों परिवर्तन होवाने पर (छर्मति) प्राप्त करते
 हैं (तत्पवि प) और वहाँ मनुष्य भव के छात्र में भी (मवत्तज्ज्यारिया) अनाय
 होजाते हैं, जो (नीय्कुलसमुपपन्ना) मोक्ष कुल में पैदा हुए हैं (आरिवज्जोवि)
 अनाय मनुष्य में उत्पन्न होकर भी (ओगवक्सा तिरिक्कमूता व) काँकों से बहिष्कृत
 और पशुके समान (अनुसक्का) तत्त्व ज्ञान में अनिपुण (काम भोग विविधा)
 काम भोग की तृप्ता बाड़े (अहि) वहाँ मनुष्य भव का बन्ध हुआ वहाँ (निरप
 वत्तयि-भवप्पवत्त-करुणपणोहि पुणोवि संसारावत्तणेम मूळे) नरक गति संवन्धों
 अनेक भव करने से पुनः उसी में प्रवृत्ति परायण बीच, पुनः पुनरावर्तन से संसार
 रूप नीच बाड़े दुर्गों के मूख कर्मों को (निरपति) बापते-सह्य करत हैं
 (पम्म सुति विवगिक्का) धर्म शास्त्र से विवर्जित-विकल (अणज्जाकूरा) अनार्य
 बुर-दिसाकारी अप्रैक देने बाड़े (मिक्कत्तमुति पवमाय होंति) और वे मिथ्यात्व
 प्रधान भुति-सिद्धांत को शोकार करने वाले होते हैं (एगं वड दइया) एकान्त-
 सब तरह स-दिसा को दधि बाड़े (कासिकार कीडोव्व अप्पमं) देशम के कीड़े को
 तरह अपने आपको (अनुपम्मत्तनु-पण वंघणं) अष्ट प्रकार के कर्मरूप तन्तुओं के

सघन बन्धन से (वेदेंति) वेष्टित करते हैं (एवं) इस प्रकार (नरग-तिरिय-नर
 अमर गमण पेरंत चक्रवाल) नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव गति में गमनागमन
 परिधि वाले (जन्म-जरा-मरण-करण-गंभीर-दुःख-पक्खुभिय-पडरसळिळे) जन्म,
 जरा मरण रूप साधन वाला गंभीर दुःख ही जहां अत्यन्त क्षुब्ध प्रधुर पानी है
 (संज्ञाग-विभोग वीची चिता पसग-पसरिय- बह-बंध-महज्ज विपुल-कल्लोल-कलुण-
 विलावत्त-लोभ-कलभजित-बोल बहुल) संयोग, वियोग रूप तरङ्ग वाला, चिन्ता के
 प्रसङ्ग रूप फैलाव वाला, और जो बंध-बन्धन रूप लम्बाई से बड़ा और विस्तीर्ण
 कल्लोल वाला है, दोनता से बिलाप युक्त, लोभ रूप कल-कल करती हुई ध्वनि की
 अधिकता वाले (अवभाणणुफेण) अपमान रूप फेन वाले (तिब्ब-खिसणपुल्लप्प-लप-
 भूय-रोग-वेयण पराभव विणिवात-फरस-घगिसण-सभावविय-कठिण-कम्म-पत्थर-
 तरंग रगत-निध मच्चुभयतोषणं) ताम्र निन्दा, निरन्तर उत्पन्न हुए अनेक रोगों की
 वेदनायें, अनादर का संयोग और कठिन बन्धनों का सघर्ष, ये सब जिनसे प्राप्त हों
 ऐसे कठिन कर्म रूप पत्थरों से तरङ्ग की तरह चलायमान सदा-अटल सृत्यु भय रूप
 जल के पृष्ठ भाग वाले (कसाय पायाळ सकुल) ४ कषाय रूप पाताल कलसों से
 न्याप्त (भवसय सहस्स जल संबय अणत्तं) लाखों भवरूप जल सञ्चय वाले, अन्त
 रहित (उव्वेजणय अणोरपार) उद्देगजनक अपार एवं भवि विस्तीर्ण (महम्मय-
 भयकर पइमय) महाभयानक, भयङ्कर और जो प्रत्येक वस्तु में भय उत्पन्न करने
 वाला है (अपरिमिय-महिच्छ-कलुसमति वात वेग उदुम्भमाण-आसा-पिवास-
 बायाळ-काम-रति-राग-दोष-बंधण-बहुविह सकप्प-विपुल-दग-रय-रयवकारं)
 अपरिमित-बड़ी इच्छा वाले मलिन मति रूप वायु के वेग के कारण आशा पिवासा रूप
 पाताल कलशे या समुद्रतल से उत्पन्न हुआ जो विषय में अभिरुचि, राग द्वेष रूप
 बन्धन और अनेक प्रकार के संकल्परूप विस्तीर्ण पानी के रजःकरण हैं उन के वेग से
 भवसमुद्र अन्धकार युक्त है (मोह-महावत्त-भोग-भममाण-गुणमाणुच्छलत्त-
 षट्ठ गन्मबास-पणोणियत्त पाणियं) जहाँ मोह ही महा आवर्त है, भोग-इन्द्रिय के
 विषय हो परिभ्रमण करते हुए व्याकुल होते और उछलते हुए बहुत गर्भवास-मध्य
 भाग-में उछलकर मोछे छौटे हुए प्राणी हैं (पधावित वसण-समावन्न-रुन्न-बंध-
 मारुय-समाहया-मणुन्न वीची-वाकुल्लि भग-फुट्त-निट्ट कल्लोल-सकुलजळ)
 श्मशान श्मशान पैंले हुए व्यसनों को प्राप्त कर रोने वालों का प्रलाप रूप मचपट वायु से

वृत्ताऽश्वानं हरद्दह मरणं-भय कालुष्य प्राप्तन पर सरदा भया । अभ मूषमभ धापम्
 चिर परिगत मनुर्गते दुरन्तन् । तृतीयमधर्मद्वारं समाप्तम् । इति प्रथमि ॥ ३ ॥
 सूत्र । ६ । १२ ॥

अन्वयार्थ— (पुणो परलोक समापना) मरण करने के बाद फिर परलोक गये हुए
 वे चोर (नरप गच्छति) नरक में जाते हैं (निर्गिरामे) जो नरक सुन्दरता से
 हीन है और (अंगार पक्षितक-कृष्-असत्त्व-सीत वेद्यु असत्ता सर्वज्ञ-मयत दुक्ल
 सम्बन्धमिदुते) अग्नि से जलते हुए पर के समान जो अत्यन्त शीत वेदना वाज्ञा
 और अज्ञाता-दुःख से ज्वरिया पाये हुए जगावार सैकड़ों दुःखों से व्यक्त पिरा
 हुआ है (ततोऽपि लब्धद्विधा समाप्ता) उस नरक स्थान से निकले हुए (पुणोऽपि
 पबन्धति) फिर भी प्राप्त करते हैं (तिरियञ्जोषि) तिर्यक् यानि को (तद्विपि)
 वहाँ पर भी (निरयोऽवमवेक्षण) नरक के समान वेदना को (अनुप्यति) अनुभव
 करते हैं (अर्णवकाष्ठेण) अमन्त काष्ठ से (अतिनाम) अंगार क्वाचित् (ते) वे-
 चोर के बीच (कर्हि वि) किसी प्रकार या कहीं भी (मनुष्यभावं) मनुष्यता को
 (जेगेहि) अनेक (निरय गति गमन तिरियमवसथ सहस्र पारव्हेहि) नरक गति
 में जानेरूप और विषय भव के छाकों परिवर्तन होवाने पर (छमंति) प्राप्त करते
 हैं (तत्त्ववि य) और वहाँ मनुष्य भव के काम में भी (मन्वत्प्यारिषा) बनाय
 होजाते हैं, जो (नीयकुलसमुपपन्ना) नाब कुल में पैदा हुए हैं (आरिपन्नयेवि)
 बनाय मनुष्य में उत्पन्न होकर भी (ओगवन्ना विरिक्कमूत्ता य) छाकों से बहिष्कृत
 और पशु के समान (अकुल्ला) तत्त्व ज्ञान में अनिपुण (काम मोग सिधिया)
 काम मोग की वृत्ता बाधे (कर्हि) वहाँ मनुष्य भव का बन्ध हुआ वहाँ (निरव
 वत्तयि-मन्वत्पवच-करणपयोद्धि पुणोऽपि सेसारावत्तयेम मूळे) नरक गति संश्रवों
 अनेक भव करने से पुन वसों में प्रवृत्ति परायण बीच पुन पुनरवर्तन से संसार
 रूप नीब बाधे दुःखों के मूळ कर्मों को (निबन्धति) बाँधते-संश्रय करते हैं
 (वम्म सुति विचिक्कवा) धर्म शास्त्र से विचर्चित-निष्कल (अण्णमाकूरा) बनार्थ
 मूर—हिंसाकारी उपदेश देने बाधे (मिच्छत्तमुति पवसाय होति) और वे मिथ्यात्व
 प्रधान भुति-सिद्धान्त को स्वीकार करने बाधे होते हैं (एगं दंढ कइयो) एकान्त-
 सब तरह स-हिंसा की शक्ति बाधे (कोसिक्क कीडोव्व अप्पगं) देहम के कीड़े की
 तरह अपने आपको (अट्ठकम्मवत्तु-वण वण्णेषं) अष्ट प्रकार के कर्मरूप तन्तुओं के

सप्तम बन्धन से (वेदेंति) वेष्टित करते हैं (एवं) इस प्रकार (नरग-तिरिय-नर
 अमर गमण पेरत चक्रवाल) नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव गति में गमनागमन
 परिधि वाले (जन्म-जरा-मरण-करण-गंभीर-दुःख-पक्खुभिय-पडरसडिळ) जन्म,
 जरा मरण रूप साधन वाला गम्भीर दुःख ही जहा अत्यन्त सुब्ध प्रचुर पानी है
 (सल्लता-विभोग वीची चिता पसंग-पसरिय- वह—बंघ—महल्ल विपुल-कल्लोळ-कलुण-
 विलावव-लोभ-कलकलित-बोळ बहुल) संयोग, वियोग रूप तरङ्ग वाला, चिन्ता के
 प्रसङ्ग रूप फैलाव वाला, और जो बंध—बन्धन रूप लम्बाई से बड़ा और विस्तीर्ण
 कल्लोळ वाला है, दोनता से बिलाप युक्त, लोभ रूप कल-कल करती हुई ध्वनि की
 अधिकता वाले (अवमाणणफेण) अपमान रूप फेन वाले (तिन्व-खिसणपुल्लप्प-सप्प-
 भूय-रोग-वेयण पराभव बिण्णवात-फरस-धरिसण-समावडिय-कठिण-कम्म-पत्थर-
 तरग रगत-निच्च मच्चुभयतोयपट्टं) तोष निन्दा, निरन्तर उत्पन्न हुए अनेक रोगों की
 वेदनायें, अतावर का संयोग और कठिन बचनों का संघर्ष, ये सब जिनसे प्राप्त हों
 ऐसे कठिन कर्म रूप पत्थरों से तरङ्ग की तरह चलायमान सदा-मटल मृत्यु भय रूप
 जल के पृष्ठ भाग वाले (कसाय पायाळ संकुल) ४ कवाय रूप पाताळ कलखों से
 व्याप्त भवसय सहस्र जल संचय अणत,) लाखों भवरूप जल संचय वाले, अन्त
 रहित (उव्वेजण्य अणोरपार) उद्वेगजनक अपार एवं अति विस्तीर्ण (महब्भय-
 भयकर पइभय) महाभयातक, भयङ्कर और जो प्रत्येक वस्तु में भय उत्पन्न करने
 वाला है (अपरिमिय-महिच्छ-कलुसमति बास वेग उद्धम्ममाण—आसा-पिबास-
 बायाळ—काम-रति-राग—दोष-बंघण—बहुविह सकप्प-विपुल-दुग—रय-रयघकार)
 अपरिमित-बड़ी इच्छा वाले मलिन मतिरूप वायु के वेग के कारण आशा पिबासा रूप
 पाताळ कलशे या समुद्रतल से उत्पन्न हुआ जो विषय में अभिरुचि, राग द्वेष रूप
 बन्धन और अनेक प्रकार के सङ्कल्परूप विस्तीर्ण पानी के रजःकरण हैं उन के वेग से
 भवसमुद्र अन्वकार युक्त है (मोह-महावत्त-भोग-अममाण-गुणमाणुल्लव-
 बहु गम्भवास-पथोणियत्त पाणियं) जहाँ मोह ही महा आवर्त है, भोग-इन्द्रिय के
 विषय हो परिभ्रमण करते हुए व्याकुल होते और उछलते हुए बहुत गर्भवास-मध्य
 भाग-में उछलकर पोछे छीटे हुए प्राणी हैं (पवावित वसण-समावन्न-रन्न-बंह-
 मारुय-समादया—मणुन्न वीची-वाकुलित मग-फुट्ट-निष्ठ कल्लोळ—सकुलजल)
 इधर उधर फैले हुए व्यसनों को प्राप्त कर रोने वालों का प्रलाप रूप प्रचण्ड वायु से

आधान पाये हुए भगवान् तरंगों से ठपाट्ट और नरक से विशिष्ट-पद्म कलाओं में
 व्याप्त जलवाला है (पमात बहुचर्च दुष्ट माधव-ममाद्य उद्धावमाया पूरा) विशिष्ट
 बहुचर्च (य आदि प्रमात ही बहुत रीति व कुछ भाषा दिताक जम्बु हैं उनसे आधान
 का पठते हुए पुनः आदि रूप मगलों का समूह ही पृष्ठ है तत्काल भगवत् विनाश लक्षण
 अन्यों से जो बहुल-व्याप्त है (अप्युक्त भगवत् मच्छ परिहर्य) अज्ञान रूप प्रमाण करते
 हुए वृक्ष मरस्यों से युक्त (आणिद्वितिय-महा मगर-हरिष-प्राप्त्यो मुक्तमभाव-
 -संताप-नियम-पक्ष-पक्ष-पक्ष-पक्ष-अप्युक्तमरण-मुक्तकव्य कर्म-मप्यदिभ्रवज
 येष्टव्यमाय दुष्ट सय विपाक पुष्पस्य जल समूह) अनुपशान्त इन्द्रिय रूप बह मही
 के जल्दी पछने या चेष्टा करने से जो अधिक सुख तथा निश्चिन्ता प्राप्त वाता है,
 पक्षपात हुआ पक्ष व पक्ष और प्राण रहित एवं भगवत् प्राणिमां के पक्षपात कम
 के संलय से संलय पाये हुए-प्राणों का भोग जाता हुआ सँकटों, यत्न विपाक हो
 भगवत् करवा हुआ जल समूह है (उद्धि-रस-मात-गारपोहा-गदिय-कर्म पक्षिद्व
 सत्त-कद्विजमाय-निरवतलद्विष्ट सन्त-विसन्त-बहुला-भरत-रत्न-मय-विसाय
 शोक-मिच्छा सौख्य संकट) शक्ति, रस और सावा ये तीन गौरव रूप मप्यार-जल-
 पर विशेष से गृहीत और कम बग्य से मकड़े हुए प्राणों की चेष्टा जात हुए या नरक
 रूप पाठाक एक के सम्मुख सन्त और विपण्य-लेष्ट युक्त-हैं, उन से बहुत भरति,
 रति, मय, दीनता, शोक तथा मिथ्या रूप पक्षों से संश्रुत (अप्यदि-संताप्य कर्म-
 पक्ष-मिच्छा-विच्छिन्न सुकुमार) अमादि-आदि रहित सन्तान बाका कम बंधन)
 और रागादि होस रूप कीपक्ष के कारण बहुत कठिनता से तरने योग्य (भगवत्-मर
 विरिष, निरयगतिगम्य-कुटिल-परिवरा-विपुल वेष्ट) वेष्ट, मनुष्य विपक्ष और
 निरय-नरक-नाशि में जाने रूप कुटिल परिवर्तन युक्त विपक्षों वेष्टा-जल बुद्धि बाके
 (विसासिय-भगवत्प्राण-मेहुण-परिमार्जन-करस-कावय्याधुमोदय-भट्ट-
 बिह्र अमिदकर्म-विच्छिन्न सुकुमारक व-हुमा-मकोष-दूर-पक्षोक्ति-ममाय-कर्ममा
 निममा-सुखमठक) विसा; सुष्ठ जोरी, मेहुण और परिपक्ष-संज्ञा, भारकर्म के
 करने करने व अनुमोहन से सम्भव भाठ प्रकार के अनिष्ट कर्म के भारी बोझ से
 जो बने हुए हैं, मयस्य रूप एक के प्रवाह से दूर-दूर जाते हुए और पानी में, रूप
 नीचे होने से विसका एक प्रवेष्ट मिश्रता बुद्धि है (सरीर मयोमपाणि बुद्ध्यादि)
 शरीर-भगवत् सम्बन्धी-मुक्तों को (कल्पिता) प्राप्त करते हुए (सावसाव

परित्यापय मय । माना-सुख और दुःख से उपन्न परितापना वाले (उन्मुक्त निवृत्त-
 हुय) सुख दुःख रूप उच्च नीच दशा को (करेना) करते हुए (चरत महत मण-
 वथगत्तु (रुद्ध) ससार सागर) दिशा व गति से चार तरफ अन्त वाले, बड़े अन्त
 रहित और अत्यन्त विशाल सनार सागर को (अद्विज अणालव्रणमपतिट्टाणमप-
 मेय) मयम मे अस्थित आलम्बन रहित अप्रतिपान-आधार रहित या आण रक्षा के
 कारण से रहित तथा अल्पज्ञों से नहीं जानने योग्य (चुलसीति जोणि सय—सहस्त-
 गुत्रिल) चोरामी-लाभ जीव योनिओं से गुपिल-व्याप्त (अणालोकमधकार)
 अज्ञान के अन्धकार स्वरूप ऐसे समार सागर में (अणतकाल) अनन्त काल
 (णिच्च उत्तस्थ सुल्ल भयभज संपत्ता) सदा त्रास युक्त शून्य—कर्तव्य विचार में
 मूढ—और मयसजा सहित जोव (वसन्ति) रहते हैं (उन्निगावास वसहिं) जो
 सनार उद्विग्न जनों का निवासस्थान है (जहिं) जिस ग्राम कुल आदि में (पावकम्म-
 कारो) पाप कर्म करने वाले (आउय) आयु को (निवधति) बंध करते हैं, बंधा
 (बधव जण सयण मित्त-परिषड्जया , बाधव जन स्वजन तथा मित्रों से जे परिचर्जित-
 रहित (अणिट्टा) अनिट्ट (भवति) होते हैं, (अणादेवज दुग्घिणोया) फिर अग्राह्य
 वाक् एव दुर्विनीत-विनय से भ्रष्ट (कुठाणासण कुसेज कुभोयणा) अयोग्य व खराब
 स्थान, आसन शय्या, और खराब भोजन वाले (असुराणो) अशुचि-शुचि रहित या धर्म
 श्रुति से हीन (कुसंघयण-कुपमाण-कुसंठिया-कुरुवा) सेवक आदि अशुभ सहनत
 वाले, अधिक लम्बे या अधिक छोटे हुड आदि आकार वाले कुरूप सुन्दरता से हीन
 (बहुकोह-माण माया-लोभा—बहुमोहा) बहुत क्रोध, मान, माया और लोभ
 वाले, बहु मोहा-अधिक कामी या अज्ञानो (धम्म सन्न-सम्मत्त-पवभट्टा) धर्म बुद्धि
 और सम्यक्त्वसे परिभ्रष्ट (दारिद्रोवइवामिभूया) दरिद्रता के उपद्रव से घिरे
 हुए (निध पर कम्म कारिणो) सदा दूसरों के कर्म करने वाले (जीवणत्थ-
 रहिया) जीने योग्य द्रव्य से रहित या जीवन के पवित्र उद्देश्य से रहित
 (क्विणा-पर पिण्ड-तक्का) रक्त, मिश्रारी, तथा दूसरे के दिये हुए पिण्ड को
 तकने वाले अर्थात् परमुखापेक्षी (दुक्खलद्धाहारां) दुःख से आहार का लोभ
 करने वाले (अरस विरस तुच्छकय कुच्छिपूरा) अरस-हीन आदि रस रहित, विरस-
 पुराने-नासी और तुच्छ आहार से चंदर भरण करने वाले (परस्स) दूसरे के
 (रिद्धि-सकार-भोयण विसेस समुदयविहिं पेच्छता) श्रद्धि—सम्पत्ति, सत्कार और

भोजन के विविध प्रकार के संग्रह और तरीके को देखते हुए-सरसते (निर्वात-
जपक) अपनी मित्रता करते हुए (कर्मतः च परिवयता) और कुतान्ध-ईश को
पुरा करते हुए (इह य) इस जन्म में ही (पुरे कदाह कम्माई पावगाई) पूरा कुछ
जन्मान्तर के किये हुए-अधुन कर्मों का निम्नन करते हुए (विमणसो) सदास मन
बाढे (पोपसु इय्यमाणा) सोक से बढते हुए (परिभूषा होंति) मनानर मुक्त
होते हैं, (चय परिविज्जवा य) और सामर्थ्य रहित (छोमा) असहाय-छोमपाने
योग्य (सिप्प क्का समयसत्थ परिविज्जवा) क्षिप्प-विप्रक्का आदि क्का-धनुर्बेद
आदि और समयसत्थ-जैन बौद्ध सौव आदि के विद्वान् शास्त्र, इन सब से परिब-
र्जित अर्थात् अनजान होते (बहाजाय पसुभूया) मूर्ख और गहू के समान (अबि-
यत्ता) अपीति रूपक करते बाढे (सिच सीयकम्भोवसीदिणो) सदा मोच कर्मों
से जीविका चढाने बाढे (छोय कुच्छयिज्जा) कोक में भिन्नीव (मोष मणोरहा
निरास बहुळा) निष्कल मनोरथ बाढे व निरास की अधिकता बाढे (भासापास
पविबद्धपाणा) भासा के पास में बँधे हुए प्राण बाढे (अथोपावाज कामसोक्ते
य ओगसारे) कर्म संग्रह-धन सङ्ग्रह तथा काम मुक्करूप कोक के सारांस में
(सुद्ध'वन परवमत्ता) लच्छी तरह से लयन करते हुए भी (अक्कबवका होंति)
निष्कल होते हैं, (वरिवसुवसुत्तकम्म कय-हुक्कसंठविष-वित्पविंढ-संथव-पक्की-
व-वम्भसत्ता) प्रतिदिन उत्तर होकर किये गये जन्म से हुआ पूर्वक मिढाये गये
सिक्ख-गिरे हुए आहार के अंसको खंथ करके पर मो पढते हुए इन्ध-सार बाढे
बाने भोजन के सिवाय कुछ भी नहीं बचाने बाढे (निव) सदा (अधुव-वय-वज
ओस परिमोग विवसिज्जवा) अविज्ज वन बाम्भ और कोव के तिसर रहने पर भी जो
परिमोग से रहित हैं (रहिव काम-मोग-परिमोग सव्व सोक्का) काम-सव्व रूप
मोग-गंध रस और इह रूपों के परिमोग में आत्मन्व रहित हैं (परसिरि भोगोव
मोग निस्साव मभास्य पराथणा) दूसरे की छद्मी से मोगोपमोग में निजा-भावव
की कोका करने बाढे (जकामिकय पराणा) विपा इच्छा से बेचारे (विर्येति-
हुक्का) हुक्का को बहन करते हैं (मेव सुह मेव निप्पुर्ति उववमंति) न मुक्त की
और व कही क्षान्ति को ही वे प्राप्त करते हैं (अक्कवत्ति निप्पुक्क हुक्कसय संपक्किता)
अत्यन्त विलीन सैकड़ों हुक्कों से बढते रहते (जे परसुव वप्पेहि अविरया) जो
दूसरे के इन्ध से निवृत्ति रहित हैं ॥

उपसहार—(एसोसो) ऐसा यह—(अदिष्णादाणस्स फल विवागो) अदत्तादान का फल रूप विपाक (इहलोइओपारलोइओ) मनुष्य लोक और परलोकसम्बन्धी (अप्पसुद्धो ब्रह्मदुक्खो महज्जमो बहुरयप्पगाढो) अल्प सुख वाला, अधिक दुःख वाला, महाभयानक, कर्मरज की अधिकता से गाढ़ (दासुणो कक्कसो असाओ) भयङ्कर, कठोर और दुःख रूप है (वाससहस्सेहिं मुच्चवत्ति) हजारों वर्षों से छूटता है (न य अव्येइत्ता अत्थिइ मोक्खोत्ति) बिना भोगे इससे छुटकारा नहीं होता है (एवमाहसु णायकुलणंदणो महप्पा जिणो उ वीरवर नाम धेज्जो) इस प्रकार ज्ञात-कुल-नन्दन-जिनवर महावीर नाम वाले महात्मा ने कहा है (कहेसो य अदिष्णादाणस्स फल विवागं) और अदत्तादान के फल रूप विपाक को कहेंगे (एयं तं वत्थियि अदिष्णादाणं) यह वह तीसरा आश्रवद्वार भी अदत्तादान नाम का हुआ (हर-वह-मरणभय—कलुष—तासण—परसंत्तिक—भेज्ज—लोअमूल एव जाव चिर-परिगत मणुगत दुरत) हरण, जलन और मरण भय वाला तथा यावत् दूसरे के घनप्रहण रूप लोभ के मूल वाला इस प्रकार यावत् चिरकाल से रहा हुआ भव-परम्परा से साथ चलने वाला और दुरत—दुःख से अन्त वाला है (तत्थियं) इस प्रकार तीसरा अधर्मद्वार पूर्ण हुआ, ऐसा मैं कहता हूँ ॥ सू० ६।१२ ॥

भावार्थ—सूत्र के इस अंश में बताया गया है कि वे चोर मर कर नरक में जाते और सैकड़ों दुःखों का वहाँ अनुभव करते हैं। वहाँ से निकले भी तो नरक के समान फिर तिर्यश्च योनि में वेदना भोगते हैं। अनन्त काल से अगर कहीं मनुष्य जन्म प्राप्त किया तो भी अनार्य व नीच कुल में उत्पन्न होते हैं, आर्य होकर भी लोक-बहिष्कृत तथा तिर्यश्च के समान अकुशल यावत् धर्म, श्रुति रहित और क्रूर व मिथ्यास्वी होते हैं। एकान्त हिंसा की रुचि के कारण अपनी आत्मा को रेशम के कोड़े की तरह धाठ कर्मों के तन्तुओं से वे वेष्टित करते हैं। इस प्रकार अवन्त काल संसार-सागर में निवास करते हैं। ये पाप कर्म करने वाले मित्रादि रहित, अनिष्ट, साधन विकल, शरीर के आकार, प्रकार व रचना से हीन एवं बुरूप होते हैं। अधिक कपाय वाले, धर्म बुद्धि से रहित, दरिद्री, दास, और योग्य अन्न जल आदि जीवनोचित सामग्री में भी मुंहताज होते हैं। दूसरे के द्रव्य की इच्छा रखने वाले प्राणी कभी सुख व शान्ति नहीं पाते और अत्यन्त दुखी होते हैं। उपसहार पूर्ववत् ही समझ लें। इस प्रकार तीसरा अधर्म द्वार पूर्ण हुआ । ३। सू। ६।१२

चौरासी ८४ लक्ष जीव योनि—

७ लाख पृथ्वी का, ७ लाख अपकाय ७ लाख तेजस्काय, ७ लक्ष वायु का
 १० लक्ष प्रत्येक जनत्वति, १४ लक्ष साधारण जनत्वति, २ लक्ष त्रिमित्र्य, २ लक्ष
 त्रिमित्र्य, २ लक्ष चतुर्मित्र्य ४ लक्ष मारक,—४ लक्ष देव, ४ लक्ष सिद्ध, और
 १४ लक्ष मनुष्य, ऐसे ८४ लक्ष जीवों को योनियाँ हैं ।

“चतुर्थम् अब्रह्माध्ययनम्”

सम्बन्ध-तीसरे अध्ययन के बाद चौथे अध्ययन का प्रारम्भ करते हैं, सूत्र में किये हुए निर्देश के अनुसार अब्रह्म में आसक्त चित्त वाला प्रायः भदत्त का ग्रहण करता है। पञ्च द्वारों से अब्रह्म वर्णन करते हुए श्री सुधर्म स्वामी पहले इसका स्वरूप वर्णन करते हैं—

मूल—“जम्बू ! अबर्भं च चउत्थं सदेव मणुयासुरस्स लोयस्स पत्थाणिज्जं, पंक-पण्य-पासजालभूय, थी-पुरिस—नपुंसवेद-चिघं, तव संजम पंभचेरविघं, भेदायतण-बहुपमादमूल, कायर-कापुरिस सेवियं, सुयणजण वज्जणिज्जं, उद्ध—नरय—तिरिय-तिलोक्क, पहट्ठार्ण, जमा-मरण-रोग-सोग बहुलं, वध धंघविघात दुब्बिघायं, बंसण-चरित्त मोहस्स हेउभूय चिरपरिगयमणुगयं दुरंत चउत्थं अबम्मद्वारं ॥ सू० १।१३ ॥

छाया—“हे जम्बू ! अब्रह्म च चतुर्थं सदेव मनुजाऽसुरस्य लोकस्य प्रार्थनीयं, पङ्क-बलक पाशजालमूलं, स्त्री पुरुष-नपुंसक वेद चिह्नम्, तपः सयम ब्रह्मचर्यं विघ्नः, भेदायतन-बहुप्रमादमूलम्, कायर कापुरुष सेवितम्, सुजनजन वर्जनीयम् ऊर्ध्वं नरक-वियेक्-त्रैलोक्य प्रतिष्ठानं, जरा-मरण-रोग-शोक बहुलम्, वध-बन्धन-विघात दुर्विघातम्, दर्शन चारित्र्य मोहस्य हेतुभूतम्, चिर-परिगतमनुगतम् दुरन्तं चतुर्थ-मधर्मद्वारम् ॥ = १।१३ ॥

अन्व—‘(जम्बू !) हे जम्बू ! (अबर्भं च) तीसरे के बाद अब्रह्म नाम का (चउत्थं) चौथा आत्मवद्वार है (सदेवमणुयासुरस्स लोयस्स पत्थाणिज्जं) देव, सहित मनुष्य और असुर लोक का प्रार्थनीय है (पंक-पण्य-पासजालभूय) कीचट, चिकनी काई, पाश और जाल के समान (थी पुरिस नपुंसवेद चिघं) स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेदका चिह्न है (तव, संजम पंभचेर विघं) तप, सयम और ब्रह्मचर्य का विघ्न (भेदायतण बहु पमादमूल) चारित्र्य भग का स्थान और अनेक प्रमादों का मूल कारण है (कायर कापुरिस सेवियं) कायर तथा अधर्म मनुष्यों से सेवित (सुयणजण वज्ज-

श्लिष्ट) सुजन कर्मों से परिहार करने योग्य (बहु नरय तिरिय तिम्रोळ पड्याय)
 छप्पळोळ नरळोळ, मधोळोळ, तियण् सुप्पळोळ रूप तिम्रोळी में प्रतिष्ठान भित्ति
 वासा (जरा मरण रोग सोग बहुल) जरा, मरण और रोग छोक को अधिकता बाळा
 (बध बंध विपात दुःखिघात) बध बन्धन और माद्य से दुःखर विपात बाळा
 (दंत्य परित मोहस्य हेतुमय) दर्शन मोह और चारित्र मोहका कारण (चिर
 परित्यक्तमणुगर्पदुरंत अर्था अप्रमदार) अनादि काळ से परिश्रम पादे २ माने
 बाळा और दुःख से अन्त हो सेवा यह बहुष अचमदार है ॥ सू० १ ॥ १३ ॥

भाव—सुपम नामो परमाते हैं-हे अम्बू! अथवा यह बहुष आसन्न है, देव,
 मनुष्य और असुर आदि जीवों से प्रायः श्रेष्ठ, प्राणिमों को इच्छा करने व
 कसाने के कारण कोपक तथा आल के समान है, स्त्री पुरुष और नपुंसक श्रेष्ठ का
 चिह्न, तप संयम आदि में विप्र चारित्र मूढ़ का रयान और विविध प्रमातों का मूढ़
 है। कारर व भीष जन से सेवित, सुजन-सुख पुरुषों से छोटा दुष्मन् लोगों का म
 आशय पाया हुआ जरा मरण और रोग आक को प्रयुक्त बाळा पावत् रक्षन् मोह
 और चारित्र मोह का हेतु है। श्लोप पूरक ॥ सू० १ ॥ १३ ॥

मूळ—“तस्म यथाप्रापि गच्छापि इमापि ह्येति तसि तज्ज्ञा
 १ अवयव २ मेदुण्य ३ चरंत ४ नमस्वि ५ सेवणाधिकारो ६ नकप्यो
 ७ पादण्य ८ पदाण्य ९ प्यो १० मोहो ११ मण्य सर्वथा १२ अण्यिगहा
 १३ युगहा १४ विघातो १५ विनगो १६ विद्वन्मो १७ अयन्मो
 १८ असीलिया १९ नामघट्टम तिर्त्ती १९ इती २० रेणु, २१ कान-
 भाग मारो २२ घेर २३ रहस्य २४ गुजक २५ बहुमाया २६ पं न
 घेर विग्या २७ वायसि २८ विराह्या २९ पसगा ३० व ३१ युयो
 सि विप, तस्म यथापि पयमादीणि नाम येत्यापि दाति
 तसि ॥ सू० २ ॥ १४ ॥

छाया—तस्य च नामानि गोपानोमानि भवन्ति त्रिंशत् तानि यथा अथवा
 मेपुनत्र यत् संचरि, सेवनाधिकारः, लुप्त्यः, वायनामरानाम् रूपः मोहः, मन-
 घातः, अनियत विमर्दः, विपातः, विमर्दः, विमर्दः, अयम् अलोचना प्रायश्चम
 वन्, २३ रागः, कामभागमार घेर रहस्यम् गुणम् बहुमान प्रत्यक्षिमाः

व्यापत्तिः विराधना, प्ररुद्धः, कामगुणः, इत्यपि च तस्य एतानि एवमादीनि नाम-
वेयानि भवन्ति त्रिंशत् ॥ सूत्र २।१४ ॥

अन्व०—(तस्य य) और उस अश्रद्ध के (इमाणि गोत्राणि) ये कहे जाने
वाले गुण निष्पन्न (नामाणि) नाम (तीस होंति) तीस होते हैं (त जहा) जैसे
कि—(अश्रद्ध) अश्रद्धा-अशुभ आचरण (मेहुणं) मैथुन-स्त्री पुरुष का कर्म (चरंत)
चरत्—विश्व को व्याप्त करने वाला (संसर्ग) संसर्ग-स्त्री पुरुष के विशेष ससर्ग
वाला (सेवणाधिकारो) सेवना अधिकार-चोरी आदि की प्रतिसेवना का अधिकारी
(सकप्पो) सङ्कल्प—विकल्प से होने वाला (वाहणा पदाण) वाधना-सयम स्थान या
प्रजा को वाधा करने वाला (दप्पो) दुर्प-अभिमान से होने वाला (मोहो) मोहोदय से
होने वाला (भण संखेवो) मनः संक्षेप अथवा मनः संक्षोभ-मन को संकुचित या
कुब्ध करने वाला (अणिग्गहो) अनिग्रह-विषय में प्रवृत्त मन को निग्रह नहीं करने
वाला (चुग्गहो) विग्रह-कलह का कारण (विघाभो) विघात-गुणों का नाश
करने वाला (विभग्गो) विभग-गुणों का खंडन करने वाला (विब्भमो) विभ्रम-
सुख की भ्रान्ति करने वाला (अश्रद्धो) धर्म विरुद्ध (असीलया) अशीलता-दुश्शो-
लपन (गामधम्मत्तित्तो) गाम धर्मवृत्ति-तप्ति शब्दादि—कामगुणों में वृत्ति करना या
काम गुणों का गवेषण करना (रत्ति) बुरा प्रेम (राग्गो) राग—विषयासुराग
(काम भोग मत्तो) काम भोगों के साथ मरण वाला (वेरं) वैर-शत्रुता का कारण
(रहस्स) रहस्य-एकान्त में छिपके करने योग्य (गुह्यं) गुह्य-छिपाने योग्य व
अवाच्य (बहुमाणो) बहुमान-बहुतों का माना हुआ (वंभचेर विग्घो) वज्रचर्य
का विघ्न (वावत्ति) व्यापत्ति—सद्गुणों से गिराने वाला (विराहणा) विराधना-
एक देश से व्रत खण्डन का कारण (पसंगो) प्रसङ्ग—कामगुणों में प्रसङ्ग करना
(काम गुणोप्पि वि य) और कामगुण इस प्रकार (तस्स एयाणि) उस अश्रद्ध के
ये पूर्वोक्त (एवमादीणि) इस प्रकार के अन्य, इत्यादि (नाम वेज्जाणि) नाम
(तीस होंति) तीस होते हैं ॥ सू० २।१४ ॥

भावार्थ—“ उस अश्रद्ध के ये गुण युक्त ३० नाम होते हैं, जो ऊपर कहे जा
चुके हैं। ये केवल मुख्य २ बातों का सङ्केत मात्र है। अतएव एवमादीनि, यह विशेष-
ण है, इससे दूसरे नामों की सूचना हो रही है। इसलिये तीस ही नाम निश्चित न
समझकर दुराचार, विषय भोग आदि नाम भी समझ लेने चाहिये। सू० २।१४ ॥

अथ इसके सेवन करने वालों को कहते हैं ।—

मूत्र— 'तच्च पुण्य निसेवति सुरगणा, स अञ्जरा, मोह मोहिय-
मती, असुर-सुयग-गरुड-विष्णु-अण्डा श्रीव उवाहि । दिसि पवण
धणिपा १० । अथ बलि-पण्डालिय-इसिनाविय-मूयवा । विद्य कविय
महाकविय—कूट-पर्यग देवा ८ । पिसायमूय-अकल-रमन्वस
किन्नर किंपुरिस—महारेण-गण्डवा ८ । तिरिय-जोइस-विमास-
वासि-मणुय गणा जखयर—यकसर-अडयर ८, य मोह-पडिबद्ध
बिता, अवितयहा, काम-भोग तिसिमा, तप्रहाए बलबहेए मह-
ईए समभिन्मूया, गहिया य अनिमुहिकुय ८ य अरमे ठस्मयखा, ताम-
सेख भावेय अणुम्मुका, दसख-वरित्त-मोहस्म पडर पिब क्तगति
'असोअस सवमाया । सुबो असुर—सुर—तिरिय-नणुअजाग
रति-दिहारा तप्रठप्ता य खलबही । सुरनरवति सखय ८ सुर बल्लव
वेबखोए, अरहणग पगर १० पियम—जयबय-पुरवर-दापमुह-अड
८ ककड मठय-सपाइ पडण—सडस्म भविय, धिमिय मेयधिय एग-
अडुर्त्त, सस्तागर जुजिकण बसुह मरसीहा नरवई नरिंदा नर-
वस मा नरुय-वस मकप्पा अड भविय रायतय-अडुडीए धिप्पमाणा
सोमा रायवसतिखगा, रधि-सभि-सव-वरयक-सोत्थिय पडाग
जब मञ्ज-कुम्म-रहपर भग भवण-विमास-सुरय-नोरण-गोपुर
मणिरयण—मवियावत्त-मुसक-खगक-सुरहयवर कप्पककस-मिग
वति महासक सुरधि धूमवर-मठड—सरिद-कुसक-कुजर—वर
वसम-वीथ मंवरि-गरुड-सूय इवकेठ-वप्पण—अडुअय-वाय-वाड-
मसस मेह मेहक-वीणा जुग-क्षुत्त-दाम—वामिधि-कमडहु-कमड-
घठा-वरपोत-सूह—सागर—कुसुवागर—भगर—हार गागर-मेठर
णग-अगर बडर बिन्नर मयूर-वरराय हस-सारस-अकोर-अडवाग
मिठुण-चामर-जेडग—पडवीसग-धिपधि—वरताधिपट सिरिया
भिमेय मेइणि अगकस-विमक कलस भिगार-बडमाणा पसत्थ

उत्तम विभक्तवर-पुरिसल्लवण धरा । वत्तीसं वराय सहसाणु-
जायमग्गा, चउसद्धि-सहंस पवर जुवतीण णयणकुंती, रत्ता भा
पउम-पम्ह-कोरदग—दाम चंपक सुतयवरकणक—निहसवण्णा,
सुजाय-सव्वंग सुंदरंगा, महगघवर पट्टणुगय विचित्त राग-एणि-
पेणि-णिम्मियं-दुगुल्ल-वरचीण पट्टकोसेज्जं-सोणी सुत्तक विभूसि-
र्यगा, वरसुग्गभि-गंधवर-चुण्णवासवरकुसुम-भरिय सिरया,
कपिय छेया वरिय-सुकय-रहतं-मालं-कडगंगय-तुडिय-पवर भूस-
ण पिण्डदेहा, एकावालि-कंठं सुरइय-वच्छा, पालेय-पलंबमाण
सुकय-पंडउत्तरिज्ज-मुद्धिया पिंगलंगुलिया, उज्जल-नेवट्ट-रइय
चेल्लण विरायमाणा, तेण विवाकरोव्वं दित्ता, सारय-नेव-
त्थणिय महुर-गंभीर निद्धोसा, उप्पन्न-समत्त-रयण-चल्ल-रयण-
पपहाणा, नवानिहि वैहणो, समिद्ध कोसा, चाउरंता चाउराहिं
सेणाहिं समणुजातिज्जमाणमग्गा, तुरगवती, गयवती, रह-
वती, नरवती, विपुलकुलवाभुयजसा, सारय—ससि—सकल
सोमवयणा, सूरु तेकोळ-निग्गय-पभावलद्धसदा, समत्ता भर-
हाहिवा, नरिंदा, ससेल्लण काण्णच हिमवत साग-तं, धीरा
भुनूण भरहवासं जियसत्त पवर रायसीहा, पुव्वकड तवप्पभावा,
निविट्ट संचियसहा, अणमवाउसयमायुवंतो अज्जोहि य जण-
वयप्पहण्णाहिं काजियता-अतुल सह-परिस-रस-रूव-गंधे य अणुअ
वेत्ता तेवि, उवण्णंति मरणधम्मं, अवित्ता कामाणी । सू० ३।१५ ।

छाया—“तच्च पुनर्निवेवन्ते सुरगणाः साप्सरसो मोहमोहितमंत्रयः असुर-भुजग-
गरुड-विद्युज्जल्लवण द्वोपोदधि-दिक्-पवन-स्तान्ताः १० । अणपन्निक पणपन्निक-वृद्धि-
षादिक-भूतवादिक्-क्रन्दित-महाक्रन्दित-कूष्माण्ड-पतङ्गदेवा ८ । पिशाच-भूत-यक्ष-
राक्षस-किन्नर-किम्पुरुष-महोरग गन्धर्वा ८ । इतं गू-ज्यौतिषः विमानवासि मनुजगणाः,
जलेचर-स्थलेचर-खेचराश्च, मोहप्रतिबद्धचिन्ता, अविदृष्णाः काम भोग वृत्तिताः, वृष्ण्या
बलवत्या, महत्या समभिभूता मृद्धाश्चानिमूर्च्छिताश्च अत्रह्णाणि, अवसन्नास्तामसेन

भाषेनाऽमुमुक्षाः, दर्शनं चारि" मोहस्य पञ्चरमिव कुर्वन्ति अन्योऽयं (परस्पर) सेव
मानः । मूषोऽसुर-सुर-तिर्बन्धु मनुज भोग रति विहार सम्प्रमुक्ताश्च पञ्चवर्तिनः सुर
मरपति सत्कृताः सुरवरा इव वैव लोके भरत-भग-नगर-निगम जनपद-पुरवर
श्रेष्ठमुच-सेठ-कर्मठ-महम्म-संपाह-पत्तम सहस्रमण्डिता स्थितिमेहिनीकामेकच्छत्री,
छायागरी मुक्त्वा वसुधा, नरसिंहा मरपतयो नरेन्द्रा मरद्वयमा मरु (व) द्वयमकम्पा
कम्पपिकं राकतेकोककम्पा बोधमाना सौम्या राक्षस्यतिष्ठश्च रवि-सतिष्ठ सप्त-वर-
चक्र-स्वस्तिक पताका-यव-मत्स्य कूर्म-रथवर-भग-अचन-विमान-सुरग-तोरण-गोपुर
मण्डिर-मन्दारवर्त-मुपक-काङ्क-सुरचितवरकम्पकृष्ण-भूगपति-भद्रासन-सुठवि-स्तूप-
वरमुकुट-मुक्तावली कुम्भक-कुम्हार-वरद्वयम-द्वोप-मन्दर-गच्छ-व्यनेम्भकेतु दर्पणा
छापद-बाप-बाण-नक्षत्र मेष-मेखला-बीणा-गुणच्छत्र-दाम-दमिनी-कम्पकृ-
कम्प-चण्डा-वरपोत-सूची सागर-कुसुमाकर-मकर-हार-स्त्री परिधान (गागर)
नूपुर-नग-नगर-वज्र-किन्नर-भयूरवर-राक्षस-धारस-वज्र-वक्रवाक-मिथुन-
चामर सेठक-पञ्चीसक-विपक्षी-वरतालकृत् श्रीकामिपेक-मेहिनी-छायाऽमुमु-
विमल कलस-भृङ्गार-वर्द्धमानक-महास्तोत्रम-विविक्त वर पुरुष सक्षयवरा । छत्रि-
सद्वराश्च सहसाऽनुजात मार्गाः, चतुः पश्चिमरयुवतीनां नयनकान्ताः, रत्नामाः पद्म-
गर्भ कोरण्टक-दाम चम्पक सुतल्लवर कमल-निकषसर्प्या सुबाध-सर्वाङ्ग सुन्दराहा,
महाचवर पतमोद्गत विचित्रागौरी-मैत्री (वम) निर्मित-सुकुम्भर चोनपट्ट
कौशेयक शोणी सूत्रक विभूषिताङ्गा, वरसुरमिगम्भवर वृणवाच वरकुसुम मरित-
क्षिरका कल्पित जेहाचार्य-मुकुट-रत्न माता-कटक-द्विधा, प्रवर मूष्य
पिनकवेहा, एकावली कण्ठ सुरचितवद्यसा प्रकम्प प्रकम्पमान मुकुट पटोत्तरीय मुञ्चि-
क-पिङ्गलाऽऽमुमुकाः, एकावली नेपथ्य-वचित-वेकक-विरोचमाना सेवसा शिवाकरा
इव बीताः, सारद नवस्तनित-मधुर गम्भीर स्निग्धघोषाः कल्पन चमत्तरक-वक्रस्व
प्रधाना मधनिधिपराय, सस्रकोशास्तुरन्ताभ्यतस्मिन् सेनाभि धममुष्णमात्र
भार्गाः सुरगपतबी-गजपतवी-रथपतवी-मरपतवी-विपुल कुल विभुत वयस्य, सारद शशि
सकलशोणवदना, सूरस्रीडीवर्तिनित प्रभाव कम्पहावा समस्त-मरणाविषा मरेन्द्रा,
सक्षिप्तम-कानन-व द्विजसत्सागरार्तं धीरा मुक्त्वा भरतवर्षितसत्रव प्रवरराक्षसिहा
पूषकलपः, प्रमाणाः, निषिद्ध संहित हुता, जनक वर्षेक्षययुष्मन्तो मार्वाभिष्य
धमपद प्रजापतिगर्भास्माना अनुकृष्ट शङ्ख-वर्ष-वस-रूप गम्भीराऽमुमुका सेऽपि वपन-
मन्त्रि मरप पमो-विप्रा कामेषु । सू० । १ । १५ ॥

अन्वयार्थ—(तं च पुण) और फिर उस चौथे अग्रह को (निसेवति) सेवन करते हैं (सुरगणा स अच्छरा) अप्सरा सहित वैमानिक देव समूह, ये कैसे हैं ? (मोह मोहियमतो) मोह से मोहित बुद्धि वाले (असुर-भुयग-गरुड-विष्णुजलण-दीव-उदधि—दिसि-पवण-थणिया) ? असुर कुमार २ भुजंग—नाग कुमार ३ गरुड-ध्वजवाले—सुपर्ण कुमार, ४ विष्णुकुमार, ५ अग्निकुमार, ६ द्रौपकुमार, ७ उदधि-कुमार, ८ दिक्कुमार, ९ पवनकुमार, और १० स्तनितकुमार, ऐसे दश भवन पति (अणवन्नि—पणवन्निय—इसिवाड्य भूयवाडिय कडिय महाकडिय—कूहड पयगदेवा) १ अणपन्नि, २ पणपन्निक, ३ ऋषिवादिक, ४ भूतवादिक, ५ क्रन्दिता, ६ महाक्रन्दिता, ७ कूपमाण्ड और पतङ्ग देवरूप व्यन्तर विशेष (पिशाच—भुय-जक्ख—रक्खस-किन्नर—किंपुरिस—महोरग—गघन्वा) १ पिशाच, २ भूत, ३ यक्ष, ४ राक्षस, ५ किन्नर, ६ किम्बुरुप ७ महोरग और ८ गन्धर्व ये आठ जाति के व्यन्तर देव (तिरिय-लोइस-विमायवासि मणुयगणा) तिर्चग्लोक में जो ज्योतिष्क, विमानवासी-उद्योतिष्क देव तथा मनुष्यगण (जलचर—थलचर—सहचरा य) ओर जलचर, स्थलचर व खेचर—आकाश मार्ग में चलने वाले पशु पक्षिगण (मोह पडिबद्धचित्ता) जो मोह में बंधे चित्त वाले हैं (अधितण्हा काम भोगतिसिया) प्राप्त विषय में बिना वृत्ति हुई व्यास वाले अर्थात् सन्तोष रहित व अप्राप्त काम भोग की तृप्ता वाले (तण्हाए बलवईए महईए समभि-भूया) बलवती और अधिक त्रिपय वाली, महती—बड़ी भोग लालसासे घिरे हुए (गढिया य) और ग्रथित—विषयों में गुथे हुए—गृद्ध हैं (अतिमुच्छिया य अवभे) फिर अग्रह—मैथुन में अत्यन्त आसक्त बने हुए (उस्सणा) कीचड़ के जैसे फले हुए हैं (तामसेण आवेण) तमोगुण रूप भाव से (अणुमुक्का) नहीं छूटे हुए (अणोन्न सेवमाण) अग्रह को परस्पर सेवन करते हुए 'देव भाद्रि' (वसण चरित्त-मोहस्स पजरपिब कर्हेति) दर्शन मोह तथा चारित्र मोह के बन्ध को आत्म रूप पक्षी के लिये पक्षर जैसा करते हैं, (भुज्जो असुर—सुर—तिरिय—मणुय—भोग—रति विहार सपत्ता) फिर विशेष रूप से कहते हैं—और असुर, सुर त्रियंघ्र और मनुष्यों के भोग में—रति-आसक्ति प्रधान अनेक क्रीडाओं से युक्त जो (देव लोए सुरवन्व) देवलोक में प्रधान देव की तरह 'गहो' (सुर नरचति सकया चक्रवट्टी) सुरेन्द्र और नरेन्द्र से सत्कार पाये हुए चक्रवर्ती 'हैं' (भरह—णग—णगर—णियम—जणवय पुरवर—दोणमुह—खेड—कन्वड—मडब—संवाह—पट्टण सहस्स सहिय) भरत-भारत वर्ष के नग—पर्वत, नगर, निगम—वणिक् प्रधान वस्ती, जनपद—देश, पुरवर-

राजधानी रूप सहर और श्रोणमुख, सेठ, कबट, महम्म, संवाह—रक्षा के
 छिये घान्य अदि के संबहन योग्य युग विशेष और पक्षान इनके इजारा ममूर से
 होमिन् (यिमिय-मेयभियं पणच्छत्) सिमित-निमय छन समूह बाली एक्कछुट
 (ससागर यमुदं मुंछिठण) समुद्र महिन पूरवो का पाछन करके (मरसोहा नरबई
 नरिहा नरबममा) नरमिह-मनुष्यों मं सिंह के समान, मरपनि, नरेन्द्र-मनुष्यों में
 इन्द्र, नर वृषभ-पुरपभेष्ट (मन्व वसभकणा) महर्षभ-महर्षभ के बाधिमाम्
 वृषभ के समान दायमार को निभाने वाले (राक्षसेय छच्छाप अम्महियं) राजतेज
 का दक्षी से भविष्य (विप्रमाणा) बोधमान-बोपते हुए (सोमा राययसविक्षगा)
 सोम्य भाकृति वाले, राजवश में लिखक रूप (रवि-ससि-सक्ष-वरपक्ष-सोत्थिय
 पहाग-अथ-मच्छ-कुम्भ-रहवर-भग-भवत्त-विमाथ-तुरग-तोरण-गोपुर
 मणि रण नंदियावत्त-मुमळ-संगळ) सूर्य, चन्द्र दाह्य वरचक्ष-प्रधानपक्ष, रक्षिक,
 पताका यव मराय कुम्भ, रणवर उत्तमरथ भग-योनि, भवन बिमान, तुरग-योहा तो
 रख, गोपुर-नगर का द्वार, मणि रत्न-चक्रेतन आदि मण्यार्थ-नव कोष का रक्षिक
 विशेष मृच्छ और सांगळ-इक्ष (मुग्गय-वरकणरक्ष-मिगवति-भराधन-सुखि
 धूमवर-मउह-सरिय-कुडळ-कुडर-वरवसभ-वीर-मंदिर-गरुडय-ईदकेच-
 इप्पम-अट्टावय-पाव-बाण-मकरत्त-मेह-मेहल बोला-भुग-च्छत्त-दाम) अछो
 रचना बाभा या मुलमन्-उत्तम कसरहुत्त मृगपति-धिह भद्रासन-भासन विशेष
 सुखी या सुरपि-भोमरण विशेष, स्तूप-यक्षस्तम्भ, वत्तम मुष्ट, सरिका-मुक्तावली
 आदि मुंछ-कान क आवरण कुडर-दापी वरामहपम द्वोप उल के बोक का
 भूमिभाग मम्बर-मेरपवन या मन्-वर, गडह स्वजा, इन्द्र वनु-इन्द्रवटि-छकरो
 वर पिह विशेष, इपण-कौप, अष्टापद-जूर का पागा अयबा के शाग बभव, पाप-
 घनुर बाग गछत्र मेप, और मेरुता-कमर का बोरा, बोणा, पुग-गाछी का जूबा
 छत्र दाम-भाडा तथा (दामिन्नि-कर्महटु-कमळ-पंटा-वरपोन-सूर-सागर-
 कुगु-गार-मगर-दार गगर-मेरु गुग गगर-वर-विमर-मयूर-वरदापदन-सारस
 पकार-पक्षराक्ष (ग) मिट्टन-वामर-गहग-पक्षोसग विपवि-वरनाधियं
 मि-वामिनी-मेरुनि-वामिनी विमळ वज्रम-मिगार वदमागुग-वमय वराम विभत्त
 वर पुनिम वरवत्त) दामिनी-दारी कमहटु-गुहो कमय पम्मा वराम वदाम
 गुवा-गूर् सागर वृष्ट वज्र विभक्ति कमळ का समूर मकर दार-भाभरण
 विष्णु गावर-नरो क पदिने का कवहा मृगुर-वाव का मूरव भोग-ववन, मगर,

वज्र, किन्नर,—देव या वाद्य विशेष, मयूर—मोर, उत्तम राजहंस, सारस, चक्रोर, और चक्रवाक-चक्रवा चक्रवो का जोड़ा, चामर, खेदक-पाटिया विशेष, पञ्चीसक और विपञ्ची-वाद्यविशेष, श्रेष्ठ तालवृन्त—उत्तम पंखा, जक्ष्मो का अभिषेक, मेदिनी—पृथ्वी, खड्ग-तलवार, अद्भुत, निर्मल कलस, मृद्धार-क्षारो, वर्द्धमानक-शरावा अथवा पुरुष के कंधे पर आरुढ़ पुरुष, इन शुभकारो उत्तम पुरुषों के प्रधान लक्षणों को शुद्ध रूप से धारण करने वाले (बत्तीस वर राय सहस्राणु जायमंगा) पीछे चलने वाले बत्तीस हजार उत्तम राजाओं से अनुगत मार्ग वाले (चत्सष्टि सहस्र-पवर जुवतीण-णयणा-कना) चौंसठ हजार उत्तम युवतियों के नयनाभिराम (रत्ताभा) लाल कान्ति वाले (पडमपन्ध कौरवग—दाम—चपक सुतय—वर कणग—निहस्रवण्णा) कमल का गर्भ, कोरट, फूलों की माला, चम्पक-चम्पा का फूल और अच्छी तरह तपे हुए उत्तम सुवर्ण को रेखा के जैसे वर्ण वाले (सुत्राय सत्वंग—सुदरगा) अच्छी तरह से निष्पन्न सभी अङ्गों से सुन्दर शरीर वाले (महर्षवर पट्टणुगय विचित्र राग एणि पेणि णिम्मिय दुगुल्लवरचीणपट्ट कोसेज सोणोमुत्तक विभूसियगा) बहु मूल्य वस्त्राम पट्टन में बने हुए तथा अनेक प्रकार के रङ्ग वाले और हरिणी के चर्म से निर्मित वस्त्र, दुकूल वृक्ष विशेष की चल्क-छाल को जल के साथ ऊलल में कूटकर उस के सूत से बनाये हुए वस्त्र दुकूल वस्त्र कहाते हैं, वरचोन—दुकूल वृक्ष की छालके भीतरी तन्तुओं—हीरकों से बनाये गये अत्यन्त सूक्ष्म वस्त्र अथवा चोन देश में बने हुए, पट्ट-पट्टसूत्र-पाट के कपड़े, कौशेयक-कीट से बने हुए रेशमी वस्त्र और ओशी सूट्ट-कटिसूत्र-कदोरा इनसे विभूषित शरीर वाले (वर सुरभिगंध - वर पुण्ण वास-वर-कुसुम भरिय सिरया) उत्तम सुगन्धित पदार्थ, सुगन्धि युक्त चूर्ण, वास और प्रबान फूलों से भरे हुए शिर वाले (कप्पिय-छेया वरिय—सुकय-रइत्त-माल-कड्ढागय तुडिय-पवर भूमण-पिण्डदेहा) कुशल आचार्य से अच्छी तरह बनाये गये इष्ट और मन को आनन्द देने वाले माला, कटक—कण, अङ्गद—भुज वन्ध, त्रुटिक-बाहु रक्षक-बहरखा तथा अन्य मुकुट आदि प्रवर मूषण—शरीर पर पहने हुए हैं (एकावलि कट-सुरइयवच्छा) एकावली—सुवर्ण आदि की एक लड़ी माला कण्ठ में डालकर हृदय प्रदेश को सुशोभित करने वाले (पालव-पलवमाण-सुकय-पडउत्तरिज्ज-मुद्धिया पिगलगुलिया) लम्बे लटकते हुए उत्तम रचना युक्त उत्तरीय वस्त्र वाले तथा अङ्गुलिओं से पीली अङ्गुली वाले (उज्जल नेवत्थ—रइय—चेल्लग-विरायमाणा) सुख प्रद-उज्जवल वेष के वस्त्रों से विराजमान (तेण्ण दिवाकरोव्व दित्ता) तेज

से सूर्य के समान हीति वाले (भारत नव यष्टिषु मधुर गम्भीर निख पोषा) शरत्काल
 के नवीन उत्पन्न गर्वाक्ष के समान मधुर गम्भीर और क्षिप्र प्रेमयुक्त ध्वनि वाले
 (सप्तम समस्तरयण चकारयज्यहागा) उत्पन्न हुए सभी रत्नों के स्वामी भीर
 चन्द्ररत्न की प्रथमता वाले (नवनिर्दिष्टा) नव निधान के मातृक तथा
 (समिद्ध कोसा) समृद्ध—परिपूर्ण गजान वाले (चावर्त्ता) चार समुद्र रूप
 अन्त-मयस्त पाते (चक्रादि सेखादि) हाथी पांटे रख और पशुभि रूप-चतुरगिनी
 सेनाओं से (समनु कानिगजमाणममा) अच्छी तरह अनुगमन किये हुए माग वाले
 (सुरगवतो गववतो रदवतो नरवनी) पाशों के स्वामी, गज के स्वामी रथ के स्वामी
 और जा मनुष्यों के अधिपति हैं (विपुल कुल विष्णुय जसा) विनीर्ण कुल और प्रख्यात
 कीर्तिवाले (सारथसहि सख्य सोम बयणा सुरा) शरद ऋतु के पूषपञ्चमी की तरह
 सौम्य सुगुन वाले गूर-पराक्रमी हैं (तेजोवृद्ध भिगव पमाय-लक्ष-सदा) विजोकी
 में पैठे हुए प्रभाव वाले ये प्रसिद्ध पाये हुए (समस्त मर्यादावा मरिचा) समस्त
 भारत क्षेत्र के स्वामी मरेन्द्र (ससेक-वज्र-कण्ठगण घोरा) भीर के धीर सैक-वधव
 वन और जंगलों से युक्त (हिमयन सागरतं मरहबासं) हिमवान—पुत्रादिम गिरि
 भीर समुद्र से अन्त वाले भारतवर्ष का (मुत्तम) पाठकर (त्रिय सत् पवर यय-
 सोदा) दायु रक्षित उत्तम राजसिंह (पुत्रवद्व तवप्पमावा) पूर्वजन्तु तपस्या के प्रभाव
 से (निर्बिद्ध खचित सुरा) संवित सुगुणों की भीगतो वाले होते हैं (अनेगबाध
 ययमायुवना) सैकड़ों वर्ष की आयु वाले 'य' (अमादि य अणवप्यवहादि)
 देश में प्रथम प्रेमी मायाओं का (क्षात्रियता) विद्यास करत हुए (अनुज मर-नरिम
 रत्न-रूप गंध य) भीर भगुद्ध हाथ स्वयं रूप और गंध का (अनुमयेता) अनुभव
 करके (तैरि) वे भी (चाप्रल अविनाश मरणधर्म जवामनि) काम से धाने
 विश्व भीग न विना नृमि पाये हा शत्रु को प्राप्त करत हैं। १। १५।

सूत्र— सुजो भुजो बलदेव चातुर्दश पद्यपर पुरिमा मदा
 दा परागमा, महापणुवि ददा मदासत्तासागरा, पुद्धरा भणुद्धा
 र गणमा, रामवमया भागरा मपरिमा ययवय-ममुद्धयिजय
 भागिय दसाराण ययगुत-पनिष-मव-अनिरुद्ध-निमह-उम्भय
 गारप-गण मुगुद-उम्भुदार्थीय जाययाय अट्टुहायवि कुमार
 बाह्यि दिगयदायिया देवीय रादिरीय वरीय दयहीय य आयद

हियय भावनंदनकरा, सोलस रायवर सहस्साणु जातमग्गा,
 सोलस देवीसहस्स-वरणयण हियय-दयिया, णाणामणि-
 कणग-रयण-मोत्तिय-पवालघण-धत्त संघय-रिद्धि-समिद्ध कोसा,
 हय-गय-रह-सहस्ससामी, गाभागर-एगर-खेड-कव्वड-मडंघ-दोण-
 सुह-पट्टणासम-संवाह सहस्स थिमिय निव्वुय मुदित जण विविह
 सस्स निप्फज्जमाणा-मेहाणि-सर-सरिय-तलाग-सेल-काणण-आरा-
 मुज्जाण-मणाभिराम परिमंडियस्स दाहिणद्ध वेयद्ध गिरि वि-
 भत्तस्स, लवणजलाहि-परिगयस्स, छुव्विह कालगुण काम जुत्तस्स,
 अद्ध भरहस्स सामिका, धीरकित्तिपुरिसो, ओहवला, अहवला,
 अनिहया अपराजियसत्तु-महण-रिपुसहस्समाण-महणा, साणु-
 छोसा, अमच्छरी, अचवला, अचंडा, भितमंजुल-पलावा-हसिय-
 गंभीर महुरभाणिया, अब्भुवगयवच्छला, सरणणा, लवलण-
 वंजण-गुणावेवया, भाणुम्माण पमाण-पडिपुत्त जुजाय-सव्वंग-
 सुंदरणा, ससिसोमागार कंतपियदंसणा चमरिसणा, पयंड-
 वंडप्पयार-गंभीर धरिखणिज्जा, नालद्ध उव्विद्ध गरुलकेज, बल-
 वग-गड्जंत-एरित दाप्पित-मुट्ठिय चाणूरमूरगा, रिद्धि-वसभ-
 यातिणो केलरिद्धि विप्फाडंगा, दरितनागदप्पमहणा, जमल-
 ज्जुण भंजगा, महासउणि-पूतणारिज कंस मउड मोडगा, जरा-
 सिंध माण महणा, तेहि य अविरल सम सहिय चंड मंडल-
 समप्पमेहिं, सूरमिरीयकवयं विणिम्मयंतेहिं, सपतिदंडेहिं
 आयवत्तेहिं धरिज्जंतेहिं विरायंता, ताहि य पवर-गिरि कुहर विह-
 रण समुट्ठियाहिं निरुवहय-चमर पच्छिम-सरीर संजाताहिं
 अमहल-सियकमल विमुक्कुलुज्जलित रयतगिरि-सिहर-चिमल
 सासि किरण सरिस कलहोय निम्मलाहिं पवणादय चवल
 चलिय-सलालिय-पणच्चिय-दीह पसरिय-लीरोदग-पवर भागद-
 प्पूरचंचलाहिं, माणस सर-पसर-परिचियावास-विसदवेसाहिं,
 कणगगिरि सिहर संसिताहिं, उवाउप्पात-चवल-जाणियसिग्घ-

वेगाहिं, हसषधुयाहिं, अथ कबिया, नाणांमणि कण्ठग महारिडन
 बणिङ्गुल्लख विचिस्त इयाहिं, ससाक्षयाहिं, नरबति सिरिमसुः य
 प्पगासण करीहिं वर पट्टणगयाहिं, समिद्ध रायकुळ साबयाहिं,
 काळागुरुपवर कुडुरुळ तुळुळ धूवळ रवास बिमर-गधुदया
 भिरामाहिं चिह्निकाहिं, 'उभयोपासवि चामराहिं, ठाभिल्लप्प
 नाणाहिं, सुहसीतळघातपीतियगा अजिता अजितरहा इळ
 मुसळ कण्ठग पाणी मळ चळ-गय-सात्ति-श्रवणरा पंथकजळ-
 सुळुळ बिमळ बोयू मतिरीचारी, कुळळ उज्जोधिपाण्णा,
 पुंढरीय थयणा एगावली कठ-रतियचळ्ळा सिरिवळ्ळ सुलंळणा
 वरजसा सळ्ळाउय सुराभि कुसुम-भुरइय-पळ्ळ मोहत विय
 सत चिस्त वणमाल-रतियचळ्ळा, अट्टमय-बिभल्ल-लक्ष्मण पसत्त-
 सुंदर विराइयगमगा । मल्लगय चरिं-लक्ष्मियबिळ्ळम बिळ्ळसिय
 गती कडिसुल्लगमीळ पीत कोसिडज्जवाससा, पवर दित्तया,
 सारय नवधणिय-महुरंगभीर-निद्धयाना नरसीहा, सीहबिळ्ळम
 गहिं, अत्थमिया, पवर रायसीहा सोमा वारवड पुळ चंदा पुळ
 कपतवप्पमावा, निविद्ध सचिय सुहा, अल्लेगवास सयमायुवंतो
 भज्जाहि य जल्लवयप्पहाळाहिं काळियता, अतुळमड-करिस्
 रस-रूव-गंधे अणुभवेत्ता, ते वि ठवणमति मरळवन्न अचित्ता
 कामाळ ॥ ४ । १५ ॥

छाया—“ मूयो मूयो बलदेव बासुदेवाच्च प्रवर पुरुषा महावज्रपराक्रमा महाभक्त-
 विर्कर्पका महासत्त्वसागराः, दुष्टरा यदुष्टेरा नरहपता 'रावकेसवा भाव' सपरि
 परो बसुदेव-समुद्रविजयादिक वृक्षाऽऽर्हाणां प्रयुज्ज प्रतिष्ठ हस्माऽनिकृष्ट-तियधोरमुक-
 सारण-गत्र-मुमुक-हुमु काशीनां यावचामाम्मुष्टानामपि कुमार कोटोनां इव-
 दक्षिताः, देव्या रोहिण्या देव्या देवक्याद्याऽऽनन्ध इव-भावनन्दनकराः, पोडस
 रामवर लहलानुजावमागी पोडस देवी महल वर मयन इवयदक्षिता ज्ञानामधि-
 क्तक-रत्नमौक्तिक-प्रवाह-धग-धान्य-सद्यस्त्रिसमिद्ध कोला इव-गत्र रज-

सहस्रस्वामिनो, प्राधाकर-नगर-खेट-कषट-महन्व-द्रोणमुख-पत्तनाऽऽदम-
 सचाह-सहस्र-स्तिमित निवृत्त-प्रमुदित जन-विविध भस्य-निष्पद्यमान-मेदिनी-
 सरःसरित्-तडाग-शैल-काननाऽऽरामोद्यान-मनोऽभिराम-परिमाण्डतस्य, दक्षिणाद्ध-
 वैताढ्य गिरिविभक्तस्य लवण जलधि परिगतस्य षड्विधकाल गुण काम युक्तस्य अर्द्ध-
 भरतस्य स्वामिकाः, धोरकोर्विपुरुषा-ओघबला-प्रतिबला-अनिहता-अपराजित-शत्रु-
 मर्दन-रिपुऽहस्य-मानमथनाः सानुक्रोशाः, अमत्सरा अचपला अचण्डा मितमञ्जुल-
 प्रलापाः, हसित गम्भीर मधुरभणितः, अभ्युपगतवत्सलाः, शरण्याः, लक्षणाव्यर्जित-
 गुणोपपेता, मानोन्मान प्रमाण परिपूर्ण सुजात सर्वाङ्ग सुन्दराङ्गाः, शशि सौम्याकार-
 कान्तप्रियदर्शनाः, अमर्षणाः, प्रचण्ड वण्ड प्रचार गम्भीरदर्शनीयास्ताल भवजोद्विज-
 गदहकेतवो-बलवद्गर्ज दप्त दर्पित-मौष्टिक-चाणूर मारकाः, रिष्ट वृषभघानिनः, केमरि
 मुखविस्फाटका, दप्तनाग-दर्पमथनाः, यमलाजुन भञ्जका, महाशकुनि पुतना रिपवः,
 कंस मुकुट मोटका, जरासन्ध मानमथनास्तैश्चाविरल-सम-सहित चन्द्रमण्डलसम-
 प्रभैः, सूर्यमरीचिकवच विनिर्मुञ्चद्भिः, सप्रतिदण्डैरातपत्रैर्ध्रियमाणैर्विराजमानाः,
 तैश्चप्रवर-गिरि-कुहर विहरण समुत्थितैर्निरुपहत-चमरपश्चिमशरीरसञ्जातै-अमलिनः,
 सितकमल-विमुकुलोज्ज्वलित-रजतगिरि-शिखर-विमलशशि-किरण सदृश-कल-
 धौर्निर्मलैः, पचनाऽऽहत चपल चलित ललित प्रवृत्त वीचो प्रसून परिचिताऽऽनास
 विशदवेशाभिः, कनकगिरिशिखरसज्जिताभिः, अवपातोत्पात चपल (वस्तुधन्तर)
 जयनशीघ्र-वेगाभिर्हस्तवधूभिश्चैवकालता. नानामणि कनक महाह-तपनीयोज्ज्वल
 विचित्रदण्डैः, सललितैर्नरपति श्रीसमुदाय प्रकाशन करैर्वरपट्टनोद्गतैः, समिद्ध राज-
 कुलसेवितैः, कालागुरु प्रवर, कुन्दुरुक्क-तुरुक्क-धूपवश वात-विशद-गन्धोद्धृताऽऽभि-
 रामैर्दोष्यमानैरुभयपार्श्वयोरपि, चामरै रुक्मिण्यनाणैः, शुभशीतल-चात-वोजिताङ्गाः,
 अजिताः, अजितरथाः, हलमुखल कनक पाणयः, शङ्ख-चक्र-गदा-शक्ति-नन्दक धराः,
 प्रवरोज्ज्वल सुकृत विमल-कौस्तुभ-किरीट धारिण, कुण्डलोद्योतितानना, पद्मावली-
 कण्ठ रचितवक्षस्का, श्रीवत्स सुलान्छना, वरयशस्का, सचर्तुक-सुरभि-कुसुम-सु-
 रचित-प्रलम्ब शोभमान-विकशचित्रवनमाला रतिद-वक्षस्का, अष्टशत-विभक्त-लक्षण-
 प्रशस्त-सुन्दर विराजिताङ्गोपाङ्गा, मत्तगजवरेन्द्र लाजत-विक्रम विलसित गतयः,
 कटितुन्नक नील-पीत-क्रीशेयवासस्का, प्रवरदीप्ततेजस्काः, शारद नवस्तनित-मधुर-
 गम्भीर-स्निग्धोषा, नरसिंहा, सिंहविक्रमगतयः, अस्तमिताः, प्रवरराजसिंहा, सौम्याः,

द्वारावधौ पृष्णन्त्रा, पृष्णन्त्रं तपः प्रभावाः निविष्टं सञ्चितमुक्ता अनेकबाणं सप्त
मायुष्मन्तो मार्गमित्रं जनपदं प्रधानामिर्जास्यमाना, अतुल्यं सम्पत्-स्पर्श-रस-रूप
गन्धाम् अनुमूयंतेऽपि उपनमन्ति मरणधर्ममवितृष्णा कामेषु । ४ । १५ ।

अन्वयार्थ—(मुकुन्दो मुकुन्दो) फिर इसी प्रकार (वल्लदेव वामुदेव व पवर
पुरिसा) वल्लदेव और वामुदेव रूप उत्तम पुरुष (महाबल परकमा महाधनु विक-
टका महासप्त सागरा) जो बड़े शारीरिक बल तथा पराक्रम वाले, बड़े वज्र को
कींचने वाले और महान साहस के समुद्र हैं (दुर्गा वज्रद्वारा) दुर्गर तथा प्रधान
बनुर्गोटी (नर वसन्ता) मरों में रूपम याने भेष्ट (रामकैसवा भावरो सपरिसा)
वसन्ता तथा वृष्ण मथवा वल्लदेव वामुदेव दोनों भाई, परिवार सहित भी, 'भोग में
रुचि हो अस्त होगय' विशेष कहते हैं—(वामुदेव समुद्रविजयमादिष वसन्तार्थ)
वामुदेव और समुद्रविजय आदि वज्रारों के (पञ्चभुज-प्रतिष-संघ-अनिरुद्ध-निसह
अनुमूय-सारण्य गव-समुद्र-दुग्मुहावीर्य बाणबाण बहुद्वान्वि कुमार कोटीर्जं द्विष-
विष्ठा) पञ्चभुज कुमार, प्रतिष अन्व अमिरुद्ध कुमार, नियम, औरमुक्त सारण्य, गङ्गा-
कुमार, समुद्र और वज्र आदि बाणों के तथा छोटे हीन कोटि कुमारों के जो
हृदय वज्रम हैं (देवीय रोहिणीय देवीय देवकीय व) देवी रोहिणी और देवी देवकी
के (आर्णवद्विष्य भाव नैवज्जरा) आनन्द रूप हृदय के भाव को बढाने वाले
(सोलस राववर सहस्रसप्त वातमग्गा) मार्ग में सोलह हजार राजा भिनके बाण
बल्लते हैं (सोलस देवी सहस्र वरपयज-द्विषयवृद्धा) सोलह हजार राज्यों के
नेत्रों व हृदयों के प्रधान विष (नानामजि-कल्लग रयज-मोत्तिय-यवाङ्ग-यज-यज्ज-
संघय-रिद्धि समिद्ध कोला) अनेक प्रकार के मजि, सुवर्ण, रत्न-कर्मैतम आदि मौलिक,
प्रवाल-मृगा घन-मिनते योग्य धाम्य-लोकने योग्य के सद्य रूप कस्मी से
समुद्र भरपूर-मज्जार वाले (हय-गव रह-सहस्रसप्ताजी) हजारों हाथी, घोड़े व रत्नों के
स्वामी (गामागर-गुगर-लोक-कल्लह-मज्ज-शेयसुद्र-पट्टासम-संवाह-रहस्य-
पिमिय-पिमिय-पमुदित गगा विविह-साध मिष्यज्जमाण्य शेहमि-सर-सरिय-तलाग
सेह-काज्ज-भारानुज्जाण-गगाभिराम परिमहियस) भाव, भाकर मगर, शेर,
कलह मज्ज श्रेणमुष्ट पत्तन आधम और संवाह पूज कथित स्वरूप वाले इन हजारों
वसिष्ठों के निभय स्थिर-स्थाय और प्रमुदित लोक बाबा, अनेक प्रकार के धाम्य से
अपूरित पृथ्वी और सर गरी ताकाव, पर्वत कानन, उपवन, आराम-की पुरुषों के

रमण करने योग्य-वन विशेष और मनोहर लयान-बगीचों से परिमण्डित ऐसे भारत-
 वर्ष का (दक्षिणद्व-देयद्व-गिरि विभक्तस्स-लवण जलहि-परिगयस्स छन्विह-काठ-
 गुण-कमजुत्तस्स-अद्धभरहस्स) वैताह्य पर्वत से विभाग पाये हुए दक्षिण
 के अर्ध भाग रूप, और लवण समुद्र से तीन दिशाओं में-चिरे हुए
 छः प्रकार के काठगुण यामे ऋतुओं के कार्य-क्रम से युक्त अर्द्धभरत के
 (सामिका) नाथ हैं, (धोरकित्ति पुरिसा) धोरों के योग्य कीर्ति वाले पुरुष,
 (ओइबला, अइबला, अनिहया) ओह-अविच्छिन्न-अखूट बल वाले, अतिशय
 बली, किशो से-नहीं मारे गये (अपराजित्य-सत्तुमहण-रिपुसहस्समाणमहणा) किशों
 से नहीं हारे हुए, शत्रुओं का मर्दन करने वाले, हजारों शत्रुओं के मानों को मथन
 करने वाले (साणुकोसा ममच्छरी) दयावान् तथा मत्सर-द्रोह से रहित (अच-
 बला अचडा) चपलता रहित, बिना कारण क्रोध नहीं करने वाले (मित मंजुल-
 पलावा) परिमित और मधुर सलाप वाले (हसिय गोभीर मधुर भणिया) गम्भीर
 हास्य और गम्भीर ज्वनि वाले (अब्भुवगयवच्छला सरण्णा) आभितों के बरसल व
 शरण दाता (तत्तल्लण बज्जण गुणोववेया) लक्षण, व्यञ्जन-विल-मशा आदि और
 गुण, दया आदि इन सबों-से युक्त (माणुम्माण पमाण पडिपुल्ल सुजाय सव्वंगसुद-
 णा) मान, उन्मान और प्रमाण से परिपूर्ण तथा अच्छे बने हुए सभी अवयवों से-
 सुन्दर शरीर वाले (ससि सोमागार कतपियदसणा) चन्द्र को तरह सौम्य आकार
 और कान्त व प्रियदर्शन वाले (अमरिसणा) अपराधों को नहीं सहने वाले या
 कार्य में आलस्य रहित (पयड-डड-प्पयार-गभीर-दरिसिण्णिजा) प्रचण्ड दण्ड
 विशेष का विधान करने वाले या प्रकाण्ड सेना के विस्तार वाले तथा देखने में
 गम्भीर मुद्रा वाले (ठाळद छन्विद गरुड केऊ) सठी हुई ताळ वृक्ष की ध्वजा वाले
 और गरुड केतु वाले 'बलराम और कृष्ण' (बलवग-गज्जत-दरित-दप्पित-मुट्ठिय-
 चाणूर-मूरगा) बलवान तथा मेरे समान कौन है ? इस प्रकार गाजते हुए अह-
 क्तारियों में-दर्पवाले, मौष्टिकमल्ल और चाणूर नामक मल्ल को-चूर्ण करने वाले (रिट्ठ-
 बसर्भधातिणो) कस के अरिष्ट नागक बैल को मारने वाले ('केसरिमुह विप्फाडगा)
 केंसरी का मुह फाड़ने वाले (दरित नागदप्पमहणा) दुष्ट नाग के दर्प को मथने
 वाले (जमेल्लजुण भजंगा) अर्जुन-वृक्ष के रूप को धारण करने वाले दो विद्या-
 धरों के मान भङ्ग करने वाले 'श्रो कृष्ण' (महासवणि पूतनारिवू) महा शकुनि और
 पूतना के शत्रु (कस मरुड मोडगा) युद्ध के लिये तत्पर ऐसे कस के मुकुट को

मोहने वाले (जरासिंधमाय मझणा) अरासम्भ नामक राजा के मान को मथन करने वाले (तेदि न अबरिख—सम—सहिय—चंद—संडख समपमेहिं सूर—मिरीय-कवयं—विणिमुयेंतेहिं सपनि—दुहेहिं भायवचेहिं भरिखंतेहिं) और छिन्न रहित मुख्यशकाका वाले तथा हिनकारी चर मन्डक के समान प्रमावाले, सूर की किरणों के समान चारों ओर प्रभा-समूर को फैलाते हुए प्रतिवृष्ण बाळ, 'छिरपर धारे जाते हुए—'छत्रों से (विराचंता) विराजमान हैं ।

(तादि य) और उन चामरों से युक्त जो (पवन गिरि कुहर विहरण समुद्रियाहिं) ऊँचे पहाड़ की गुफा में चमरी गाय के विचरते समय बहने हुए (निरुबहव चमर

१—वाचस्पत्यर में अत्र का वर्णन छिर देवा भिक्षता है अरसपडक पिगलुगवर्हि अकि-
रक सम सविष चर मन्डक समपमहिं समप मपमति—चंदेव—विचियविचिचि—मभि—हेमजाक
विहव—परिमक—देरंत—रवक—वडिप—पयडिप—विचिचिचिचि—सुमहुर—सुह—सुह—पडक गोहि-
पहिं अपचरप—सुतदाम—कवत सुतमहिं चिंर—वामपमाल—दरपरिमकेहिं सीयावक-
वाचचरिख—विसरोचकासपहिं तमरव—मककुन पडक—वाचन—पहाक्येहिं सुकसुह-
सिचकावसमसुच्येहिं बेरकिचकममिच्येहिं वनरायव—वडिप—विहम—गोह्य—वडसहस-
वरकचमपडकाग—विमिमपिं सुमिमच—रपव—सुहुप्यह्येहिं विहवाविच—मिसिमिचित मभि—पय-
सूर मन्डक—विठिमिर कर—विगव—पडिहव पुवावि—रसीवपत चंचक मरीह कचव विचि
मुचयेहिं—'नडे बाहु की तरह पीछे और उभय छिन्न रहित चारवर दितकारी व चर
मन्डक के समान प्रभा बाळ कुच्छ छिली के द्वारा मन्डकरी सैकड़ों चिनिचिचियों से चिन्न
युक्त छोटी धटिका और इस अद्वितीय मोने की बाळ की रचना से चारों ओर घिरे हुए, प्राण
भाग में दिकती हुई सुवर्ण धंडिकाओं के चिन्नकिनाद से अतिवच मजुर और कर्मविष
छत्रों से शोभित आभरण युक्त कटकती हुई मोठी की माका के मूल्य वाले राजा के
फैलावे हुए बाहुओं के प्रमाण गोक व विस्तार बाळ सर्वां नर्मी चर हवा चर्वा और
विषमवर्ण की दोहों का मिटाने वाले लम्पकार तथा धूमिमक के सवय पद को बह
करने वाली घमा वाले अराक की गुलकारी मिहव छाया के समान वाले वैतूरक के
निर्मकदण्डों पर लगे हुए, वज्रमय मण्यमाय पर चतुर शिखरियों से जोडे हुए और एक
हजार आठ वज्र की शकाकाओं से भी विभित हैं सूर साय चंदी के चतरे से
अध्वी तरह ढाये हुए, कुच्छ शिखरियों से साक डिये हुए और बाळ चिन्नयुक्त मलिन
की किरणों से सुवर्णमन्डक की भिरिमिर बाहर पडती हुई किरणों की तरह बिजल समूर
वा फैलावे वाले (धारे घाते हुए) देते छत्रों से शोभावमान ॥

पच्छिम सरोर संजाताहि) रोग रहित चमरो गौ की पूछ के पिछले भाग में (भम-
 हल-सिय-कमल-विमुकुलुज्जलित-रथत-गिरि-सिहर-विमल-सति-किरण-सरिस-
 कलहोय निम्मलाहि) निर्मल और खिला हुआ श्वेत कमल तथा उज्ज्वल किये हुए
 चांदी के पर्वत का शिखर एवं निर्मल चन्द्र को किरणों के समान तथा स्वच्छ चांदी
 जैसे निर्मल (पवणाहय-चवल-भलिय-सललिय-पणधिय-बोह-पसरिय-खीरोदग-
 वरसागरूपूर चचलाहि) वायु से ताडित होकर जैसे चपल हो वैसे चलता हुआ, लौटा
 के साथ प्रवृत्त तरङ्गों से फैले हुए इतम क्षीरोदधि-क्षोर समुद्र-के ऊपर की तरह
 चञ्चल, (मानस-सर-पसर-परिचियावास-विसददेसाहि) मानस-सरोवर के
 विस्तार में परिचित आवास और सफेद वेप वाली-(कणग-गिरि-सिहर-ससिताहि)
 सुवर्ण गिरि के शिखर पर आश्रय रखने वाली (उवाळपात-चवल जयिण-सिन्ध-
 वेगाहि हस धूयाहि चेष कलिया) नीचे जाने व ऊपर उठने में चपल वस्तुओं को
 जोतने योग्य शीघ्र वेगवाली जैसे हंस वधु-हमनिओं की तरह जो (वाणामणि-कणग-
 महरिह-तवणिज्जुज्जल-विचित्त दंडाहि सललियाहि) अनेक प्रकार की मणियाँ और
 सुवर्ण तथा बहु मूल्य तपनीय-लाल सोने के उज्ज्वल व विचित्र दंड वाले लालित्य-युक्त
 (नरवति-धिरि समुदय-पगामणकरीहि) राज लक्ष्मी के समुदाय को प्रकट
 करने वाली (वरपट्टणुगयाहि समिद्धरायकुल सेवियाहि) श्रेष्ठ बाजार में निर्मित
 तथा समृद्ध राजकुलों से सेवित, (कालागुरु-पर-कुदुरक-तुरुक्क-धूववस-वास-
 विसद-गधुदूयाभिरामाहि) काला, अगुरु, प्रधान कुदुरक-बोहा, तुरुक्क-सोल्हक,
 इनके धूप के कारण प्रकट, एवं स्पष्ट गन्ध की वासना से समगोय (चिल्लिकाहि
 उभञ्जे पासपि धामराहि वस्त्रिप्पमाणाहि) दीपते हुए तथा दोनों बाजू उछाले जाते
 हुए चामरों से विराजमान (सुह-सीवल-वातवीनियगा) सुखकारी चामरों की शीतल
 हवा से शीत शरीर वाले (अजिता अजितरहा) क्रिसा से नहीं जोते गए-तथा
 अजित रथ वाले (हल-मुसल-कणग पाणी) हल मूशन और धाण को हाथ में लिये
 हुए-बलदेव (सख-चक्क-गय-सत्ति-णंदगधरा) शङ्ख, चक्र-सु'र्जन चक्र और
 कौमुदी नामक गदा व शक्ति-शिञ्जल तथा नन्दन नाम के खड्ग का धारण करने वाले
 कृष्ण हैं (पवरुज्जल-सुक्क-विमल-कोथूम-निरोडधारी) उत्तम श्वेत तथा सुरचित-
 निर्मल कौस्तुभमणि और किरीट-मुकुट को धारण करने वाले (कुडल-उज्जोवियाण-
 णा) कुण्डल से उद्योतित गुग्न वाले पुडरीयणयणा) पुडरीक-कमल-के समान
 नेत्र वाले (एगावली-कट-रत्तियवच्छा) कण्ठ में पहनी हुई एकावली-सुवर्ण

भाषा से अतिरिक्त बहस्येय बाळे (सिरिषण्डे सुसंछन्ना बरबसा) भीरुस के
 करोम लक्ष्मि बाळे व मोष्ठ कोटि बाळे ('सम्प्रीड्ये सुरभि कुसुम-रहस्य-पद्म-चोदिते'
 मियसंत-चित्तबन्धमाकरविय-गण्डा) पद्म शत्रु नी के सुगन्धित फूलों से गूथी हुई, लक्ष्म
 सम्प्री 'सोमोर्ममान' और विद्याय युक्त, चित्र विभिन्न वनमांसा से प्रीतिप्रद बन्धन
 बाळे (अद्भुतय विमल-लोकसय-पल्लव-सुन्दर-विरोह्यगमेगा) स्वस्तिके आदि
 विमला युक्त एक छोटा घाट वरम लक्ष्मियों से सुन्दर और विशेष सोमा युक्त अङ्गों
 बाळे ('मत्त-गण वरिद-लक्ष्मि-विष्कम्भ-विहसिय गई) मशोम्भस गमेम्भ
 के समान और गम्भीर गतिबाळे (लक्ष्मि सुतग-नील पीत-कोटिबन्धबाळे) कर्षि सुभ
 प्रभाव मोळे और पीळे कोष्ठेयक बन्ध बाळे (पञ्चर दिततेया) बहुत शक्ति युक्त ठेक
 बाळे (शतरव-पद्म-धनिव-महुर-गम्भीर मित्र घोडा) सरत् कोटि के नव बन्धन के
 समान गम्भीर व क्षिप्र गति बाळे (मरसोहा सीह विष्कम्भगई) मनुष्यों में सिंह,
 सिंह के समान पराक्रम और गमन बाळे (सोमा बारबह पुत्र चेदा) सोम्भ बाण्डित
 बाळे द्वारिका नगरी के पूर्णचन्द्र (पुष्पक-वर्षणमोवा, निविह संविष सुभ) पूर्ण
 कृत वपस्या के प्रभाव से प्राप्त और सन्धित सुभ बाळे (ज्योगवांससर्पमापुबन्दी)
 अनेक सैकड़ों वर्षों की आयु बाळे ऐसे 'बलदेव और बामुदेव रूप' (कल्याणिय पञ्चर
 राय बोहा) प्रधान राजसिंह, अस्त ह्माये 'मन्मदि' य बन्धनकर्णह्माहि) और
 देव के प्रधान स्त्रियों से (लक्ष्मिता) विद्याय करते हुए (अनुसहर-सिरिष-रह-
 क्म-गण अनुमपेत्ता) अनुपम शत्रु हस्त रक्ष, और गम्भीर का अनुमपे करके
 (कामाण अवितता) काम मोगों में वृत्ति रहित (तेवि मरय बन्ध बन्धनवि)
 वे बलदेव पद्म बामुदेव भी मरय धर्म-स्तु-को प्राप्त कर बाळे हैं (४।१५ ॥

श्व मांडलिक राजा व युगलिकों का वर्णन करते हैं—

श्रुत—“सुज्जो मङ्गलिय नरवरदेवा, सचक्षा सचत्तेठरा सपरित्ता,
 सपुरो हिपाऽमयद्व नायक-सेखावाति-मत-नीति कुसळा, नाया
 अपिरपण-विपुल धण-धल-मन्वय निही, समिद्ध कोत्ता, रत्न-
 सिरि विपुल मण्डुमविता विष्णोस्तता, वलण मत्ता, तेवि उवणमति
 मरय धम्म अवितता कामाण । सुज्जो ठप्पर कुद देवकुल-वण
 विवर-पाय चारिणो, परगळा, भोगुत्तमा, भोग लपलपणपरा,
 भोग अस्सिरीया, पसात्थ-सोम-पडिपुण्य रुव-वरिसाधित्ता, सुजात

सव्वंग-सुंदरंगा, रत्नुपल-पत्त-कंत-कर-चरण-कोमलतला, सुपह-
 द्विय-कुम्भ-चारु-चलणा, अणुपुव्व-सुसंह यंगुलीया, उन्नय-तणु-
 तंय-निद्धनखा, संठिय सुसिलिद्ध गूढ गोंफा, एणो-कुरुविंद-वत्त-
 वट्टाणु पुव्वि जंघा, सजुग्ग-निसग्ग-गूढ जाणू, 'वर वारण-मत्त-
 तुल्ल-विक्रम विलासितगती, वर तुरग-सुजाय गुज्झ देसा, आइन्न
 हयव्व-निरुवलेवा, पमुहय-वर तुरग-सीह-अतिरेग वट्टिय कड्डी,
 गंगावत्त-दाहिणावत्त-तरंग-भंगुर-रविकिरण-चोहिय-विकोसा-
 यंत-पम्ह गंभीर-विगडनाभी, साहत-सोणंद-सुसल-दप्पण
 निगरिय-वर कण्ण-च्छुरु सरिस-वर वहर-वलियमउम्मा, उज्जुग-
 सम सहिय जच्च-तणु कसिण-णिद्ध-आदेज्ज-लडह-सूमाल-मउय
 रोमराई, भूस-विहंग-सुजात-पीणकुच्छी, भूसोदरा, पम्ह-
 विगड नाभा, संनतपासा, संगयपासा, भुवर पासा, सुजात-
 पासा, मित माहय-पीण-रहयपासा, अकरहुय-कण्ण-रुयग-
 निम्मल-सुजाय-निरुवहय देहधारी, कण्ण-सिलातल-पसत्थ-
 समतल-उवहय विच्छिन्न-पिडुल वच्छा, जुयसांनिभ-पीण-
 रहय-पीवर-पडहु-संठिय-सुसिलिद्ध-विसिद्ध-लड्ड-सुानेचित-
 घण-धिर-सुवद्ध संधी, पुरवर-वरफलिह-वट्टियभुया, भुय-
 ईसर-विपुल भोग-आयाण-फलि उच्छूढ-दीह बाहू, रत्ततलो-
 वतिय-मउय-मंसल-सुजाय-लक्खण-पसत्थ-अच्छिद्ध जालपाणी,
 पीवर-सुजाय-कोमल वरंगुली, तंय-तालिण-सुह-रुहल-निद्ध नखा,
 निद्ध-पाणिलेहा, चंद-पाणिलेहा, सूर-पाणिलेहा, सख-पाणिलेहा,
 दिसा सोवत्थिय-पाणिलेहा, रवि-ससि-संख-वरचक्क-दिसा सोव-
 त्थिय विभत्त-सुविरहय-पाणिलेहा, वर महिस-वराह-सीह भेदूदल-
 सीह-नाग-वर-पडिपुल्ल-विउल्ल खंधा, चउरंगुल्ल, सुप्पमाण-कंबुवर-
 सरिसग्गावा; अवट्टिय-सुविभत्त-चित्त मंसू, उवाचिय-मंसल-पस-
 त्थ-सदूदल-विपुल हणुया, ओयविय सिलप्प वाल-विंयफल-

समिभा-धरोद्वा पङ्कुर-ससि-सकल-विमल सल गोम्भीर फेण-रुद
 वगरय मुष्णाक्षिया-धवल दतमेही, अम्बड दता, अप्फुडियवता,
 आविरुधंता, सुणिद्वयमा, सुजायवता, एगवन सेठिठ्य अणेगवता,
 हुयवह निद्रत धोय तत्तत बणिउअ रस्ततला-तालुजीहा, गरुलाघत
 ठञ्जुतुग नासा, अववाळिय पोंडरीय नयणा, को कासिय धवल
 पत्तकपद्धा, आणाभिय-चाव रुहळ कियहउमराजि सठिय-सगया
 यय सुजाय सुमगा, अल्लीण-पमाण जुल सयणा, सुसवणा, पीण
 मसळ कपोळ देम मागा, अविदुगय बालचव-सठिय महानिडा
 छा, ठञ्जुवतिरिष-पडिपुल्ल-सोमवयणा,—छुतागारुत मगवेसा,
 ययानिधिय-सुवद्ध-लक्ष्मणुल्लय-कूडागार निम-पिडियग्गासिरा,
 हुयवह-निद्रत धोय तत्तत-वाणिउअ रस्तकेसत-केसभूमी, सामळी-
 पोंड-वयानिधिय-छोडिय मिउ विसत-पसत्थ-सुहुम-लक्ष्मण
 सुगधि सुवर-सुयमोयग निग-नीळ-कळव-पहू-ममरण
 निद्र निगुहव-निधिय-कुचिय-पयाइयावरा-मुद्ध सिरया,
 सुजात सुविमरा सगयगा, लक्ष्मण वजळ गुणाववेया, पसत्थ
 वरीस लक्ष्मण घरा, इसस्सरा, कूचस्सरा, कुकुमिरसरा, सीह-
 स्सरा, ('ओघ) सरा, मेघसरा, सुस्सरा, मुस्सर, मिग्गोसा,
 वज्जारिसह, नाराय सवपणा, सम चठरंस, सठाण, सठिया,
 छाया उ ज्जावियगमगा, पसत्थपद्धी, निरातका, ककगहणी,
 कबोत परिणामा, सगुणि पोम विद्धत रोकपरिणया, पठमुप्पळ
 सरिस गधुस्मास सुाभिवयण, अणुलोम धाठवेगा, अववाय
 निद्रकाळा बिग्गाहिय-उल्लय-कुप्पुली अमयरस-फळाहारा, तिगा
 ऊपस सूसिया तिपळिओवमाट्टितिका, तिधिय पळिओवमाई
 परमाउ पाळगिशा ते वि ठवणमति मरण धम्म, अवितत्ता
 कामाणं । पमया वि य तेमि होति सोम्मा सुजाय सव्वंग सुव
 रीओ पहाण महिळा गुणार्हि जुपा, अतिकत-विमप्पमाय-मठप-

सुकुमाल-कुम्भ सठिय-सिलिङ्ग चरणा, उज्जु-मेउय-पीवर सुसा-
 हर्तगुलीओ, अम्भुन्नत-रतित-तलिण-तव-सुहनिद्धनखा, रोम
 रहिय वट्ट-संठिअ-अजहन्न पसत्थ-लक्खण-अकोप्प-जघजुयला,
 सुणिम्मित-सुनिगूढ जाणु, मसल-पसत्थ-सुवट्ट-संधी,
 कयली-खंभातिरेक-सठिय-निव्वण-सुकुमाल-पडय-कोमल
 अविरल-सम सहित-सुजायवट्ट-पांचर-निरंतरोरू, अट्टावय-वीह-
 पट्ट-सठिय-पसत्थ-विच्छिन्न-पिड्डुलसोणी, वयणायामप्पमण-
 दुगुणिय-विसाल-मंसल-सुबद्ध-जहण-वर धारिणीओ, वज्जवि-
 राडय-पसत्थ-लक्खण निरोदरीओ, तिबलि-बलिय-तणु नमिय-
 मडिक्कयाओ, उज्जुय-समसहिय-जच्चतणु-कसिण-निद्ध-आदेज्ज-
 लडह-सुकुमाल-मउय-सुविभत्त-रोमरातीओ, गंगा वत्तग-
 पदाहिणावत्त-तरंगभंग-रविकिरण-तरुण-बोधित-आकांसायंत-
 पासा, सुजातपासा, संगतपासा, मियमाचिय-पीण-रतिनपासा,
 अकरंडुय-कण्ण-रुयग-निम्मक-सुजाय-निरुवहय-गायलट्टी,
 कंचणकलस-पमाण समसाहिय-लट्ट चूचुय-आमेलग-जमल-जुयल-
 कट्टिय-पओहराओ, भुयंग-अणुपुण्व-तणुय-गोपुच्छ-वट्ट-समस-
 हिय-नमिय-आदेज्ज-लडहवाहा, तंवनहा, मसलगगहत्था, कोमल
 पीवर धरंगुलीया, निद्ध पाणिलेहा, ससि-सूर-सख-वक्ख-वरसो-
 तिथिय-विभत्त-सुविरहय-पाणिलेहा, पीणुणय-कक्ख-वत्थिप्प-
 देस-पडिपुन्न-गलकवोला, चउरगुल-सुप्पमाण-कंबुवर-सरिसगीवा,
 मसलसठिय-पसत्थ-हणुया, दालिम-पुप्फ-प्पगास-पीवर-
 पल्लव-कुंचित वराधरा, सुंदरोत्तरोट्टा, दधि-दग-रय-कुंद-चंद-
 बासंति-मउल-अच्छिद्ध-विमलदमणा, रत्तुप्पल-पउमपत्त-सुकु-
 माल-तालुजीहा, कण्वरि-मउल-कुडिल-अम्भुन्नय-उज्जु-तुंग-नासा,
 सारद-नवकमल कुमुत-कूबलयदल-निगर-सरिस-लक्खण-पसत्थ-
 आजिम्हकत नयणा, आनामिय-चाव-रुहल-किहह-भराह-संगय-
 सुजाय-तणु-कसिण-निद्ध सुमगा, अल्लीण-पमाण जुत्त-सवणा,

मुस्तसघणा, पीणमहु गंडकेहा, चउरगुल-विसाह-सम निहाता,
 कोमुवि रयणिकर विमल-पडिपुल-सोमवदेया, छुत्तुल्लप उत्तमगा,
 अकविल-सुनिणिद्ध-दीहसिरया छुत्तुल्लमय-जुव धूम-वामिणि
 कमडतु-कलस-बाबि-सोहियय पडाग-जव-मच्छ-कुम्भ-रहबर
 मकर-जम्भय-अंक-धाक-अकुस अहायय-सूपइह-अमर-सिरिया
 निसेय-नोरख-मेइणि-उदधिबर-पवरभवण-गिधिर-वरायन-
 सखलिय-गय-उत्तम-सीह-चामर-पसह-वत्तिस्ति लम्पल-
 चरीओ, ईस रसरिच्छु गतीओ, कोइल-महु-गिराओ, कता,
 मठवस्स अण्मयाओ, वषगय-वलि-पलित-वग-दुववस-बाबि-
 दोइग-सोयमुक्काओ, उधतण य नराण पावूण मूभियाओ,
 सिंगारागार-चारवेमाओ, सुवर-यण-जहण-वयण-कर-चरण-
 यणण, लावयणइव-जोवयण-गुणोववेपा, मंदणवण-विवर
 चारिणीओइव अच्छुराओ उत्तरकुरु-माणुनच्छुराओ, अच्छुरग
 पच्छुणिविजयाओ तिलिग पलिआवमाइ परमाउं पाखायत्ता ताओ
 ऽवि उवणभाति मरखचम्भ, अविानत्ता कामाण ॥ सू ५.१५ ॥

छाया— 'मृषो माण्डिक-नरवरेन्द्रा, सबडा, घाम्प-पुरा, सपरिपद',-सपुरो
 हिताऽमास्य-दण्डनाथक-सेनापति-मन्त्र-नोति कुसडा, नामामस्थि-रत्न-विपुल-धन-
 घाम्भ-सहस्र-निधि-समुद्र-कोष्ठा राक्षसिधविपुल मनुमूव ध्युत्-लोचन्दी वलेन
 मचास्तेऽधुपनमस्ति मरण बसमविपुला कामेषु । मू-उत्तरकु-देवकु-वन-विबर
 पाव चारिओ नरगया, भोगोचमा, भोग लक्ष्मचरा भोगसमोका, प्रसस्तसोम्य
 परिपूज-रूपवसनीया सुबाव-सर्वाङ्ग-सुन्दराङ्गा रकोत्पलपत्र-काम्यकर-वरय
 कोमल वडा, सुप्रतिष्ठित-कूम चारु-चक्षुना आयुर्व्य-सुसहताऽकुलोका उभय वतु-
 रात्र-सिम्पनका, संतिष्ठ-सुस्तिष्ठ-गुह-गुहका, एवो कुवन्ति इस वर्तते सुविजया-
 समुद्रग-निर्गमगुहजानवो वरधारण मत्त-सुख-विक्रम-विद्यावित्त-गदय' वरपुरग
 सुबाव गुहदेहा आकीर्ण इसाहण निरुपदेवा, प्रमुखित-वरपुरग-सिहाऽगिरेक बर्वित-
 कटयो गङ्गावर्त-वसिष्ठाऽऽवत-तवङ्ग-धत्तुर-विकिरण बोधित-विकीसायमाम पल
 गम्भीर-निकटनामय संहित-सोपेव- (विपादपीठिका) मुस्तस-वप निगदित-वक्त्रक-

स्तरु सदृश-धरवध वलित-भध्याः, ऋजुक-सम-सहित-जात्यतनुक-कृष्ण-स्निग्धादेय लडह
 (मनोज्ञ)-सुकुमार मृदुल-रोमराज्य , क्षप-विहग सुजात पीन कुक्षय , हपोदरा, पथ
 विकट-नाभयः, मध्रतपार्था, सङ्गत पार्थाः, सुन्दरपार्थाः, सुजातपार्थाः, मितमात्रिक-
 पीन-रत्तिदपार्थाः, अनस्थि [अकरण्डक] कनक-रुचक निमल सुजात निरुपहत-देह-
 धारिण , कनकशिलानल प्रशस्त-ममतलोपचिन् विच्छिन्न-पृथुल विपुलवक्षस , युग-
 सन्निभ-पीन-रत्तिद-पोवर-अकोष्ठ सस्थिन सुस्निग्ध-लष्ट सुनिवृत्त धन-स्थिर सुवद्धसन्वय ,
 पुरधर धरपरिध—वर्तितभुजा , भुजगेश्वर-विपुल भागाऽऽदान-फलिकाच्छूढ-दीर्घ-
 बाहवः, रक्तलोप चयिक मृदुक-मासल-सुजात—लक्षण-प्रशस्ताऽच्छिद्र—जाल-
 षाणयः, पीवर—सुजात-कोमल-वराङ्गुलयः, ताम्र-तलिन शुचि-रचिर—स्निग्ध-
 तत्त्वाः, स्निग्ध-पाणिरेखाश्चन्द्र पाणिरेखा, सूर्य—पाणिरेखा , गह्रपाणिरेखाश्चक्र-
 पाणिरेखा, दिक्चक्रिक—पाणिरेखा, रवि शश—गह्र—वर चक्र—दिक् स्वस्तिक-
 विभक्त सुविरचित—पाणिरेखा, वरमाहप—वराह—सिंह—शार्दूल सिंह—नागधर-
 परिपूर्ण—विपुलस्कन्धाक्षतुरङ्गुल—सुप्रमाण - कम्बुवर - सदृशप्रोवा, अवस्थित - पुवि-
 भक्त—चित्र [शोभाद् भुक्त कूर्चकेशा] मध्व , उपचित-मासल—प्रशस्त—शार्दूल-
 विपुलहतुका, परिकर्मित—शिल प्रवाल-विम्बफल सनिभाऽधरोष्ठः पाण्डुर—सन्नि-
 सकल-विमल शङ्ख-गोक्षोर-फेन-कुन्द-दकरजो-मृणालिका—धवल दन्त श्रेणयः,
 अखण्ड दन्ता, अम्फुटित दन्ता आवरल दन्ता , स्निग्ध दन्ता सुजात दन्ता, एकदन्त
 श्रेणिस्थ, अनेक दन्ता, हुनवहनिद्वेमेन धौत-तप्त तपनीयरक्तलास्तालुजिह्वा, गरुडा-
 यत्-ऋजुतुङ्गनासिका अवधारित—पुण्डरीक नयनाः, विकसित-[आकासित] धवल-
 पत्रल-पक्षमाण , [पत्रलाक्षा] आनामित चाप-रचिर-कृष्णभ्र—राजि-संस्थित सङ्गता-
 यत्-सुजातध्रुव , आलीन प्रमाणयुक्त श्रवणा , सुश्रवणा , पीन-मासल-कपोल देशभागाः,
 अचिरोद्गता बाल चन्द्र-संस्थित महाललाटा उडुपतिरिव परिपूर्ण सौम्यवदनाश्छन्ना-
 कारोत्तमाङ्गदेशा , वर्तानवित सुवद्ध-लक्षणोजन कूटाकार-निभ-पिण्डताम्रशिरस्का, हुत
 वह-निर्द्धूत धौत-तप्त तपनीयरक्त-केशान्त केशभूमय , शालमूली वृन्त फल-धन-निविष्ट-
 छोटित-मृदुविशदप्रशस्त-सूक्ष्म लक्षण-सुगन्ध सुन्दर-भुजमोचक मृदु-नोल-कज्जल-
 प्रहृष्ट भ्रमरगण-स्निग्ध-चिकुरम्ब निचित कुञ्चित प्रदक्षिणावर्त मूढेशिरोजा , सुजात सुवि-
 मक्त-सङ्गताङ्ग। लक्षण-व्यञ्जन गुणोपपेता , प्रशस्त-द्वात्रिंशलक्षणधरा , इतस्वरा , क्री-
 ष्वस्वराः, दुन्दुभिस्वरा , सिंहस्वरा , [ओष] स्वरा , मेघस्वरा , सुस्वरा , सुस्वरनिर्घो-
 षा , वृक्षधम-नाराच-सहस्रना , समचतुरस्र सस्या र-संस्थिताः, लायो च्योतिताङ्गीपाङ्गाः,

प्रसस्तच्छब्दो निरावृत्तः। कङ्कणहणोक्ता कपोतपरिध्याया, शकुनिपोष-पृष्ठान्तरो-
परिध्याया, पद्मोत्पल-सदृश गङ्गोच्छ्रवाम-सुरभिध्वजा, अनुलोम वायुधेगाः नव
दात-द्विग-काळाः, (कृष्णाः) वैप्रहिकाभत कुम्भयो मारस फलाहारिणि गम्भीर
समुच्छ्रिताः त्रिपथ्योपमसिधिकाः, प्राणि य परशोपमानि परमायूष पाक्षिका
तेऽप्युपनमस्ति सरणनममवितृप्ता कामेषु ।

प्रसदा अपि च तेषां भवन्ति मौन्याः, सुखात-सखाङ्ग-सुख प्रदान-महिमा
गुणेषुका-धार्तकाम्य-विसर्पन्त्युत्त-सुकुमार-हृत्-संस्थित-स्मृत चरणाः शत्रु-
सुख-पीडर-सुमंद्वाऽनुलोका अभ्युन्नत-रतिर तन्नि-वास-सुस्मिन्नता,
रोमरहित-वृत्त संस्थित-प्रसस्त छल्लाऽवपन्याऽकोप्य वक्ता युगला, सुनिर्मित-
सुनिर्मित-जानु नोदल-प्रसस्त-सुख सधयः, कङ्क-स्वप्नानिरेक-संस्थित
निर्विषय-सुकुमार-वृत्त-कोमलाऽविरल-सम संहित-सुखात हृत्-पीडर-
निरन्तरोरवः, अष्टापद-बीज-पृष्ठ-संस्थित-प्रसस्त-विचित्रस वृत्त-नोदलः
वचनापाम-प्रमाण-द्विगुणित-विशाल-सासक-सुख-अपमवर धारिण्यः नव
विराजित-प्रसस्तछल्ल-निकट्य त्रिपथी-वर्धित-तनु-नवमप्या श्रुतु-
सम-संहित-आत्यन्त-कृष्ण-सिग्धाऽऽदेव-अष्ट (कसित) सुकुमार सुख-
सुविमल रोम राजयो गंगावत-प्रवक्ष्या वर्तक-तरङ्ग मङ्ग-रवि-किरण तदवबोधित
विकसित-पद्म गन्धीर-विकटनामक, अनुदमर-प्रसस्त-सुखात-पोतकुक्ष्य,
अमर पार्श्वः सुखात-पार्श्वः मङ्गलपद्मा-मिठ-सुख-मात्रिक-पोत रतिर पार्श्वः,
अकरंज-कनक-कवच-निमज्ज-सुखात निकपहत-गात्रवष्टय, काञ्चन-कसल
प्रमाण-सम संहित छत्र वृत्तकाऽमेकक पमल युगल वर्तित-पथोचरा, सुकलाऽनुवृत्त वतु-
गोपुच्छ हृत्-सम संहित नयिताऽऽदेव-कसित पाद्व ताभनकाः, साधकाऽप्रसता,
कोमल पीडर वराजुलोकाः द्विगुण पाण्डिताः, संहि-सूर्य-अष्ट चक वर स्वस्तिक
मिमल-सुधिरजित-पाण्डिताः, पीनोन्नत-अष्ट अस्ति प्रवेश परिपूर्ण गच्छ-पोदा
वतुगुच्छ-सुप्रमाण-कम्बुवर-सदृश धोवाः, साधक-संस्थित-प्रसस्त-अनुका वाहिम
पुष्प प्रकाश-पीडर-प्रसस्त कुञ्जित वराऽवरा, सुन्दरोच्छरोष्ठा, धवि-दक-रव-कुन्द
चन्द्र-वासन्तो-मङ्गला-चिह्न विमलवृत्तता रकोत्पल पथपथ-सुकुमार-वामु विहा,
करबोर सुख-कुञ्जकाऽप्युन्नत-अनुवृत्त साधिका शारव-मध-कमल-कुम्भ-कुम्भ-
रव-निकर-सदृश अष्टक-प्रसस्ताऽविद्याकाम्य नयना आनामित-वाप-स्पर्शर कृष्णा
भारि-सदृश-सुखात-तनु-कृष्ण शिखरः। आसीत-प्रमाणसुख-नवयाः सुभवाः,

पोनमृष्ट-गण्डलेखा, चतुरकुल-विशाल-सम-ललाटाः, कौमुदी-रजनीकर-विमल-
प्रतिपूणे-सौम्यवदना, क्षत्रोन्नतोत्तमाङ्गाः, अकपिल-सुस्निग्ध-दीर्घ शिरोजाः, छत्र-
ध्वज-यूप-स्तूप-दामिनो-कमण्डलु-कलस-वापी-स्वस्तिक-पताका-यत्र-मत्स्य-कूर्म-
रथवर-मकर-ध्वजाङ्क-स्थाङ्गाङ्कुशाऽष्टापद—सुप्रतिष्ठाऽमर-श्रीकाऽभिषेक-तोरण-
मेदिन्युदधिवर-प्रवर भवन-गिरिवर-वरादर्श-सकलितगज-शृङ्गभ-सिंह-धामर-प्रश-
स्त द्वात्रिंशक्षुण धारिण्यो, इक्षसदृशगतयः कोकिल—मधुरगिरिश्च, कान्ताः सर्वेषाम्,
अनुमता, व्यपगाता, बलीरक्षिता—व्यङ्ग्य दुर्बर्ण—व्याधि दौर्भाग्य शोक मुक्ता, उद्यतेन
नराणां स्तोकोन मुच्छिन्नाः, सुहृन्नाऽगारचाकवेष्टाः सुन्दर स्तन-जघन—चदन—कर-
चरण नयना, छात्रण्य-रूप-बोधन-गुणोपपेताः, मन्दन वन—विचर चारिण्य इवाऽ-
पसरसः, उत्तरकुल मालुष्याधरसः, आश्रये प्रेक्षणीयाः, त्रीणि पत्न्योपमानि परमायूषि
पादयित्वा ता अपि उपनयन्ति मरणधम्मवितृप्ताः कामेषु ॥ सू० ५।१५ ॥

अन्व०—(भुवजो मण्डलिय नर वरदा) फिर मण्डलाधिपति राजा जो (अथवा
सञ्जतेवरा सपरिभा) सैन्य वाले अन्तः पुर तथा चरिषद्-उत्तम सभा वाले (सपुरो
द्विया -) पुरोहित सहित याने जिनके पास-शान्ति कर्म कराने वाले हैं, तथा—(अमव-
दडनायक-सेणावती-मत नीति—कुसला) अमात्य-प्रधान, दण्डनायक-कटक का
नायक और सेनापति, इन सब से युक्त, और जो गुप्त विचार एवं नीति में कुशल हैं
(नाणामाण्य-रयण्य-विपुल-धन्य-धन्य-सचय-निहो समिद्ध कोसा) अनेक प्रकार के
मणि रत्न तथा विरसीर्ण घन धान्य के दृश्य और निधिर्भों से परिपूर्ण खजाने
वाले वे (रज्जसिद्धि विपुलमणुभवित्ता) विस्तार युक्त राज्य लक्ष्मी को भोगकर
(विष्कोर्मता) दूसरों को बुरा बहते हुए या कोष रहित हुए (बलेण मत्ता) अपने बल से
मवोन्मत्त (तेवि) वे माण्डलिक नरेन्द्र भी (कामाण अवितत्ता) काम भोगों के विषय
में अतृप्त बने हुए (मरण धम्म उवणमति) मरण धर्म को प्राप्त करते हैं । (भुवजो
उत्तर कुल-देवकुल-वण्य-विचर—पाद—चारिण्यो नरगाणा , ऐसे ही फिर उत्तर कुल-
और देवकुल—नामक क्षेत्र के वन प्रदेशों में पै. ल फिरने वाले मनुष्य जो—युगलिक
कहाते हैं (भोगुत्तमा भोग लक्ष्यवधरा भोग सत्सिरीया) भोगों से उत्तम भोग सूचक
उत्तम लक्ष्यों को धारण करने वाले उत्तम भोगों से शोभायुक्त (पसत्थ-सोम-पदि-
पुन्न-रूव-दरिसण्डिजा) प्रशस्त, सौम्य और प्रतिपूर्ण रूप के कारण देखने योग्य हैं
(सुजात-सन्वग-सुदरंगा) सुजात सभी अंगों से सुन्दर शरीर वाले (रत्तुण्ड-पच-
कत-कर-चरण—कोमलता) रक्त—जाल कमल पत्र की तरह—कान्त और कोमल

हाय पैर के तक बाधे। सुषाःद्विष-कुम्भ-पाद चक्षणा) अकछी तरह बैठ हुए कच्छर
 के सेसे सुम्बर परण बाधे पेसे (अणुपुष्प-सुसंख्यगुच्छीया) कम स बढतो हुई व
 पटती हुई परस्पर मिछी हुई मज्जुली बाधे (उन्नय तणुतंत्र-निखनजा) ऊँचे, पतले
 और ताम्बे की तरह कुछ झाल बर्ण के पिङ्गे मल बाधे (संहित-सुसिद्ध-गुहः
 गौका) योग्य आकार बाधे अकछी तरह जुड़े हुए और मांस से ढके हुए गुरु हैं
 जिनके (पयो-कुहः बिदावत्-बहुपुष्पि-जपा) हरिणी और कुछ विन्ध नामक
 वृक्ष के समान कम से गोल जंघा बाधे (समुग-निसम्प-गुहःपाणू) डूबे की सन्धि
 के समान निसग गुह-मांस के कारण समाप्त व छिपे काम-पुटन हैं जिनके 'पेसे'
 (पर वारण-मत्त-मुञ्ज-बिन्दव-बिन्दासितगति) मरु-गजेन्द्र के समान पराक्रम
 और बिन्दव युक्त गति बाधे (वरतुरग मुञ्ज-गुहःप्रदेश) वस्त्र छोड़े के समान
 मुञ्ज-गुह प्रदेश-मल द्वार बाधे (बाह्य-व्यञ्ज-निवर्धने) जाति सम्पन्न
 छोड़े की तरह जिन के मल द्वार के छेद से रहित होते हैं (पमुर्य वरतुरग-सोह
 अतिरेग-वट्टिपल्ली) प्रमोद युक्त वस्त्र बाधे व सिंह की कमर के समान अधिक
 गोल कटिभाग बाधे (गंगावत्-हाह्यावत्-वर्ग-मंगुर रवि क्षिप्र-बोहिय-बिको
 सायंत-पम्हगमोर-बिगडनामो) गंगा के आबत की तरह वक्षिण की ओर घूमती हुई
 वल्ल युक्त सूय की कृष्ण से भिछे हुए विकास छोळ कमळ के समान, गम्भीर और
 बिच्छू नामि बाधे (बाह्य-खोण्ड-मुमळ वल्ल-निगारिय-वर-कत्रा कच्छ मरिच
 वर बहर-बलिनवत्ता) समेटो हुई त्रिपाटिका सुखल, वल्ल-वण्ड युक्त कंध
 और छुट्ट किये हुए वराम सुवर्ण के कच्छ की मूठ तथा वस्त्र वस्त्र की तरह वृक्ष है
 मध्य भाग जिनका (वरमुग-सम संहिय-वत्त-तणु-कटिण-विद्ध आदेश-वत्त-वत्त
 सूमाव मध्य-रोमरार्थ) सरल-समान रूप से भिछे हुए सामानिक पतले काठे,
 बिकन वा मनोहर शोभाय युक्त सुम्बर एवं अतिशय कोमल और रमणीय रोम बाधे
 बाधे (सस बिहग-सुजात पीण-कुच्छी ससोदरा) मलय और पक्षी के समान
 वस्त्र रचना युक्त कुच्छ बाधे मत्तवत्-क्षयावत्-मत्तवत् जैसे पैठ बाधे (पम्ह बिगड
 नामा) ककस की तरह बिच्छू नामि बाधे (सनतपासा संगवपासा सुतरपासा
 सुजातपासा मित माह्य-योज-व्यपास) अकछी तरह नमो हुए भिछे हुए सुम्बर और
 सुजात-वत्तम रचना युक्त परिमित एवं मात्रा से युक्त पौन-सिसे-वत्त और रमणीय
 पार्थ बाधे (अकच्छुय-क्याग वधग-निम्बळ-सुजात निवर्धय देवधारो) मांस से
 पुन्य होमे के कारण सुजात रहित-वत्त होने की जैसी कान्ति बाधे निर्मल सुजात

और रोग रहित देह को धारण करने वाले (कण्ण-सिलातल-पमत्थ-समतल-उबडय-विच्छिन्न पिङ्गल-वन्धा) सुवर्णमय शिलातल के समान प्रशस्त, ममतल-सब जगह बराबर, मांसयुक्त और अत्यन्त विरतीर्ण बड़े वक्षस्थल वाले (जुयरन्तिम-पीण-रइय पीवर-पउट्ट-मठिय-सुसिलिट्ट-विस्सिट्ट-लट्ट-सुनिचित-घणथिर-सुवट्ट सधी) गाढी के हुए के समान पुष्ट, रमणीय और बड़े कलाची तथा विशिष्ट स्थान वाली, अच्छी तरह मिली हुई प्रिशिष्ट-मनोहर, अत्यन्तभरी हुई, बहुत प्रवेश के कारण सघन, स्थिर और सुवट्ट-नसों से अच्छी तरह धधी हुई साधे-हड्डी की जोड़ है जिनकी (पुरवर-वरफलिह-वट्ठिय भुजा) बड़े नगर की श्रेष्ठ परिधा-आगत-के समान गोल भुजा वाले (भुयईसर-विपुल भोग आवाण-फलिउच्छुट्ट-दीहवाह) बड़े सर्प के विरतीर्ण शरीर के समान रमणीय तथा अपने स्थान में निकाली हुई परिधा के जैसे दीर्घ लम्बी दाहू वाले (रत्ततलोव-तिय-मउय-मंसल-सुजाय-लक्खण-पसत्थ अच्छिह जालपाणी) ताल तल वाले, मांस से उपचित-भरे हुए या योग्य, मृदु-कोमल, मांसयुक्त, सुजात, प्रशस्त-शुभ-लक्षण वाले और मिली हुई अँगुलियों के कारण छिद्र रहित हाथ वाले (पीवर-सुजाय-कोमल-वरगुली) मांस से पुष्ट, सुन्दर और कोमल श्रेष्ठ अँगुली वाले (तव-तजिण-सुह-कडत-निद्धनखा) ताम्र, पतले, पवित्र, कान्तियुक्त और चिकने नख वाले, (निद्र पाणि लेहा, चदपाणि लेहा, सूरपाणिलेहा, सखपाणिलेहा, चदपाणिलेहा,) चिकनी रेखा वाले, चन्द्र-सूर्य-शङ्ख और चक्र-की तरह हाथ की रेखा वाले (दिसा सोवत्थियपाणिलेहा) दिशा स्वरितक जैसी दक्षिणावर्त इतल रेखा वाले (रवि-समि-सख-वरचक्र-दिमासो-वत्थिय विमत्त सुविरइय पाणिलेहा) सूर्य, चन्द्र, शङ्ख, श्रेष्ठचक्र और दिक्स्वरितक के विभागयुक्त अच्छी इतररेखा वाले (वरमहिस-वराह-सीह-सहूल-सिह नागवर पहिपुन्न-विउल्लखा) श्रेष्ठ भैंसा, अच्छा बराह-मकर, सिंह, शार्ङ्गालिह, या वृषभ और उत्तम हाथी के जैसे प्रतिपूर्ण और विस्तीर्ण खंघे वाले, (चउरगुल-सुप्प-माण-कवुवर-सरिसगीवा) चार अँगुल प्रमाण प्रधान शङ्ख के समान शुभ ग्रीवा वाले (अवट्ठिय-सुविमत्त-चित्तमसू) अवस्थित-घट बढ रहित, खूब शुद्ध और विभागवाली शोभा से अद्भुत स्मशु-दाढी वाले (उवचिय-मंसल-पसत्थ-सहूल-विपुल-इण्णया) मांस से पुष्ट-भरी हुई, प्रशस्त शाबूलसिह के समान हण्ण-चिवुक-दाढी वाले (ओयवियसिलप्पवाल-विक्कलसंनिभाधरोट्टा) साफ किये हुए, शिख

प्रवाल-भूगै तथा विषयल क समान लाल नील क होठ वाल (पडुरससिसकल-
विमल-संख-गोखीर-कण-कुव-दगलय-भुणालिया-धवल इत सेडी) स्वेन पम्प
खण्ड की तरह निर्मल शङ्ख, गोखीर-गोफावृध, फन-पानी ऊपर क भाग, कुव का
पूत, पानी के कण, और मृणाकिता-पद्मिनी क नावगत सन्तु क जैसे धवल-२५.६
दांत की श्रेणि वाल (अक्षर्यता, अप्पुडियवला, अविरलर्यता, मुण्डिर्यता,
मुत्रायर्यता, एगवतसेदिष्म अणगर्यता) अक्षर्य दांत वाल, बिना पूटे दांत वाले,
मिल हुए दांत वाले, खूब चिकने-बमक युक्त दांत वाल, अण्ड वन हुए दांत वाल,
अनक दांत भी जिनक एक दांत की पंक्ति के जैसे हैं (हुयवह-निद्रत-धोय-तत
तपकिज-रत्तला-तालुजीहा) अग्नि स जलाकर चुल गया है मल जिसका पम
तपनीय लाल मुपर्य के समान लाल तल युक्त तालु और जीम वाले, (गरलायत-
चम्पु-नुग नासा) गरुड के समान लम्बी, सरल और ऊँची नासिका-नाक बाल,
(अवदालिय पौढरीवनयणा) खिल हुए कमल क समान नेत्र वाले (पोरामिय-
धवल-पत्तलच्छा) विकसित धौल और पद्म युक्त आंख वाल (आम्पमिय-बाव-
रुहल-रुहम्पराजि-संठिय-संगयायबसुजायभूमगा) थोड़ नमे हुए धनुष के
समान मुन्वर, काले भव की रेखा के आकार वाले, थोम्ब, लम्बे तथा मुनिपत्रभू
हैं जिनक (अज्जीय-पमाणजुत्तसबखा) मर्षाहा स लीन और प्रमाखमुक्त भवख-
कान वाल (सुसवखा) अण्ड कान वाले (पीण-मंसल-कवल-दसमागा) मोटे,
मांस युक्त कपोल भाग-माल वाल, (अजिराय-वालपद्-मंठिय-महानिहाला)
तत्काल उड़प पाये हुए बाल चन्द्र के समान आकार क बड़े ललाट-भाल-पाल
(उदुवति-रिष पडिपुत्र-सोमवयणा) चन्द्र क समान प्रतिपूर्णा व मौम्य मुख वाल,
(क्षतागारुतमंगदासा) क्षत्र क समान आकार युक्त उत्तमाह-मगत क क भाग
वाल (वण-निग्गिय-मुवद-लकयलुण्य-वृदागारनिम-विडियमामिरा) लोह
मुद्गर क भीम निबिड-छम-अण्डी तरह दायु स रंधा हुआ लक्षण स रंधा
और शिखर धुक् भवन क समान गोल पिण्ड सहित मास्तक के अग्रभाग वाल (हुय
य-निद्रत-धातमल-नवगिज-रत कर्मत-कसभूमी) अग्नि में जलाकर पाय हुए
चार तपण हुए तपनीय क समान लाल टै कण का अण्ड और मानक की स्वभा
दिनर्ही पम (गामधि-वाह-पण-निपिन-झादिय-मिडिगिय-पमव-महम-
कवम-मूर्गवि-मृदुगुवमायग मिग-नीलकण्ठ-पददु भवमगल-निद्र निद्रव-

निचिय-कुंचिय-पयादिणावत्त मुद्गसिरया) शाल्मली वृक्ष के अत्यन्त निविड और छोड़ित-मिले हुए, फूल के समान कोमल, विशद-स्पष्ट, प्रशस्त-मङ्गल कारक, सूक्ष्म-चिकने (पतले) लक्ष्ण सम्पन्न, सुगन्धि वाले सुन्दर और भुज मोचक रत्न व शृङ्ग भँवरा नील-रत्न, कज्जल और प्रसन्न भँवरों के समूह की तरह स्निग्ध-चिकने समूह रूप से मिले हुए, कुंचित-टेढ़े नमे हुए और प्रदक्षिणावर्त मस्तक के केशवाले (सुजाय-सुविभक्त-सगयगा, लक्ष्ण वज्रण गुणोववेया) सुजात, सुविभक्त-अच्छी तरह विभागयुक्त और योग्य अङ्ग वाले लक्ष्ण, व्यञ्जन-मशा तिल आदि एवं अन्य गुणों से युक्त हैं (पसत्य वत्तीस लक्ष्ण धरा) उत्तम यत्तीस लक्ष्णों की धारण करने वाले (हंसस्मरा, कुंचस्मरा दुन्दुहिस्मरा, सीहस्मरा, ओघस्मरा, मेघस्मरा, सुस्मरा) हंस के जैसे स्वर वाले, क्रौंच पक्षी के समान स्वर वाले, दुन्दुभि के जैसे स्वर वाले, सिंह के समान स्वर वाले, अविच्छेद मे अभंगस्वर वाले, मेघ जैसे गम्भीर स्वर वाले और सुस्वर-सुन्दर स्वर वाले (सुस्वर निग्योमा) सुस्वर-ध्वनि वाले (वज्र-रिसह-नाराय-संचयणा) वज्र-ऋषभ नाराच-संहनन वाले (समचउरंस-संठाण-सठिया) समचतुरस्र सत्थान के आकार वाले (छाया उज्जोधिगमंगा) कान्ति से प्रकाशयुक्त अङ्गोपाङ्ग वाले (पसत्यच्छवी निरातका) प्रशस्त स्वच्छा वाले, व रोगरहित (कंकगहणी, कपोत परिणामा) ककपक्षी के समान नीरोग गुदाशय वाले, कपोत के जैसे आहार की परिणति वाले याने प्रबल पाचन शक्ति वाले (सगुणि-पोस-पिटु तरोर परिणया) पक्षी की तरह मलोत्सर्ग में डेपरहित गुदा वाले, तथा पृष्ठ, पार्श्व और उरु-जघा के योग्य परिणाम वाले (पडमुप्पलसदिम-गंधुस्सास-सुरभिवयणा) पद्म-कमल और उत्पल कमल के समान सुगन्धयुक्त श्वास से सुगन्धित मुखवाले (अणुलोमवाउवेगा) अणु, मूल धातुजो वाले (अवदायनिद्धकला) गौरवर्ण के समान स्वच्छ स्निग्ध-चिकने श्यामरङ्ग वाले, (विगाहिय उन्नय कुच्छी) शरीर के अनुरूप ऊँचे कुक्षि-उदर वाले (अभयस्सफलाहारा) अमृत के जैसे रसपूर्ण फलों का आह्वार करने वाले (तिगा उय समूसिया) तीन कोशकी उच्चाई वाले (तिपल्लिओवमट्टितिका) तीन पल्लोपम की स्थिति वाले, (तिन्निय पल्लिओवमाइ परमाउ पालयित्ता) तीन पल्लोपम की परमायु को पालकर (ते वि) वेद्युगलिक मनुष्य भी (अवितत्ता कामाण) काम भोगों में अतृप्त हुए (मरण धम्म उवणमति) मरणधर्म-मृत्यु को प्राप्त करते हैं ।

(यमया वि ब ते सिं) और उनकी स्त्रियों भी (सोम्मा) सौम्य गुणवती (मुञ्जाय-मध्वंग-मुदरीयो) उत्तम रीति से सज्जन हुए सर्पानों से सुन्दर (पद्माय महिमागुणहिंजुता) महिलाओं के प्रधान गुणों से युक्त (होति) होती हैं, फिर (अतिक्रत-विसम्पमाय-मज्ज-मुकुमाल-जुम्भ-संठिय-सिलिट्ट बलया) अत्यन्त मनोहर, चलते हुए भी बहुत कोमल, काखों के आकार के सुन्दर पाँववाली (कज्जु मज्ज-पीवर-सुसंहतागुलीयो) सरल, कोमल, मांसयुक्त और अच्छी तरह अन्तर रहित-भंगुली वाली (अम्भुसतरतिह-तरिय-तब-सुनठनका) ऊँचे, सुलझापी, पतले, ताम्रवर्ण के और स्वच्छ तथा चिकने नखवाली (रोमरहिय-गह-संठिय-मज्ज हस-पसत्य-लकसण अम्भोपजयजुयला) रोमरहित, गाल संस्वान वाली, बहुत शुभ लक्षणों से युक्त और रमणीय जंघा युक्त वाली (मुयिभित्तुनिगुह वाण मसलपसत्य मुबद्ध सपी) अच्छी तरह बने हुए बहुत गूँह-दृष्टि में नहीं आने योग्य जानु-पुटनों के मांसयुक्त प्रशस्त और नसों से अच्छी तरह बंधी हुई सींगे-जोड़वाली (कज्जली कंभातिरेक संठिय-निम्बण-मुकुमाल-मज्ज कोमल-अयिरल समसहित-सु जाय-वट्ट-पीवर-निरंतरोक) कज्जली के रतन्म की उत्तम आकृति युक्त, प्रसरहित अत्यन्त कामल परस्पर नजदीक में रही हुई, भय-प्रमाणसे बराबर, लक्षणों से युक्त, सुनिष्पन्न, गोल, मांसयुक्त और परस्पर समान उर मांसवाली (अहायव पीह-पट्ट-संठिय-पसत्य-विच्छिन्न पिहुल सोयी) अष्टापद-नूपा चलनेका एक प्रकार का पाशा उसकी या तरङ्ग के आकार की रत्नावाले शृङ्ग के समान संस्थान वाली शुभ और अत्यन्त विस्तीर्ण आणिकटि यान कमर है जिनकी पेशो (धयणायामप्प माय-दुगुणिय-बिसाल-मंसलमुबद्ध-जहणवर-वारिणीयो) सुइ की लबाई के प्रमाण से द्विगुण यान १४ अंगुल की विशाल मांस युक्त और अच्छी तरह बंधे हुए प्रधान जघन कटिके पूर्व भाग वाली (पद्मविराज-पसत्तलकम्भण निरोहरीभा) मध्य में बसती होने से धय की तरह विराजमान प्रशस्त लक्षण वाली और ऊँचा उदर धारक है (तिवलि-वलय-तगु ममिय-मम्भियायो) तीन रत्नाओं से बल युक्त दुपल और भय हुए मध्य भागवाली (उज्जुयसम-महिय-जय-तगु-कमिल-निठ-भायन-लच्छ-मुकुमाल-मज्ज मुविभन-गेम रानीयो) मरल, समान, लक्षणों से युक्त, गमयाय न उपम गूँह दृष्ट-काल क्रिय-चिकन रमणीय भित्त, अत्यन्त पागम और अच्छी तरह विभागयुक्त रामरात्रि वाली (रगायतग-वडा

हिणावत्त-तरंग-भग-रवि-किरण-तरुण-बोधित-आक्षोसायन्त-पद्म-गभीर (वि
 गङ्गाभा) गंगावर्त की तरह प्रदक्षिणावर्त, तरङ्ग के जैसे भङ्गयुक्त, तन्मय सूर्य
 किरणों से प्रबोधित-दिक्काशयुक्त पद्म के समान गम्भीर तथा विकट नाभि वा
 (अणुभङ्ग-पसत्थ-सुजात-पीणकुच्छी) योग्यप्रमाणोपेत, प्रशस्त, सुजात और मांस
 -कुचिवाली (सन्नत पासा, सुजात पासा, संगतपासा, मिथमायिष पीण रतितपास
 अच्छे बने हुए पार्श्व वाली, सुजात पार्श्व वाली योग्य पार्श्व वाली, परिमित मात्रा
 मांसल और प्रसन्नता कारक पार्श्व वाली (अकरंडय-कण्ठ-रुच्य निगमल-सुजा
 निरुच्य-गायलट्टी) दृष्टि में नहीं आने योग्य पीठ की हड्डी वाले और सुवर्ण
 कान्ति के समान निर्मल सुजात तथा रोग रहित गात्रयष्टि-शरीरवाली (कंच
 कलस-पमांश-समसहिय-लट्ट-जु बुय आमल्लग-जमल-जुयल-वद्विष-पञ्चोदरांशो
 सुवर्ण कलस के जैसे प्रमाण के, सम, लक्षणयुक्त, मनोहर, स्तन मुख के शिखरयु
 समर्थेण में दो गोलाकार पयोधर वाली (भुयंग-अणुपुण्ड्र-तरुण-गोपुच्छ-वद्विष
 सहिय-नमिय-आदेज-लडह बाहा) सर्प के समान क्रम से नीचे पतले तथा गोपुच्छ
 के जैसे गोल, समान, लक्षणयुक्त, नसे हुए और रमणीय व शोभायुक्त बाहुवाल
 (तथ नहा) ताम्रवर्ण के नखवाली (मसलगहत्या) मांस से उपचित हाथ के उ
 भाग वाली (कोमल-पीवर-वरंगुलीया) कोमल और स्थूल श्रेष्ठ अंगुली बा
 (तिद्वपाणिलेहा, ससि-सूर-संख-चक्र-वरसोत्थिय-विभक्त-सविग्रह-पाणिलेहा
 स्निग्ध हाथ की रेखावाली, चन्द्र, सूर्य, शङ्ख, प्रधानचक्र और स्वस्ति
 की विभागयुक्त अच्छी रचना सहित हाथ में रेखावाली (पीणुण्य-कव
 धस्थिपदेस-पडिपुज्जगल-कवोला) मांसल, ऊँचे, काँख और वस्तिप्रदेश-गुह्य भा
 वाली तथा प्रति पूर्ण गला व कपोलवाली (चउरंगुलसुपमाण-कधुवर-ससिगीवा
 चार अंगुल प्रमाण के प्रधान शङ्ख के जैसी ग्रीवा-गर्दन वाली (मसल-सठिय-पसत्
 हणुया) मांसयुक्त और योग्य आकार की प्रशस्त हनु-ठोड़ी वाली (दालिम-पुष्प
 प्पगास-पीवर-पल्लव-कुचिर्त-वराधरा) दाढ़िम के फूल जैसा लाल और बड़ा कु
 लटकता हुआ तथा थोड़ा बक्र ऐसे श्रेष्ठ नीचे के होठ वाली, (सुदरोत्तरोट्टा) सुन्द
 उत्तरोष्ठ-ऊपर के ओठ वाली (दधि-दग-रय-कुद-चद-वासति-मडल-अच्छि
 विमलदसणा) दही पानी के कण, कुन्द-वासन्ति के फूल, चन्द्र और वासन्ती
 मुकुल की तरह स्वेत निर्मल और छिद्र रहित दात वाली (रत्तुपल-पद्मपत्त-सुकु
 माल-तालुजीहा) रक्त उत्पल के जैसे लाल और पद्मपत्र की तरह सुकुमाल ताल

य जीम वाला (बणवीर-मुञ्ज-झुडिल-झुझय-सज्जुत गनामा) करवीर वृक्ष के
 मन्त्र की तरह सीधा भाग में ठण, सरल और ऊँची भासिका वाली (मारह-मब-
 फमल-कुमुत) कुवलपत्त-निगर-मरिस-कवम्पण-पसत्थ-अजिम्ह-कंतनयया)
 शरद श्रुत मूत्र विकारी मचीम कमल, झुझ-पन्त्र विकारी फमल, और कुवलप-
 मीलोत्पल कमल प-पत्र समूह के समान लक्षणों से प्रशस्त तथा झुटिलता रहित
 मनाहर नयवाली (आनामिय-पाप-रुइल-किण्ठम्पराह-संगव-मुजाय-लणु-
 पमिण-निद्र मुमगा) धाँसे से नमाय हुए धनुष की तरह सुन्दर, फाले बाइल की
 रंगारों के समान संगत, मुजात, पतले, वृष्णपर्ण युक्त और क्षिण्य ममुइवाली
 (अलीण-पमाख जुच सबणा) मर्यादा से लीन और प्रमाण युक्त भयण-कानवाली
 (मुरसवणा) अच्छे कानवाली (पीणमट्ट-गडलेहा) पीन-माठ और शुद्ध कपोल
 स्थल वाली (पत्रंगुल-विद्याल-समणिहाला) चार अँगुल के विराल और विषम
 या रहित ललाट वाली (कोमुदि-रयणिचर-विमल-पठिपुम-सोमवइया) कार्तिक
 पूर्णिमा के पन्त्र की तरह निर्मल प्रतिपूषा और सीम्य मुखवाली (छत्तुमय-वचमंगा)
 धन की तरह ऊँचे शिर वाली (अकविल-मुसिणिद्र-दीहसिरया) पीलेपन रहित
 काले, लम्बे व धिकने केरा वाली (छत्तगम्प-जुय-धूम-वामिणि-कर्मदलु-कलस-
 वावि-सोत्थिय-पडाग-जव-अचल-कुम्भ-रथवर-मकरगम्प- अंक-घाल-अदुस-अ
 ट्ठावय-मुपइट्ट-अमर मिरियाभिमय-तीरण-मेहणि वरुधिवर-पबरमवख-गिरिवर-
 वरायंत-नललिय गव-उत्तम-मीह चामर परावय वसीस लवस्सण पगीओ) सूत्र १
 पत्र २ वृष ३ लृष ४ वामिनी-हारी विरोच ५ कमरदलु ६ कलम ७ वापी ८ स्वस्तिक
 ९ पताका १० वय ११ मन्त्र १२ वृग १३ प्रधान रथ १४ कामदेव १५ अट्ट १६ स्थल
 १७ भंजुरा १८ अष्टापद १९ सुप्रतिष्ठक चाम शरावे की कीट्टुह स्थापना २० अमर-
 दइया मयूर २१ लक्ष्मी का अभिषेक २२ तोरण २३ धृषी २४ वरुधि-गमुद्र २५ मँछ
 पनों का प्रधान भवन २६ प्रधानगिरि २७ उत्तम वर्ण २८ और लीलायुक्त गज
 २९ वृषभ-बैल ३० सिंह ३१ तथा चामर ३२ इन वस्त्र वसीस लक्षणों को प्राप्त
 करने वाली (इमतरिच्छगनीओ) इस क समस्त गति वाली (कोइयमयूर गिराभा)
 वासिन् क समान मधुर वाली वाली (बंता गडवारस अट्टमवाओ) कायत और
 गव लोच क निव अभिमन चाहन वाग्य हण हारी हैं (वज्रगत-वलि पमित वंग
 वृष्टन वापिहाइया योगमुवाओ) वनि-अल्ल क मिट्टहन तथा वनिग मुडाव क

अनुकूल केश पकना आदि विरूपता से रहित, तथा दुर्घर्ष-खराब रंग, व्याधि, दुर्भाग्य और शोक से मुक्त रहने वाली उषत्तेण्य नराण धोवूण मूसियाओ) और ऊँचाई में पुरुषों से कुछ कम ऊँची होती है । सिगारागार-चारुवेसाओ) शृङ्गार के घर के समान सुन्दर वेपवाली (सुन्दर-थण-जहण-वयण-कर-चरण-नयणा) सुन्दर स्तन, जघन, मुख, तथा हाथ पैर व आँखवाली (लावण्य रूप जोवण गुणोववेया) लावण्य, सौन्दर्य, व जीवन तथा ऊँझना समुचित गुणों से शोभित रहने वाली (नंदण-वण विवर-चारिणीओव्व अच्छराओ उत्तरकुल-माणुसच्छराओ) नन्दन वन की कन्दराओं में विहार करने वाली अप्सराओं की जैसी वे उत्तर कुल प्रदेश की मनुष्य अप्सरायें (अच्छेरगपेच्छणिज्जियाओ) जो आश्चर्य के साथ देखने योग्य हैं (रिन्निय पत्तिओवमाइ' परमाउ' पालयित्ता) तीन पल्योपम जितनी परम आयु को पालकर (ताओऽवि) ऐसी पूर्व कही गई वे अप्सरायें भी (कामाण-अवितत्ता) कामों के विषय में तृप्त नहीं होती हुई (मरणधम्मं एवणमत्ति) मरण धर्म को प्राप्त करती हैं ॥ ५ ॥ १५ ॥

भाषार्थ—“इस मैथुनके मोह से व्याकुल हुए अप्सरा सहित देवगण इसका सेवन करते हैं। वे देव इस प्रकारके हैं—असुरकुमार आदि दश भवन पतिदेव, अण पन्निक, पण पन्निक और पिशाच आदि सोलह जाति के व्यन्तर देव । तिरछे लोक में रहने वाले ज्योतिष्क देव और ऊर्ध्वलोक के बिमानवासी देव, ये सब देवगण तथा मनुष्य व जलधर आदि पशुगण, काम भोग की तृप्ता वाले बड़ी इच्छा से व्याकुल और इसी में आसक्त बने हुए जीवगण विषय का सेवन करते हैं । ऐसी तामसी भावना के कारण ये सब अपनी आत्मा के लिये दर्शन मोह और चारित्र मांड का पिंजरामा बना लेते हैं । विशेष रूप से मर्त्यलोक के काम प्रधान नर नारिओ का परिचय देते हैं—“चक्रवर्ती-देव, दानव तथा साधारण मनुष्यों के भोग में रति का अनुभव करने वाले, देव लोक में इन्द्र की तरह नरेन्द्र और देवेन्द्र से सत्कार पाते वाले हैं । भरतक्षेत्र के हजारो ग्राम नगर आदि क्षेत्रों में सागर पर्यन्त छ. खण्ड से विभक्त ऐसी पृथ्वी के राज्य को भोगकर वे भी काम भोग में अतृप्त हुए मरते हैं, जो सूर्य चन्द्र आदि अनेक जल लक्षणों को धारण करने वाले, वत्तीस हजार राजाओं से घिरे हुए और ६४ चौंसठ हजार प्रधान स्त्रियों के स्वामी हैं । रूप लावण्य और कान्ति से सर्वाङ्ग सुन्दर तथा वस्त्रालङ्कारों से सुशोभित होते हैं । शब्द भी उनके

मधुर गन्मीर होते हैं १४ रत्न और ६ निधान इनकी सन्निधि में रहते हैं। १४ रत्नों के नाम-१ मेनापति रूपरत्न, २ गाथापतिरत्न, ३ पुरोहितरत्न, ४ अम्बररत्न, ५ पर्य की रत्न, ६ गज्जरत्न, ७ की रत्न, रूप सात प्राणिरत्न, सात प्राणिमित्र रत्न जैसे ८ चक्ररत्न, ९ ध्वज रत्न १० अर्गुरत्न, ११ मणिरत्न, १२ कागणिरत्न, १३ कङ्करत्न, और १४ वृक्ष रत्न ये एकत्रियरत्न होते हैं। हाथी घोड़े रथ और पदाति रूप चार प्रकार की सेनाओं के रक्षामी, उत्तमकुल व विस्तीर्ण कीर्ति वाले वे समस्त भारत भूमि के साथ पूषकृत मुकुट में प्राप्त सुखों को सैकड़ों वर्षों तक भोगते हैं, सैकड़ों वर्षों तक उत्तम स्त्रियों के साथ विलास करते हुए भी उन शत्रु स्पर्शादि सुखों से बिना दुःख के ही वे भरण प्राप्तकर आते हैं। ऐम बलदेव वामदेव आदि महापुरुष भी जो अतिशय बल सम्पन्न, धनुर्धारी तथा दुर्धर व शक्ति के सागर होते हैं। वर्तमान के बलदेव वासुदेव का वर्णन करते हैं-“राम कंशक कहाने वाले बलदेव वासुदेव रूप इन्हीं भाई परिपक्व युक्त तथा वसुदेव समुद्र विजय आदि बरा वशारों के जा प्यार हैं (अ) अनन्त यादव व प्रद्युम्न कुमार, शंभु कुमार आदि साठे तीन काटि हमारों के हृदय बल्लभ थे। बलदेव की माता रेहिणी और वासुदेव-कृष्ण की माता देवकी के हृदय को प्रसन्न करने वाले थे। सोलह हजार राजा जिनके पीछे चलते थे। और जिनकी सोलह हजार रानियाँ थीं। मणि, रत्न, और सुवर्ण आदि वन धान्य से इनके भयङ्कर पूष-मरे रहते, तथा हजारों हाथी घोड़े और रथों के ये अभिपति थे। राम नगर आदि हजारों बसतिओं से युक्त पर्वतपारि से मनोरम दर्शित मरणाई के शासन करने वाले थे। ये चोरयशस्वी अतिशय शक्तिशाली और हजारों शत्रुओं के मान भवन करने वाले, तथा परम दयालु थे। मरुतर माघ शक्ति-स्थिर ऋषि वाले व शान्त तथा मित्र मधुर भापी थे। इनका हास्य गन्मीर होता था। शरणागत ब्रह्मण एव कृष्ण ब्रह्मजन और सुखों से युक्त थे। यावत् पशनीय थे ताज वृक्ष और गरुड की क्रमशः शान्तों की आवायें थी। अत्यन्त अद्भुतारी मौखिक और पाण्डुर नामक मङ्ग के-मान प्राण सर्वत्र करने वाले जरिष्ठ नामक वैद्य का दमन करने वाले केरी नामक दुष्ट अन्ध और दुष्ट (काही) नाम का भयान करने वाले हैं। मारुत के अभिप्राय से वृक्ष रूप वन हुए दो विद्याधरों का कृष्ण ने पारा किया अतएव ये वनमन्त्रजुन मंत्रक करते हैं। महा शक्ति और पूतना नामक विद्याधरियों के शत्रु, कंस के मुकुट गिराने वाले

और जरासंध के मानका मथन करने वाले हैं, अनेक विशेषणयुक्त छत्र तथा हंस जोड़े के जैसे समुज्ज्वल चामर से विराजमान थे। हल भूशल बाण रूप अस्त्रधारी बलराम थे, और पाञ्चजन्य नामक शङ्ख, सुदर्शन नामक चक्र और कौमोद की नामक गदा एवं शक्ति व नन्दक नामक खड्ग को धारण करने वाले श्रीकृष्ण थे। शरीर शोभा के अलङ्करणों का वर्णन सहज है। अतः अन्वयार्थ से समझे। यावत् द्वारवती नगरी के लिये पूर्णचन्द्र के जैसे विराजमान वे वलदेव वासुदेव भी कामोपभोग में अतृप्त ही चले गये। ऐसे भाण्डलिक राजा भी चल, बाहन, सभा, अन्तःपुर-स्त्री वर्ग खजाना और विस्तीर्ण राज्य लक्ष्मी को अत्यधिक भोगकर बलवीर्य से महोद्धत दूसरे को बुरा कहते हुए कामोपभोग में अतृप्त ही ससार से चल बसे। इसी प्रकार देवकुरु, उत्तरकुरु आदि क्षेत्रों के युगलिक मनुष्य, जो भोग प्रधान जीवन वाले हैं, अन्य विशेषण तथा नख शिख पूर्ण शरीराकृति का वर्णन सहज होने से अन्वयार्थ पर से ही समझे। यावत् सुजात अच्छी तरह विभागयुक्त और उत्तम शरीर वाले होने हैं। लक्षण आदि से युक्त, ३२ लक्षणों के धारक और हस आदि के समान गन्मीर व मधुर स्वर वाले होते हैं। उनकी शारीरिक रचना सर्व श्रेष्ठ होती है। उनके शरीर कान्तियुक्त तथा रुजा रहित होते हैं। मलस्थान भी उनके पक्षित्व मल लेप रहित एवं निर्मल होते हैं। उनकी जाठराग्नि कबूतर सी प्रदीप्त रहती है (शेष सुगम है)। वे भी काम भोगों में अतृप्त ही ससार से विदा होते हैं। इनकी स्त्रियों भी सौम्या व सर्वाङ्गसुन्दरियाँ तथा प्रधान स्त्री गुणों से शोभा युक्त होती हैं। इनका भी नख शिख वर्णन युगलिक पुरुषों के समान है, अतएव अन्वयार्थ से ही समझ लेवे। छत्र ध्वज आदि ३२ लक्षणों को धारण करने वाली, हस जैसी गति वाली और कोकिला के समान मधुर स्वरवाली, अनिन्य सुन्दरी और सभी के लिये प्रिय दर्शना होती हैं। यावत् नन्दनवन विहारिणी अप्सराओं के समान उत्तरकुरु आदि क्षेत्रों की ये, मनुष्याप्सरारथे होती हैं। तीन पल्य के उत्कृष्ट आयु को भोगकर भोगों में अतृप्त ही वे भी ससार से चल बसती हैं। सू० ५। १५ ॥

अब मैथुन जिस प्रकार सेवन किया जाता और जो फल देता है इसको साथ ही कहते हैं—

मूल—“येदुणसन्नासंपगिद्धा य मोहमरिया, सत्थेहिं हणंति एकमेकं
विसयविसउदीरएसु, अवरे परदारेहिं हम्मंति, विसुणिया धणनासं सयण-

विषयार्थं च पाठयति, परस्सदाराभ्यो जे अदिरया, मेहुणसभ संपगिद्धा
 य मोहमरिया अस्ता हत्थी गवा य महिसा, मिगा य मारेंति एकैकैकं ।
 मधुयगखा बानरा य पक्खीय विरुज्जति, मित्राणि सिप्य भवंति सत्त,
 समये धम्मगेणो य मिदति पारदारी । धम्मगुणरया य धमयारी, खखेख
 सधोद्वए परिचाओ । जसर्मसो सुप्पया य पावेंति अयसकिप्पि । रोगसा
 वादिया पविद्धिदि रापवाही । दुबे य लोया दुआराहगा भवंति-इह लोए
 चैव परलोए, परस्सदाराभ्यो जे अविरया । तदेव केइ परस्सदार गवेसमाखा,
 गहिया हया य बद्धरुद्धा य एवं जाव गच्छति विपुलमोहामिभूयसभा ।

भाषा-“मैथुन सहा संपगृह्य मोहमरिता, रात्रैर्जन्ति-एकैकं, विषय-विषे
 शीरकेपु, केषनाऽपरे परदारैश्चान्वन्ते, विधुता वनतारां, स्वजन-विप्रसारा
 प्राप्नुवन्ति, परस्य वारेभ्यो येऽविरता, मैथुनसंज्ञासम्पगृह्य मोहधृता-अथा,
 इतिना गाप्य, महिषा मृगाश्च मारयन्ति, परापरमकैकं, -मनुजगणा बानराश्च पक्षि
 णश्च विरुज्जन्ति, मित्राणि क्षिप्तं भवन्ति शत्रवः, समयान् धर्मान् गणाश्च भिन्वन्ति
 पारदारिका, धर्मगुणरताश्च ब्रह्मचारिणः क्षणं परावर्तन्ते च परित्रात-यथादिन
 सुत्रताश्च प्राप्नुवन्ति-अयसार्थकीर्तम्, रगाहं व्याधिता प्रवर्तयन्ते रोगस्य वीर,
 ह्योर्लोफ्योदुरारापका भवन्ति (ह्योर्लोफ्यो दुराराप्यो भवन्), इह लोके चैव पर
 लोके चैव, परस्य वारम्भा येऽविरता, तथैव केऽपि परस्य वारान्गवेषयन्तो पृथिता
 इतश्च बद्धरुद्धा । एवं जावद्गच्छन्ति विपुल मोहामिभूयसभा ।

अन्व- (मेहुणसभ-संपगिद्धा य मोहमरिया) फिर मैथुन रात्रा में आसक्त
 जीव अज्ञान या काम के भरे हुए (एकमेक सत्यहिं व्योनि) एक दूसरे
 को शर्मा से मारत हैं, (विसयविस उशीरप्सु) विषय रूप विष क प्रवर्तकों में
 (अघरे) दूसरे-कई (परदारोंहिं हर्मति) पर स्त्री के साथ गमन करत हुए मार
 जाते हैं (विधुयिगा) कुक्ष्य से प्रसिद्धि पाये हुए (धग्ननाम समय विषयार्थं च
 पाठयति) वन के नाश और स्वजनवियोग को प्राप्त करते हैं, (परास दाराभ्यो जे
 अविरया) पर स्त्री के गमन से जो अविरत होते हैं । (मधुयसभसंपगिद्धा य मोह
 मरिया) और मैथुन संज्ञा में आसक्त और मोह से भरे हुए (अस्ता, हत्थी गर्प
 य महिसा मिगा य मारेंति एकमेक) पांड, हाथी और बैल मूस और भूग एक
 दूसरे को मारते रहत हैं (मधुय गणा बानराय) मनुष्य समूह और बानर (पक्खीय

विरुद्धमिति) और पक्षी परस्पर लड़ते हैं, (भित्ताणि खिप्यं भवन्ति सत्सु) मैथुन कर्म से मित्र शीघ्र ही शत्रु हो जाते हैं (समये धम्मगेणे य भिदन्ति पारदारो) समय-सिद्धान्त के अर्थ, धर्म और गणों जाति मर्यादा को परदार लम्पट मझ करते बाने सहोष करते हैं, (धम्मगुणं रया य वंमयारी खणेण उल्लोट्टणं चरित्ताओ) और धर्म गुण में रसण करने वाले ब्रह्मचारी क्षण भरमें चारित्र से लौट पड़ते हैं, (जसमंतो सुव्वयाय) कीर्तिमान् और सुव्रती भी (पार्वन्ति अयसकित्ति) अयशः-अकीर्ति को पाते हैं (रोगत्ता याहिया) ज्वर आदि के रोगी तथा कुष्ठ आदि व्याधि से ग्रस्त (रोगवाही पवइड्ढति) अपने रोग व व्याधि को बढ़ाते हैं (हुवे य लोया दुआराहगा भवन्ति) और दोनों लोक कठिन से अराराधने योग्य (वाले) होते हैं जैसे—(इह लोए चैव पर, लोए) इस लोक और ऐसे परलोक-दोनों का आराधन उनको कठिन होता है (परत्स दाराओ जे अविरया) जो परस्त्री से विरत नहीं होते हैं, (तदेव केइ परत्स दारं गवेसमाणा) इसी प्रकार कई पर स्त्री की गवेपणा-खोज करते हुए—(गहिया, हया य बद्धरुद्धा य) पकड़े गये और मारे गये तथा बांधकर रोके गये हैं (एषं जाव गच्छति विपुल मोहाभिभूयसन्ना) इस प्रकार याघत् विस्तीर्ण मोहसे दूरे हुए ज्ञान वाले 'नरक में' जाते हैं ।

सू०—'मेहुणमूलंच सुव्वए तत्थ तत्थ वत्तपुव्वा संगामा जणक्खय-करा,—सीयाए दोवईए कए, रुप्पिणीए, पउमावईए, ताराए, कंचणाए, रत्तसुमदाए, अहिंझियाए, सुवन्नगुलियाए, किन्नरीए, सुरुवदिज्जुमतीए, रोहणीए य । अन्नेसु य एवमादिएसु बहवो महिलाकएसु सुव्वन्ति अइक्कं ता संगामा, गामधम्ममूला इहलोए तावनद्धा परलोए वियनद्धा, महया मोह तिमिसंधकारे घोरे तसथावर सुहुमवादरेसु पज्जत्तमपज्जत्त साहारणसरीरे पचेवसरीरेसु य, अंडज—पोतज—जराउय—रसज—संसेइम—समुच्छिम—उन्मिय-उववादिएसु य नरग—तिरिय—देव—माणसेसु, जरा—मरण—रोग—सोग—बहुले, पलिओवम सागरोवमाइं अणादीयं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरत संसार कंतारं अणुपरियट्ठं ति जीवा मोहवससज्जिविद्धा । एसोसो अबंमस्स फल वि-वग्गो इहलोइओ पारलोइओ य अप्पसुहो बहुदुक्खो महम्मओ बहुरयप्पगाढो दारुणी कंकसो असाओ वास सहस्सेहिं मुचत्ती, नय अबेदयित्ता अत्थिहु मोक्खोत्ति, एवमाइंसु नायकुलनंदणो महप्पा जिणोड धीश्वरनामधेज्जो,

कहेसीय अथमस्त फलविवागं, एवंतं अथमपि अठत्वं सदेव मण्डुपासुरस्त
लांगस्त पथयिज्जं, एवं चिरपरिचियमणुगतं दुरतं, अठत्वं अथममदारं
समत्तं विवमि ॥ ४ ॥ अथ ६ । १६ ॥

छाया-“मैथुन मूलं च भूयन्ते तत्र तत्र वृत्तार्थां समामा जनार्धकराः, सोताया
त्रौपया हृते, रुक्मिण्याः, पद्यावत्यास्तारायाः, काञ्चनाया, रक्त सुमश्राया, अहि-
स्याया, सुवर्णगुलिकाया, किमरी, मूलपविष्णुमत्या, रोहिण्याम् । अन्यास्तु चैव
मादिषु वक्ष्यामहिनाहृतेषु भूयन्तेऽङ्गिहान्वा संप्रामा ग्रामधर्ममूला ।

इह लोके तावन्नष्टा, परलोकेऽपि च नष्टा, महति मोहमिहान्धकारे घोरे त्रसस्याधर
सूक्ष्मबाधरु पर्याप्ताऽप्यग्रं-साधारण-शरीर प्रत्येकशरीरेषु च अण्डज-पोतज-जरायुज
रसज-संवेदिम-संमूर्च्छिमोहिज्जम्भीपपाठिकदुष, नरक तिर्थगद्देव मनुष्येषु, जरा
मरुत रोग शोक बहुले, पत्न्योपम सागरोपमानि अनादिमनबद्धं शीर्षमभ्रान्तं
चतुरन्त संसारकान्तामनुपरिवर्तन्ते जीवा मोक्षवरा संनिविष्टा । एषस अमध्य
पञ्च विपाक ऐहिकीक पारलौकिकआत्मसुखो बहुदुःखो, महाभयो बहुदुःखः प्रगाढो
हारुण, कर्कशोऽवातो वर्षसहस्रैर्मुच्यते, न च अवेशित्वा अस्तिमोक्ष इति, एवमा-
न्यातवाम् द्वातकुलमन्वनो महात्मा 'जितस्तु वीरवरभामवेष्ट', कथयिष्यति च
अमध्य पञ्चविपाकम् एतत्तद्वशापि अतुल्यं सध्वमेतुबासुरस्य लोकस्य प्राधानीयम्
एव चिरपरिचितमनुगतं दुरन्तं । अतुल्यमधर्मज्ञानं समाप्तमिति ज्ञवीमि ॥ ४ ॥ ६ ।
१६ ॥

अन्व०-“(महत्सुमूलं) और मैथुन मूलक (तत्पल्य वत् पुष्पासंगामा सुख्य)
जन्म शाली में पहले हुएभये संग्राम सुन जाते हैं (अथममदारं) जो युद्ध नर
संहार करने वाल हैं, जैसे-(सीयाय, शीयर्षण्य) भीता और त्रौपही के लिये-
राम रावणका और पद्मनाभ व पाण्डवों का युद्ध हुआ (रुक्मिणीय) रुक्मिणी के
लिये कृष्ण और शिशुपालका युद्ध हुआ (पद्यावती) पद्यावती के लिये-कृष्ण का
अनेक राजाओंसे युद्ध हुआ (स्ताराय) तारा के नामसे-साहसमति व सुमोह का युद्ध
हुआ (काञ्चनाय) काञ्चना के लिये युद्ध हुआ (रक्तसुमश्राय) रक्तसुमश्रा के लिये कृष्ण
और अर्जुन का युद्ध (अहिस्याय) अहस्या या अहिभिका के लिये हुआ अममिद्ध
युद्ध (सुवर्णगुलिकाय) सुवर्णगुलिका के लिये उदायन और अरुणमसोतम का युद्ध
(किमरीय) किमरी और (मूलपविष्णुमतीय) मूलपविष्णुमती के लिये (रोहि-

णीय) और रोहिणी के लिये वसुदेवका युद्ध (अन्नं मु य ण्वमाद्रिणमु) अ
इत्यादि अन्य (वहवो) बहुत से (महिलाकण्डसु) स्त्रियों के प्रयोजनसे (अह
सगामा मुब्बन्ति) भुत पूर्व सग्राम सुने जाते हैं, (गामधम्ममूला) जिनका विषय
भोगही मूल कारण है, विषय सेवन करने वाले-(इहलोण्ठावनट्टा) इम लोक में
अकीर्तिके कारण नष्ट होते हैं (परलोए भियण्ट्ठा) और परलोक में भी नष्ट होते
(मइया मोढ तिमिसंधकारे) महामोहरूप अत्यन्त अन्धकार वाले (धोरे) धोर-परलो
(तसथावर सुहुमवादरेसु) तस तथावर तथा सूक्ष्म और वादर नाम कर्मवाले (पज्ज
पज्जत साहारणसरीर पत्तेय सरीरेसु य) और पर्णपत्र व अपर्णपत्र तथा साधारण शरीर
नाम कमवाले और प्रत्येक शरीरीपन में (अण्डज-पोतज-जरायुज-रसज-ससे
समुच्छिन्न उडिभय-उववाटिणसुय) अण्डज, पोतज, जरायुज क्रमसे अण्डा से पै
होने वाला अण्डज-पत्नी, पोतज हाथी आदि और जड़ के साथ उत्पन्न होने व
जरायुज, रसमें पैदा होने वाले रसज, स्वेद-पसीने से पैदा होने वाले सवेदिम, वि
गर्भ के उत्पन्न होने वाले समूर्च्छिम, और भूमि को फोड़कर पैदा होने वाले उद्धि
तथा उपपात-एकाएक अन्यस्थानसे दूसरेस्थान में जाने वाले सहस्राशय्या में पै
होने वाले जीव औपपातिक-देव तथा नारक आदि, इन जीवों को सत्त्वमें कहें
(नरग-तिरिय-देव-माणुसेसु) नरक, तिर्यञ्च, देव और मनुष्य रूप यों
ओंमें 'पर्यटन करते हुए जीव,' (जरा मरण रोग सोग बहुले) जरा मरण, रोग
और शोक की प्रधानता वाले 'ससार में' नष्ट होते हैं, (पलिओढम-सागरोपमाइ)
अनेक पल्लोपम व सागरोपम तक (मोहवस मंनिविट्ठा जीवा) मोहके कारण उ
ज्ञके सेवन में लगे हुए जीव (अणादीर्य अणवद्गम) आदि अन्त रहित-और (दी
मद्वचाउरंत ससार कंतार) दीर्घ-लम्बे मार्गवाले-चार गतिओं से युक्त इस ससार
रूप अटवी में (अणुपरियट्ठति) भटकते रहते हैं।

उपसंहार--“(एसोसो अवमस्स फलविवागो) इस प्रकार यह अन्नपत्र सेवन व
फलरूप विपाक-आत्सीरी परिणाम (इहलोइओ पारलोइओ य) इस लोक सम्बन्ध
और परलोक सम्बन्धी (अप्पसुहो बहुदुक्खो महद्विओ) अल्प सुख वाला, व
दुःखवाला-तथा महाभयङ्कर है, (बहुरयप्पगाढो, दाकणो, ककसो, असाओ)
कर्मरज की अधिकता से प्रगाढ़, भयङ्कर और कठोर, असाता रूप है (वाससहस्से
मुण्णती) हजारों वर्षों से झूटता है (न य अवेदयित्ता अविहुमोक्खोति) बिनाभे

इस कर्म विपाक से मोक्ष-छुटकारा-नहीं होता है, (एवमाहंसु नायकुज नवनो म्हाण्या) हातकुज नवन म्हास्माने इसप्रकार कहा है, (त्रिणोड धीरवर नाम केम्बो) महावीर नामके अग्निनेत्र ने (कहेसीय अवभस्स फलविभाग) और अजय के फलविपाकमे कहा है (हिंगि) (एवं तं अर्चमर्भविषयम्) यह अजय नामक वह चौथा अचर्मद्वार भी हुआ, (सवेवमगुणास्तुस्म लोगरस पत्थिष्ठम्, एवं चिरपरि-विषमगुणस दुरत चर्यम् अचम्माद्वारं समर्चं सिधेमि) जो वेव, मनुष्य और असुर सहित लोक-संसार का प्रार्थनीय है, इस प्रकार बावत् अधिक कालका परिचित, साधी और दुःख से अन्तवाला है। ऐसा चौथा अचर्मद्वार समाप्त हुआ, ऐसा मैं कहता हूँ। सू० ६। १६।

साधारण-“इस सूत्र में बताया गया है कि मैथुन संज्ञा के परीमूत जीव एक दूसरे को मारते हैं। कई जीव विषय के व्यासङ्ग में लग्न हुए मारे जाते हैं। कुर्म से प्रचक्रात हुए कई घन वन व प्राणों की कृति उठाते हैं। मैथुन स निवृत्त नहीं होने वालों की यह वृत्ति है। विषय में आसक्त हुए भए पाके, हस्ती आदि पशु परस्पर-एक दूसरे को मारते हैं और नर, वानर पक्षी भी इस कारण से लड़ते हैं। मित्र भी शत्रु बन जाते हैं। और दुराचारी लोग सम्प्रदाय सिद्धान्त एवं धर्ममार्गों को भी मंग करते हैं। इस कृष्णकृत्य के व्यासङ्ग लोग खराबारी रहकर भट नीचे गिरजाते हैं। और कीर्तिमान् भी अकीर्तिवुक्त हो जाते हैं। इस अभिचार से जीव रंभी बनते और फिर उस रोग को बढ़ाते रहते हैं। संक्षेप में कहना चाहिए कि दुराचारियों के लिये दोनों लोक दुरारात्म्य-अर्थात् विफल हो जाते हैं। क्योंकि इस लोक में पकड़े जाने पर वध बन्धन आदि दुःख सहने पड़ते हैं और परलोक में भी नरकनाभी बनते हैं। इस मैथुन के बढ़ते गत काल में कई अनसहारी समाप्त हुए हैं, जिनका विशदवर्णन शास्त्रों में सुन पड़ता है। जैसे-सीता के लिये राम रावण का, द्रौपदी के लिये कौरव पाण्डवों का, तथा तारा के लिये साहसमति व सुधीर का, इत्यादि सैन्धों मुझ प्रसिद्ध हैं। विषयी लोग-उभयलोक को अपने हाथ से नष्ट करते हैं। आत्मीर प्रसरबावर पर्याणों में भटकते हुए पतुर्गति संसार म परस्पोपम सागरोपम कालतक पर्वटन करते रहते हैं। उपसंहार स्पष्ट ही है। सू० ६। १६।

अथ “पञ्चम आश्रव” प्रारम्भ्यते

सन्तान्—“पूर्व अध्ययन में अत्रि का स्वरूप कहा गया, वह परिग्रह के होने पर ही होता है, इसलिये इस अध्ययन में परिग्रह को पांच द्वारों से बहेगे,—प्रथम परिग्रह का स्वरूप बताते हुए श्री सुधर्म स्वामी महाराज फरमाते हैं—

मूल—“जंबू । इत्तो परिग्गहो पंचमो उ नियमा शाणामणि-रयण-कणग-महरि-परिमल-सपुत्त-दार-परिजण-दासीदास-भयग-पेस-हय-गय-गोमहि-उट्ट-खर-अय-गवेलग-सीया-सगड-रह-जाण जुग-संदण-सयणासण-वाहण-कुविय-पण-पाण-भोयणाच्छायण-गध-रुद्ध-भायण भवण विहिं चैव बहुविहीयं, भरहं खग-खगर-णियम-जणवय-पुरवर-दोणमुह-खेड-कवड-सडव-संदाह-पट्टणसहस्स परिमंडियं, थि-मियमेहणीयं, एगच्छत्तं ससागरं भुंजिऊण वसुहं, अपरिमिय मयंत तणह-मणुगय-महिच्छसार-निरयमूलो, लोभकलिकसाय-महक्खंधो, चिंतासय निचिय विटुलसालो, गारव पदिरल्लियग्ग विडवो, नियडि तथा पत्त पल्लव धरो, पुप्फफलं जस्स कामभोगा, आयास विसरणा, कलह पंकपियग्ग सिहरो, नरवतिसंपूजितो, बहुजणस्स हियय दइओ इमस्स भोवत्खवर-मोत्ति मग्गस्स-फलहभूओ चरिमं अहम्मदारं । १ । १७ ।

छाया—“हेजम्बू । इत्त. परिग्रह पञ्चमस्तु नियमात्-नाना-मणि-कनक रत्न-महार्ह-परिमल-सपुत्रदार-परिजन-दासीदास-भृतक-प्रेष्य-हय गज गो-महि घोष्ट-खराज-गवेलक-शिविका-शकट-रथ यान-युग्म-स्यन्दन शयनाससन-वाहन-कुण्ड-धन धान्य पान-भोजनाच्छादनगन्धमात्य भवनविधिम्, चैवं बहुविध, भारत [नाम] नग-नगर-निगम-जनपद-पुरवर-द्रोणमुख-खेट-कर्बट-मडम्ब-सवाह-पट्टणमहत्प्रपरिग्रहितम्, स्तिमित मेदिनीकमेकच्छत्रं ससागरं मुक्त्वा

वसुधामपरिमिताऽनन्तवृष्णानुगत-महेच्छासार निरयमूला, क्षोभ कलिकपाय
महास्कन्ध, पिप्ताऽऽयास निमित्त त्रिपुल्लभास्तो, गौरयपल्लविताम विटपा, निकृति
त्वचा पत्र पल्लवधर, पुष्पफल, मयकाम मागा, आयास भिसूरणा कलह प्रकम्पि
ताऽऽप्रशिरा, नरपतिमन्त्रुचितो बभ्रुजनस्य हृदयस्थितः । अस्य मोक्षपर मुक्ति मार्गस्य
परिषी नूत (स) चरममधर्मद्वारम् । सूत्र १ । १७ ॥

अन्व०-“(अंबू ! इत्ता) हे अम्बू ! इस चौथे आलस के बाद (परिग्रहो पंचमो
८) परिग्रह-पाँचवाँ आलस (निरमा) निराम से होता है, यह कैसा है ?- (या
याम्नि-कृष्ण-रथ-महर्षि-परिमल-सपुत्रदार-परिग्रह-दासीदास-मयग-पेस-
हय-गय-गो-महिस-ऊ-कर-अय-गवेलाग-सीधा-सगह-रुद्राक्ष-जुमा-संवृ-
क्षय्यासय-वाह्य-कुर्विय-यय चन्न-पाय मोयखाब्जावय-गधमङ्ग-मायण-भयय
विहिं वेव बहुविहीयं) अनेक प्रकार के यणि, कनक-सोना, रत्न-कंकन आदि,
बेशकीमती सुगन्धि द्रव्य पुत्र और स्त्री सहित परिवार, दासीदास और काम करने
वाले दूतक, तथा कास काम पर मेजने योग्य-प्रेष, घोड़े, हाथी, गाँव, भैंस, ऊँट,
गधा, चक्रे की आठि और गवेजक व शिबिका-पालकी, शकट-गाड़ी तथा रथ,
पान व भुग्न-बाहन विशेष तथा स्तनन-स्त्रीधारण, शपन, आसन और बाहन व
कुम्ह-घर के उपयोगी सामान, धन, धान्य, भक्ष्य खाने के पदार्थ और पेय, आच्छा
दन-शरीर ढकने का वस्त्र, गंध-कपूर आदि, मास्य-पुष्पमाला, भाजन और मदन
के अनेक प्रकार के विधान को (यग-यगर-निवम-जयजय-पुरवर-दोखमुह-खेड
कम्बड मंडन-संवाह-मृग-सहस्र परिमंथियं) तथा लग्न-पर्वत, नगर-शहर,
निगम-वणिग् लोगों का निवास स्थान-मंडी, जनपद-वेश, पुरधर-प्रधान शहर,
द्रोणमुक्त-अस्मार्ग और रत्नमार्ग दोनों से जाने योग्य नगर, खेड कंबट, मन्मन्,
संवाह और हजारों पत्तनों से मंथित (मर्द्ध) मरत क्षेत्र को (त्रिमिय मेहणीयं)
निर्मयजनपुठ मेक्षिणी वाली (ससागरं समुद्रं) समुद्र सहित पृथ्वी को (पगच्छत्र)
एकच्छत्र-अर्द्ध राम्य से (मुंभिकय) भोगकर, अब परिग्रह का वृत्तरूप में वर्णन
करते हैं- (अपरिमिय मर्गततय मृगुगय महर्षिद्वार-निरयमूला) अपरिमित
अनन्त वृष्णा के साथ रहने वाली बड़ी इच्छा ही अक्षय्य और अक्षुभक
वासे जिसके मूल हैं, (क्षोभ-कलिक-काम-महर्षिस्तो) क्षोभ, कलिक-कलह,
और कपाय-श्लेष मान आदि पतद्रूप महास्कन्ध वाला (पितायास

निचिय विपुल सालो) चिन्ता और मनस्ताप आदि की अधिकता से या निरन्तर सैकड़ों चिन्ताओं से विस्तीर्ण शाखावाला (गारव परिश्रजिग्रम विडवो) ऋद्धि आदि के गौरव ही विस्तारयुक्त शाखा के अभ्रभाग है जिसमे (नित्यडि-तयापत-पल्लवधरो) दूसरे को ठगने के लिये किये गये घंचनाप्रकार या कपट रूप त्वचा पत्र और फूल को जो धारण करने वाला है, (पुष्पफलं जस्स कामभोगा) तथा काम भोगही जिस वृक्ष के फूल व फल हैं (आयास विसूरणा कलह पकं पियग सिहरो) शरीर और मन का खेद, तथा कलह ये ही जिस वृक्ष के कम्पमान होने वाले अग्र शिखर हैं (नरवतिसमूजितो) राजाओं से पूजित (बहुजणस्सहिग्रय इहओ) बहुत लोकों का हृदयवद्भ्रम (इमस्स मोक्खवर मोत्ति यग्गस्स) इस-प्रत्यक्ष-विद्यमान मोक्ष-कर्म मोक्ष-के निर्लोभितारूप मार्ग का (फलिहभूओ) यह परिग्रह आगल के समान रोध करने वाला है (चरिम अहम्मद्वारं) यह अन्तिम अधर्मद्वार है ॥११७॥

भावार्थ-“सुधर्मस्वामी महाराज जन्मू नामक अपने शिष्य से फरमाते हैं कि अन्नद्वार के बाद पाचवा अधर्म द्वार परिग्रह है। अनेक प्रकार के मणि सुवर्ण आदि जङ्गम तथा स्थावर सचेतन और अचेतन रूप बहुत प्रकार के साधनों को तथा गिरि नगर आदि हजारों वसतिओं से मण्डित भरत क्षेत्रको और समुद्र सहित पृथ्वीके एक-एक राज्य को भोगने पर भी जो तृप्ति रहित हैं। इसकी वृक्ष के साथ तुलना करते हैं -अपरिमित अनन्त वृष्णारूप बड़ी इच्छा व अशुभफलही इसका मूल है, लोभ कलह और कषाय इसके बड़े स्कन्ध हैं, सैकड़ों प्रकार की चिन्तायें इसकी विशाल शाखायें और अहङ्कार ही विस्तारयुक्त इसका शिखर है। अनेक प्रकार के छल कपट ही, जिसकी त्वचा पत्र व फूल हैं, कामभोग ही इसके फल फूल हैं। इसी प्रकार अन्य तुलना समझें यावत् निर्लोभितारूप मोक्षमार्ग का यह आगल के समान रोध करने वाला पंचम अधर्म द्वार है ॥ १।१७ ॥

अब परिग्रह के नाम कहते हैं-

मूल-“तस्स च नामाणि इमाणि गोण्याणि होति तीसं, संज्ञा-परिगहो १, संचयो २ चयो ३, उवचयो ४, निहाणं ५, संभारो ६, संकरो ७, आयरो ८, पिंडो ९, दव्वसारो १०, तहामहिच्छा ११, पडि-बंधो १२, लोहप्पा १३, महदी १४, उवकरणं १५, संरखणाय १६,

मारो १७, संवाटप्यायको १८, कलिकरको १९, वित्ता २०,
 २१, संयको २२, अगुली २३, आयासो २४, अनिमो २५
 २६, तप्या २७, अमृत्यको २८, आसकी २९, असंतोसोपिनि ३०
 प्याधि श्वमादीणि नानवेज्याधि होति तसि । १८ । १८ ।

छाया—“तस्य च नामानि इमामि गौणानि भवन्ति प्रिरात् तानि का-
 १, संयको २, अगुली ३, अपचन ४, निधानम् ५, सम्पार ६, सूर्य ७,
 ८, विरह ९, इत्यस्यार १०, तथा अवेज्या ११, प्रतिबन्ध (अभिज्ञ) १२, ई
 भासा (लोम स्वमा) १३, अर्द्धि १४, उपकरणम् १५, संरक्षणा १६, क
 १७, सम्पातोत्पादक १८, कलिकरक १९, वित्तर २०, अनर्ग २१, अ
 २२, अगुलि २३, आयास २४, अविपाग २५, अगुलि २६, वृद्धा २७, अ
 २८, आसकि (आसक) २९, असंतो ३०, इत्यधिक, तस्यैतानि-पञ्चम
 नामवेज्यानि भवन्ति प्रिरात् ॥ सू० २ । १८ ॥

अन्व—“ (तस्य च) किरस्वल्प के बाद उस परिम्व के (श्वाधि) के लो
 कहे गये (गोपलाधि) गुणनिष्पन्न (तसि) तीस (नामाधि) नाम (होते) है
 (तंवा) जैसे कि वे इस प्रकार हैं—(परिवायो) परिम्व-शरीर आदि का बन्ध
 वण्ड मण्ड करना, (अचन) सञ्चय-अधिक मात्रा में संग्रह करना (चरो) व
 वस्तुओं को छुड़ाना, (अपचन) उपचन (मिश्रण) मिश्रण (संपार) संसार को
 अचरी तरह से धारण किया जाय (संर) स्फुर-वस्तुओं को एक दूसरे से मिलान
 (आसरो) आहर-वस्तुओं में आहर बुद्धि करना (विह) विरह (इत्यस्यार) इत्यस्य
 सार वाता (तप्य मदिष्य) वैदिकी मन्त्र-तीज इच्छा (परिबन्ध) प्रतिबन्ध-अपचन-
 वमं स्नेहबन्ध होना (लोह्या) लोमात्मा-लोमस्य आत्मा यत्मा, (अर्द्धि) अर्द्ध
 -अपरिमित भागनावाका (उपकरणं) उपकरण (संरक्षणा च) और संरक्षणा-ये
 वरा-शरीर आदि की विशेष रक्षा करना (आरो) आर-आत्मा का निरोधना
 करने वाला (संपातोत्पादको) संपातोत्पादक-भूत आदि पातकों का पैदा कर
 वाला (कलिकरको) कलहोकी पैदा (वित्तर) वित्तर-यत्नपत्र आदि का
 विम्वार (अगुली) अनर्ग-अनर्ग का देव (संयको) संतान-आपणवत्तों का अधि
 र्निधय (अगुली) अगुलि-इच्छा के संगोपन का होना (आयासो) आयास-संर
 काय (अविपाग) अविपाग यह आदि का नहीं आना (अमली) अमलि अमल

(तथा) तृणां (अण्वर्थको) अनर्थक-परमार्थसे निरर्थक अनर्थ को करनेवाला (सत्ता) आसक्ति-अधिकमोह (असंतोसोत्तिविय) इसप्रकार असन्तोष यहमी (य) उस परिग्रहके (एवाणि एवमादीणि नामधेयाणि तीसहोति) ये कहे गये स और इसीतरह के दूसरे नाम होते हैं ॥ २ ॥ १८ ॥

भावार्थ-इससूत्र में परिग्रह के तीस नाम कहे गये हैं जैसे-परिग्रह १ सञ्चय २ अय ३ अवचय ४ निधान ५ सम्भार ६ सङ्कर ७ आदर ८ पिण्ड ९ द्रव्यसार १० महेच्छा ११ प्रतिबन्ध १२ लोभात्मा १३ महार्हि १४ उपकरण १५ और सरक्षण १६ भार १७ सम्पातोत्पादक १८ कलिकरण्ड १९ प्रविस्तर २० अनर्थ २१ संस्तव २२ अगुप्ति २३ आयास २४ अवियोग २५ अमुक्ति २६ तृणा २७ अनर्थक २८ आसक्ति २९ और असन्तोष ३० इसप्रकार परिग्रह के ये तीसनाम अन्वर्थक-सार्थक होते हैं ॥ २ ॥ १८ ॥

मूल-“तच्च पुण परिग्माहं ममायंति लोभघत्या, भवनवर विमाणवा-
सिणो परिग्माहुरुती, परिग्माहे विविह करणबुद्धी, देव-निकायाय, असुर-
भुयग-गरुड-विज्जुज्जलण-दीव-उदहि-दिसि-पवण-थणिय, अणवनि-
यणवनि-इसिवातिय-भूतवाइय-कंदिय-महाकंदिय-कुहंड-पतंगदेवा,
पिसाय-भूय-जकत्त-रक्खस-किन्नर-किंपुरिस-महोरग-गंधव्वा य, तिरिय
चासी पंचविहा जोइसिया य देवा, बहस्सती, चंद-खर-सुक्क-सनिच्छरा,
राहु-धूमकेउ बुधाय, अंगारकाय, तत्तवणिज्ज कण्ठेयणां, जे य महा
जोइसम्मि चारं चरंति, केऊ य गतिरंतीया, अट्ठावीस त्रिविहा य नक्खंत-
देवगणा, नाणा संठाण संठियाओय तारगाओ, ठियलेस्सा-चारिणो य अवि-
स्साम मंडलगती उवरिचरा, उड्ढलोगवासी द्रुविहा-वेमाणियो य देवा,
सोहम्मीसाण-सणकुमार-मार्हिंद-बंभलोग-लतक-महासुक्क-सहस्सार-
आणव-पाणय-आरण-अचुया कप्पवर विमाणवासिणो, सुरगणा,
गेवेज्जा, अणुत्तरा द्रुविहा कप्पातीया विमाणवासी, महिड्डिका उत्तमा
सुरवरा एवं च ते चरंत्विहा सपरिसाविदेवा ममायंति, भवणवाहण जाण
विमाण सयणासणाणि य नाणा विहवत्थभूसणा पवर पहरणाणि य
नानावणि-पंचवत्थदिव्वं च भावणविहिं, नाणाविह कामरूवे, वे उव्वित

अथ चर गच्छतयाते, दीयसमुद्रे, दिसाभ्यो, विदिसाभ्यो, चेतियाधि, वक्षसि, पञ्चते गामनगराणि च, आराधनत्रास कायसाधिप, कृष-सर-उलाग
धावि-दीदिय देवकुल-सम-प्यव-वसहि माह्याई बहुकार्, किचलाधि च
परिगेविद्या परिगह विपुलदम्बसारं देवाभि सईवगा न तिति न तुहि
उवलमेति ।

छाया-“तं च पुनः परिच्छेदं ममायन्ते लोभप्रस्ता मन्त्रवरविमान वासिनः, परिच्छे
दवयः परिच्छेदविधि करणपुत्रयो देवनिष्ठायाऽसुरमुखग-गच्छ विपुलदम्बसारं श्रीपो-
रपि दिक्-पवन-स्तनिताऽप्यपन्निक-पन्नपन्निक इति शब्दविधि-मृतवादि-अन्वित
महाप्रमित-कृष्णत्व-पतङ्गा देवा, पिरात्-भूत-वक्ष-राक्षस-भिक्ष-भिक्षु-
महोरग-गन्धर्व-तिर्यग्-वासिनः पञ्चविधा ज्योतिष्का देवा, इहस्मिन् चन्द्र
सूर्य शुक्र शनिधरा, राहु भूमेऽसु बुधभ्यान्नारकाश्च तप्तपानीय कनक वर्णा, ये च
महा ज्योतिष्केषु चार चरन्ति, केतयश्च गतिरदयः, अष्टाविंशतिविधा नक्षत्र देव-
गणा, माना संस्वानसंस्थिताश्च तारका, स्थितलक्षणादिभिर्भाविमानमवल
गतच, उपरिचरा उद्धर्वालोकासिनो द्विविधा वैमानिकाश्च देवाः, सौधमैरान-सन
कुमार-माहन्त्र-जम्बोज-ताम्रक-महाशुभ-सहस्राऽऽणत-प्राज्ञताऽऽरणकाऽ-
चमुता कल्पवर विमान वासिनः सुरगणा, मयैवका अनुचरा द्विविधा कम्पातीता
विमानवासिना महर्षिका एतमा सुरवरा । एवञ्चते चतुर्विधा उपरिपद्मोऽपि देवा
ममायन्ते, मजन-वाहन-यान-विमानशयनाऽऽसमानिच, नानाविध वस्त्रमूपयानि
प्रवरप्रहरणानिच, नानामयि पञ्चवर्ण-विष्णव्य भाजनविधि, नानाविध कामरूपा
विदुर्विताऽप्यरो गन्ध सधातान्, क्षीपसमुद्रान्, दिशो, विविधरूपैस्त्वानि, वनकवडान्
पवठारच, माभनगराणिच, आराधनायानकान्तानिच, कृपसरस्तदाक-वापी-दीर्घिका
देवकुल-समाप्रपा-वसत्यासीनिषकुफानि, कीर्तनानि च परितुष्ट परिच्छेदं विपुल दम्ब
सार देवा अपि समुद्रा म वृत्ति न ह्याष्टमुपलभन्ते ।

अथ चर-“तं च पुनः परिच्छेदं) और फिर उस परिच्छेद का (ममायन्ति)
स्वीकार करत हैं (लोभप्रस्ता मन्त्रवरविमायवासिनो) लोभप्रस्ता मन्त्र
और विमानवासी देव (परिगहहृती, परिगह विधि करणपुत्रो) या परिच्छे
दो रूपि वाते हैं, तथा परिगह में इति करने की मुक्ति वाते हैं, (देव निष्ठाया च)
और देवसमूह (असुर-भुजा-गच्छ विपुलदम्बसार-दीव-उद्धर् विधि पन्न-पन्निक)

अणवन्निय-पणवन्निय-इसिवातिय-भूतवाहय-कंदिय-महाकंदिय-कुहंड-पतंगदेवा) जैसे-असुर कुमार १, नागकुमार २, गरुड-सुपर्णकुमार ३, विद्युत्कुमार ४, अग्नि-कुमार ५, द्वीपकुमार ६, उदधिकुमार ७, दिक्कुमार ८, पवनकुमार ९, और स्तुनित कुमार १०, ये दश भवनपति, अणपन्निक १, पणपन्निक २, इषिवादिक ३, भूतवा-दिक ४, क्रन्दित ५, महाक्रन्दित ६, कूष्माण्ड ७, और पतङ्गदेव ८, ये आठ व्यन्तर जाति के देव, (पिसाय-भूय-ज्वस्व-क्वस्व-किनर किंपुरिस महोरग-गन्धर्वाय) और पिशाच १, भूत २, यक्ष ३, राक्षस ४, निन्नर ५, किम्पुरुष ६, महोरग ७, तथा गन्धर्व ८ ये आठ व्यन्तर विशेष [कुत १६ जाति के व्यन्तर देव] (तिरियवासी पंचविहा जोहसिया ४ देवा) और तिर्यग् लोक में रहने वाले पाच प्रकार के ज्यो-तिष्क देव (बहस्सती, चद्र-सूर-सुक्र-सनिच्छरा) बृहस्पति, चन्द्र, सूर्य, शुक्र व शनैश्चर (राहु-धूम-केतु-बुधा य, अंगारका य, तत्त-तवणिज्ज-कणयवण्णा) राहु, धूमकेतु और बुध तथा तपाये हुए लाल सुवर्ण के समान वर्ण वाले अङ्गारक-मङ्गल ग्रहविशेष (जे य गहा जोहसमि चारं चरति) और जो दूसरेग्रह ज्योतिश्चक्र में संचार करते हैं (केतु य गतिरतीया) और केतु, गतिमें प्रसन्नता का अनुभव करने वाले (अट्टावीसतिविहा य नवखत्त देवगणा) और अट्टाईस प्रकार के नक्षत्र देवों का समूह (नाणा-संठाण संठियाओ य तारगाओ) फिर अनेक प्रकार के सत्थान-आकार वाले तारक-तारागण (ठियलेस्सा चारिणो य अविरसाम मंडलगई उव-रिचरा) स्थिर कान्ति वाले-मनुष्य क्षेत्र से बाहर के ज्योतिष्क, और मनुष्य क्षेत्र के भीतर संचार करने वाले जो तिर्यग् लोक के ऊपरी भाग में वर्तमान तथा अविभ्रान्त मंडल-वर्तुलाकार-गति से चलने वाले हैं, (उद्धलोगवासी दुविहा वेमाणिय य देवा) और उद्धर्लोक में बसने वाले दो प्रकार के-कल्पोपपन्न, तथा कल्पातीत-वैमानिक देव हैं । 'कल्पोपपन्न देवों को कहते हैं'-(सोहम्मीसाण-सणकुमार-माहिद बंमलोग-लंतक-महासुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-अचुया कप्पवर वि-माण वासिणो सुरगणा) सौधर्म १, ईशान २, सनत्कुमार ३, माहेन्द्र ४, ब्रह्मलोक ५, लान्तक ६, महाशुक्र ७ सहस्सार ८, आणत ९, पाणत १०, आरण ११ और अच्युतकल्प १२ के प्रधान विमानों में रहने वाले देव समूह (मेवेज्जा अणुत्तरा दुविहा कप्पातीया विमाणवासी) प्रवेयक और अनुत्तर विमानवासी ये दो प्रकार के कल्पानीत 'कल्प-सर्गाश्च-के-वन्धनों से रहित' (महिहिदका वत्तमा सुरवरा)

महर्षि, उत्तम और प्रधान देव हैं (एवं च ते) और इस प्रकार वे (चतुर्विधा उपरिसाविदेवा) चार प्रकार के परिषत् सहित भी देव (भवत्य-वाह्य-आण रिमाय-सपञ्चासयाधिप) मयन, याहन-हार्थी आदि, यान-रथ आदि अथवा घूमने के रिमान और विमान-पुष्पक आदि तथा शर्प्या और आसन-भद्रासन^१ सिंहासन आदि, (नाया विहवत्य भूस्थाना-पवर-पहरखाधिप) और अनेक प्रकार के वक्र, भूस्थ तथा उत्तम प्रहरण-शास्त्रों की (नायामणि-संपद्यन-रिच्य-प मात्यविधि) और नाना मूर्ति की मूर्तियों के पञ्च वर्ग के रिच्य भस्त्रन जात की तथा (नायाविह-कामरुचे, वेधविह-अप्यरगण-सवावे इच्छानुसार अनेक प्रकार के रूपवाले, यज्ञ आदि स विशेषशोभावाली अप्सरा समूह की (दीय-समुदे, विसाओ, विदिसाओ, चेतियाधि, वणसंवे पञ्चसेय क्षीपममुद्र, विरा-यूर्य आदि विशार्थ, ईरान आदि विदिरावें चैत्य-मायिक चैत्य या ऐसे चैत्य स्तूप आदि, यनक्य और पर्वतों की (गाम मगराधिप) ग्राम, नगर और (आरामु^२ अण काण्ठाधिप) आराम स्थान-वगीचा व कानन-जगलों की और (कृन्-सर-तलाग-याविदीहिय-देवकुत्र-सम-पव-वसहि मार्या) कूप, सर-सरोवर तालाव, वापी-वावड़ी, शीर्षि-ऊ-जम्बीवापी, वेवकुत्र-देवत धमा, प्रपा-प्याऊ और वसति इत्यादि (नहुकाई किच्छाणि य) और कीर्तनीय-स्तुतिके लायक धर्मस्थानों की (ममार्वति) मम्मन् भावसे स्वीकार करते हैं (विपुल इवसार परिमाड) विपुल ब्रह्म वाले परिमह की (परिगेयिहता) प्रहय करके (संहंगा देवानि) इन्द्र सहित सब देव भी (न ठिचि नहुकि उवलमंति) न ठिचि और न सम्मोष की ही प्राप्त करत हैं ।

मूल—“अर्च्यं विपुल क्षीमाभिभूत^१ सचा, वासहर-इस्तुगार-वह पव्य-कुडल-रुधगवर-माणुसोत्तर-कालोदचि-खवसं सलिल-दहपति-रतिकर-अंजयकसेल इहिसुइअपातुप्याय^२-कंथयक-विचि विचि-अम कवर-सिहर कूडवासी, वकसार अकम्मयूमिस, सुविमच-भागदेसासु, कम्मयूमिसु सेडविमनरा वाउरंय चकवड्डी, पासुदेवा, बलदेवा, मंडलीया, इस्सरा, उल्लवरा, सेखावती, इम्मा, सेड्डी, रड्डिया, पुरोहिया, कुमारा,

दंडणायगा, माडंविद्या, सत्थवाहा, कोडुविद्या, अमच्चा, एण अन्ने य एव-
माती परिग्गहं संचिणंति, अणंतं असरणं दुरंतं, अधुवमणिच्चं, असासयं
पावकम्मनेम्मं, अवकिरियव्वं, विणासमूलं, वहवंध-परिकिलेस बहुलं,
अणंत संकिलेस कारणं, ते तं घण-कणग-रयण-निचयं पिंडिता चेव
लोमघत्था संसारं अतिवयंति सव्वदुक्ख संनिलयणं । सू० । ३ । १८ ।

छाया-“अत्यन्त विपुल लोभाभिभूत सत्त्वा, वर्षधरेक्षुकार-वृत्त पर्वत-कुण्डल
रुचकवर-मानुषोत्तर-कालोदधि-लवण सलिल-हृदपति-रतिकराऽञ्जनक शैल-
धधिमुखायपानोत्पात-काञ्चन-चित्र-विचित्र-यमक-वर शिखर-कूट वासिनः, वल-
स्काराऽकर्मभूमिषु सुविभक्तभागदेशासु, कर्मभूमिषु येऽपिचनराश्चातुरन्त चक्रवर्तिनो
वासुदेवाः, वलदेवा, माण्डलिकाः, ईश्वरास्तलवराः, सेनापतयः, इभ्या, श्रेष्ठिनो,
रथिकाः, [राष्ट्रिकाः] पुरोहिताः, कुमाराः, दण्डनायकाः, माडगिबकाः, सार्थवाहाः
कौटुम्बिका, अमात्या, एतेऽन्ये चैवमादयः परिग्रहं संचिन्वन्ति-अनन्तमशरणं
दुरन्तमनित्यमशान्तं पापकर्मनेमिकम्, अपकरणीयं, विनाशमूल घधघन्ध परिकले-
शबहुलम्, अनन्त सक्तेराकारणम्, ते तं घन-कनक-रत्ननिचयं-पिण्डयन्तश्चैव
लोभमस्ता. संसारमति पतन्ति सर्व दुःससंनिलयनम् । ३ । १८ ॥

अन्व०-“(अच्चत विपुल लोभाभिभूत सत्ता) अत्यन्त विशाल लोभ से घिरी-
हुई बुद्धि वाले हैं, तथा (वासहर-इक्षुगार-घट्ट पव्वध-कुण्डल रुचगवर भाणुसोत्तर
कालोदधि-लवणसलिल-हृदपति-रतिकर अञ्जनक-सेल-द्विमुह-चपा-तुप्पाय-
कंचणक-चित्त-विचित्त-जमकवर-सिहर कूडवासो) वर्षधर-हिमवान् आदि वर्षधर
पर्वत, इषुकार-, घातकी खंड और पुष्करवर द्वीप के अर्द्धभाग क्रमे वालें दक्षिण
उत्तर तन्मे पर्वत विशेष, वृत्तपर्वत-शब्दापाति आदि गोलाकार पर्वत, कुण्डल-
जम्बुद्वीप से इग्यारहवें कुण्डलनामक द्वीप में कुण्डलाकार के पर्वत, रुचकवर-तेरहवें
रुचक द्वीप के भीतर मण्डलाकार रुचकवर पर्वत, मानुषोत्तर-मनुष्यक्षेत्र
की सीमा बनाने वाले मानुषोत्तर पर्वत, कालोदधिसमुद्र, लवण समुद्र, सलिला-गंगा
आदि महानदियों हृदपति-पद्महृद आदि महाहृद, तथा रतिकर पर्वत-आठवें नन्दीधर
नामक द्वीप के कोण में रहे हुए पार मल्लरी के संस्थान के पर्वत, अञ्जनक पर्वत
नन्दीधर के चक्रवाल में रहे हुए कुण्डलवर्ण के पर्वत विशेष, धधिमुख-अञ्जनक पर्वतों
के पासकी मोलह पुष्करिणी में रहे हुए १६ पर्वत, अवपात पर्वत-जिनपर वैमानिक

देव आकर मनुष्यपुत्र के लिए उतरते हैं, उत्पत्त पर्वत-मवनपति देव जिस स्वामी से ऊपर उठकर मनुष्यपुत्र में जाते हैं, वेते तिमिष्ठ कृत आदि, काश्मिर-उत्तरकुल और देवकुल पुत्र में रहे हुए सुवर्णमय पर्वत, चित्र विभिन्न-निषधपर्वत के पासकी सीतोदा नदी के किनारे चित्रकूट व विभिन्नकूट नामके पर्वत, यमकवर-नीलवान् वर्षवर के समीप की सीतानदीके तटपर रहे हुए २ यमकवर पर्वत, शिखर समुद्रमें रहे हुए गोलूपा आदि पर्वत और कूट-नन्दन पर्वतके कूट आदि इनपर रहने वाले 'ऐसे देव भी प्रति नहीं पाते, फिर अन्य प्राणियों की तो बात ही क्या' ? (बन्धनार अकम्प भूमिस्तु सुविमल मागधेसास्तु कम्पभूमिस्तु) वस्तुकार-विषय के विमल करने वाले चित्रकूट आदि, तथा अकम्पभूमि-हैमवत आदि भोग्य भूमि के क्षेत्रों में तथा अच्युती तरह विभागयुक्त देशवाली-कर्मभूमि-भरत आदि पन्द्रह भूमियों में (वेदविपनरा) और जो भी मनुष्य देवों की तरह रहते हैं 'उत्त मनुष्यों का विशेष प्रकार-(बाहर त बन्धनवस्त्र, वासुदेवा, बलदेवा) बाह्य और अन्त वाले पद्मखण्ड भूमि के स्वामी बन्धनवर्ती, बलदेव, वासुदेव (मंडलीया) माण्डलिक-मण्डलके अधिपति-महाराजा (इक्ष्वाकु, उल्लवरा, सेखावती, इक्ष्वा, सेद्वी, रद्विषा) ईश्वर-युवराज आदि या भौगिक, उल्लवरा-शिरपर सुवर्णपद्म को बांधे हुए राजस्थानीय, सेनापति-सैन्य के नायक, इक्ष्वा-हामी की हक देने जितने विशाल पन राशि के स्वामी, सेद्वी-नीलेश्वर से अर्चकृत चिह्न को मस्तक पर धारण करने वाले सेद्वी-सेठ-राष्ट्रिक-राष्ट्र-देशकी चिन्ता करने वाले अर्थात् राष्ट्र की उन्नति और अवनति के विचार में नियुक्त अधिकारी विशेष (पुरोहिता, कुमारा, बंधुव्याग्रा, मांडविना, सत्यदाश, कोहुविना, अमरा) पुरोहित शान्तिर्कर्म आदि करने वाले, कुमार-युवराज, बण्ड नायक-कोठवाल आदि, मांडविक-छोटे राजा, धर्मवत्-बहुत से लोगों को साथ लेकर चलने वाले व्यापारी, कीदुम्भिक-ग्राम के मुख्य होकर जो सेवक हैं, अर्थात् राज्याभिषेक मुख्य पुरुष, अमात्य-महाम (ए ए अन्ने य एवमारी) ये पूर्व कहे हुए विशिष्टलोक और इस प्रकार के दूसरे-इत्यादि मनुष्य (परिग्रही संधिर्गति) परिग्रह का सम्बन्ध करते हैं (अर्थात् असंख्य दुरंत अप्रुवमणिर्गर्भ असाध्य) जो परिग्रह अन्तः-परिग्रह रहित, अशरत्-दुःखसे वृत्ताने में असमर्थ, दुरन्त-दुःखमय अन्तर्ज्ञान, अमूर्ध-निष्पन्नता रहित अनित्य-अस्थिर और प्रतिक्षण विमारा होने से अराध्य है (पञ्चकर्मनेर्म अयकिरियर्भ, विद्यासा (विमाल) मूर्ध, बह्वर्ध परिग्रहेम

दुलं, अणंत सकिलेसकारणं) पाप कर्म का मूल, ज्ञानियों के लिये त्यागने योग्य, विशाल बहुत गम्भीर या विनाश के मूल वाला, परजीवों के मारने बाधने और क्लेश देने की प्रधानता वाला याने परिग्रह के कारण परजीवों को अधिक मात्रा में वध बन्धन और परित्याग होता है, चित्त के अपरिमित क्लेश का कारण है (ते तं धण-कण-रयण-निचयं) इस प्रकार के उस धन-सुवर्ण तथा रत्न के समूह को वे देव आदि (पिंडिता चैव लोभघत्या) सञ्चय करते हुए ही लोभ से ग्रसे गये (सत्त्वदुक्ख संनिलयणं ससारं अतिवर्धति) सब प्रकार के दुःखों के चरुरूप ससार में जा पड़ते हैं।

भावार्थ—पूर्वोक्त परिग्रह को लोभ के चशीभूत भवनपति आदि देव रवीकार करते हैं। देवों के विविध प्रकार और परिग्रह में आने वाले पदार्थों का वर्णन सहज है। अकर्मभूमि और कर्मभूमि के निवासो मानवों में कर्मभूमि के मनुष्य ही अधिक परिग्रह वाले हैं। इसलिए उनका विशेष वर्णन करते हैं—चक्रवर्त्ता आदि परिग्रह का सञ्चय करते हैं। यह परिग्रह अनन्त अशरण यावत् अन्ततः दुःखों का कारण है। लोभ के अधीन वे देव आदि इसका सञ्चय करते हुए ही दुःखमय ससार में गिर जाते हैं। सू० ३।१८।

परिग्रह का सञ्चय जिस प्रकार किया जाता है उसका वर्णन करते हैं—

मूल—“परिग्गहस्स य अट्ठाए सिप्पसयं सिबखण बहुजणो, कलाओ य बाउत्तरि^१ सुनिण्णाओ लेहाइयाओ सउण रुयावसाणाओ, चउसट्ठि^२ च महिलागुणे रतिजणणे, सिप्पसेवं, असि मसि किसि वाणिज्जं, ववहारं अत्थ-सत्थ-इसत्थ^३-च्छरुगयं, विविहाओ य जोग जुज्जणाओ, अन्नेसु एवमादिएसु बहसु कारणसरसु जावज्जीरं नडिज्जए, संचिणंति मंदबुद्धी परिग्गहस्सेव य अट्ठाए करंति पाणाण वहकरणं, अलिय नियडि साइ सपओगे, परदव्व असिज्जा, सपरिदार^३ अभिगमणा सेवणाए आयास विसरणं कलह मंडण वेराणि य, अवभाणण विभाणणाओ, इच्छा महिच्छ-प्पिवास सत्तवतिसिया, तएहगेहिलोभघत्या, अत्ताणा, अणिग्गहिया करंति कोहमाण मायालोभे, अकिच्चणिज्जे परिग्गहे, चैव होंति नियमा सत्ता, दंडा, य गारवा य, कसाया, सत्ता य, कामगुण, अएहगा य, इंदियल्लेसा-

ओ, मयख मपभागा, मसिचासिचमीसगाईं दध्याइ अयासकाइ इच्छति
परिषेत्तु, सदेवमनुयासुरमिलोए लोमपरिमहो जिणवरहि मसिओ,
नत्थिणरिसा पासो पडिबधो अत्थि सध्वजीवार्यं सध्वलोए । सू० ४।१६॥

छाया—“परिग्रहस्य आर्याय शिल्परातं शिष्यतेषुज्जन, कलाश्च शासतरी मुनि
पुण्या लेखादिना शकुनकतायमाना (गणित प्रधाना) चतुपक्षीय महिमागुणान्
रतिज्जनकान्, शिल्पसेवाय्, अस्मिपिकुपिबाणिस्यं, व्यवहारमर्भरान्पुशास्त्रत्वम्,
प्रगट्, विविधाश्च योग्योचना अन्येष्वेवमादिषु बहुषु कारयस्तेषु यावज्जीवम्
नृत्यन्ति (गन्ध) सञ्चिन्वन्ति मन्त्रपुत्रय परिग्रहस्यैवाध्यायकुर्वन्ति प्राणिनां वष
करगम्, अक्षीक-निष्ठति-साति सम्प्रयोगे परद्रव्याऽभिज्ञा सपरद्वाराभिमानाऽ-
संपनना आयासविसूरणा कलाह भायजनवैराखिच, अवमानन विमानना इच्छा
महेच्छा पिपासा सततवृषिता, वृष्णागृक्षितामप्रस्ता, अत्राशा, अनिगृहीता कुर्व
न्ति क्षोभमान मायालोभान् अकीर्तनीयान्, परिग्रहे चैव भवन्ति निषमा (१),
शल्यानि, वृद्धाश्च, गौरवानिच, कयाया, सहाय्य, कामगुणा आलम्बाश्च, इन्द्रियसेवमा,
रायनसम्प्रयोगा, सविताऽपिच-मित्रकापीनि द्रव्याणि, अनन्तकानीच्छन्ति परिग्र
हीतुं सदेवमनुयाऽसुरेलोके लोमपरिमहो जिनवरैर्मथितो, नाऽऽतीहरा पारा प्रतिबन्धो
ऽस्ति सर्वजीवानां सर्वलोके ॥ सू० ४।१६ ॥

अन्व०—“(परिग्रहस्य य अट्टाप) और परिग्रह के लिये (बहुजण्येसिप्य सर्व
मिक्खए) बहुत स लोग सैकड़ों शिल्प सीखते हैं (कलाओ य बावत्तरि मुनि
पुण्याओ लेखादिनाओ सत्तखदवावसायाओ गणियप्पहायाओ) और अतिशय
निपुण बहुरर कलायें जिनमें लक्षणकला आदि-प्रारम्भिक है, शकुनदत्त-पक्षियों के
शास्त्रज्ञान-जडां अन्तिम और गणित कला जहां प्रधान है ऐसी (चतुसट्ठिच महिमा
गुणे रतिज्जणणे) और बी के पौसठ, गुण या कलायें ओ रति-अनुरत्ता पैदा करने
पाते हैं, उन्हें मौखिक हैं (सिण्णसव) शिल्प पूर्णक संवा (अस्मि पस्मि किसि वाणिस्यं,
वपहारं, अत्थ सत्थ ईसत्थ च्छदप्पगवं) अस्मि-लज्जादिशाम्पायस, मपी-क्षिपि पि
ज्ञान कपि-सेटी का कर्म और वाणिस्य तथा व्यवहार को, अर्भशास्त्र-राजनीति
आदि श्पु-अद्य-धनुर्वेद शास्त्र छुरिका आदि मुक्ति में ग्रहण करने का उपाय (विवि-
हाओ य सांग जु अयाओ) और अनेक प्रकार के बरीकरण आदि योग रचना को
परिग्रह के लिये शोक सीखत हैं, (अन्तेसु पवमादिप्पु बहुसु कारयसप्पु यावज्जीवम्

नडिज्जा) इस प्रकार के अन्य इत्यादि बहुत से-कारणशत-परिमह के सैकड़ोंहेतु-
 ओ-में प्रवृत्ति करते हुए जीवन पर्यन्त लोक नृत्य करते हैं (मचिण्ति मदबुद्धी)
 मन्दबुद्धि लोक परिग्रह का सञ्चय करते हैं (परिग्रहस्तेव य अट्टाण) और परिग्रह
 के मतलब से ही (पाणाण वहकरण करंति) जीवों की हिंसा के कार्य करते हैं
 (अलिय नियाडि साइसंपओगे परव्वध अभिज्जा) भूठ, आदरपूर्वक दूसरे को
 ठगना, और वस्तु में मिलावट करके उसको उत्कृष्ट घताना, तथा परव्वध में लोभ
 करना (सपरदार अभिगमणा संबणाए आयासविसूरणं) खदार गमन में शरीर
 और मनके खेद को तथा पर ओ के मेघन में मानसिक पीडा को प्राप्त करते हैं
 (कलह भडण वेराणि य अघमाणणयिमाणणाओ) वचन से कलह, शरीर से
 भाडन-लडाई तथा वैर और अपमान-विनय भद्र एव कदर्थनाओ को (इच्छा
 महिच्छपिवास सतत तिसिया तण्हेहि लोभघत्ता) सामान्य इच्छा और चक्र-
 वर्ती के समान बड़ी इच्छा रूप पिपासा-प्यास से निरन्तर तृप्ता वाले, तथा तृप्ता
 गृद्धि अप्राप्त अर्थ की अभिलाषा और लोभ से प्रसे-गये (अत्ताणा, अणिग्गहिया
 कंति कोहमाण माया लोभे) ब्राण रहित और इन्द्रिय आदिपर नियम नहीं रखने
 वाले क्रोध मान माया एव लोभरूप दुर्भाव को करते हैं (अकित्तिणिज्जे) जो दुर्भाव
 निन्दा के कारण हैं (परिगहे चेव नियमा सज्जा दंडा य गारवा य) और परिग्रह में
 भी (ही) निश्चय से शल्य मायागल्य आदि और दूढ-मनोदूढ आदि और गारव-
 ऋद्धि, रस तथा सातारूप तीन गारव और (कलावा सज्जा य काम गुण अएहगाय
 इंधियलेमाओ हंति) क्रोध आदि चार कपाय, आहारसज्जा आदि चार मत्तायें
 और शब्दरूप आदि पांच काम गुण, तथा पांच आस्रव, श्रोत्र आदि पांच अट्ठयत्त
 इन्द्रियो, कृष्ण आदि अशुभ लेश्यायें होते हैं (सयण सपओगा) स्वजनो के सयोग
 तथा (सचित्ताचित्तमीसगाइ अणत्तकाइ दव्वाइ परिणेतुं इच्छति) मचित्त अचित्त
 और मिश्र ऐसे अनन्त द्रव्यों को ग्रहण करना चाहते हैं (सदेव मणुया सुस्मितोण)
 देव-वैमानिक देवता मनुष्या तथा असुर सहित लोक-ससार में (लोभ परिग्रहो
 जिणवरेहि मणिओ) लोभ से परिग्रह या लोभरूप परिग्रह तीर्थङ्करों ने कहा है
 (नत्थि एरिखो पासो पडिबधो) ऐसा पाश अन्य नहीं है (पडिबधो अत्थि सव्वजी
 वाणं सव्वलोण) सब जीवों के लिये यह परिग्रह देवमनुष्य आदि सब लोक में
 मोहबन्ध का प्रमुख स्थान है। ४।१६॥

मातार्थ—“परिग्रह के लिए ही बहुत से आरामी सैबकों प्रकार की शिल्पशिक्षा ग्रहण करते हैं तथा ७२ वृत्तर प्रकार की कलाएँ जिनमें सुन्दर लेखन आदि मिश्रित हैं, पक्षियों का राज्य ज्ञान और गणित कला एवं चौंसठ प्रकार के महिलागुण जो अनुरागात्पादक हैं उनको सीखते हैं। तटवार, रुक्मन, खेती, व्यापार, लोकव्यवहार अर्थशास्त्र याने राजनीति, धनुर्वेद, वशीकरण आदि बांग रचना को मा कोण परिग्रह के लिए ही सीखते तथा यावज्जीवन इसीमें रमते रहते हैं।

परिग्रह के लिए ही जीवहिंसा, झूठ, परवचन, सम्मिश्रण, पदग्रहण में कोम आदि दूषित कार्यों में डूबने रहते हैं। परिग्रही को सब और परवार में भी शान्ति नहीं मिलती। वह धन से बढ़ते, शरीर से बढ़ते, दया निश्चक और और पितृ मान की इच्छा को बनाये रखता है। साधारण धनी स खरब ब्रह्मर्षीपन की इच्छा से वह स्वतः सन्तुष्ट रहता है तथा अग्रस्त अर्थ की कमिलाया उसके दिल में जगी रहती है। इस तरह कवशेन्द्रिय बनकर वह क्रोध, मान, माया, एवं कामरूप दुर्मात्मनाओं का शिकार बना रहता है जो निर्विनीय हैं। परिग्रह में ही शस्त्र और मनोवृत्त आदि तीन वृत्त, अग्नि, वायु तथा सुखानुभवरूप गात्र (गौरव) काय आदि चार कपाय, आहार आदि चार रक्षाएँ और शस्त्ररूप आदि पांच काम गुण तथा पांच आसव, भोग आदि पांच असम्यक्त इन्द्रियाँ तथा कृष्ण आदि अष्टम नेत्र्याएँ होती हैं। परिग्रही, सचित्त, अचित्त और मिश्र रूप से अनन्त ब्रह्मों को सदा ग्रहण करने की इच्छा रखते हैं। सब जीवों के लिए मनुष्य तथा असुर लोक में दोम परिग्रह के समान दूसरा कोई बचन नहीं है यही मोह बन्ध का प्रमुख स्थान है—ऐसा ब्रह्मचर्यों ने कहा है। ४।१६॥

मूल—“परलोगमि य नद्वा, समपदिद्धा, भय्या मोह मोहियमती, तिमि संघकारे वसथा र सुद्धमयादरेसु, पज्जत्तमपज्जत्तग एव जाव परियद्व ति, दीहमद्व जीवा लोमवससनिदिद्धा। एसोसो परिग्गहस्स फलदिवाओ इहलो-
इओ परलोइओ अप्पसुओ बहुदुक्खो, महम्मओ, बहुरयप्पगाढो, ठारुओ कम्मो, असाओ वाससदस्सेदि सुव्वह, नयअपेत्तिआ अन्यिदु मोक्खाप्ति,
एव माहंसु नायकुल्लनदयो महप्पाखिखोउ धीरवर नाम वेज्जो, फहेसी प परिग्गहस्स फल विपारग। एमोमो परिग्गहो पयमोउ नियमा नायामयि

कण्ण रयणमहरिह एवं जाव इमस्स मोक्खवर मोत्तिमग्गस्स फलिहभूयो ।
चरिमं अधम्मदारं समत्त । सू० ५।२०॥

छाया—“परलोके च नष्टारत्तम. प्रविष्टा, महासोह मोहितमत्तरत्तमिस्त्रान्धकारे
त्रसस्थावर सूचमयादरेषु पर्याप्तोऽपर्याप्तिकेयु, एवंयावत्परिबर्तन्ते [पर्यटन्ति] दीर्घ-
मध्वान जीना लोभवशसंनिविष्टा । एषस परिग्रहस्यफलविपाक पेहिलौकिकः
पारलौकिकोऽल्पसुखो बहुदुःखो महाभयो बहुरज प्रगल्भो, दारुण कर्कशोऽसातो
वर्षसहस्रेभ्युच्यते नाऽवेदप्रित्वाऽस्ति हि मोक्षमति, एवमाख्यातवान् ज्ञातकूलनन्दनो
महात्मा जितस्तु वीरवर नामधेय, कथयिष्यति च परिग्रहस्य फलविपाकम् । एषस-परि-
ग्रह पञ्चमस्तु निम्नेन (मात्. नानामणि कनकरत्न महार्ह, एवयावदय मोक्षवर
मौक्तिक मार्गस्य परिभूतं चरममधमद्वार समाप्तम् ॥ सू० ५।२० ॥

अन्य—“(परलोकमि य नट्टात्तमपविट्ठा) परलोक और इसलोक में सन्मार्ग से च्युत
होने के कारण नष्ट तथा अज्ञानरूप अन्धकार में निमग्न हैं (महयासोह मोहियमती)
अतिशय मोह से मोहित मतिवाले जीव (रिमिसंधकारे तत्स्थावर सुहमवादरेसु
पज्जत्तमपज्जत्तग एव जाव रात्रि की तरह अज्ञानरूप अन्धकार में त्रस, रथावर,
सूक्ष्म और बादर स्थानों में पर्याप्त तथा अपर्याप्त रूप से इस प्रकार यावत् लोभवस
संनिविष्टा जीवा दीहमद्ध परियट्ठति, लोभ के कारण परिग्रह में रुके हुए जीव दीर्घ-
लम्बे मार्ग धोते ससार में परिभ्रमण करते हैं (ऐसोसो परिग्रहस्स फल विबागो)
यह वह परिग्रह का फलस्वरूप विपाक (इहलोहयो, परलोहयो, अप्परुहो, बहुदुःखो,
महम्मज्जो, बहुरयप्पग दो, दारुणो, कक्कसो) इसलोक सम्बन्धी, तथा परलोक सम्बन्धी
अल्पसुख और बहुत दुःख वाला, महाभय को उत्पन्न करने वाला, बर्मेज की
अधिकता से अत्यन्त गाढ़, दारुण और कर्कश—कठोर है (असाओ वाससहस्सेहि
मुचइ दुःखरूप वह परिणाम हजारों वर्षों से छूटता है (न अब्बेहिता-अत्थिहुमो-
क्खोति) बिना भोगे उस कटु फल से मोक्ष नहीं होता है (एवमाइसु नायकुल
नंदणो महापा जिणोउ वीरवर नाम धेज्जो) इस प्रकार ज्ञात कूल नन्दन महात्मा
महावीर नाम के तीर्थङ्कर ने कहा है (कहेसी य परिग्रहस्सफल विबाग) और परि
ग्रह के फलरूप विपाक को कहेगा (ऐसोसो परिग्रहो पचसो उ नियमा) वह [वैसा]
यह परिग्रह पाचवा निग्रहसे अधर्मद्वार है (नाणा मणि कण्ण रयण महरिह एवं
जाव इमस्स मोक्खवर मोत्तिमग्गस्स फलिह भूयो) अनेक प्रकार के मणि सुवर्ण रत्न

आदि मूल्यवान् पारिव्यसम्पत्ति और इस प्रकार जगत् स्थावर अन्य सम्पत्ति रूप परिग्रह इस निर्लोभितारूप मोक्ष के प्रधान मार्ग का आगलक मैसा अवराध करते वाला है (परिग्रह अध्यात्मद्वार समस्त) (अन्तिम अध्यात्मद्वार पूर्ण हुआ ॥ सू० ११०० ॥

भावार्थ—परिग्रह के कारण लोक इस संसार में वैर विरोध आदि से और परलोक में दुर्गति—गमन से नष्ट होते हैं । मोक्ष से मुक्त मति वाले प्राणी त्रमस्यावर आदि पर्वानों को अनुभव करते हुए यावत् फिर काल तक संसार में परिभ्रमण करते हैं । परिग्रह के इस फल विपाक को प्रभु महावीर ने कहा है आदि । यह परिग्रह नियम से पांचवा अध्यात्मद्वार है यावत् मोक्षमार्ग का विरोधी है । इस प्रकार पांचवा अध्यात्मद्वार पूर्ण हुआ ॥ सू० ११२० ॥

हिंसा आदि पांचो अध्यात्मद्वार का निम्न गाथा से निगमन करते हैं—
मू०—एहि पचहि असवरोहि, रयमादिशित्तु अणुसमयं ।

चउच्चिह गति (इ) परतं, अणुपरिपट्ट ति संसारं ॥ १ ॥

आया—एतै पञ्चभिरवरोहि,—रज आशित्वाज्जुसमयम् ।

चतुर्विंशतिपर्यन्त,—अनुपरिवर्तन्ते संसारम् ॥ १ ॥

मू०—सम्भर्गं पचस्वदि, काहेति अर्थात् अकपपुण्या ।

जे य क सुखंति धम्मं, मोक्षं य वे पमायंति ॥ ॥

आया—सर्वांगतिप्रत्कन्वात्, करिष्यन्त्यनन्तानन्तपुण्या ।

वे य न शृण्वन्ति धम्मं, मुत्वा य वे पमायन्ति ॥ २ ॥

मू०—“अणुसिद्धि पि बहुविधं, मिच्छादिद्वीधरा [य जेयरा] ‘अबुद्धीया ।

वदनिकाइयकम्मा, सुखे (य) ति धम्मं न य करेति ॥ ३ ॥

आया—अनुरिष्टमपि बहुविधं, मिच्छादृष्टयोनरा अबुद्धिका ।

वदनिकापिसकम्माय शृण्वन्ति धम्मं य न शृण्वन्ति ॥ २ ॥

मू०—किं सक्का काठ जे, खं जेय्यह ओसाई मुहा पाठ ।

जिखवपय्यं गुणमधु (दु) रं, विरेपयं सम्भदुक्खार्यं ॥ ४ ॥

आया—किं शक्यं कथं वे, धन्नेय्यवोपयं मुहा पाठम् ।

जिन वपयं गुणमधुदं, विरेपयं सर्वदुक्खानाम् ॥ ४ ॥

मू०-पंचेव य उज्जिमऊणं, पंचेव य रक्खिऊण भावेण ।

कम्मरय विप्पमुक्का, सिद्धिवर मणुत्तरं जंति (चिवेमि) ॥ ५ ॥

छाया-पञ्चैव चोन्मित्वा, पञ्चैव च रक्षित्वा भावेन ।

कर्मरजो विप्रमुक्ता. सिद्धिवर मनुत्तरं यान्ति ॥ ५ ॥ इति ब्रवीमि ॥

* इति पंचासवद्वारा समप्ता *

अन्वयार्थ-“(एहं पंचं असवरोहं) पूर्वाक्त इन पांच असंवर-आसवों से (अणुसमयं) प्रति समय (रयमादिणुत्तु) जीवस्वरूप को रंगने के कारण ज्ञाना-धरण आदि कर्मरज का सञ्चय करके (चण्विहगतिपेरंतं संसारं) चार प्रकार की गति रूप अन्त वाले संसार में (अणुपरियट्ठति) पर्यटन करते हैं । १ ।

(अकयपुयणाजे) पुण्य से हीन जो प्राणी है ‘वे’ (अणुतण्) अनन्त (सव्वगई) पक्खंदे) देव आदि सब गतियों के अनन्त गमनों को (काहेति) करेंगे, कौन ? (जे य ण सुणति धम्मं) जो लोग धर्मको नहीं सुनते और (जे य) जोभी (सोऊण) सुनकर (पमायति) आचरण में प्रमाद करते हैं ॥ २ ॥

(मिच्छादिद्वीअबुद्धीयानरा) मिथ्या दृष्टिवाले अज्ञानी नर (बद्धनिकाइयकम्मा) आत्मप्रदेश में निकाचित कर्मों को बाधने वाले (अणुसिट्ठं पि बहुविह) गुरुजनों से उपदिष्ट बहुत प्रकार के (धम्म) धर्म को (सुणोति न य करोति) सुनते हैं परन्तु उसका आचरण नहीं करते हैं ॥ ३ ॥

(मुहा) निस्स्वार्थबुद्धि से दिये गये (जिणवयणं ओसहं) जिनवचन रूप औषध को (ज येच्छह पाठं) जिसलियेतुमपीना नहीं चाहते हो इसलिये (गुणमहुर) मूलोत्तर गुण से मधुर तथा (सव्वदुक्खाण विरेयणं) सब दुःखों का विरेचन यह जिनवचन रूप औषध (किं सक्का काठं जे) क्या कर सकता है ? ॥ ४ ॥

(पचेवयउज्जिमऊणं) हिंसा आदि पाच आसवों को छोड़कर और (पचेवभावेण रक्खिऊण) अहिंसा आदि पाचो सवरो का भाव से पालन करके (कम्मरय विप्प-

मुक्ता) कर्मरूप से सर्वथा मुक्त हुए जीव (सिद्धिपरमाणुत्तरं जति) सम्पूर्ण कर्मों के बन्ध से मिश्रने योग्य उत्तम और सर्वश्रेष्ठ सिद्धि को प्राप्त करते हैं ॥ ५ ॥ सर्वथा कर्मों से मुक्त हुए जीव उत्तम सिद्धि गति को पाते हैं ।

भाषा—“इन पाँच भाषाओं का सार इसप्रकार है—इन वर्णितरूप वाले पाँच आत्मों में प्रतिमग्न कर्म परमाणुओं का सञ्चय करके खाव संसार में पर्यटन करते हैं । जो पुण्यहीनप्राणी धर्म की नहीं सुनते, अथवा सुनकर धर्ममें प्रमाद करते हैं आचरण में नहीं लाते, व ह्येव आदि गतिधर्मों में अनन्त बार जन्म ग्रहण करते हैं । मिश्रादि अज्ञानीजीव प्राकृत गाढ अशुभ कर्म के बन्ध से गुठ के उपवेश किये गये बहुत प्रकार के धर्म का भ्रमण करके भी आचरण में नहीं लाते हैं ॥ ३ ॥ निस्सह भाव से दिये गये अति बचन हन औषध को जो तुम पीना भी नहीं चाहते, तो सब दुःखों का नारा करने वाला और गुणा से सभुर यह औषध क्या कर सकता है ? द्रिष्टा आदि पाँच आत्मों का त्याग कर और अद्रिष्टा सत्य आदि संशयो का पालन करके सर्वथा कर्मों से निमुक्त हुए जीव उत्तम सिद्धि गति को पाते हैं ॥ १-५ ॥

❀ इति अधर्माद्वार सम्पूर्णं हुष ❀



श्री प्रञ्जल्याकरणसूत्रस्य

परिशिष्टम्

विशिष्टपदं टिप्पणानि

* उत्तर खण्ड *

ॐ प्रथमं संवर द्वारम् ॐ

सम्बन्ध-“पूर्व खण्ड मे कर्मबन्ध के कारण भूत हिंसा, भूठ आदि पांच आसुर्यों का वर्णन किया। यहाँ उनके विपरीत अहिंसा, सत्य आदि पांच संवर जो कर्म प्रघाह को रोकने के कारण हैं, उनका वर्णन किया जायगा।

सवराध्ययन का उपक्रम करते हुए सर्व प्रथम सूत्रकार संग्रहणी गाथाओं से प्रतिज्ञा प्रकट करते हैं, जो इस प्रकार है—

मू०—“जंबू !—एत्तो संवरदाराइं—पंच वोच्छामि आणुपुन्वीए ।
जह भणियाणि भगवया, सव्वदुहविमोक्खण्णद्वाए ॥ १ ॥
पढमं होइ अहिंसा, वित्तिर्यं सव्ववयणंतिपन्नत्तं ।
दत्तमणुत्ताय संवरो य, बंभचेरमपरिग्गहत्तं च ॥ २ ॥
तत्थ पढमं अहिंसा, तसथावर सव्वभूयस्सेमकरी ।
तीसे सभावणाओ (ए) किंचीवोच्छं गुणुद्देसं ॥ ३ ॥

छाया—‘हे जम्बू । इत संवरद्वाराणि पञ्चवक्ष्यामि आनुपुन्वी ।
यथा भणितानि भगवता सर्वदुःख विमोक्षणार्थाय ॥ १ ॥
प्रथमं भवत्यहिंसा, द्वितीयं सत्यवचनमिति प्रज्ञातम् ।
दत्तं मनुजानां सवरश्च, ब्रह्मचर्यमपरिग्रहत्वञ्च ॥ २ ॥
तत्र प्रथमाऽहिंसा, त्रसस्थावर सर्वभूत क्षेमकरी ।
तस्या सभावनाया किञ्चिद्वक्ष्यामि गुणोद्देश्यम् ॥ ३ ॥

१ प्रथम संवराभ्ययन का प्रतिष्ठासूत्र-

अन्वयाय—“(अं) इ अं (एतो) आस्रवहार के बाद अब वहाँ से (आणु पुत्रीण पंथ संवरद्वारा) बोध्यमि) पहल दूसरे आदि क्रम से पाँच संवरद्वारे-अर्थात् कर्म निरोध के उपायों-को कर्तुंगा (भगवया जह भणियाणि) भगवान् में जैसे इन संवराभ्ययनों को कहे हैं (सम्बद्ध विमोक्षणादृष्टाए) सब दुस्त्रियों में छुट काटा पान के लिये, मैं इनको कर्तुंगा, पाँचों के नाम—(पञ्च) प्रथम (अहिंसा) अहिंसारूप संवर (होइ) हाँठा है (वित्तिमु, दूसरा, सञ्चययति) सत्य वचनरूप (वत्सल्यमाय संवरो य) और हाँठा स दिया गया य आह्ला प्राप्त अरुन आदि का प्रथम तीसरा संवर (पञ्चत्तं) कहा गया है (वर्गभरमपरिमहत्तं य) अक्षय्य और अपरिमह चतुर्थ तथा पञ्चम संवर है।

(तस्य) अहिंसा आदि इन पाँच संवरों में (पञ्च अहिंसा) प्रथम संवर अहिंसा है, जो—(तस्यावर सत्य मय अमकरी) प्रसथावररूप सब प्राप्तिओं का कर्म करने वाली है (समावणाओतोसे) पाँच भावनाओं से मुक्त उस अहिंसा के (किंभी गुणुहेम बोध्यं) कुछ-अल्पमात्र-गुण वर्णन या गुण भाग को कर्तुंगा।

माह—“प्रथम गाथा में—आस्रवों के बाद भगवान् के कथनानुसार सर्व दुस्त्रियों के विनाशार्थ मैं संवर द्वारों को कर्तुंगा। इस प्रतिष्ठा वाक्य से आस्रव संवर का सम्बन्ध और संवरों का कथनरूप अभिव्यक्त तथा दुस्त्रिनारूप हेतु बताया गया है। जिससे सम्बन्ध, अभिव्यक्त और प्रयोजन की स्पष्टता हो जाती है।

दूसरी गाथा में—अहिंसा १ सत्य २ वचनानुसार ३ प्रथम ४ और अपरिमह ५ ऐसे पाँचों संवरों का नाम रूपसे परिचय दिया गया है।

तीसरी गाथा में—कहा गया है कि प्रस स्थावररूप जीवमात्र का केमविधान करने वाली अहिंसा प्रथम संवर है। भावनामुक्त उस अहिंसा के कुछ गुण भाग का कथन करूंगा।

अभ्ययन के प्रारम्भ में शास्त्रकार पाँचों संवरों के प्रकीर्तन पूर्वक अहिंसा का स्वरूप कहते हैं—

मूल—“ताणि उ इमाणि सुख्य ! महज्जयाइ, 'लोकहिय सम्बयाइ, सुपसागर देसियाइ, तव संजम महत्तयाइ, सीलगुणवरज्जयाइ, सञ्जन्त-

१ क्षोधिपिण्ड ज्जयाइ (वा०)

चत्रयाई नरगतिरिय मणुय देवगति-विवज्जकाई, सव्वजिणसासणगाई, कम्मरयविदारगाई, भवसयविणासणकाई, दुहसय विमोयणकाई, सुहसय पवचणकाई, कापुरिस दुरुत्तराई, सप्पुरिस निसेवियाई, निव्वाण गमण मग्ग सग्गपणायगाई, संवरदाराई पंच कहियाणि उ भगवया ।

छाया-“तानित्विमानि सुव्रत । महाव्रतानि, लोकहितसद्व्रतानि, श्रुतसागर देशितानि, तप सयममहाव्रतानि, शीलगुणवरव्रतानि, नारकतिर्यङ् मनुजदेवगति विवर्जकानि, सर्वजिन शासनकानि, कर्मरजो विदारकाणि, भवशत विनाशकानि, दुःखशतविमोचकानि, सुखशतप्रवर्तकानि, कापुरुष दुरुत्तरकाणि, सत्पुरुष निपेक्षितानि, निर्वाणगमनमार्गस्वर्गप्रणायकानि, सवरद्वाराणि पञ्च कथितानि तु भगवता ।

अन्व-“(सुव्रत ।) हे सुव्रतमुने ! (ताणि उ इमाणि महव्वयाणि) पूर्व कहे गये थे अहिंसा आदि, ये महाव्रत-हैं (लोकहित सव्वयाइ मनुसागर वेसियाइ) संसार में धैर्य देने वाले या धित की शान्ति रखने वाले सद्व्रत शास्त्र सागर में दिखाये गये हैं, (तव सज्जम महव्वयाइ) अन्तर्धान आदि महातप और सयम जिनमें नष्ट नहीं होते अर्थात् तप व सयम के रक्षण करने वाले (शीलगुण वरव्वयाइ) शील और उत्तमगुणों के समूह वाले (सव्वज्जवव्वयाइ) सत्य एवं सरलता प्रधान व्रत (नरग-तिरिय मणुय-देवगति-विवज्जकाइ) नरक, तिर्यङ्, मनुष्य और देवगतिरूप संसार का विवर्जन-उच्छेद-करने वाले (सव्वजिण सासणगाइ) सब तीर्थङ्करों से कहे गये होने से शास्त्ररूप (कम्मरय-विदारगाइ) कर्मरज के विदारण करने वाले (भवसय विणासणकाइ, दुहसय विमोयणकाई) सैकड़ों भवों को मिटाने वाले इसीलिये-सैकड़ों दुःखों से छुड़ाने वाले (सुहसय-पवचणकाइ) और सैकड़ों सुखों को मिलाने वाले हैं- (कापुरिसदुरुत्तराइ, सप्पुरिसनिसेवियाइ) कायर पुरुषों के द्वारा दुःख से पार करने योग्य और सत्पुरुषों से सेवन किये गये हैं (निव्वाणगमणमग्ग सग्गपणायगाइ) निर्वाण गमन में मार्ग के समान तथा स्वर्ग में ले जाने वाले (संवरदाराइ पंच कहियाणि उ भगवया) ऐसे पांच संवर द्वारों को भगवान ने कहे हैं ।

मूल-“तत्थ पढं अहिंसा जासा सदेवमणुयासुररसलोगस्स भवति दीवो, ताणं, सरणं, गती पइहा १ निव्वाणं २ निव्वुई ३ समाही ४ सत्ती

५ किंची ६ कृती, ७ रती य ८ विरती य ९ सुयग १० तिची ११ दया १२
 विमुक्ती १३ खती १४ सम्मचाराहणा १५ मर्हती १६ बोही १७ मुदी
 १८ धिती १९ समिद्धी २० रिद्धी २१ विद्धी २२ ठिती २३ पुद्धी २४ नदा
 २५ महा २६ विमुद्धी २७ लद्धी २८ विसिद्धिदिद्धी २९ कम्पार्थ ३० मंगलं
 ३१ पमोओ ३२ विभूती ३३ रक्खा ३४ सिद्धावासी ३५ अखासवो
 ३६ केवलीण्डाख ३७ सिर्व ३८ समिद्धि ३९ सील(खं) ४० संजमो ४१ चिय
 सील 'परिवरो ४२ सवरो ४३ य गुत्ती ४४ ववसाओ ४५ उत्सओ
 ४६ जघा ४७ आयवर्ण ४८ जतण ४९ मय्यमावो ५० अस्तासी ५१ वी
 सासी ५२ अमओ ५३ सम्बस्सधि अमाघाओ ५४ ओक्खपविचा ५५
 खती ५६ पूया ५७ विमल ५८ पमासा ५९ य निम्मलतर ६० चि,
 एवमादीणि निययगुण निम्मियाइ पज्जवनामाणि होति अहिंसाए भगवती
 ए । सूत्रम् १ । २१ ॥

छाया-“तत्र प्रथमं अहिंसा नामा सर्वमनुवाऽसुरस्य लोकस्य भवति हीन, प्राण,
 गरणं, गति, प्रतिष्ठा-१ निर्वाणम् २ निवृत्ति ३ समाधि ४ शक्ति ५ कीर्ति ६ कान्ति
 ७, रतिश्च ८ प्रितिक्ष ९ भुताद्गति १० ११, दया १२ विमुक्ति १३ छान्ति
 १४, सम्पत्त्याऽऽराधा १५, महता १६, वाधि १७, बुद्धि १८ वृत्ति १९, सद्युधि
 २०, अदि २१, वृद्धि २२, स्थिति २३, पुष्टि २४, नन्दा २५ मद्रा २६, विशुद्धि
 २७, लक्ष्मि २८, विशिष्ट वृष्टि २९, कल्याणम् ३०, मङ्गलम् ३१ प्रमाद ३२, विमूर्ति ३३,
 रक्षा ३४, सिद्धावासा ३५, अनाश्रय ३६, कबलिना म्यानम् ३७, शियम् ३८, समिति
 ३९, शीलम् ४०, मयम ४१ इति च, शीतपरिगृह ४२, संवत् ४३, य गुप्ति ४४, वय
 वगाव ४५, उत्पन्न ४६ यत्न ४७, आयतनम् ४८, यतना ४९ अप्रमाद ५० आ
 धाम ५१, रिधास ५२ अमय ५३ मवरथाप्यमापात-अमारि ५४, पास पवित्रा ५५,
 शुधि ५६ पूता-पूजा ५७, विमवा ५८, प्रभामा ५९ य निमलतरा ६० । इत्येवमादीनि
 निपतगुणनिर्मितानि पयावनामानि भवन्ति-अहिंसाया भगवत्या ॥ सू० १ । २१ ॥

अ २०- प्रथमं संवरका स्वरूपं यत्न ई- (नत्यपमं अहिंसा) एत पोप
 संवरों में अहिंसा प्रथम संवर ह (जा मा) जा यह अहिंसा (सर्व-मनुवा-सुरगम
 सागम दीना लागे भरति) इतना मनुष्य तथा चमुर गदित साद क लिय गंगाद

समुद्र में डूबते हुए को द्वीप के समान आश्रयदाता या दीपक की तरह मार्ग दर्शक है इसलिये त्राण-विपत्ति से रक्षण करने वाली हानी है, 'फिर यह अहिंसा'-(मरणां गतं) शरण-सम्पत्तिदायक या घरके समान रक्षक तथा गति याने कल्याणार्थियों के आश्रयण करने योग्य है। अब अहिंसा के नाम कहते हैं-(पइट्ठा) सब दुःख तथा दुःख इसमें रहते हैं इसलिये इसे 'प्रतिष्ठा' कहते हैं (निव्याण निव्वुड्ढं) मोक्ष का हेतु तथा चित्त शान्ति का कारण होने से यह 'निर्वाण' तथा निवृत्ति कहाती है, (समाही) ममता का कारण होने से 'समाधि' (मत्ती) आत्मबल का कारण होने से यह 'शक्ति' अथवा शान्ति है (किन्ती) सुयश के कारण होने से कीर्ति (कती) कान्ति-कमनीयता का कारण (रती य) और रति-सन्तोष का कारण (विरतीय) और विरति-हिंमा रूप पाप से निवृत्ति वाली (सुश्रगतिती) श्रुताङ्ग-श्रुतज्ञान इसका कारण है, और तृप्ति-आत्मसन्तोष का कारण होने से यह तृप्ति है (दया) दया-प्राणिओं की रक्षा (विमुत्तो) विमुक्ति-बन्धमुक्ति का कारण (खती) क्षान्ति-क्रोध निग्रहरूप (सम्मत्ताराहणा) सम्यक्त्वाराधना-सम्यक्त्वधर्म की आराधना करने वाली (महती) महती-सभी धार्मिक अनुष्ठानों का इसमें समावेश होने से यह बृहती है (बोही) सद्धर्म की प्राप्ति अहिंसारूप है, अतः अहिंसा को 'बोधि' कहते हैं अथवा सम्यक्त्व का कारण होने से अहिंसा 'बोधि' कहाती है (बुद्धी) बुद्धि-बुद्धि की सफलता का कारण (धिती) धृति-चित्त की स्थिरता से पालने योग्य (समिद्धी रिद्धी) अद्धि समृद्धि का कारण होने से अहिंसा भी 'समृद्धि अद्धि' नामवाली है (विद्धी) वृद्धि (ठिती) अनादि अनन्त मोक्ष स्थिति का कारण होने से 'स्थिति' (पुट्ठी) पुष्टि-पुण्यवृद्धि का कारण, (नंदा) नन्दा-समृद्धि दायक (भद्दा) भद्रा-कल्याण करने वाली (विसुद्धी) विशुद्धि-आत्मशुद्धि का कारण (लद्धी) लब्धि-विशिष्टलब्धियों का हेतु (विसिद्धिदिट्ठी) उत्तम दृष्टि रूप होने से विशिष्ट दृष्टि (कल्लाण भगलं) कल्याण और विघ्न विनाशक होने से इसको मङ्गल भी कहते हैं (पमोत्तो) प्रमोद-हर्षोत्पादक (विभूती) सर्व वैभव का कारण होने से विभूति (रक्खा) रक्षा (सिद्धावासो) सिद्धावास-मोक्षवास-का कारण (अणासवो) अनासन्न-कर्मबन्ध के निरोध का उपाय (केवलीणठाण) केवलियों का स्थान (सिव) उपद्रव रहित होने से शिव (समिई) समिति-सम्यक् प्रवृत्ति (सील) पवित्र आचार रूप होने से शील (सजमोत्ति य) और यतना प्रधान होने

मङ्गल ३१ प्रमोद ३२ विभूति ३३ रक्षा ३४ सिद्ध्यावास ३५ अनास्रव ३६ केवलिरथान
 ३७ शिव ३८ समिति ३९ शील ४० संयम ४१ और शील परिगृह ४२ संवर ४३ गुप्ति
 ४४ व्यवसाय ४५ सन्ध्य ४६ यज्ञ ४७ आयतन ४८ धजन या यतन ४९ अप्रमाद
 ५० आश्वास ५१ विश्वास ५२ अभय ५३ अमाघात-अभारि ५४ चोत्त पवित्रा ५५
 शुचि ५६ पूता अथवा पूजा ५७ विमल ५८ प्रभासा ५९ और निर्मलतरा ६०
 इत्यादि नियतगुणों से निष्पन्न भगवती अहिंसा के 'पर्यायनाम' होते हैं। मतलब
 यह है कि अहिंसा के भीतर छिपे-जो जो गुण हैं, तावन्मात्र के प्रकाशक ये ६० नाम
 हैं। इनके वाचक नाम तो सहस्रों हो सकते हैं। सूत्र १।२१ ॥

मूल—“एसा सा भगवती अहिंसा, जा सा भीयाण विव सरणं,
 पक्खीणं पिव 'गमणं, तिसियाणं पिव सलिलं, खुहियाणं पिव असणं,
 समुद्धमज्जेय पोतवहणं, चउप्पयाणं व आसमपयं, दुहट्ठियाणं च (व) ओ-
 सहिलं, अड्ढीमज्जे विसत्यगमणं, एत्तो विसिद्धतरिका अहिंसा जासा
 पुढविजल अगणि मारुय वणस्सइ बीज हरित जलचर थलचर खदचर
 तसथावर सब्बभूय खेमकरी। एसा भगवती अहिंसा जासा अपरिमियणा
 दंसण धरोहिं, सीलगुण विणय तव संजम नायकेहिं, तित्थंकरेहिं, सब्बजग-
 जीव वच्छलेहिं, तिलांगमहिं, जिणचदेहिं, सुट्ठुदिट्ठा, ओहिजिणेहिं
 बिएणाया, उज्जुमतीहिं विदिट्ठा, विपुलमतीहिं विविदिता, पुव्वधरोहिं
 अधीता, वेउव्वीहिं पतिन्ना, आभिणिबोहियनाणीहिं, सुयनाणीहिं, मण-
 पज्जवनाणीहिं, केवलनाणीहिं, आमोसहिपत्तेहिं, खेलोसहिपत्तेहिं, जल्लो-
 सहिपत्तेहिं, विप्पोसहिपत्तेहिं, सब्बोसहिपत्तेहिं, बीजबुद्धीहिं, कुट्टुबुद्धीहिं,
 पदाणुसारीहिं, संभिन्नसोतेहिं, सुयधरोहिं, मणबलिएहिं, वयबलिएहिं, काय
 बलिएहिं, नाणबलिएहिं, दंसणबलिएहिं, चरित्तबलिएहिं, स्त्रीरासवेहिं, मद्दुआ
 सवेहिं, सप्पियासवेहिं, अक्खीणमहाणसिएहिं, चारणेहिं, विज्जाहरेहिं, चउत्थ-
 मत्तिएहिं,^१ एवं जाव छम्मासमत्तिएहिं, उक्खित्तचरएहिं, निक्खित्तचरएहिं,
 अंतरचरएहिं, पंतचरएहिं, लूहचरएहिं, समुदायचरएहिं, अन्नइलाएहिं, मोण-
 चरएहिं, संसट्ठकप्पिएहिं, तज्जाय संसट्ठकप्पिएहिं, उवनिहिं, सुद्धेसणि-
 एहिं, संखादत्तिएहिं, दिट्ठलाभिएहिं, अदिट्ठलाभिएहिं, पुट्ठलाभिएहिं, आ-

यं विलिखि, पुरिमडिखि, एकासखि, निन्विति, मित्रपिण्डवाइ
 एहि, परिमियापिण्डवाइ, अताहारहि, पताहारहि, अरसाहारेहि, विरसा-
 हारहि, लूहाहारेहि, तुच्छाहारहि, अतजीविहि, पंतजीविहि, लूहजीविहि,
 तुच्छजीविहि, उवसतजीविहि, पसंतजीविहि, विविचजीविहि, असीर
 मद्रुमप्पिहि, अमज्जमसासिहि, ठाशाइहि, पठिमठाइहि, ठाणुकडिहि,
 धीरासखिहि, खेसज्जिहि, ठठाइहि, सण्ठसाइहि, एगपासगेहि, आया
 वयहि, अप्पावयहि, अखिट्ठवयहि, अकंडूयहि, धुतकेममंसुलोमनखेहि,
 सव्वाय पडिक्कमविप्पयुवकेहि, समणुचिआ, सुयधर-विदितत्यकाय-
 पुद्दीहि, धीरमतिवुद्धिओ यजेते आसीविस उमाते य कप्पा, निच्छयववनाय
 पज्जवक्क य मत्तीआ, शिच्चं सज्जापक्काख-अणुबद्ध वम्मज्जाआ, पंचमह
 व्वय-वरित्तजुआ, सभितासभितिसु समित पावा, इव्विहज्जगवच्छला
 निच्चमप्पमचा, एहि, अन्नहि य आसा अणुपाखिया मगवती ।

आया-“एषा सा भगवती अहिंसा, या सा भीतानामिव शरणम्, पश्चिन्नामिव
 गम्भ(ग)नं,” दूषितानामिव सलिलम्, दूषितानामिवाऽशनम्, समुद्रमप्येष पोतवद्भस्म,
 चतुष्पदानां वाऽऽश्रमपक्वम्, दुःखस्वितानाञ्चौषधीषणम्, अन्धवीमप्य ‘विश्रस्त’(सर्व)
 गमनम्, इतो विशिष्टतरिकाऽहिंसा, या सा पूषवीमलाऽग्नि मारुत वनस्पति बीज
 हरित जलचन्द्रोऽम्बुषण्ड लेखर व्रसत्पाण्ड सर्वभूत खेमकरी । एषा भगवती-अहिंसा
 पासाऽपरिमितज्ञान वरानघरे, शीतगुणविनयतप-संयमनारकेऽतीर्यङ्करैः, सर्व
 जगज्जीयवत्सलैः, त्रिलोकीमहिषैर्मिनचन्द्रैः सुन्दुष्टा, अदधित्तिनैर्बिष्काता, अद्रु
 मतिमिर्विष्टा, विपुलमतिमिर्निविदिता, पूर्वधरैर्ग्रीवावैश्वर्यैः प्रतीर्णा, आमिनि
 बोधिऋक्षानिमि भूतहानिमि मन पययहानिमि, केवलज्ञानिमि, आमर्षोपधिप्राप्तै
 सेतौपधिप्राप्तैर्जज्ञौपधिप्राप्तैर्निजौपधिप्राप्तैः सधौपधिप्राप्तैः, बोधपुद्गिमि, बुद्ध
 पुद्गिमि, परानुसारिमि, सभिन्नस्रोतोभि भूतधरैर्मोक्षरिक्के, वचनवक्तिकैः, काय
 पालिकैः, ज्ञानवक्तिकैर्ज्ञानवक्तिकैरवरिष्यवक्तिकैः, दोराखर्षमप्याखर्षैः, सर्पिराखर्षै
 रक्षीणमहानसिकैश्चारखैर्निष्ठापरैश्चतुर्थमप्यैः रेवं पावत् पयमासमप्यैः, रुक्मिणपरै
 निर्दिष्टपरैः रन्तपरैः प्रान्तपरैः रुद्रपरैः, समुद्रानवरैः, रज्जुजानै-दोपाऽश्रमा
 त्रिमिः, मोनपरैः संसृष्टकल्पिकैः, स्तग्जातसंसृष्टकल्पिकोपनिधिक्के, हाडैपयिकैः,
 संघपादयिकैः, दृष्टतामिकैः, दृष्टतामिकैः, दृष्टतामिकैरापायिकैः, (आपयिकैः)

पुरिसाद्विकैरेकाशानिकै, निर्विकृतिकैर्भिन्नपिण्डपातिकैः, परिमित पिण्डपातिकैरन्ताः
 ऽऽहारैः, प्रान्ताऽऽहारैरसाऽऽहारैर्विरसाऽऽहारै, रुक्षाऽऽहारैस्तुच्छाऽऽहारैरन्तः
 जीविभिः, प्रान्तजीविभिः, रुक्षजीविभिः तुच्छजीविभिः रूपशान्त जीविभिः प्रशान्तः
 जीविभिर्विभक्तजीविभिरक्षीरमधुसर्पिकैरमयमांसाशिमिः, स्थानायितै (स्थानाभि-
 ग्राहकै.) प्रतिमात्थायिभिः, स्थानोत्कटुकैः, धीरासनकैर्नैपथिकैः, ईण्डायतिकैः,
 हर्गण्डशायिभिरैकपार्थिकैरातापनैरप्रावृत्तै, रनिष्टीवकैरकण्डूयकैः, धूतकेशश्मश्रुरोम
 नखैः, सर्वगात्र प्रतिकर्मधिप्रमुक्तै. समनुचीर्णा, श्रुतधरविदितार्थकायबुद्धिभिर्धीरमति
 बुद्धयश्च ये, ते-आशीर्षिषोप्रतेज.कल्पा निश्चय. वशसाय पर्याप्तकृतमतिका नित्य
 स्वाध्यायध्यानाऽनुबद्ध धर्मध्याना, पञ्चमहाव्रत परित्रयुक्ताः, समिता समितिषु,
 शमितपापा, बद्धिधजगद्धत्सला, नित्यमप्रमत्ता, एतैरन्यैश्च या साऽनुपालिता
 भगवती ।

अन्व०-“ (एसा भा भगवती अहिंसा) यह वह भगवती अहिंसा (जासा)
 जो यह (भीषण विष सरण) भीतों-डरे हुए-के लिये रक्षक के समान रक्षा करने
 वालीसी (पक्खीण पिब गमण) पक्षियों के लिये आकाश-गमन-की तरह हित
 कारी (तिसियाण पिब सलिल) प्यासों के लिये पानी के समान और (खुदियाणं
 पिब असण) भूखों के लिये भोजन की तरह (समुद्गमग्गेव पोतबहणं) समुद्र के
 मध्यमें जहाज की तरह (चउप्पयाणं च आसम पय) चौपाये जीवों के लिये आश्रम
 स्थान-बाड़े-की तरह (दुहट्टियाणं च ओसहिबल) और रोगियों के लिये औषधी
 की तरह तथा (अहवीगग्गे विसत्थगमण) अटवी में भूले हुए-को जैसे सार्थ-जन-
 समूह का मिलना हितकर होता है (एत्तो विसिट्ठतरिका अहिंसा) इन सबसे
 अतिशय विशिष्ट अहिंसा प्राणिओं के लिये हितकारिणी है (जासा) जोकि वह
 (पुब्बविजल-अगणि-माठय-वणस्सह-वीज हरित-जलचर-जथलर-खहचर-तस-
 धावर-सन्वभूय खेमकरी) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिकायिक तथा
 धीज व हरित एवं जलचर, स्थलचर, खेचर रूप त्रस स्थावर जीवमात्रके लिये चेम
 करने वाली (एता भगवती अहिंसा) यह भगवती अहिंसा है, (जासा) जो कि
 (अपरिमिय नाणदसणधरोहिं) अपरिमित ज्ञान और दर्शन को धारण करने वाले
 (सीलगुण-विणय-तप-सज्जनयकेहिं) शील रूप गुण और तप सयम व विनय
 इतके नायक (मन्वज्जजीववच्छलेहिं) सभी जगज्जीवोंके वत्सल (तिलोगमहिं-

पहिं) त्रिजोहके पूजित (विष्णुभेदेहिं) जिनसामान्यमेंपन्त्र के समान पस (तिल करेहिं) तीर्मङ्गरो से (सुदुद्धविद्धा) अच्छी तरह-केवल ज्ञानरूप मत्सङ्गके द्वारा-इसी गई है (ओहिंजियोहिं विष्णुया), अवधिज्ञानिओं से मन्वग्जानी गई (इयु मतीदिविदिद्धा) अजुमतिओंसे विरोध रूपसे देखीगई (विपुलमतीदिविदिहिता) विरोध प्राहिणीपुद्धि वास मन-पर्यवज्ञानिओंसे अच्छ तरह जानी हुई (पुष्पधरहिं अभीता) पूर्वधरोंसे भूतरूप में पड़ी गई (वेङ्गरीहिं पतिमा) वैकिंशलम्बिवाप मुनिओंसे आशीर्वात पासी गई है (आभिधिवाहियनापीहिं सुपनाखोहिं मणपगञ्ज-नापीहिं) आभिनिबोधि-मतिज्ञान वाले, भुतज्ञान वाले और मन-पर्यवज्ञान वाले (केवलतापीहिं) केवलज्ञानी (आमोसहिपचेहिं खेसोसहिपचेहिं जलोसहिपचेहिं) जिनका-आमर्प अङ्ग स्पर्शी औपधिरूप है ऐसे आमर्पापधि प्राप्त, वे स्तम्भौपधि और जलोपधि लम्बिवाले और-जिनके स्तम्भ मेलही औपधि जैसे बन हाते हैं (विप्यो सहि पचेहिं सङ्गोसहिपचेहिं) जिनके मलमूत्र औपधिरूप हों वैसी लम्बि बाछेमुनि-विप्रीपधिप्राप्त औरजिनके स्पर्शावादि-सब औपधिका कार्य करते हों वे सर्वौपधिप्राप्त कहाते हैं (बीजमुसीहिं कृष्टुमुसीहिं पदाणुसारीहिं) बीज की तरह अर्यमात्र को पाकर अनक पदार्थों का ज्ञान करने वाली-बीजपुद्धिवाले, कौस्तुभि-बोटे की तरह एक बार जाने हुए विषयों को सवारमृति में रखने वाले, पदानुसारी-एक पद से सैकड़ों पदों का अनुसरण करने की बुद्धि वाले, (संभिन्न सोधेहिं) संभिन्न मात्र-शरीर के सब अवयवों से अवयव करने की लम्बि वाले अवयवा प्रत्येक इन्द्रियों में अवयव बन आदि इन्द्रियविषयों का ज्ञान करने वाले (सुधरहिं) विरिद्ध भुत को बारस करने वाले (मणबलिपहिं वयबलिपहिं कायबलिपहिं) मनोबली-निष्पन्नविषय वाले, वान-बली-दृढ प्रतिष्ठावाले और कायबली-परिपहों में स्थिर शरीर वाले, (माद्यबलिपहिं वंसयबलिपहिं करिषबलिपहिं) ज्ञानबली, वरानबली-स्थिर अद्यावाले, करिषबली-निर्मल करिष वाले (कीरासमेहिं मधुमासमेहिं सपिप्पासमेहिं) कीरासब-कीर की तरह मधुर बचन वाले, मधु पासब-बिसमें मधु के समान वचन में माधुर्य हो वैसी लम्बिवाले, सर्पिपासब-पूत की तरह-स्निग्ध वचन रूप लम्बि वाले (अक्कीय महायसिपहिं) अक्कीय महानसिक-अपने किये लाये मोहन से लाख मनुष्यों को क्लेशने पर भी कबतक स्वर्ग में मोहन करने लकटक जो मानन बना रहे, वैसी लम्बि वाले (बारयेहिं) आकारा गमन की लम्बि वाले बारय-अपाचारय और

विद्या चारण ऐसे दो प्रकार के हैं (विज्जाहरेहिं) विद्याधर-विशिष्ट विद्या वाले (चउत्थभक्तिएहि एवं जाव छम्मासभक्तिएहिं) चतुर्थ भक्ति-उपवास व्रत वाले ऐसे षष्ठ अष्टम आदि यावत् पण्मास भक्त-छ मास के तप करने वाले, (उक्खित्त चर-एहिं निक्खित्तचरएहिं) उत्तिष्ठ चरक-पकाने के भाजन से बाहर निकाले गये आहार का ही गवेपण करने वाले, निक्षिप्त चरक-थाली आदि में रखे हुए आहार की गवेपणा करने वाले (अंतचरण्हि पंतचरण्हि लूहचरण्हि) अन्तचरक-सेके हुए चने आदि की गवेपणा करने वाले, प्रान्त चरक-खाने से बचे हुए चने आदि तथा वासी पदार्थ की गवेपणा करने वाले, रुक्ष आहार की गवेपणा करने वाले (समु-दाण चरण्हि) सामूहिक भिक्षा के लिये भ्रमण करने वाले (अन्नडलाएहिं) रात्रि के अन्न को खाने वाले (मोणचरण्हि) मौनचर्या वाले (संसट्ठकप्पिएहिं तज्जाय संसट्ठकप्पिएहिं) संसृष्ट-भरे हुए हाथ या पात्र से आहार लेने के कल्प वाले, जो पदार्थ ग्रहण करने के हैं उसीसे भरे हुए हाथ आदि से भिक्षा लेने के कल्प वाले, (उवनिहिएहिं) समीप में भिक्षा के लिये जाने वाले या पास में रहे हुए पदार्थ को ही लेने वाले (सुट्ठेसणिएहिं) शुद्ध-दोष रहित एषणा वाले (सखादत्तिएहिं) ५।६, आदि सख्या प्रधान दत्ति वाले (दिट्ठलाभिएहिं अदिट्ठलाभिएहिं) दृष्ट स्थान से मिली हुई या दृष्ट पदार्थ के भागयुक्त भिक्षा लेने वाले, अट्टट्टात्ता से अथवा अट्टट्ट वरु के ग्रहण वाले (पुट्टलाभिएहिं) महाराज ? यह पदार्थ ले सकते हैं क्या ? इस प्रकार प्रश्न पूर्वक मिले हुए आहार को ग्रहण करने वाले (आयंघिलिएहिं) आयविल तप वाले (पुरिमड्ठिएहिं) पुरिमार्द्ध-दोषरूपीके व्रत वाले (एकासणिएहिं) एकाशन करने वाले (निव्वितिएहिं) विगय घी, दही, दूध, आदि रस रहित भोजना करने वाले (भिन्नपिंडवाइएहिं) फूटे बिखरे हुए ओदनादि-पिण्ड को ही ग्रहण करने वाले (परिमियपिंड वाइएहिं) घर व भोजन के परिमाणयुक्त पिण्ड-आहार को ग्रहण करने वाले (अंताहारेहिं) सेके चने आदि का अहार करने वाले, (पंताहारेहिं) प्रान्त आहारी (अरसाहारेहिं) हिंग आदि के संस्कार रहित अरस आहार करने वाले (विरसाहारेहिं) रस रहित-पुराने पदार्थ का आहार करने वाले (लूहाहारेहिं तुच्छाहारेहिं) रुक्ष आहारी तथा तुच्छ-अल्प आहार करने वाले (अत जीविहिं पंत जीविहिं लूह जीविहिं तुच्छ जीविहिं) अन्त जीवी, प्रान्त जीवी, रुक्ष जीवी और तुच्छ जीवी (उवसंत जीविहिं पसंत

जीविहिं) अन्तर्दृष्टि की अपेक्षा-उपशान्त जीवी-उपशान्तः कृपाय वाले, पविर्दृष्टि से प्रशान्त जीवी-सौम्य जीवम वाले (विषिक्त जीविहिं) विविक्त-निर्दोष मत्त आदि सं जीने वाले (अलीर गहु सपिण्णहिं) दूध, मधु और घृत के स्वागो (अमम मसामिण्णहिं) मधुमांस रहित भोजन वाले (ठाणाण्णहिं) ऊर्ध्व स्थान-ऊँचे रहने आदि रूप अभिव्यक्त करने वाले (पडिमं ठाईहिं) प्रतिमा-कायोत्सर्ग से या मासिकी आदि मित्र प्रतिमा से रहने वाले (ठाणुवडिण्णहिं) छक्कड़क आसन से बैठने वाले (वीरासुअिण्णहिं) वीरासन से बैठने वाले (येसअिण्णहिं) निरपा-आस्तव विरोधरूप चर्मावाल (वंडाण्णहिं) दण्ड की तरह लम्बे-सीधे शयनरूप आसन वाल (सगंडसाईहिं) टेढ़े काष्ठ की तरह मस्तक और एड़ी को जमीन पर टेककर कुम्भ सोने वाले (प्पापासगेहिं) एक पार्श्व से ही सोने वाले (आवावण्णहिं) आतापना लेने वाले (अप्पावण्णहिं) वेद इकट्ठे के लिये बाहर आदि नहीं रखने वाले (अपि दडुवण्णहिं) मूँह से घृक नहीं घूकने वाले (अकंइयण्णहिं) शरीर को नहीं झुबझुबे वाले (घुत केसम्महुतोमनसेहिं) केरा, दाढ़ी, मूँछ और रोम-काँस आदि के बाल तथा नखों के संस्कार रहित बाने इनकी काठ छाँट नहीं करने वाले (सक्क गाव पडिक्कम्म विप्पमुक्केहिं) सम्पूर्ण शरीर की अम्बुज आदि से शोभा नहीं करने वाले, पूर्वोक्त विविध गुण-विशिष्ट मुनियों से (समणुत्थिमा) आलेखन की गई 'अहिंसा' तथा (सुमधर विदित्तव कामवुसीहिं) भुतधर और राक्ष की अब-राशि को समझने योग्य बुद्धि वाले महात्माओं से पाकल की गई है (वीरमति मुद्धिखोव) और स्त्रि अवप्रहादि मतिमुक्त तथा औत्पत्तिकी आदि बुद्धि वाले (जेते) जो। वे। मुनिवर (आसी पिस वमत्तेव कप्पा) कम विषधर (मत्ता के समान कम खेजबत्ते (मिक्खन ववसाय पज्जत्तकयमतीया) मिथ्य-पहार्थ ज्ञान और परिपूर्ण पुण्यपार्थ में क मति बाल (णिक्खं) सदा (सम्पन्नयकमाय अणुवत्तयकम्मम्माया) बाचनादि पञ्च-विध स्वाम्याय तथा ध्यान चित्त निरोध करने वाले व निरन्तर अरुणा विषय आदि चर्मा स्थान वाले (पंच महक्कवचरित्त मुत्ता) पंच महाव्रतरूप आरिज से मुक्त (समिठा समितिसु)ईर्ष्या आदि समितिओंमें सम्बन्ध प्रवृत्ति वाले (समित पाणा) उपराम या कृप कर दिये हैं पाप मित्रोंने ऐसे (सुद्धिह अगवच्छता) पृथ्वी आदि के द्वा प्रकार-के जीव मुक्त अगत के बरसक धिठैपी (विमप्यमत्ता) सदा प्रभाव रहित (ण्णहिं) इन (अन्नेदिय) और इस प्रकार के ग्रन्थ भी महात्माओं से (जामा अणुपालिया) जो अहिंसा

अनुकूल रूपः से-पालन की गई है (सा भगवती) वह भगवती अहिंसा है। इस प्रकार अहिंसा का स्वरूप कहके अब अहिंसकों को क्या करना चाहिए? इसको कहते हैं—

मूल—“इमं च पुढविदग्ग अगणि मारुण तरुण तस थावर सव्वभूय संजम दयट्ठयाते सुद्धं उब्बं गवेसियव्वं, अकतमकारिमणाह्वयमणुहिट्ठं, अकीयकडं, नवहिय कोडिहिं सुपरिसुद्धं, दसहिय दोसेहिं विप्पमुक्कं, उग्गम उप्पायणेसणासुद्धं, ववगय चुय चाविय चत्त देहं च, फासुयं च, न निसज्ज कद्दापयोयणक्खा सुओवणीयंति, न तिगिच्छामंतमूल भेसज्ज कज्ज हेउं, न लक्खणुप्पायसुमिण जोइस निमिच्च कहकप्प उत्तं, न विडंमणाए, नवि रक्खणाते, नवि सासणाते, नवि दंमण रक्खण सासणाते भिक्खं गवेसियव्वं, नवि वंदणाते, नवि माणणाते, नवि पूयणाते, नवि वंदण माणण पूयणाते भिक्खं गवेसियव्वं, नवि हीलणाते, नवि निंदणाते, नवि गरहणाते, नवि हीलण निंदण गरहणाते भिक्खं गवेसियव्वं नवि भेसणाते, नवि तज्जणाते, नवि तालणाते, नवि भेसण तज्जण तालणाते भिक्खं गवेसियव्वं, नवि गारवेणं, नवि कुहण याते, नवि वणीमयाते, नवि गारव कुहणीमयाए भिक्खं गवेसियव्वं, नवि मित्तयाए, नवि पत्थणाए, नवि सेवणाए, नवि मित्त पत्थण सेवणाते भिक्खं गवेसियव्वं, अन्नाए अगणि अदुद्धे अदीणे अविमणे अकलुणे अविसाठी अपरितंत जोगी जयण वडण करण चरिण विणय गुण जोग संपउत्ते भिक्खु भिक्खेसणाते निरत्ते, इमचणं सव्वजीव रक्खण दयट्ठयाते पांचयणं भगवया ए कहियं अत्तहियं पेत्तामावियं आगमेसिमदं सुद्धं नेयाउयं अकुडिलं अणुत्तरं सव्वदुक्ख पावाण विउसमणं ॥ सू० २ । २२ ॥

छाया—“इदञ्च पृथ्वीद्वाग्नि मारुत तरुण त्रस स्थावर सर्वभूतसयम दयार्थाय शुद्धमुद्धं गवेणीयम्, अकृतमकारित मनाहृतमनुदिष्टमक्रौतकृतम्, नवमि. कोटिभिः

सुपरिगुह, इरामिद्वयोर्बिम्बमुक्तम्, चरमोत्पादनैपणा शुद्धं त्वपगतं च्युत
 व्यावृत्तं स्वच्छेदं प्राप्नुकञ्च न निपद्या न्या मयोजनाऽऽख्या भूतोपनीतमिति, न
 पिहित्वा मन्त्र मूल सौम्यकार्यहेतुर्क, न लक्ष्योत्पात स्वप्न [स्मरणे] गौतम
 निमित्त कथा कुहक प्रमुक्तम्, नापि दम्भनया, नापि रक्षयया, नापि शासनया, नापि
 दम्भना-रक्षणा-शासनमिर्भेद्यं गवेषयितव्यम्, नापि वन्दनया, नापि माननया,
 नापि पूजनया, नापि यन्त्रना-मानना-पूजनामिर्भेद्यं गवेषयितव्यम्, नापि हीकनया,
 नापि निन्दनया, नापि गर्हयना, नापि हीकना निन्दना गवेषयामिर्भेद्यं गवेषयित
 व्यम्, नापि भीषयया, नापि तर्जनया, नापि सादनया, नापि भीषणा तर्जना
 सादनमिर्भेद्यं गवेषयितव्यम्, नापि गौरवेण, नापि क्रोधनया, नापि धनीपकृतया,
 नापि गौरव क्रोधना (कुम्भना) धनीपकृतयामिर्भेद्यं गवेषयितव्यम्, नापि मित्रतया,
 नापि प्रार्थनया, नापि सेवनया, नापि मित्रता-प्रार्थना-सेवनमिर्भेद्यं गवेषयित
 व्यम्, अज्ञातं अप्रमितः, 'अगृह्य', 'अवुष्ट', 'अहीन' अधिमना अकठयः अवि
 पारी, अपरितान्तबोगी, यतन घटन करण चरण (चरित) विनय शुण्य बोग
 सम्प्रमुक्त्ये मिष्टमिहैपखायां निरत । इदं च ननु सर्वजीव रक्षय इवावस्य प्रवचनं
 भगवता मुकयितम्, -आत्महितं, त्रैलोक्यव्यापितम्, आगमिष्यद्भद्र, शुद्धं न्यायोपेतम्
 अष्टुटिकमनुत्तरम्, सर्वदुःखपापानां व्युपशमनम् । सूत्र २ । २२ ॥

अन्व-“(इमं च पुनरिह ब्रह्म अगच्छि माहव तदगच्छ तस्यवाचर सव्यभूय संवमं
 दयदृयात) और पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, वृक्ष समूह, और व्रस, स्थावर रूप सब
 जीवों पर संपन्न व इया के लिये इस (सुखं वृद्धं गवेषयितव्यं) शुद्ध वृद्ध-अनं
 पदों की मिष्टा से प्राप्त आहार की गवेषणा करनी चाहिये जो आहार- (अकृतम
 कारिमयाहमगुटिदर्थ) साधुओं के लिये किया हुआ न हो, न वृक्षों से बनपाया
 हो अनाहुत-गृहस्थ के द्वारा निमन्त्रण पूर्वक दिया हुआ याने मुलाके दिया गया
 भी नहीं हो अगु-उद्देशिक शोपमुक्त नहीं हो, (अक्षीयकटं) साधु के लिये लसीहकर
 लाया हुआ नहीं हो, इमी बात की विस्तार से कहते हैं- (मन्त्रद्विष आदिहि सुपरि-
 गुह) और आ नव कोटि स विगुह हा (इतिद्विष दोमेहि विष्णुमुहं) शक्ति आदि
 इरा शयों स रहित और (ब्रह्म व्याप्य एतन्नामुहं) ब्रह्म-अन्तरात्न और एषणा
 स शुद्ध-निर्वाण ॥ (यवगण पुत्र आश्रितपतदहं च) जिस आहार स स्वयं जीव
 वास्तव होगये तथा दृष्टी आदि क जीव जिसमें यव-भर गये अथवा हाता ने जिसे

निर्जीव कर दिये वैसे त्यक्त देह-निर्जीव बने हुए अथवा व्यपगत-सामान्यरूप से अचेतनता प्राप्त, च्युत-जीवन क्रियाओं से भ्रष्ट, च्यावित-आयुर्व्यय के कारण जीवन क्रियाओं से रहित और त्यक्तदेह-जीव के संसर्ग से होने वाली वृद्धि से हीन (फासुयच) और प्राशुक-निर्जीव आहार को (न निसज्ज रुहापओयणक्खालु षोदणीथंति) 'गोधरी में गया हुआ' घरमें बैठकर दी जाने वाली धर्मकथा के प्रयोजन से या दाता को खुरा करने के लिये नट की तरह प्रयुक्त कथा-प्रतिघट्ट श्रुत के कारण जो नहीं लाया गया है वैसे भिक्षा की गवेपणा करनी चाहिए। (गिगिच्छा मंत मूल भेसज्ज कज्जहेड) चिकित्सा-रोग के प्रतीकार, मन्त्र, मूलकृताञ्जलि आदि औषधी की जड़ और भेषज-अनेक द्रव्यों से बनी दवा आदि के हेतु से भिक्षा (न) नहीं लेनी चाहिए (नलक्खणुपायसुमिणजोइस निमित्तकहक्कप्पउत्त) लक्षण-स्त्री पुरुष आदि के चिह्न विशेष, उत्पात-प्रकृति के अतिशय विकार धूल दृष्टि आदि, स्वप्न, ज्योतिषशास्त्र, निमित्त-चूडामणि आदि निमित्त शास्त्र, कथा-अर्थ कथा आदि और दूसरे को विस्मय उत्पन्न करने के प्रयोग इन कारणों से आकृष्ट होकर दाता ने जो द्रव्य देनेको निकाले हैं उनको नहीं ग्रहण करे (नवि डभण्णए) माया कपटके प्रयोग से भी भिक्षा नहीं लें (नवि रक्खणाते) दाताके पुत्र आदि की रक्षा के प्रयोग से भी भिक्षा नहीं लें (नवि सासणाते) शिक्षा सिखा कर भी भिक्षा नहीं लें अथवा अनुशासन करके भी भिक्षा नहीं लें (नवि दभण्णरक्खण सासणाते) कपट, रक्षा, एवं अनुशासन का एकसाथ प्रयोग करके भी (भिक्षुं गवेसियव्व) भिक्षाकी गवेपणा नहीं करनी चाहिए (नवि धंदणाते) वन्दना करके भी भिक्षा नहीं लें (नवि माणणाते) आसन आदि से दाता का मान करके भी भिक्षा नहीं लें (नवि पूयणाते) मस्तक पर चन्दन लगाना या नमकर मुंह पत्ती आदि देने रूप पूजा से भी भिक्षा नहीं लें (नवि धदण माणण पूयणाते भिक्षुं गवेसियव्व) वन्दन मान और पूजा के एक साथ प्रयोग से भी भिक्षा नहीं लें (नवि हीलणाते) दाता की जाति आदि की हीलना करके भी नहीं लें, (नवि निंदणाते) दाता की या देय वस्तु की निन्दा करके भी नहीं लें, (नवि गरहणाते) हीलना करके भी नहीं लें (नवि हीलणनिंदणगरहणाते भिक्षुं गवेसियव्व) हीलना, निन्दा और गर्हणा के एक साथ प्रयोग करके भी भिक्षा की गवेपणा नहीं करनी चाहिए, (नवि भेसणाते) भय दिखाकर भी भिक्षा नहीं लें, (नवि तज्जणाते) तर्जन करके भी नहीं लें (नवि तालणाते) चपेटा आदि

की साधना से भी मिष्टा नहीं लें। (न वि मेसय्यं तन्मयं साधनाते भिक्षं गन्धे सियय्यं) भय प्रहर्षान्, सर्वान् और साधना इन तीनों के साथ प्रयोग से भी मिष्टा नहीं लें (न वि गारवेय्यं) मैं राज पूजित हूँ इस प्रकार गर्व से भी मिष्टा नहीं लें। (न वि कुद्वयं याते) हरिष्टता के भाव से या क्रोध करके भी नहीं लें (न वि वणीमयाते) मंगलों की तरह हीनता दिखाकर भी नहीं लें (न वि गारव कुद्वयमीमयाप भिक्षं गन्धसियय्यं) गर्व, क्रोध तथा याचकता इन तीनों के प्रयोग से भी मिष्टा की गन्धेपणा नहीं करे (न वि भित्तयाप) मित्रता करके भी मिष्टा नहीं लें (न वि पत्तयाप) प्रार्थना करके भी न लें (न वि सेवयाप) सेवा करके भी मिष्टा नहीं लें (न वि भित्त पत्तय्य सेवयाते भिक्षं गन्धेसियय्यं) मैत्री, प्रार्थना व सेवा इन तीनों के साथ प्रयोग से भी मिष्टा की गन्धेपणा नहीं करनी चाहिए (अन्नाप) अपना सम्बन्ध नहीं कहने से जो गृहस्थों से नहीं आना गया है (अगृह्ये) तथा आन लेने पर भी मोह रहित अवस्था आहार में गृन्मुता रहित, (अमुद्वे) अमुष्ट-आहार पर या हाथा पर द्वेष नहीं करने वाले (अहीय) क्रोध रहित (अविमये) उदासीनता रहित (अकलुये) हीनता रहित (अविहारी) विषाद रहित (अपरितंत जोगी) सक्रम में बकाबट रहित मन, वचन आदि योग बाला होने से (जयण भयण करण वरिय विणय गुण्य जोग संपवसे) एतन् प्राप्त संयम योग में उद्यम और अप्राप्त संयम योग की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करने वाला तथा विनय का सेवन करने वाला व क्षमा आदि गुणों से युक्त जो (भिक्षु) साधु (भिक्षुसंख्याते निरते) मिष्टा की पपला से निरत-तपर रहता है (इमंयं सम्बन्धो व रक्खणं वयद्वाते) और सब अंगत के जीवों की रक्षा रूप दया के लिये इत (पावचयं) प्रवचन को (भगवया) भगवान् ने (सुकहिंसे) सम्यक् प्रकार से कहा है (अत्तदिंसे) जीवों के हित रूप आर (पेस्वाम विर्यं) परलोक में सुख देने वाला है (आगमेसिभई) भविष्य में कल्याण का कारण व (सुदं) शुद्ध है (नेयाउय) ग्यायमुक्त, (अकुद्विहं) अकुटिल-सरस, (अणुत्तरं) नव अष्ट तथा (मन्वपुत्तरपावाणं) सब दुःख और पपकर्मों का (विवत्तमणं) उपशमन करने वाला है ॥ ९। १२ ॥

भाषा—“यह अहिंसा भगवती प्राणिमा की परम रक्षा करने वाली है। अवभीत प्राणि जी का जीव शान्त का पशुओं का आकारमाण का, प्यास का पानीका,

पूखे को भोजन का, समुद्र में डूबते हुए को जहाज का, चतुष्पदों को आश्रयस्थान का, पेरिगियों को औपधिका और अटचीमें भूले हुए को सार्व का आधार होता है। इससे भी अधिक अहिंसा प्राणिजों के लिये हित साधिका है। क्योंकि भयभोत आदि को शरण आदि से कभी हित के बढ़ने अहित भी हो सकता है, परन्तु अहिंसा से होने वाला हित ध्रुव और अटल है। जो पृथ्वी जल आदि त्रसस्थावर जीवमात्र के लिये हेम धरणी करने वाली है, वह अहिंसा ही संसार में भगवती है अन्य नहीं।

इसको जानने वाले ध सेवन करने वाले भी विशिष्ट ज्ञानी महापुरुष हैं, जैसे अनन्तज्ञानी शीतलसूत्र आदि गुणों के प्रधान नायक, त्रिलोपी पूज्य और जगत् के हितैषी तीर्थङ्कर महाराज ने केवलज्ञानसे इसका सम्यक् निश्चय एवं अनुभव किया है। अधिज्ञानी और सामान्यविशेष दृष्टिवाले मनःपर्यवहानिधियों से अच्छी तरह जानो व देखो गई है। पूर्वधारियों ने शास्त्र में इसका अभ्ययन किया है। वैक्रिय लब्धिवाले तथा भक्तिज्ञानी व केवलज्ञानी महात्माओं ने आजीवन इसका पालन किया है।

तपस्या की विशिष्ट साधना से कई महात्मा अतिशय शक्ति सम्पन्न होजाते हैं, जिनको लब्धिधारक कहते हैं। २२ प्रकार के लब्धिधारियों में से कुछ का यहां निम्नलिखित उल्लेख मिलता है। जैसे कि स्पर्शमात्र से रोग निवारण करने की लब्धि वाले आमर्षोपयिक। ऐसे कइयों के श्लेष्म रोगनिवारक होते हैं। एक ऐसीलब्धिधारी होते हैं कि उनके शरीर पर का मल रोगनिवारक होता है। कई महात्माओं के मज्जमूत्र तक रोगनिवारक होते हैं। किसी महात्मा के शरीर की सभी चीजें औपविषत् रोगनिवारक होती हैं। बीजबुद्धि, कोष्ठबुद्धि और पदानुसारी आदि ये सब विशिष्टबुद्धिधारक होते हैं। मन, वाणी और शरीर के स्थिर बल को धारण करने वाले तथा निर्दोष ज्ञानादि रत्नत्रय को धारण करने वाले हैं। इसलिये इनके वचन मानो क्षीर मधु और घृत के जैसे मधुर किम्व एवं पौष्टिक होते हैं। अहीण महानस लब्धिवाले स्पष्ट हैं। जघा या बिद्या के बल से आकाश मार्ग में चलने की विशिष्ट शक्ति वाले चारण कहते हैं। चतुर्थमक्त-सपवास से लेकर छः मास तक के तपस्वी मुनिओं ने इसका आराधन किया। ऐसे ही उद्भिन्न आदि

विधिष्वभिप्रायों से जो मित्रा करने वाले हैं वैसे उपशान्त दशा वाले निर्वोष आहार के प्राइक मुनिओं से सेवित हैं।

सामान्यतया मुनि लोग मद्य मांस रहित भोजन वाले, और अभिक्ता से दूध पृत तथा मधु के वजन करने वाले होते हैं। कई अनुकूलता के अनुसार स्थापित एवं विधिष्व आसन वाले होते हैं।

विशेष इस प्रकार है—सिंहासन पर पाँच लटका के बैठा हुआ पुरुष जब आसन के हटाने पर भी उसी तरह बैठा रहे उसको वीरासन कहते हैं। आवापना करने वाले यावत्, जो सदा प्रमाद रहित हैं। ऐसे और अन्य विशिष्ट प्रतिष्ठों से जो पालन की गई वह मगधसी अहिंसा प्रथम संवर रूप है।

आगे अहिंसकों को कैसी और किस प्रकार से मित्रा लेनी चाहिए? इस बातको दिखाते हैं।

पृथ्वी आदि सभी प्राणी मात्र के संयम तथा दया के लिये मुनि को निम्न प्रकार की शुद्ध मित्रा लेनी चाहिए, जो आहार साधु के लिये नहीं किया हो और कराया गया भी नहीं हो। मुलाकर दिया हुआ और साधु के लिये करीब हुआ भी नहीं हो। नव कोटि शुद्ध तथा ४२ प्रकार के दण्डों से रहित यावत्, निर्वोष निर्जीव हो बैसा ले सकते हैं। किन्तु अविधिष्वों को दस्तकर लेना यह बताना आता है—

परमैवेत्थं कथा मुनानेसे मिला हुआ नहीं लेना। चिकित्सा, मन्त्र, मूत्र आदि प्रयोग बताने में मित्रा नहीं लेनी चाहिए। इसी प्रकार शारीरिक कष्ट आदि बताने में मित्रा प्राप्त नहीं करे। कपट, रक्षा और अनुशासन करके तथा स्तुति, मान या पूजा के द्वारा भी मित्रा ग्रहण नहीं करे। गृहस्थकी हीलना, निम्ना और गर्हा करके अथवा खाना, साठना और तर्जना से भी मित्रा नहीं ले। गर्व क्रोध या मित्रा की तरह शीनता दिखाकर पण मैत्री, प्रार्थना तथा सेवा के द्वारा भी मित्रा प्राप्त नहीं करे अथवा गृहस्थ को विना किसी प्रकार का स्वार्थ भय और शीनता दिखाये मुनि मित्रा ग्रहण करे। इससे अपनी मोह-दुष्टि और गृहस्थों में स्वार्थ बुद्धि नहीं होगी धैर्य मुनिष्वों का स्वरूप निम्न प्रकार है—

य अपना परिचय गृहस्थों को स्वर्ण नहीं दते और न आहार आदि में आसक्त होते हैं। द्वेष शोक व पदासीनता से दूर, नहीं मिलने पर भी

खेद ग्लानि नहीं करते । बिना विश्रान्ति के योगशील बने रहते हैं । यादव ऐसे भिन्न भिन्नैषणा में तत्पर रहते हैं । अहिंसा एवं अहिंसकसाधु के स्वरूप को वहने वाले इस प्रवचन को भगवान् महावीर ने जगज्जीवो के रक्षणार्थ कहा है । यह आत्मा को हितकारी व परलोक में सुखदायी और भविष्य में भद्र का कारण है । शुद्ध न्याययुक्त तथा मोक्ष का सर्व श्रेष्ठ सरल मार्ग है । इससे सब दुःख और पापों का शमन होता है ।

अत्र पूर्वोक्त अहिंसा व्रत की पांच भावनाओं को कहते हैं—

मूल—“अस्स इमा पंच भावणातो पदमस्स वयस्स होंति पाणातिवाय-
चेरमण-परिकल्लेसवहुलं, पदमंठाण-गमण-गुण-जोग-जुंजण-जुगंतर निवा-
तियाए दिट्ठीए ईरियव्वं, कीडपयंग-तस-थावर-दयावरेण निच्चं पुप्फ-
फल-तय-पवाल-कंद-मूल-दग-मट्ठिय-बीज-हरिय-परिचज्जिएण समं,
एवं खलु सब्ब पाणा न हीलियव्वा, न निदियव्वा, न गरहियव्वा, न
इंसियव्वा, न छिदियव्वा, न भिदियव्वा, न वहियव्वा, न भयं दुक्खं च
किंचिल्लव्वा पावेउं, एवं ईरिया समिति जोगेण भावितो भवति अंतरप्पा
असबलमसंकिलिड्ड-निव्वण-चरित्त-भावणाए अहिंसए संजए सुसाहु ॥ १ ॥

वित्तीयं च मण्येण पावणं पावणं अहम्मियं दारुणं निस्संसं वहवंध
परिकिल्लेस वहुलं, (भय) जरा मरण परिकिल्लेस-संकिलिड्डं न कयावि
मण्येण पावतेण पावणं किंचि वि भायव्वं, एवं मणसमितिजोगेण भावितो
भवति अंतरप्पा, असबलमसंकिलिड्ड-निव्वण-चरित्त भावणाए अहिंसए
संजए सुसाहु ॥ २ ॥

ततियं च वतीते पावियाते पावणं न किंचिवि भासियव्वं, एवं वति
समिति जोगेण भावितो भवति अंतरप्पा, असबलमसंकिलिड्ड-निव्वण-
चरित्त भावणाए अहिंसओ संजओ सुसाहु ॥ ३ ॥

चउत्थं आहार एसणाए सुद्धं उंळं गवेसिययव्वं, अच्चाए अगदिते
अदुद्धे, अदीखे, अकलुणे, अविसादी, अपरितंत जोगी जयण-वडण-करण

१—क० अहम्मिक दारुणं निस्संसं वह वंध परिकिल्लेस वहुलं जरा मरण परि-

किल्लेस समं निड्ड, न कयावि च पावियाए (ओ) पावण ।

२ क अकहिए ।

३ असिट्ठे ।

चरिय-दिशय-गुण जोग संपन्नोगजुषे मिक्खु मिक्खेससाते छुषे, तसु दायेऊष मिक्खुचरियं उछ वेत्तुष आगतो गुरु जणस्स पासं, गमथा गमथातिचारे पडिक्कमथा पडिक्कते, अछोययदायसं च दाऊष गुरुजणस्स गुरुत्तदिट्ठस्सवा, जहोदणसं निरुयारं च अप्पामत्तो पुसरवि कसेसवाते पयतो पडिक्कमिचा वसंते आसीष सुदनिमन्ते सुदणमेव च भास-सुदजोग-नास-सन्माय-गोदिपण्णे, इम्ममसे, अरिमसे, सुदमसे, अदिमाइमसे, समाहिपमसे, सदा संवेगनिज्जरमसे, परतथ वच्छल्लमाविपमसे, उट्ठेऊष पडिक्कतुट्ठे जहारायवियं निर्मतइथा य, साइवे मावओ य दिइये य गुरु जणेषे उपदिट्ठे, संपमज्जिऊष ससीतं कायं, उहा करल, अमुच्चित्ते, अगिदे, अगडिय, अगरहित्ते, अणम्मोवदण्णे, अथाइले, अद्युदे, अर चट्ठित्ते, असुर सुरं अचव चर्ध, अइतमविलंजियं, अपरिसादि, आलोय मायसे जयं पयत्तेष ववगयसंजोग मणिगालं च, दिगय धूमं, अस्तोर्ध जणाणुलेवणभूय सजम जाया माया निमित्तं संजम भार-वइसइयाए सुजज्जा, पाय धारणइयाए सजणसं समियं, एधं आहार समितिजोगेसं माविओ भवति अतरंप्पा, असवल्लमसंक्किल्लिडु-निव्वण चरिच मावसाए अहिंसए संजए सुसाहु ॥ ४ ॥

दावा-“तस्येमा” पञ्चभावना प्रथमस्य प्रथमं भवति, प्राणातिपात विरमस परित्यगावां । प्रथमं स्थानं गमनशुद्धयोगयोजना-पुनान्तरनिपातिकपा दृष्टपा इरयितव्यम् ॥ १ ॥

क्रीट-पतङ्ग-प्रस श्यावर-इयापरेण नित्यं पुष्पफल-त्वक्-वस्त्रात् कन्मूल-वक्त्रं चक्षुः-बीजहरित-परिवर्जनपासमम् । एवं कतु सधे प्राणा न हीन पित्त्या, न मिन्दित्त्या, न गहित्त्या, न इस्त्या, [हिसित्त्या] न छेत्त्या, न मेत्त्या, न वपित्त्या, न गर्व दुःखं च निद्रित्त्या प्रापयित्वा, वपमीयांसमि तियोगेन भावितो महात्मन्तरात्मा, अरणाजसकिण्ड-निर्ग्रन्थारिश्च भावनया अहिंसकं संयत सुसाधु ।

द्वितीयस्य मनसा पापकेन पापक्रमधार्मिकं, वारुणं, सुरासं वषट्क-परिजेषा वहुतं मय मरण संज्ञेश-[परिजेषा] संवित्त्यं, न कदापि मनसा पापकेन

पापकं किञ्चिदपि ध्यात्वन्यम् । एवं मनः समिति योगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा
अशबलाऽसंक्रिय-निर्ग्रन्थ-चारित्रभावनया-अहिंसक संयत सुमाधु ।

तृतीयकच पाच पापकया पापकं न किञ्चिदपि भाषितव्यम्, एव वचन-समि-
ति-योगेन-भावितो भवत्यन्तरात्मा अशबलाऽसंक्रिय-निर्ग्रन्थ-चारित्र भावनया
अहिंसक संयत सुमाधु ।

चतुर्थमाहारपण्याया शुद्धमुच्छं गवेपयित्वम्, अज्ञातोऽगृह्यदृष्ट-अदीनो-अदीनो
ऽवरुणोऽविपादी अपरितान्तयोगी यत्न-घटन-वरण-चरित्र-दिनदृग्गुण योग-संग्र-
योगयुक्तो भिन्नभिन्नैपण्याया युक्तः, समुदानयित्वा भिक्षाचर्या उच्छं गृहीत्वाऽऽगतो
गुरुजनस्य पार्श्वं, गमनाऽगमनातिचारान् प्रतिक्रमण प्रि क्रान्तान् आलोचनाऽऽदान
कं च दत्त्वा, गुरुजनस्य गुरुसन्दिष्टस्य वा यथोपदेश निरतिचारं चाऽप्रमत्तः । पुनर-
प्यनेपण्यायां प्रयतः प्रतिक्रम्य प्रशान्त आसीन सुखनिपण्णो मुहूर्तमात्रं च ध्यान
शुभयोग-ज्ञान गोपितमना, धर्ममना, अधिमनाः, सुखमना, अधिग्रहमना, समाहित
मना, श्रद्धा सवेग-निर्जमना, प्रवर्तनायत्सकभाषितमना उत्थाय च प्रहृष्टतुष्टी,
यथारात्तिकं निमग्न्य च साधून्, भावतश्च वितीर्णं च, गुरुजनेन, उपदिष्ट समाख्यं
सशीर्षं कायं, तथा करतलममूर्च्छितोऽगृह्योऽग्रथितोऽगर्हितोऽनयुपपन्नोऽनाधिकोऽलु-
ब्धोऽनात्मरहितोऽसुरसुरम्-अचयचवम्-इति ध्वनि रहितम् अद्रुतमविलम्बितम्,
अपरिसादितम्, आलोकभाजनेजयं प्रयत्नेनव्यपगत संयोगमन्त्रिज्ञात्वा च, विगत धूम
मक्षोपाङ्गनानुलेपनभूतं, संयम-यात्रा मात्रा-निमित्तं, संयम भार वहनार्थाय शुद्धीत,
प्राणधारणार्थाय संयत समितम् । एवमाहार समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा
अशबलाऽसंक्रिय-निर्ग्रन्थ-चारित्र भावनयाऽहितक. संयतः सुमाधुः ।

अन्व०-“(तस्य) अहिंसा रूप एव (पदमस्य ववरस) प्रथम व्रत की (इमा
पंच भावणातो) ये आगे कही गईं पाच भावनायें (होति) होती हैं, (प्राणातिवाय
वेरमण परिवरुणदृष्ट्याए) प्राणातिपात विरमण रूप अहिंसा व्रत की रक्षा के लिये
(पदम) पहली भावना (ठण गमणगुण जोग जुंजण जुगत्तरः, निवातियाए)
ठहरने और चलने में स्वपर की पीड़ा रहित गुण योग को जोड़ने वाली तथा गाढ़ी
के जूवे प्रमाण भूमि पर गिरने वाली (दिट्ठीए) दृष्टि से (हरियव्वं) चलना चाहिए
(कीड पतग तस थावर दयावरेण) कीट पतंग आदि व्रस और स्थावर जीवों पर

क्या भाव दोस्ते (निष्कपुष्प पत्रतय पत्राल वृक्ष मूल वृक्षमृद्विष बीज हरिष परि
 वक्रिष्य) रुखा पृष्ठ पत्र गीही वृक्ष प्रदाव कृपल वन्द, मूल वृक्षादि के मूल
 और वृक्षा उत्प, कान कादि बी वृक्षी रिष्टी बीज रुदा वृक्ष कादि हरित इनका
 वृक्षव करने वृक्षे दो (रुक्ष) वृक्षी वृक्ष वृक्ष से वृक्षना कादि (एवं वृक्ष)
 ऐसे ही (रुक्ष पाया) बीज मात्र (नृक्षिरव्या) बीजना करने योग्य नहीं (न
 निदिदव्या) निम्ना करने योग्य नहीं (न गरहिव्या) गर्ह—किसी के सामने मुड़ाई करने
 योग्य नहीं है (न हिसिव्या) हिंसा करने योग्य नहीं (न द्विविदव्या) द्वन्द्व करने—
 वृक्षने योग्य नहीं (न निविव्या) रुखा माल कादि से मेहन करने योग्य
 नहीं (न वृक्षेपया) पीडा पहुचाने योग्य नहीं (न भव बुद्धिर्वक्रिषि कम्मा
 पावेठ) और बुद्धि भी भव तथा बुद्धि पहुचाने योग्य नहीं है (एवं) इस
 प्रकार (इति सभितिजोग्य) इयंसमिति के योग से (माभितो) माहित
 पवित्र (अंतरण्या) अन्तरात्मा (असवत्समसंकिट्टितव्य वरित भावव्याप)
 मलिनता रहित हिंसात्मक विचार और अस्वच्छ चारित्र की भावना
 याता (भवति) होता है वह (अहिंस्य) अहिंसक (संजय) संयत—धृष्टावाह
 कादि सावध कर्मों से अलग रहने वाला, (सुसाह) सुमाधु है ।

(विसीर्य) और दूसरी भावना (मयेयं पावपय) पापकारी अशुभ मन से
 (पावनं) पापयुक्त (अहम्मियं) अधार्मिक—धर्मविरुद्ध (शान्ति) शांति (निस्संसं)
 नृगंस—रुखा रहित (वृक्षपपरिक्रमेमवृक्ष) वृक्ष, वृक्ष और परित्यापकी अधिकता
 वाला (मय वरणापरिक्रमेस संकिट्टितं) मय, मृत्यु और क्लेशों से क्लेशावनत
 (न क्वापि मयस्य पापयेयं पावनं किंचि विष्णुव्याप्यं) पाप युक्त मन से बिने पाप
 कारी विचार से कभी थोड़ा भी नहीं करना चाहिए (एवं) इस प्रकार दूसरी
 (मयममिति जोग्य) मन की समिति मन की मन्त्र प्रवृत्ति के योग से (माभितो)
 माहित (अंतरण्या) जीव (असवत्समसंकिट्टितव्य वरित भावव्याप) मलिनता
 और संस्तरा रहित अस्वच्छ चारित्र की भावना न (अहिंस्य) हिंसा नहीं करने
 वाला (संजय) और पाप मर्क से प्रयुक्त होने से संयत (सुसाह) सुमाधु
 (भवति) होता है ।

अब तीसरी भावना—आह ममिनि रूप—(नतिर्यय) और तीसरी भावना—
 (पत्नीने पाविवाते) अशुभ भाग न (किंचि) कुछ भी (पावनं) पापयुक्त

अथन (न भासिदव्यं) नहीं दोलना चाहिए (एवं) इस प्रकार (दति समिति जोगेण) वाक्-समिति-भाषा समिति के योग से (भाधितो) भाधित (इतरप्पा) जीव (असवलमसंकिलिट्ट निव्यण चरित्त भादणाए) निर्मल, संक्लेशरहित और अखण्डित चारित्र्य की भावना वाला (अहिसओ) अहिसक (संजओ) मुनि (सुसाह) सुसाधु (भवति) होता है ।

चौथी एण्णासमिति (चउत्थं) चौथी भावना (आहार एण्णाए) आहार आदि की एण्णासे (सुद्धं) दोष रहित (उद्धं) सामूहिक अनेक घरों से प्राप्त भिक्षा की (गवेस्सिच्च) गवेपणा करनी चाहिए (ज्ञाए) ज्ञात सम्वन्ध वाला (अगदिते) मोह रहित (अदुट्ठं) दुष्टता रहित (अदीणे) क्रोध से दूर (अकलुणे) दीनता रहित (अबिसादी) खेद रहित (अपरित्तं जोगी) भ्रमण में आहारादि नहीं मिलने पर भी अथकयोगरूप प्रवृत्तिवाला (जयण घडण करण चरिय विण्णय गुण जोग संपन्नो जउत्ते) प्राप्त संयम प्रकृति में यत्ना और अप्राप्त सत्त्वर्म के हिये प्रयत्न करने वाला धिनय का सेवन करने वाला तथा क्षमा आदि गुणयोग से जो युक्त है (भिक्खु) वैसा भिक्षु (भिक्खेसणाते) भिक्षा की एण्णा में (जउत्ते) युक्त लगा हुआ (समुदाणेज्ज) अनेक घरों में फिर कर (भिक्ख चरियं उद्धं) थोड़ी २ भिक्षा (चेत्तूण) ग्रहण करके (आगतो गुरुजणस्स पासं) गुरुजन के पास आया हुआ, (गमणागमणातिचारे) गमनागमन के अतिचारों का (पडिक्कमण पडिक्कते) ईर्ष्याधिक प्रतिक्रमण से प्रतिक्रमण करके (गुरुजणस्स गुरुसदिट्ठसया) गुरु या गुरु से अधिकार पाये हुए उपाध्याय आदि के पास (आलोयण दायां च) ग्रहण किये हुए आहार पानी की यथावत् आलोचना कर उनको दिखादे (दाऊण) गुरुजनों की देकर (जहोपदेस) उपदेश के अनुसार (निरद्वयारं च) और अतिचार रहित (अप्पमत्तो) प्रमाद से दूर रहने वाले साधु (पुण्णवि) फिर भी (अणे सणाते) अज्ञात रूपमें छुटे हुए एण्णा के दोषों को (पयतो) यत्नवान् (पडिक्कमिन्ता) कायोत्सर्ग से प्रतिक्रमण करके (पसते) प्रशान्त दशावाला याने उत्सुकता रहित (आसीण सुहणिसन्ने) और आसन पर सुख पूर्वक निराबाधपने बैठा हुआ (भाणसुहजोगीणाण्णसब्भाय गोवियमणे) ध्यान गुरुजनों की सेवा आदि शुभ योग, ज्ञान-तत्त्वचिन्तन और स्वाध्याय-शास्त्र पाठ रूपसे मनको गोपन करके (धम्ममणे) धृत चारित्र्यरूप धर्म में मन वाला, (अबिमणे सुहमणे) शून्य चित्त

नहीं बना हुआ शुभ विचार वाला, (अशुभहमये समाहितमस्य) कलह मूल
या दुःप्रह से रहित मन वाला और स्वस्थ मन वाला (सद्वा स्वैगनिष्काम्ये)
भद्रा-तत्त्वज्ञान तथा संयममें निष्कल विचार, संवेग-मोहमाग में अमिताया वा
संसार से भय, और कम निर्जरा में उत्तर मन वाला (पवयस्य दपञ्चक भाविदम्ये)
प्रवचन-शास्त्र तथा शासन के प्रेम से भरपूर विचार वाला (गुह्यमेत) गुह्य में
बैठा रहे (छट्ठेकण्य) फिर उठकर (पहलुपुट्टे) अहिंसा प्रसन्न रहित
(वहारायणियं) जो शीघ्र आदि से बड़े हों उनके अनुसार (भावयो) भाव-
आदर बुद्धि से (साहये) साधुओं को (निमग्नता) निमग्न करके अपने
हृदय में से लेने की प्रार्थना करके (विश्रये य) और वेद के (गुरुद्वये) गुरुओं
से आहार के विधीय कर लेने व सबको देखने पर बाह आका देने पर (व्य
विट्टे) योग्य आसन पर बैठा हुआ। ससीस कार्य रहा करतक सपमग्नित्तु
मत्तक सहित शरीर तथा हाथ कतसे को रबीहरण से अच्छी तरह प्रमार्जन-
पूर्ण करके (अमुच्छिते) आहार में मूर्च्छा रहित (अगिद्वे) पाई वस्तु में
कालसा रहित (अगद्वि) अप्राप्त वस्तुओं में अमिताया रहित
(अगाद्वि) प्रतिकूल पदार्थों में नहीं नहीं करना हुआ (अशुभोपपन्ने
रसों में तल्लीन नहीं होता हुआ। अशुभले अलुब्ध अक्षयद्वि) इष्ट की भक्तिता
रहित, पदार्थों का लोभ नहीं करने वाला व परमार्थ बुद्धिवाला साधु (अमुरसुरं
अवचक्यं) सुर सुर, अब अब आदि अनि नहीं करता हुआ (अदुष्टमविहविर्ध)
अधिक बन्दी वा अधिक बेरी से नहीं अर्थात् मोक्षमके योग्य काल में (अपरिसाहिं)
भीचे नहीं मिलावे हुए (आलोभमारये) प्रकाश में और प्रकाशमान पात्र में (जयं)
मन व इन्द्रियों के संयम पूर्वक (पवयस्य) प्रयत्न पूर्वक (धयराय सभोग मणिमातृय)
रूप व सब के संयोग नहीं मिटाने हर संयोजन शेष रहित और सरस आहार
पर राग करने रूप इंगल शेष से दूर और (विगय भूमं) नीरस आदि प्रतिकूल
पदार्थ पर ईष्य करने रूप शून्यशेष से रहित (अक्लोयं) गाड़ी के चाक में तेल लगाने
और (अणालुसेयस्य मूर्धं) चाप पर शेष करने के समान बैसे परिमित आहार को
(संयम जाया माया निमित्तं) संयम भाद का बाधन करने के लिये (संयम भाद
पण्यद्वयाय पाण्य धारणद्वये) संयम रक्षा के लिये और केवल प्राण धारण मात्र
करने लिये (समिधं) समिति से युक्त संयम) साधु। भुञ्जता। आहार करे।

(एवं) इस प्रकार (आहार समिति जोगेण) आहार ग्रहण आदि की योग्य प्रवृत्ति के योग से (अंतरप्पा) अन्तरात्मा (भावितो) भावित (असवलमसकिलिट्ट निव्वण चरित्त भावणाए) निर्मल व संक्लेश रहित और अखंडित चरित्र की भावना वाला (अहिंसए) अहिंसक (संजए) संयत (सुसाहू) सुसाधु (भवति) होता है । -

मूल-“पंचमं आदान निक्खेयण समिद्धं-पीठ फलक-सिज्जा-संथा-
रग-वत्थ-पत्त-कंचल-दंडग-रयहरण-चोलपट्टग-मुखपोत्तिग-पायपुंछ
णादी, एयंपि संजमस्स उववृहणट्टयाए वात्ता-तवदंस-मसग-सीय-परि
रक्खणट्टयाए, उवगरणं रागदोसरहितं परिहरितव्वं, संजमेणं शिच्चं
पडिलेहण-पप्फोडण-पमज्जणाए अहो य राओ य अप्पमत्तेण होइसयं,
निक्खयव्वं च, गिरिहयव्वं च, भायण भंडोवहि उवगरणं, एवं आयाण
भंड-निक्खेयणा-समिति जोगेण भाविओ भवति अंतरप्पा, असवलमस-
किलिट्ठ-निव्वण-चरित्त भावणाए अहिंसए संजते सुसाहू ॥ ५ ॥

एवमिणं संवरस्सदारं सम्मं 'संवरियं' होति सुप्पणिहियं, इमेहि पंचहि-
विकारणेहि, मण-वयण-काय-परिरक्खणहि, शिच्चं आमरणंतं च एस
जोगो लेयव्वो, धितिमया, भतिमया, अणासवो अकलुप्पो अच्छिहो
असंकिलिट्ठो, सुद्धो सव्वजिणमणुत्तातो, एवं पढमं संवरदारं फासियं,
पालियं, सोहियं, तीरियं, किट्टियं, आराहियं आणाते अणुपालियं भवति ।
एवं नायसुणिणा भगवथा पन्नवियं, परुवियं, पसिद्धं, सिद्धं, सिद्धवरसासण
मिणं आववित्तं, सुदेसित्तं, पसन्थं । पढमं संवरदारं समच्चं त्तिवेमि । सूत्र ३ ।
२३ । इति पढमं संवरदारं ।

छाया-“पञ्चमी-आदान निक्षेपणसमिति -“पीठ फलक-शय्या-संस्तारक-
बल्ल, पात्र-कन्वल-दण्डक-रजोहरण-चोलपट्टक-मुखपोत्तिका-पादपुञ्जनादयः,
एतदपि सव्यस्योपबृंहणार्थं, वाताऽऽतप दश भशक शीतपरिरक्षणार्थमुपकरणं, राग
द्वे परहितं परिहर्तव्यम्* सयमे(ति)न नित्यं प्रतिलेखन-प्रस्फोटन-प्रमार्जनाभि अहश्च

- १ क सचरिय । २ क अकलसो । ३ क अच्छिहो अपरिस्पाती ।

* वारयितव्यमित्यर्थः ।

नहीं बना हुआ शुभ विचार वाला, (अभिगृह्यमाणे समाहित्यम्) कलह मूत्र
 या दुराग्रह से रहित मन वाला और स्थिर मन वाला (सदा स्वैरनिष्कलम्)
 भद्रा-वैश्वानर तथा संयममें निष्कल विश्वास, सबैग-सोदभाग में अभिलाषा या
 संसार त्रय, और कर्म निर्जरा में तत्पर मन वाला (पश्यत्यप्यक्षयमाविद्यमाने)
 प्रयत्न-शास्त्र तथा शासन के प्रेम से भरपूर विचार वाला (सुदृढमेतत्) सुदृढ भर
 ऐसा बैठा रहे (वदतेऽप्ययम्) फिर बड़बड़ (पहटपहट) अहिंस्य प्रमोह सहित
 (अहारादधिर्षं) जो शीका आदि से बड़े हों उनके अनुसार (भावयो) भाव-
 आहार बुद्धि से (साहवे) साधुओं को (निमग्नता) निमग्न करके अर्थात्
 वस्त्रों से लेने की प्रार्थना करके (विद्वत्ते य) और वेद के (गुरुजनेषु) गुरुजनों
 से आहार के वितीर्ण कर लेने व सबको देखने पर बाह्य आकाश देने पर (उप-
 विद्वत्ते) योग्य आसन पर बैठा हुआ (सखीस कार्यं कदा करतुं संप्रसन्नितम्)
 मस्तक सहित शरीर तथा हाथ कटखे को रजोहरण से अच्छी तरह प्रसादन-
 पूज करके (अमुष्मिन्ते) आहार में मूर्छा रहित (अगिदे) पाई वस्तु में
 लाजसा रहित (अगदित्) अमात्र वस्तुओं में अभिलाषा रहित
 (अगरहिते) प्रकृत पदार्थों में नहीं नहीं करना हुआ (अणुमोदयन्ते
 रसो मे वस्तीन नही होता हुआ (अथाहमे असुखे अयत्तित्ते) हृदय की ममिता
 रहित, पदार्थों का लोभ नहीं करने वाला व परमार्थ बुद्धिवाला साधु (असुरसुरं
 अचवचपं) सुर सुर, जब जब आदि ज्ञान नहीं करता हुआ (अदुतमयित्तिर्षं)
 अधिक जल्दी या कमिक बेरी से नहीं अर्थात् मोक्षके दोष काल में (अपरिसप्रि)
 नीचे नहीं गिरते हुए (आलोभमाणे) प्रकाश में और प्रकाशमान प्राप्त में (जर्षं)
 मन व इन्द्रियों के संयम पूर्वक (पश्यत्य) प्रयत्न पूर्वक (अपश्य सयोग मयिगाक्ष्य)
 दूध व स्रग्धर के संयोग नहीं मिश्राने रूप संयोजना होय रहित और सरस आहार
 पर राग करम रूप इंगल हाप से दूर और (विगम धूम) नीरस आदि प्रकृत
 पदार्थ पर होंप करने रूप भूषणोप से रहित (अकलोर्षं) गाड़ी के पादमें सेल लगाने
 और (अप्राणुलेष्य भूयं) घास पर लेप करम के समान जैसे परिमित आहार को
 (संयम जाया माया निमित्तं) संयम मार का पाइन करने के लिये (संयम मार
 पद्मपद्मपाय पाय धारणद्वये) संयम रक्षा के लिये और केवल प्राण धारण मात्र
 करने लिये (समिर्षं) समिति से मुक्त संवर्णण) साधु। भुञ्जेया। आहार करे।

(एवं) इत प्रकार (आहार समिति जोगेण) आहार ग्रहण आदि की योग्य प्रवृत्ति के योग से (अंतरप्पा) अन्तरात्मा (भावितो) भावित (असवलमसंकिलिट्ट निव्वण चरित्त भावणाए) निर्मल व संक्लेश रहित और अखंडित चरित्र की भावना वाला (अहिंसए) अहिंसक (सजए) संयत (सुसाहू) सुसाधु (भवति) होता है ।

मूल—“पंचमं आदान निव्वेवण समिद्धं-पीठ फलग-सिज्जा-संथा-
रग-वत्थ-पत्त-कंवल-दंडग-रयहरण-चोलपट्टग-मुहपोत्तिग-पायपुंछ
णादी, एयंपि संजमस्स उववृहणट्टयाए वाता-तददंस-मसग-सीय-परि
रव्वणणट्टयाए, उवगरणं रागदोसरहितं परिहरितव्वं, संजमेणं शिच्चं
पडिलेहण-पप्फोडण-पमज्जणाए अहो य राथो य अप्पमत्तेण होइसययं,
निव्वित्तयव्वं च, गिण्हियव्वं च, मायण भंडोवहि उवगरणं, एवं आयाण
भंड-निव्वेवणा-समिति जोगेण भाविओ भवति अंतरप्पा, असवलमसं-
किलिट्ट-निव्वण-चरित्त भावणाए अहिंसए संजते सुसाहू ॥ ५ ॥

एवमिणं संवरस्सदारं सम्मं 'संवरियं' होति सुप्पणिहियं, इमेहिं पंचहि-
विकारणेहिं, मण-वयण-काय-परिरक्खिण्हिं, शिच्चं आमरणांतं च एस
जोगो शेषव्वो, धित्तमया, भित्तमया, अणासवो अकलुप्पो अचिच्छदो
असंकिलिट्टो, सुद्धो सव्वजिणमणुआतो, एवं पढमं संवरदारं फासियं,
पालियं, सोहियं, तीरियं, किट्टियं, आराहियं आणाते अणुपालियं भवति ।
एवं नायमणिणा भगवथा पन्नवियं, परुवियं, पसिद्धं, सिद्धं, सिद्धवरसासण
मिणं आववित्तं, सुदेसित्तं, पसन्त्यं । पढमं संवरदारं समत्तं चिचेमि । सूत्र ३ ।
२३ । इति पढमं संवरदारं ।

छाया—“पञ्चमी-आदान निव्वेवणसमिति —“पीठ फलग-शय्या-सस्तारक-
वत्थ, - पात्रं-कन्धल-दण्डक-रजोहरण-चोलपट्टक-मुखपोतिका-पादपुञ्जनादय ,
एतदपि सयमस्योपवृत्तार्थं, वाताऽऽतप दंश मशक शीतपरिरक्षणार्थमुपकरण, राग
द्वेपरहितं परिहर्तव्यम्॥ सयमे(ते)न नित्यं प्रतिलेखन-प्रस्फोटन-प्रमार्जनाभि अद्व

१ क सचरिय । २ क अकुल्लयो । ३ क अचिच्छदो अपरिस्साती ।

॥ वारयितव्यमित्यर्थः ।

रात्रिश्च अप्रमत्तेन भवति सततम् निक्षेपपञ्च प्रहीतकृपञ्च, -माजनमरहोपप्लुपकरम् एवमादान-भण्ड निक्षेपणा-समितिद्योगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा-अरावसाप्त-किराष्ट-निर्गुण-चारित्र्य भावनयाऽहिंसक सयत् सुसाधु ।

एवमिदं संवरस्य द्वार सत्यम् सवृत्त भवति सुप्रसिद्धितम्, एतै पञ्चभि कारखे र्मनो वचन कायपरिरक्षितैर्नित्यमात्मरय्यान्तं चैपयोगेनेत्करोषृतिमता मतिमता अनालबोऽङ्गुपोऽङ्गुद्राऽसंक्षिप्त, ह्युद्ध सर्वजिनानुज्ञात, एव प्रथम संवरद्वारं, सृष्ट, पालितं, शोषितं, सीर्यं, कीर्तितमाराधितमाह्वयाऽनुपालितं भवति । एवं हस्तमुनिना भगवता प्रहृषित प्ररूपितं, प्रसिद्धं, सिद्धं सिद्धयत्सासनमिरमणीय [आवयापित] सुदेशितं, मरात्तं, प्रथमं संवरद्वारं समाप्तमितिब्रवीमि । सूत्र ३।२३।

• इति प्रथमं संवरद्वारम् •

आदान निक्षेपणा समिति रूप भावना-

अन्व०-“(पंचमं) पांचवी भावना (आदान निक्षेपणसमिद्धि) आदान निक्षेपणा समिति (पीठ फलक सिंहासवारग वस्त्र पत्त कवच हंडग रथहरण बोल पट्टग-मुहपोसिंग, पाम पु ब्रह्मासी) पीठ फलक-पाट शय्या संस्तारक-छोटा बिजौना, वस्त्र, पात्र, कवच, हंडक रथोहरण, बोलपट्टक पहनने का कपड़ा, मुहपोसिक-मुह बक्षिका, पादप्रोन्नहन, आवि (एवंपि) यह सब भी (संजमरस) समय क (एवबूहस दृयाए) पोषण क शिप (वातातब-हंस मसगसीय परिक्कणदृयाए) धामु, आतप-धूप, हंश, मराक, मण्डर और सर्पोंकी रक्षाके लिये (एवगरण्य) उपरोक्त उपकरणों के (राग होसरहित) राग द्वेष से रहित (पज्जिरितव्यं) धारण करना आदि (संज्ञ मेर्या) संयम पूर्वक, (शिष्य) सदा (पज्जिरेहण पण्णेकण पमकय्याए) प्रति क्षेत्रना-वेक्षणा, प्रस्फोटन-भट्कना व प्रसारन करने से (अहेमराचोय) दिन व रात्रि में (सयत्) सदा (अप्पमत्तेय) प्रमाद रहित (भिक्षियव्यं) रक्षने योग्य और (गिण्हियव्यं) ग्रहण करने-लेने योग्य (होइ) होता है (मायण मंखेवदि एवगरण्यं) माजन-पात्र, मिट्टी के भाँड और उपधि-वस्त्र आदि उपकरण-वपयोगी सामग्री जो हैं (एवं) इस प्रकार (आयाण मंड निक्खेवणा समिति दोगेय) आदान भावना निक्षेपणा समिति के बाग से (भाविचो) भावित-युक्त (अंतरप्पा) अन्तरात्मा

(असंबलमसंकलितं निर्व्वण चरित्त भावणाए) निर्मल व संक्लेश रहित और अखण्डित चरित्र की भावना से (अहिंसए संजए सुसाहु) अहिंसक, संयत सुसाधु (भवति) होता है ।

(एवमिण संवरस्सदारं) इस प्रकार यह प्रथम संवरद्वार (सम्मं) अच्छी तरह (संवरियं) अङ्गीकृत (सुप्पणिहियं) उत्तम रीति से प्रणिधान में लाया हुआ, (होति) होता है (इमेहिं पंचहिंवि कारणेहिं) इन पांचों कारणों से (मण वयण-फाय परिरक्खिएहिं) मन वचन कायो से परिरक्षित (णिच्चं) सदा (आमरणा-संच) मरण पर्यन्त (एसजोगो) यह योग (धित्तिमया मतिमया) धैर्यवान् व बुद्धिमान् से (अणासवो) आस्रव रहित (अकलुणो) कायरता रहित (अच्छिदो) श्रुति रहित (असंकलितो) संक्लेश रहित (सुदो) शुद्ध अतएव (सब्वजिण भणुन्नातो) सर्व जिनों से अनुज्ञात-अनुमत है । (एवं) इस प्रकार (पढमं) पहला (संवर दारं) संवरद्वार (फासियं) स्पृष्ट-गृहीत (पालिय) पालित (सोहियं) शोधित-शुद्ध किया (तिरियं) पूरा पाला हुआ (किट्ठियं) कीर्तित (आराद्धियं) आराधित (आणाते अणु पालिय) आज्ञा से अनुपालित (भवति) होता है । (एवं) इस प्रकार (नायमुणिणा भगवया) भगवान् ज्ञातमुनि महावीर-ने (पन्नवियं) प्रज्ञापित (परुवियं) प्ररूपित (पसिद्धं) प्रसिद्ध (सिद्धं) सिद्ध है (सिद्धवरसासणमियं) यह सिद्धवर शासन (आघवितं) बहुमूल्य (सुवेसितं) उपदेशित (पसत्थं) प्रशस्त (पढमं) पहला (संवरदारं) संवरद्वार (समत्तं) समाप्त हुआ (त्तिथेमि) ऐसा मैं कहता हूँ । सूत्र ३ । २३ ।

भावार्थ-इस सूत्र में अहिंसाव्रत को विशुद्ध रूप से पालने के लिये पांच भावनायें कही गई हैं । ये भावनायें अहिंसाव्रत का रक्षण तथा पोषण करने वाली हैं । इन भावनाओं के बल पर ही अहिंसा-प्राणातिपात विरमणरूप व्रत पालित हो सकता है, अन्यथा नहीं । अतएव उन पांच भावनाओं के स्वरूपों का निरूपण किया जाता है ।

अहिंसा-व्रत की पांच भावनाओं में पहली भावना-ईर्ष्या समिति-गमन आगमन की क्रिया में हिंसा न होने की सावधान प्रवृत्ति है । इससे पहली बात यह है कि युग प्रमाण-प्राय चार हाथ तक भूमि पर दृष्टि रखते हुए पवित्र भूतल पर चलना चाहिए, जिससे कीट पतङ्ग आदि व्रस स्थावर जीवों की दया पाली जाय ।

दूसरी बात-पुष्प, फल, वृक्ष की गीली त्वचा, हरे पत्ते, फन्दा, मूत्र, जल, मिठा, चीज और हरी चीजें, इन सब वस्तुओं को नहीं खाना। किसी भी प्राणी की हीला, निन्दा, गर्हा, हत्या, छेदन, भेदन, बध नहीं करना। किसी भी प्राणी को मग में वा कुत्तमें नहीं पहुँचाना। इस ईश्या समिति योग से भावित अन्तरात्मा वाक्ता अहिंसा, संयत एवं सुसाधु होता है।

दूसरी भावना यह है कि पापयुक्त मन से किसी भी पापमय कर्म को नहीं करना चाहिए। मनतक में दुरे विचारों को स्थान नहीं देना चाहिए। इस प्रकार मन समिति योग से अन्तरात्मा भावित होता है।

तीसरी भावना है कि-पापमयी वाणीमें पापयुक्त वचनको नहीं बोलना चाहिए। इस प्रकार वचन समिति योग से अन्तरात्मा भावित होता है।

चौथी भावना आहारेपणा है-इसमें भिक्षा शुद्धि के लिये साधु अपना विशेष परिचय नहीं दे। उत्तम भोजन में आसक्त नहीं हो। नहीं मिलने पर दीनता या ईष्य प्रगट नहीं कर। विधि पूर्वक निर्वोष भिक्षा को ग्रहण करने पर भा अहिंसा की आराधना के लिये यह आवश्यक है कि वह भिक्षा गुहजनों को दिगार्द्र जाय। भिक्षा में लगन वाले दावों की गुह के पास आलोचना की जाय। और गुह की आत्मा मात्र हानि पर सावधानता के साथ सर्वथा सान्त्वनाय से तृप्त हो बैठकर ध्यान दिया जाय। इसके बाद अपने प्राप्त आहार से वात्मस्वरूप पूर्वक ठहर मुनिओं को आमन्त्रण कर। मोह या स्वार्थ शुद्धि से नहीं किन्तु मर्यादा, सबेग और कर्म निजरा के भाव से। इस प्रकार गुह और स्वधर्मी-मुनिओं का आदर करके स्वयं भोजन को बैठे। भोजन के पूरा मरतक में लफर सारी बेह और विशेषतः कर लल का प्रमाजन किया जाय। फिर शान्ति एवं मन्ताप के साथ प्रकारा वासे स्थान गया पात्र में भोजन किया जाय।

भोजन करते गुरुगुरु या जपमय आदि ध्यान नहीं कर। चति जल्दी या अधिक शिथिल भी नहीं कर।

संयम पात्र और रह की रक्षा हो आहार का प्रधान हनु दे अतएव नीच नहीं गिरान हूय पूरा यत्नमा के साथ भोजन करें।

अहिंसक मायुष्यों की कितनी पराज दिनपर्या है। भूय के समय भी कैसे धीरज का उद्गम दे। भाविर्षा व माय कैसे आदर भाव दे? तभी पराजान बुद्धि में

भी क्या भोजन जन्य मनोमालिन्य हो सकता है ? नहीं । अहिंसा की यह चतुर्भावना है । इस प्रकार आहार समिति योगसे अन्तरात्मा भावित होता है ।

पांचवी आदान निक्षेपणा समिति है—

इसमें समय के साधन उपकरण जैसे, पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक, बरपात्र, कम्बल, दण्ड, रजोहरण, चोलपट्टक, मुखवस्त्रिका, पाद पुच्छन आदि । सब भी केवल संयमवृद्धि के लिये होते हैं जो हवा, धूप, दंश, मशक, ठंडी आदि से आत्म रक्षार्थ राग-द्वेष रहित धारण करने योग्य हैं । प्रतिदिन इन भाण्डोपकरण की देखभाल और प्रमार्जना रूप क्रियाओं से शुद्धि करनी चाहिए । इसके लिये अहर्निश प्रमाद रहित होना चाहिए । इस प्रकार भाण्डोपकरण सम्बन्धी आदान निक्षेपरूप समिति के योग से अन्तरात्मा भावित होता है । निर्मल असंक्रिंत तथा अखण्डित चारित्र की भावना से अहिंसक, संयत, सुसाधु होते हैं । इस प्रकार यह संवरद्वार सम्यग् अङ्गीकृत व सुपालित होता है । मन वचन एवं काय से सुशुद्ध इन पांच कारणों से सदा भरणकाल पर्यन्त यह योग धैर्यवान् व मतिमत् सयमिओं से पालने योग्य है । इसमें आसक्त न हो, महिनता न हो—तृटि न । सकलेश न हो, अर्थात् सर्वथा बिशुद्ध होना चाहिए । ऐसा ही सर्व जिनेन्द्रों के द्वारा कहा गया है । ऐसी ही आराधना से यह संवरद्वार स्पृष्ट, पालित, शोधित, तीव्र कीर्तित और आरावित होता है । और भगवान् की आज्ञानुसार अनुपालित होता है । इस प्रकार ज्ञातमुनि-भगवान् महावीर ने फरमाया है जो सिद्ध है और प्रसिद्ध है । यह श्रेष्ठ सिद्ध का अनुशासन है, बहुमूल्य है, उपदिष्ट है । प्रशस्त है । इस प्रकार यह प्रथम संवरद्वार पूर्ण हुआ । सू० १।२३ ।

❀ समाप्तं प्रथमं संवरद्वारम् ❀

❀ सच्चक्षयं सान्वयार्थं भावार्थम् ❀

* अथ *

ॐ द्वितीय संवर द्वारम् ॐ

पहले संवरद्वार में प्राणातिपात विरमणव्रत कहा गया अब शूपाबाह विरमणव्रत कहते हैं। अहिंसा की संयोजनसाधना के लिये शूपाबाह विरमण-संस्थ की आवश्यकता है। संस्थ के बिना अहिंसा का पूर्ण पावन नहीं हो सकता। इसलिये अहिंसा के बाद शूपाबाह विरमणरूप दूसरा संवरद्वार कहा जाता है। जिसका प्रथम सूत्र निम्नलिखित है—

सत्य का महिमाशाली स्वरूप—

मूल—'' अथ ! चित्ति य च सच्चयणं सुखं सुचिरं सिद्धं सुजायं सुमा-
सिद्धं सुव्ययं सुकर्म सुदिदृ सुपतिष्ठितं सुपरक्षिप्यतं सुसंजमिय वयस्य पुर्य
सुर धर नर बसम पथर बसवग सुविहिय जस्य भद्रभयं, परमसाधु धम्मचरस्य
सव नियम परिग्गहियं, सुगतिपहदेसगं च सोगुचम वयमियां विजाहर ग
गणगमस्य विमायसाहफे, सम्म मग्ग सिद्धि पद्वेसकं अपितहं संसच्चं उज्जुपं
अकुद्धिं भूयत्थं, अत्यसां विमुद्धं उज्जोयकरं पमामकं भवति सम्ममायास
जीवसोगे अविसंवादि अहत्य मधुरं पथक्खं दयिषयं वज्रं अन्धेरकारकं
अवत्यंतेसु पदुणसु माणुसाणं सच्चेश महासमुद मज्जेवि चिद्ध ति न
निमज्जति मूढाशिया वि पाया सच्चेश य उदग सममं मिथि न पुज्झ न प
भरति वाहेति समंति । सच्चेश्य अगणि संममं मिथि न इन्दमंति उज्जुगा

मणूसा । सच्चेण य तच्चेण तउ लोहसीसकाइं छिवंति घरेति नय डज्झंति,
मणूसा । पव्वयकड्ढकाहिं मुच्चंते न य मरंति । सच्चेण य परिग्ग
हिया असि. पंजरगया समराओ विणिइंति, अण्णहाय सच्चवादी वह-
चंधभियोगवेर घोरेहिं पमुच्चंतिअमिच्चमज्झाहिं निंइंति अण्णहा य सच्च-
वादी । सादेव्वाणिय देवयाओ करेति सच्चवयग्गे रताणं ।

छाया-“जम्बू ? द्वितीयञ्चसत्यवचनं शुद्धं सुचितं शिवं मुजातं सुभाषितं सुव्रतं
सुकथितं सुदिष्टं सुप्रतिष्ठितं सुप्रतिष्ठितयशस्कं सुसंयमितं, वचनोक्तं सुरवर नर वृषभ
प्रवर बलवत्सुविहितजन बहुमत परमसाधु धर्मचरणम् तपोनियम परिगृहीतं सुगति-
पददेशकं च लोकोत्तमं व्रतमिदं विद्याधर गगन गमन विज्ञान साधकं रघुर्भार्ग सिद्धि
पद देशकम् अवितथं तत्सत्यमृजुकम् अकुटिलं भूयोऽर्थमर्थतो विशुद्धमुद्योतकरं प्रभा-
सक भवति सर्वभाषाणां जीवलोकेऽविसंवादि यथार्थ मधुरं प्रत्यक्षं दैवतकमिव यत्
वाअर्थकारकम् अवस्थान्तरेषु बहुषु मनुष्याणां सत्येन महासमुद्रमध्येऽपि मूढानीका
अपि पोता । सत्येन च उदकसम्भ्रमेऽपि न निमज्जन्ति न म्रियन्ते तीरते लभन्ते ।
सत्येन च बहि सम्भ्रमेऽपि न दहन्ते ऋजुका मनुष्याः सत्येन च तप्ततैल तप्तलोहसीस-
कानि क्षिपन्ति, धरन्ति न च दहन्ते मनुष्याः । पर्वतकटकविमुच्यन्ते । न च म्रियन्ते
सत्येन च परिगृहीता असिपञ्जरगता. समरादपि निर्यान्ति, अनघाश्च सत्यवादिनो
बध वन्धाभियोगवैर घोरेभ्यः प्रमुच्यन्ते चामित्रमध्यादपि निर्यान्ति अनघाश्च सत्य-
वादिन सादेव्यानि (साभिध्यानि) कुर्वन्ति सत्यवचनेरतानाम् ।

अन्य०-“(जम्बू ?) हे शिष्य जम्बू ! (विविच) अहिंसारूप प्रथम संवर के
बाद फिर दूसरा संवर (सत्यवचन) सत्यवचन जो सज्जनों के लिये अथवा द्रव्य
और गुणों के लिये हितकारी है (शुद्ध) दोष रहित (सुचिन्) पवित्र (सिद्ध)
उपद्रव रहित (मुजातं) शुभ विचार से उत्पन्न (सुभाषितं) अतएव सुभाषित
(सुवच) सुव्रत-श्रेष्ठ व्रत रूप (सुकथितं) और सम्यक् विचार पूर्वक कदा गया
(सुदिष्टं) कल्याण के साधन रूप से ज्ञानियों के द्वारा अच्छी तरह देखा गया च
(सुप्रतिष्ठितं) सुप्रतिष्ठित-सभी प्रमाणों से प्रतिष्ठा प्राप्त है (सुप्रतिष्ठितयजम)
अच्छी तरह स्थिर कीर्ति वाला (सुसंजमिय वयण बुद्धयं) सम्यक् प्रकार के संयम
युक्त धर्मों से ढोला गया, (सुरवर) उत्तम जाति के देव (नर वृषभ) प्रधान
पुरुष (पवर बलवत् सुविष्टियजणवृद्धमर्थ) अनिशय बलधारी और सुविहित मनुष्य

सत्यन पुरुष का सत्यव्रत बहुत माना हुआ है (परम साहस धर्म धरत्यं) नैतिक सुनिष्ठों का धार्मिक अनुष्ठान (तप नियम परिग्राह्यं) और तप नियम से स्वीकार किया गया है (सुगतिपहदेसर्ग) सुगति मार्ग का उपवेशक (य) और (लोमुत्स्यं) लोक में उत्तम (वयमिण्यं) यह सत्य व्रत है, (बिज्राहुर गगण्य गम्य विज्राण साहर्क) विद्याधरों की आकाश गामिनी आदि विद्याधरों का साधन (सम्य मग्य सिद्धि पद हेमक) स्वर्ग के मार्ग और सिद्धि पथ का प्रवर्तक तथा (अविच्छेद) असत्य से रहित है (स सत्यं) वह सत्य नाम का दूसरा स्वर (उग्रमुयं) सरल भाव से प्रवर्तित होने से अशु तथा (अकुर्विजं) कुटिलता रहित (भूयत्वं) सब भूत अर्थ वत्ता (अत्यतो विसुखं) अर्थ प्रयोजन से विरुद्ध (उग्रमोचक) पदार्थ का प्रकाशक (सख्य भाषाण्यं) सख पदार्थों का (जीव लोने) जीव लोक में (परमानन्द) अच्छी तरह कमान करने वाला (भवति) होता है (अविस्त्वादि) हाथ विरोध रहित (जहत्य मधुरं) अकार्य होने से मधुर (पञ्चक्यं) प्रत्यक्ष (इयिचयं) ईश्वर श्व-की तरह (जं) जो (माणुसाण्यं) मनुष्यों की (बहुपसु अवत्त्वर्तरेसु) बहुत सी अवस्थाओं में-बरा विरोध में (तं) वह सत्य (अच्येदर कारकं) आश्चर्य कारक होता है (सख्येण) सत्य के कारण (महासमुद्रमग्नेधि) बड़े समुद्र के मध्य में भी (मूढाधिवा वि) मूढानौक विगृह्य में पड़े हुए बालकसमूह वाले भी (पोषा) पोष-नौका अहाज 'पार लगते हैं (सख्येण्य) और सत्य से (उग्रसंममं मिधि) जल के तेज प्रवाह में या मँबर में भी (न मुग्ध) नहीं डूबते (न य मरंति) और अपमृत्यु से नहीं मरते हैं (थाई ते समति) गिरे हुए वे सत्यप्राप्ती रताप-भूमि तक को प्राप्त करते हैं अर्थात् डूबने के प्रसङ्ग में भी वे सत्यप्राप्ती सत्य के प्रभाव से आश्रय पा लेते हैं (सख्येण्य) और सत्य से (अगणि संममं मिधि) अग्नि के पक्कर में भी (न डग्मंति) नहीं जलते हैं (उग्रगुणा मणुसा) सरल हृदय वाले मनुष्य (सख्येण्य) फिर सत्य के प्रभाव से (तल तल तल लोहसीस काई) तब हुए टेक, साम्या, सोह और सीसे को (द्विवति) बूँ लेते (य) और (धरेति) हाथ में धर लेते हैं । (न डग्मंति) जलते नहीं (मणुसा, पञ्चय कडकादि मुग्धते) मनुष्य पर्वतके शिखरने गिराये जाते हैं, (नय मरंति) फिर भी वे नहीं मरते हैं वह सत्यका प्रताप है (सख्येण्य परिग्राह्या) और सत्य से परिगृहीत माने सत्य व्रत बाल पुरुष (अमिपंजलगया) अतिपंजरगत-पिंजरे की तरह पारो और गङ्गा पारिधों से

पेरे हुए (समराओ वि) समरमूमि से भी (अणहा) अक्षत-वाल वाल बचे हुए (णिहति) निकल जाते हैं (य) और (सच्चवादी) सत्यवादी (बहवंध भियोग वेर चोरेहिं) बंध बन्ध, अभियोग-वलात्कार पकड़े जाना और भयङ्कर शत्रुता के प्रसंगों से (पमुच्चंति) छूट-जाते हैं (य) और (अमित्तमज्झाहिं) शत्रुओं के समूह से (अणहा) बिना वाधा के (सच्चवादी) सत्यवादी मनुष्य (णिहति) निकल जाते हैं (य) और (सच्चवयणे रत्तालं) सत्य वचन में रत रहने वाले मनुष्यों की (देवयाओ) देव लोग (सादेव्वाणि) सान्निध्य-साहाय्य (करेंति) करते हैं ।

मूल—“तं सच्चं भगवं तित्थकर सुभासियं, दसविहं
चोदसपुब्बीहिं पाहुडत्थविदितं महरिसीखय समयप्पदिन्नं देविंदनरिद
भासियत्थं वेमाणिय साहिगं महत्थं भंतोसहि विज्जासाहणत्थं चारणगण
समण सिद्धविज्जं, मणुयगणाणं वंदणिज्जं, अमरगणाणं अच्चणिज्जं असुर-
गणाणं य पूयणिज्जं अण्येगपासंडि परिग्गहितं । जं तं लोकंमि सारभूयं,
गंभीरतरं महासमुदाओ । थिरतरगं मेरुपव्वयाओ । सोमतरगं चंदमंडलाओ ।
दिचतरं सूरमंडलाओ । विमलतरं सरयनहयलाओ । सुरभितरं गंधमादणा-
ओ जेविय लोरेग्गि अपरिसेसा भंतजोगा जवा य विज्जा य जंभका य
अत्थाणि य सत्थाणि य सिक्खलाओ य आगमा य सव्वाणिविताहं सच्चे
पइड्डियाहं । सच्चंपि य संजमस्स उवरोहकारकं किंचि न वत्तन्नं हिंसासा-
वज्जसंपउत्तं । भेय विक्रहकारकं, अणत्थवाय कलहकारकं । अणज्जं अव-
वाय विवाय संपउत्तं बेलवं, ओजधेज्जबहुलं, निज्जज्जं, लोथगरहणिज्जं, दुदिट्ठं
दुस्सुर्यं, अमुणियं । अप्पणो थवणा परेसु निंदा । न तंसि मेहावी, ण तंसि
धओ न तंसि पियधम्मो न तं कुलीणो न तंसि दाणव(प)ती न तंसि सूरौ
न तंसि पडिरूवो न तंसि लड्ढो न पंडिओ न बहुस्सुओ नवि य तं तवस्सी
ण यावि परलोगखिच्छिय मतीऽसि सव्वकालं जातिकुल रूव बाहिरोगेण
चाविजं होइ वज्जखिज्जं दुहिलं (दुहओ) उवयार मतिक्कंतं एवं विहं
सच्चंपि न वत्तन्नं । अहकेरिसकं पुणाइ सच्चं तु भासियव्वं ? जं तं दव्वेहिं

पञ्चवेदिय गुणेहि कम्मेहि बहुविदेहि सिन्धेहि आगमेहि य नेमस्त्वाप
 निधा उवसमा सद्यि समास संधि पदहेतु ओगिय उखादि किरिया वि
 हाय धातु सर विमोचि वमणुचं सिद्धिदसिदिहपिसन्ध्वं बह मणियं तह
 य कम्मुया होइ दुवालसविहा होइमासा, वयसपि य होइ सोलसविह ।
 एवं भरइत मणुभायं समिबिस्वयं संलपण कालमिय वत्तन् ॥ २५॥

१. छापा-तत्सत्यं मगवतीर्षकर सुमापितं दराविर्षं, अगुराशुर्भिभि प्रावृता
 विहित महर्षीणां च समयप्रवृत्तं वेवेन्द्र नरेन्द्र भापितार्यं वैमानिकसाधित महाबं मन्त्र-
 पथिविद्यासापनार्यम् । आरव्यग्य भ्रमण सिद्धिमेधं मनुजगणानां वन्तनीयम् कमर
 गणानां ज्ञानार्थीयम्, अमुरगणानां पूजनीयम्, अनेकपापपरिहारीश्वरम्, दत्त
 शोकं सारमूतं शम्भोरत्नं महासमुद्रात् स्थिरतरुं मेकपर्वतात्, सौम्यतरुं चन्द्रमण्ड-
 लान्, दीप्ततरुं सूर्यमण्डलान्, विमलतरुं शङ्खनभस्तलान्, सुरमितरुं गन्धमादनान् ।
 वेदविबलोकेऽपरिशेषा मन्त्रयोगो जपाश्च विद्याश्च कर्मकाश्च अस्त्राश्च शस्त्राश्च
 च शिवाश्चाऽऽगमाश्च सत्यानि च तानि सत्ये प्रसिद्धितानि, सत्यमपि च संस-
 र्गोपरोपकारक किञ्चिदपि नोपलब्धम् हिंसासाधनसम्प्रयुक्तं मेध-विक्रमाकारकम्
 अनयवाक्यलङ्कारकम् अनार्यम् अपवाद् विद्या सम्प्रयुक्तं विद्वन्मन्त्रं ओङ्कारोपेयं दुर्गं
 निर्लम्बं लोकाग्रणीयं दुष्टं दुःश्रुतममनोह्रम्, आत्मनः स्थापना परेषु निरा,
 न तत्रमेपायी, न तत्रभन्यो न तत्र मियममो न तत्सुखीनो न तत्र दानपतिर्न तत्र शूरो
 न तत्र प्रतिरुपा न तत्र लक्षो न परिहृतो न बहुभुतो नापिच तत् सपत्नी न चापि पर-
 काक निभित मतिररित । सवकालं जातिपुल्ल-रूप-व्याधिरोगश्च यापि यद्भवति
 वजनीयम्, दुर्गतं वपकारमतिहान्मेवोविच सत्यमपि न वल्लभ्यन्, अयकीदृशं
 पुनरपि स्तवन्तु भापितम्यम् । वत्तद्वत्तं वयस्यैश्च गुणैः कर्ममिद्विषये शिस्ते
 रागमैश्च तामाऽऽयात निपातीयमर्ग-तदित समाससम्भिपददु यौगिकोणादि क्रिया
 दिपात धातु रवदिभक्तिपर्यायुक्तं त्रिकालं दराविषमपि सत्यं यथा मयि न या च
 कमणा भवति द्वादशविधा भवति भाषा वचनमपि च भवति चादराविषम् । एवं
 व्याहृदनुशातं समीकितं सवमिना काष्ठं च वल्लभ्यम् । सूत्र १ । २५ ।

च-४०-॥ (त शर्च) इस प्रकार का घट अन्य महात्मन (भगवं) मगपाप-
 अनिराय मगपन्न (तिष्ठाकर गुभासिर्ष) भीषणुर्गं स अचली तरद बदा गया
 (दगादि) दश प्रकार का द (बादम पुर्वीति) अगुरा पूर्व पारिवो न (पादु

त्यभिदितं) जिसे पूर्वका एक अंश होने के कारण अर्थ रूप से जाना है। (महर्षि-सीणय) और महर्षि-मुनिओं को (समथप्पदिन्तं) सिद्धान्त रूप से दिया गया अर्थात् साधुओं के द्वितीय महाव्रत में सिद्धान्त के द्वारा सत्य स्वीकार किया गया है। देविन्द नरिन्द भासियत्वं) देवेन्द्र तथा नरेन्द्र-राजाओं ने लोगो में जिसका अर्थ कहा है, अथवा देवेन्द्र आदि को जिसका प्रयोजन तत्त्वरूप में कहा गया है वैसा (वेमाणिय सादिय) वैमानिक देवों से समर्थित एवं आसेविन है (महत्त्व) बड़े प्रयोजन वाला (मतोसहि विज्जासाहणत्वं) मन्त्र, आपधि और विद्याओं के साधन में अर्थयुक्त होने साधना का कारण है (चारण गण समण सिद्धविज्जं) विद्या चारण आदि मुचिरुन्द की विद्याओं को सिद्ध करने वाला (मणुयगणाय वंदणिवज्जं) मनुष्य गणों का वन्दनीय-स्तुति पात्र (अमर गणाय अचणिवज्जं) देवगणों का अर्चनीय-आदर पात्र (असुरगणाय च पूजनीय) असुरकुमार, आदि भवनपति, देवों का पूजनीय-बहुमान पात्र, और (अखेग पासंडि परिगहितं) विविध प्रकार के व्रतधारिओं से धारण किया गया है (खं) जो पूर्वोक्त महत्त्व वाला है (तं) वह सत्य (लोगंमि सारभूय) लोकों में सारभूत (महा समुद्राओ गभीरतर) एवं महा समुद्र-तटस्थ आदि विशाल समुद्र से अधिक गम्भीर (मेरु पन्वयाओ थिरतरग) मेरु पर्वत से भी अधिक स्थिर (चन्द्रमंडलाओ सोमतरगं) चन्द्र मण्डल से विशेष सौम्य तथा (सूरमडजाओ दित्ततर) सूर्य मण्डल से अधिक दीप्ति वाला (सरयनहयलाओ निमलतर) शरत् काल के आकाश तल से अधिक निर्मलता वाला और (गंधमादणाओ सुरमितर) गन्धमावन नामक गज वन्त से विशेष सुगन्धि वाला है (जेधिय) और जो भी (लोगमि) ससार में (अपरिसेसा मत-जोगा) हरिणगमेपी आदि के सर्व मन्त्र तथा वशीकरण आदि योग (जवा य) और जप (विज्जा य) प्रज्ञप्ति आदि विद्यार्थों और (जमका) जन्मक देव (य) और (अत्थाणि) धनुष आदि अस्त्र (सत्थाणि य) और शस्त्र अर्थ शास्त्र आदि शास्त्रों या खंडगादिशस्त्र (सिक्खाओ य) और कलायें (आगमा य) सिद्धान्त-ज्ञान के तत्त्व शास्त्र हैं (सन्वाणिवित्ता) वे सभी पूर्वोक्त मन्त्रादि (सच्चं पंद्रट्टियाइं) सत्य में प्रतिष्ठित हैं (सच्चमि य) और सत्य भी (सज्जमस्स उवरोह कारक) समय में बाधक हो वैसा (किंभिन् वेत्तव्वे) किंचिन्मात्र भी नहीं बोलना चाहिए जैसे (हिंसा सावज्जसमउत्त) हिंसा व पाप युक्त क्रिया के योग वाला (भेयधिक

कारक) इतान तथा आदित्र में मेव करने वाली भी आदि की विद्यमा मुक्त वचन (अव्यययाय कदाह कारक) निष्प्रयोगन वचन और कदाहकारी (अस्मिन्) अनार्य के योग्य अर्थवा म्याय हीन वचन (अवयवय विषय संयुक्त) अवयव-मिन्मा और विरोध मुक्त वचन (वेत्तव्य) दूसरों की विद्यमाना कारी वचन (अथ वेत्तव्यवृत्त) वल और घृष्टता-विद्यार्थ की अधिकता वाक्ता (नित्यवृत्त) तन्मा रहित (लोपगच्छयिष्म) लोक में निवन्धीय वचन (दुरिष्ट) अथवा तरह नहीं देका हुआ (दुस्त्य) घुरी तरह से सुना हुआ, (असुखिर्ष) पूर्ण रीति से नहीं जाना हुआ, जाने अज्ञात विषय का कथन (अप्यथो यथया) अपनी सुति तथा (परेत्तिता) दूसरों के सम्बन्ध में निन्दा करना जैसे कि—(न तसि मेधावी) तू मूख-पारया शक्ति सम्पन्न मेधावी नहीं है (य तसिपन्नो) तू धन जाने योग्य नहीं है (न तसि पियपन्नो) तू प्रिय धर्मा-धर्म प्रेमी नहीं है (न तं कुलीयो) न तू कुलीन है (न तसिपन्नपत्नी) दान देने वाला भी तू नहीं है (न तसिसुरो) तू शूर नहीं है (न तसि पवित्तो) तू रूप सम्पन्न भी नहीं है (न तसिसद्वो) न तू सौमन्वराही है (न पवित्तो) न पवित्त है (न बहुस्त्यो) तू बहुत शास्त्र का ज्ञानकार नहीं (न विपत्तं तवस्ती) तू तपस्वी भी नहीं है (य वाचि पर श्लोकाणि विद्वयमतीडसि) और तू पर लोक के विषय में निमित्त बुद्धि वाला भी (सम्ब कार्थ) सर्व कास-आजन्म (नडसि) नहीं है, इस प्रकार (जाति कुल रूप बाहिरोगेयुवादि) जाति-मातृवंश, कुल-पितृ वंश, रूप, व्याधि-कुल आदि अवयव रोग-व्यर आदि से जो भी वचन (वज्रविम्ब पर पीडाकारी होने से वर्जनीय (होह) है (दुष्ट्यो) द्रव्य और भाव से (व्यमार गतिवर्ज्य) व्यचार-बाह्य वा व्यकार रहित हो (पर्व विद्वत् कथयि) इस प्रकार का सत्य भी (न वचन्य) नहीं बोलना चाहिए।

अब जो सत्य वचन जोड़ने योग्य होता है प्रथम पूर्वक वचनका स्वरूप कहते हैं—(अह केरिसर्क पुत्राह सचनत् मासियवर्ण) अब फिर कैसा सत्यमी वचन जोड़ने योग्य है? उत्तर—(वर्ण) जो सत्य (वर्णोहि पञ्चोहि) द्रव्य और पदार्थ-व्यवस्थाओं से गुणोहि कथोहि) वर्ण आदि गुणों से कृषि आदि कर्मसे (वहुविदेहि सिपेहि) बहुत प्रकारक विषय आदि शिल्प (आगमेहि) और सिद्धान्त के अर्थों से (नाम वच्चाव) नामपद देवदत्त आदि, आत्म्यात- क्रियापद भवति आदि (निवा वचनस्य लक्षित समास लक्षि पद द्वय जोगिय ज्वादि विरिषा विहाय जानु सर विमलि वचनवृत्त) निपात-

य वा आदि, उपसर्ग-धातु के साथ लगने वाले प्र परा आदि, तद्धित-तद्धित प्रत्यय जिनके अन्त में हों जैसे नामेय आदि पद, समास-अनेक पदों को एक साथ मिला कर एक पद करना जैसे राजपुरुष आदि, सन्धि-समीपतासे पदों का सम्यन्ध विशेष जैसे ध्यानय आदि, हेतु-अनुमान का अङ्ग विशेष, यौगिक-दो आदि के संयोग वाला पद अथवा जिस पद के अवयवार्थ से समुदायार्थ जाना जाय जैसे पाचक पाठक आदि, उणादि-उण् आदि उणादिगण के प्रत्यय जिनके अन्त में हों जैसे साधु, स्वाधु आदि क्रियादिघान-क्रिया का विधान करने वाला पाचक आदि पद, धातु-क्रियाका कथन करने वाले भू आदि, स्वर-आकार आदि या षड्जादि सप्तस्वर विभक्ति-प्रथमा आदि सात विभक्तिपद और वर्ण-ककार आदि व्यञ्जनों से युक्त (तिकात्तल) त्रिकाल विषयक (दसविहंपि) दश प्रकार का भी (जहमणियं) जैसे वचन (तहय) वैसे ही (कम्मुणा) लेखन व चेष्टा आदि क्रिया से दश प्रकार का (सत्त्व) सत्य (होइ) होता है (डुवाकस धिहा होइ भासा) बारह प्रकार की भाषा होती है (वयणपि यहोइ सोलसर्विहं) और वचन भी सोलह प्रकार का होता है (एवं) इस प्रकार (अरहंत) तीर्थङ्करों से (मणुजायं) अनुज्ञात (य समिक्खियं) और अच्छी तरह विचार पूर्वक सोचा हुआ वचन (संजण) संयमी साधु को (कालमिय) बोलने के अवसर पर (वत्तव्वं) बोलना चाहिए । २।२४ ॥

भाचार्य-हे जन्मू ! अहिंसा प्रव्र के बाद फिर दूसरा सत्य वचन रूप संबन्ध है, जो शुद्ध-सुयोग्य शिव-कल्याण कारक यावत् उत्तम देव और भेष्ठ पुरुषों का बहुमत है, साधु धर्म का अनुष्ठान तथा सुगति मार्ग का देशक है। तप और नियमों में इसका प्रचान स्थान है। यह लोकोत्तम प्रव्र विद्याधरों की विद्याका साधन तथा स्वर्ग व मोक्ष मार्ग का प्रवर्तक है। यथासे रहित यह सत्य नामका, संवर कुटिलता रहित सरल और वस्तु के यथार्थ स्वरूप को प्रकट करने वाला यावत् संसार में पदार्थ मात्र का सम्यक् कथन करने वाला है, विरोध रहित, यथार्थ, मधुर और जो वह सत्य मनुष्यों की विविध दशाओं में प्रत्यक्ष देशों की तरह उपकारक होता है, सत्य के प्रताप से महा समुद्र में भी सत्यशील मनुष्य नहीं डूबते हैं, और अपमृत्यु से भी नहीं मरते हैं तथा सत्य में निष्ठा रखने वालों की सन्निधि में देव भी आते हैं, इत्यादि विविध विशेषतारावाली सत्य मगवान तीर्थङ्करों से अच्छी तरह कहा गया है यह अस्व दश प्रकार का है, औइव पूर्व के ज्ञानियों ने पूर्व भुव में इसको सम्यग् जाना

और साधुओं को महा मत्त रूप से दिया गया है, वेवेन्द्र आदि के समक्ष कहा गया
 तथा वैमानिक वेधों से, सेवित है मन्त्र आदि की सिद्धि का साधन तथा वेध-दानवों
 और मानवों के द्विजे बन्धनीय, आधुरणीय एवं दूष्य है, अनन्त प्रकार के प्रतिभों
 से धारण किया गया जो यह सत्य समस्त लोक में सारभूत है, गम्भीरता में समुद्र
 जैसा अति गम्भीर और गम्भीरता में, मेघ जैसा अकल्प है ऐसे सौम्य शीति और
 निर्मलता में पद्म सूत्र तथा स्वच्छ काफिरा व-गन्धमादृत की रूपमा शिशु सत्य,
 ओ की गर्व है, संसार में आत्मीय मन्त्र मन्त्र आदि है वे सभी सत्य में प्रविष्टि है।
 सत्य होकर भी जो वचन समय में बाधक हो, वह नहीं बोझना चाहिये-जैसे हिंसा,
 आदि पाप दुर्क तथा सच्चरित्र में भेद करने, बाधों की आदि को, विषया दुर्क ?
 निरर्थक व कहने बर्जक व न्याय विरुद्ध वचन तथा लोक विन्दनीय तथा दुर्दिष्ट।
 आदि वचन अवाक्य है, अपनी सुविषय पर निन्दा के, वचन भी नहीं बोझना,
 चाहिये, जैसे कि वृद्धिमान नहीं है आदि आदि कुछ रूप, आदि से जो भी रूप,
 वर्जनीय है इस प्रकार का सत्य भी नहीं बोझना चाहिये सत्य होने, पर भी कैसा,
 वचन बोझना चाहिये ? यह, विचारते हैं जो वचन इन्म पर्याय मुख हर्ष और
 विविध प्रकार के शिष्ट, तथा सित्त्वान्त के, यव से) कुछ हो, नाम, क्रिया, निपाठ ?
 उपसर्ग आदि से कुछ त्रिकाल विषयक हरा, प्रकार का भी, सत्य वचन, बोझने
 और कलन आदि क्रिया से सत्य होता है, प्राकृत, संकृत आदि, बारह प्रकार की
 मापार्य तथा शीतु क्रिया आदि से १६ प्रकार के वचन हैं इस प्रकार, तीर्थहृत् से-
 अत्रुहात सुविश्रित वचन ही व्यवसर, पूर्व, बाधना चाहिये, अन्यथा, नहीं बोझना
 चाहिये ।

असत्य परिहार के द्विजे (निज शासन और) सत्य वचन की पांच मावना-

मूल-“इमं च असित्य विमुक्त फलस कद्रुय यवत्त वमत्त परिरक्तस्य कद्रुयाय
 पात्रपक्ष भगवत्या मुकद्रियं अगद्वियं पंचामात्रिकं आगमेसिमर्दः सुद्धं
 नेयाउर्यं अकुडिलं अशुचरं, सन्धवृत्तपाचार्यं विभोसमर्थं, तस्स इमा
 पञ्च मावसाओ भित्तियस्स, वयस्स असित्य वयस्स वेरमण-परिरक्तस्य कद्रु-
 याय परमं सोऊर्यं संवरत्त परमम् सुद्धं जायित्तस्य न वेगियं न हरियं न
 यत्तलं न कद्रुयं न फलत्तं न साहत्तं नय परस्स पीळाकरं सावर्ज्यं सन्धयं
 द्वियं, मियं च गाहर्गं सुद्धं संगयम, काहर्लं च समिक्खितं संवत्ते क्कालं मियं”

वत्तव्वं, एवं अणुवीति संमितिं जोगेण भावित्रो भवति अंतरप्पा संजय कर चरण नयण वयणो सरो सच्चज्जव संपुत्तो । वितियं कोहोणसेवियव्वो, कुद्धोचंडिकियो मणसो अलियं भणेज्ज, पिसुणं भणेज्ज फरुसं भणेज्ज अलियं पिसुणं फरुसं भणेज्ज, कलहं करेज्जा वेरं करेज्जा विकहं करेज्जा कलहं वेरं विकहं करेज्जा सच्चं हणेज्ज सीलं हणेज्ज विणयं हणेज्ज सच्चं सीलं विणयं हणेज्ज वेसो हणेज्ज वत्थुं भवेज्ज गम्मो भवेज्ज वेसो वत्थुं गम्मो भवेज्ज, एयं अन्नं च एवमादियं भणेज्ज कोहमिं संपलितो तम्हा कोहो न सेवियव्वो, एवं खंतीइ भावित्रो भवति अंतरप्पा संजय कर चरण नयण वयणो सरो सच्चज्जव संपुत्तो । ततियं लोभो न सेवियव्वो, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं खेतस्स व वत्थुस्स व कतेण १, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं कित्तीए लोभस्स व कएण २, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं रिद्धीय (ए) वसोक्खस्स व कएण ३, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं भत्तस्स व पाणस्स व कएण ४, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं पीढस्स व फलंगस्स व कएण ५, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं सेज्जाए व संथारकस्स व कएण ६, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं तत्थस्स व पत्तस्स व कएण ७, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं कंचलस्स व पायपुंछणस्स व कएण ८, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं सीसस्स व सिस्सिणीए व कएण ९, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं अन्नेसुय एवमादिसु बहुसु कारणसत्तेसु, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं तम्हा लोभो न सेवियव्वो, एवं मुत्तीय भावित्रो भवति अंतरप्पा संजय कर चरण नयण वयणो सरो सच्चज्जव संपुत्तो ।

छाया—“इदञ्चांल्लिकं पिशुनं परुषं कटुकं चपलं बर्चनं परिरिक्खणार्थाय प्रवेचनेन भगवता सुकथितमात्महितं प्रत्यभाविक्कम् आगमिष्यद्भद्रं शुद्धं न्यायोपेतम् अकटिलम् अनुत्तरं सर्वदुःखं पोषाणा व्युपशमनम् । तस्येमा पञ्चभवेत्ता द्वितीयस्य त्रतस्य अलीकवचनस्य विरमणं परिरिक्खणार्थतायै प्रथमं भुत्वा संवरार्थं परमार्थं सुदुर्ज्ञात्वा न वेगितं न त्वरितं न चपलं न कटुकं न परुषं न साहसं न च परस्य पीडाकरं सावयं सत्यञ्च हितञ्च मिलञ्च ग्राहकञ्च शुद्धं सङ्गते किं हल्लमपोपञ्च समीक्षितं सत्यतेन काले च वत्तव्वम् । एवमनुविचिन्त्य समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा

संपतकर चरखमयमवदन शूरः संस्यार्जव सम्पूर्ण (सम्पन्न) । द्वितीयं क्रोधो न सेवितम्बः क्रुद्धादिद्विविधो मनुष्योऽस्तीकं मयात्, पैशुन्यं मयेत्, पठवं मयेत्, अस्तीकं पैशुन्यं पठवं मयात् । कलहं कुर्वात्, वैरं कुर्वात्, विक्रमां कुर्वात्, कलहं वैरं विक्रमां कुर्वात् । सत्यं हन्यात्, शीलं हन्यात्, विनयं हन्यात्, सत्यं शीलं विनयं हन्यात्, द्वेषो मयेत्, वस्तु (क्रोधस्वान्नं) मयेत्, प्राम्यो मयेत्, द्वेषो वस्तु प्राम्यो मयेत् । एतद्व्यवचनैवमादिक मयेत् क्रोधादि सम्प्रणीतं तस्मात् क्रोधो न सेवि-
तम्बः, एवं ज्ञान्त्वा भावितो भवत्यन्तरात्मा संपतकर चरख नवनवहनः शूरः सत्या-
र्जव सम्पन्न । तृतीयं लोभो न सेवितम्बो लुब्धो लोभो मयेत् अस्तीकं क्षेत्रस्य वा
वस्तुन्यकृत्य १ । लुब्धो लोभो मयेत्-अस्तीकं कीर्तयेत् लोभस्य वाक्ये २ । लुब्धो लोभो
मयेत्-स्तीकमृदयेत्वास्तीक्यस्य च कृते ३ । लुब्धो लोभो मयेत्-स्तीकं भक्ष्यस्य वा पात्रस्य
च कृते ४ । लुब्धो लोभो मयेत्-स्तीकं पीठस्य वा फलकस्य च कृते ५ । लुब्धो लोभो
मयेत्-स्तीकं शय्याया वा संस्तारकस्य वा कृते ६ । लुब्धो लोभो मयेत्-स्तीकं वस्त्रस्य वा
पात्रस्य च कृते ७ । लुब्धो लोभो मयेत्-स्तीकं कम्बलस्य वा पादप्रोम्बलस्य च कृते ८ ।
लुब्धो लोभो मयेत्-स्तीकं शिष्यस्य वा शिष्यायाश्चकृते ९ । लुब्धो लोभो मयेत्-स्तीकं
मन्त्रेषु चैव मादितु बहुषु कारणशतेषु, लुब्धो लोभो मयेत्-स्तीकम् । तस्मात्लोभो न
सेवितम्बः एवं मुक्त्या भावितो भवत्यन्तरात्मा संपतकर चरख नवनवहनः शूरः
सत्यार्जव सम्पन्न ।

अम्ब-“(ईश्वर) और यह (पापपूर्ण) प्रवचन (अक्षिप्त पिशुन्य कष्ट
कृत्य चवत्त वचन परिरक्ताण्डुवाय) मूठ, पिशुन-चरोह में दूसरे के रूपक करने
रूप, पठ-कठोर कटु और असुखता से बिना विचारे बोले हुए वचन
से आत्मा की अच्छी तरह रक्षा करने के हेतु (भगवत्) भगवात् महावीर ने
(मुक्तदिव्य) सम्पद् रीति से कहा है (अक्षदिव्य) आत्मा के लिये हितकारी
(प्रेमाभाषिक) परलोक में शुभ जगत् देने वाला (आगमेसिंह) भविष्य में
कल्याण का कारण तथा (सुख) सुख (मेवाश्व) न्याय सुख (अक्षदिव्य) कृति
शता रहित (अणुचर) सर्व जेष्ठ और (सम्बुद्धसपाकार्य) सब दुःख एवं पापों
का (विहसमर्ण) उपशमन करने वाला है (तत्स) उस (विधियस्त वयस्त)
दूसरे ऋषि की (हमा) ये नीचे कही जाने वाली (एष भाषयाधो) पांच भाषितार्थ
(अक्षिप्तवचनस्य चेतस्य परिरक्ताण्डुवाय) अर्थात् वचन विरमण जाने असत्य

याग रूप व्रत की रक्षा के लिये होती है जैसे (पढमं) पहली भावना, विचार पूर्वक
 बोलना (संवरट्ठं) सद्गुरु के पास मृपावाद विरमण रूप सचर के अर्थ को
 (सोऊण) सुनकर (परमट्ठं) योग्य अयोग्य वचन के परमार्थ-सार को (सुट्ठु)
 अच्छी तरह (जाणिऊण) जानकर (नवेगिय) विकल्प की व्याकुलता से वेगयुक्त
 नहीं बोलना चाहिए (न तुरियं) त्वरायुक्त नहीं (न चवल) व चंचल वचन
 भी नहीं बोले (न कडुथं) इर्थ से कटु नहीं (न फरुसं) घर्ण से कठोर
 नहीं (न साहस) साहस प्रधान-सहसा वचन नहीं (न थ परस पीलाकरं) दूसरे
 को पीडाकारी (माचज्जं) सद्गोप वचन नहीं बोलना चाहिए (सच्चंच) भत्य और
 (हियच) हितकारी (मियंच) और मित-परिमित (गहगंच) वस्तुओं का यथाधन
 ग्राहक-और (सुद्ध) शुद्ध-पूर्वोक्त दोष से रहित (सगयम काहलंच) संगत-योग्य
 और मन्मन-अव्यक्ताक्षर रहित (समिभिल्लं) विचार पूर्वक देखा गया ही वचन
 (संजतेण) साधु को (कालमिय) अवसर पर (पत्तव्वं) बोलना चाहिए (एवं)
 इस प्रकार (अणुधीतिसमिति जोगेण) विचार पूर्वक बोलने रूप समिति के योग
 से (भाविओ) भाविन (अतरप्पा) ध्वस्त करण वाला (सजय कर चरण नयण
 धयणो) कर, चरण, नेत्र और मुख के संयम वाला (सूरु) शूर माधु (मच्चजय
 सपुओ) सत्य व सरलता से युक्त (भवति) होता है । (वितेथ) दूसरी भावना
 क्रोधनिग्रह रूप जैसे-(कोहोण सेवियव्वो) क्रोध का सेवन नहीं करना चाहिए (कुद्धो)
 क्रुद्ध (चड्डिकियो) प्रचण्ड रूप यत्ना हुआ (मणुसो) मनुष्य (अलिय भणेज्ज)
 झूठ बोलता है (पिसुनं भणेज्ज) परोक्ष में दूसरे के दोषों को कहता है (फरुसं भणेज्ज)
 कठोर बोलता है (अलिय पिसुण फरुस भणेज्ज) झूठ, पैशुन्य और कठोर वचन
 तीनों बोलता है (कलह करेज्जा) कलह करता (वेरं करेज्जा) विरोध करता है
 (विकहं करेज्जा) धर्म विरोधी स्त्री आदि की बिकथार्य करना है (कलह वेरं विकहं
 करेज्जा) कलह वैर और बिकथा इन तीनों को करता है (सच्च हणेज्ज) सत्य को
 नष्ट करता है (सीलं हणेज्ज) शील-पवित्र आचार या समाधि का हनन करता है
 (धियं हणेज्ज) विनय का हनन करता है (सच्च सीलं धियं हणेज्जा) सत्य
 शील और विनय इन तीनों का हनन करता है (वेसो हवेज्ज) असत्य भाषी लोक
 में द्वेष्य-अप्रिय होता है (वत्थुं भवेज्ज) दोष का घर होता है (गम्मो भवेज्ज)
 अपनादर का स्थान होता है (वेमो वत्थु गम्मो भवेज्ज) द्वेष के पात्र दोष का घर

और अनादर का स्थान तीनों हाता है (एवं अर्न्तं च एवमादिभ्यं) यह असत्य और
 बूट रहस्य आदि अन्य इस प्रकार के वचन (कोहमि संप्रसिद्धो) ऊँघान्त म
 ज्ञम हन्य वाला,) भण्येत्) बोलता है (सगृह्य) इसलिये (कोहो) आप (म स
 विषया) सचन नहीं करना चाहिए (एवं) इस प्रकार (सतीह) हमारा (मा
 विधा) मुक्त (अंतरणा) अन्त करण वाला (सजय कर परण मपण बरणो)
 कर, चरण, मय और मुक्त के समययुक्त साधु (सूर्य) गुरु तथा (सव्यप्रव संज्ञा)
 सत्य और सरसता म सम्पन्न (भवति) हाता है (सतिर्यं) द्वितीय भाषणा रूप
 निमहस्य (लाभा) लाभ (म मयिवक्या) नहीं करना चाहिए क्योंकि (तुहो
 लाभा) सुख-लाभी प्रत्येक वचन बना हुआ (सत्तस्य व वायुरस्य व वसेय) द्रव्य-
 जमीन या धर के लिये (भगवत् अतिर्यं) असत्य बोलता है ॥ १ ॥ (तुहो रोहो)
 लाभी तथा वचन प्रसक्त वाला (द्वितीय लोभस्य व वण्य) कीर्ति अथवा शय-
 पन प्राप्ति के लिये (भण्येत् अतिर्यं) मूठ बोलता है ॥ २ ॥ (तुहो रोहो) रोहो
 व वंचन प्रती (द्वितीय व वाहस्यम व वण्य) अक्षि या सूर्य के लिये (मदेय
 अर्न्तयं) मूठ बोलता है ॥ ३ ॥ (तुहो रोहो) रोहो व वचन प्रसक्त वाला (मत्त
 स्य व वायुस्य व वण्य) मात्रन व पानी के लिये (भण्येत् अतिर्यं) मूठ बोलता
 है ॥ ४ ॥ (तुहो लाभा) लाभी व वचन (वीर्यस्य व वक्तव्यस्य व वण्य) मदेय
 अतिर्यं) पीठ व वक्तव्य-वाद के लिये मूठ बोलता है ॥ ५ ॥ (तुहो लाभा) लाभी
 व वंचन (मर्यादा व मयारकम व वण्य) शय्या अथवा संस्कारक-स्रोत विष्ठा के
 लिये (भण्येत् अतिर्यं) मूठ बोलता है ॥ ६ ॥ (तुहो लाभा) लाभी व
 वंचन (वायुस्य व वक्तव्यस्य व वण्य) वचन अथवा पात्र के लिये
 (भण्येत् अतिर्यं) मूठ बोलता है ॥ ७ ॥ (तुहो लाभा) लाभी व वंचन
 (वक्तव्यस्य व वायुस्य व वण्य) वचन या वायुपात्रस्य व वक्तव्य के
 लिये (भण्येत् अतिर्यं) मूठ बोलता है ॥ ८ ॥ (तुहो लाभा) लाभी व वंचन
 (वायुस्य व वायुस्य व वण्य) शय्या अथवा शिथिली के लिये (भण्येत्
 अतिर्यं) मूठ बोलता है ॥ ९ ॥ (तुहो लाभा) लाभी व वचन (वायुस्य
 व वक्तव्यस्य) विर अथवा दण प्रकार के (वक्तव्य वायुस्य व वक्तव्य) वक्तव्य
 वक्तव्य म (भण्येत् अतिर्यं) मूठ बोलता है (तुहो लाभा) भण्येत् अतिर्यं) लाभी
 व वचन अक्षि वक्तव्य मूठ बोलता है (भण्येत् अतिर्यं) वक्तव्य लाभी

का सेवर्न नहीं करना चाहिए । (एवं) इस प्रकार (मुत्तीय भाविओ) मुक्ति-
निर्लोभिता से युक्त (अंतरप्पा) अन्तःकरण वाला (संजय कर चरण नयण वयणो)
हाथ पैर आख और मुख का संयमो साधु (-सूरो) शूर एवं (सच्चञ्जवसपन्नो) सत्य
वं सरलता से युक्त (भवति) होता है ।

मूलं—“ चउत्थं च भाइयव्वं भीतं खु मया अइंजि, लहुयं भीतो अचि-
त्तिज्जओ मणूसो भीतो भूतेहिं चिप्पइ, भीतो अन्नं पिहु भेसेज्जा, भीतो
तव संजमं पिहु मुएज्जा भीतो य भरं न नित्थरेज्जा सप्पुरिसनिसेवियं च
मग्गं भीतो न समत्थो अणुंचरिउं, तम्हा न भातियव्वं भयस्स वा वाहि-
स्स वा रोगस्स वा जराए वा मच्चुस्स वा अंबस्स वा एगस्सवा (एवमादि-
यस्स) एवं धेज्जेण भाविओ भवति अंतरप्पा संजयकर चरण नयण वयणो
सूरो सच्चञ्जय संपन्नो । पंचमकं हासं न सेवियव्वं अलियाइं, असंतकाइं
जंपंति हासइत्ता परपरिभव कारणं च हासं परपरिवायप्पियं च हासं पर
पीलाकारणं च हासं भेदविमुत्तिकारकं च हासं अन्नोन्नयणियं च होज्जहासं
अन्नोन्नगमणं च होज्जमम्मं अन्नोन्नगमणं च होज्जकम्मं कंदप्पाभियोगगमणं
च होज्जहासं आसुरियं किंन्विसत्तणं च जयेज्जहासं तम्हा हासं न सेवियव्वं
एवं मोयेण भाविओ भवइ अंतरप्पा संजय कर चरण नयण वयणो सूरो
सच्चञ्जव संपन्नो, एवमिणं संवरस्सदारं सम्मं संवरियं होइ सुप्पणिहिं
इमेहिं पंचहिवि कारणेहिं मण वयण काय परिरक्खिण्हि निच्चं आमरणं
तं च एस जीगो शेयव्वो चित्तिमया भित्तमया अणासवो अकलुमो अचिद्धो
अपरिस्सावी असंकलिद्धो (सुद्धो) सच्चजिणमणुआओ, एवं चित्तियं संवर
दारं फासियं पालियं सोहियं तीरियं किद्धियं अणुपालियं आणाए आ-
राहियं भवति, एवं नायमणिणा भगवया पन्नवियं परुवियं पसिद्धं सिद्ध-
वर सासणमिणं आघवित्तं सुदेसितं पसत्थं वित्तियं संवरदारं समचं ति-
वेमि ॥ सू० ॥ २५ । इति वित्तियंदारं ।

छाया—“चउत्थं न भेतव्यम्, भीतंखलु भयान्भयान्ति लघुकम्, भीतोऽद्वितीयको
मनुष्यः, भीतो भूतैः क्षिप्यते गृह्यते, भीतोऽन्यानपिमेषयेत् भीतस्तपः सयमानपि-
मुञ्चेत्, भीतश्चभारं न निस्तारयेत् सत्पुरुष निषेवितं च मार्गं भीतो न समर्थोऽनुचरि-

और अनादर का स्थान तीनों होता है (एष्य अन्य च एवमादिष्व) यह असत्य और मूठ लेखन आदि अन्य इस प्रकार के वचन (कोहमि संप्रकृति) कोनामस स जसे हृदय वाला,) भण्डेय) बोझता है (तन्हा) इसलिये (कोहो) मोप (न से विद्यम्हा) सेवन नहीं करना चाहिए (एष) इस प्रकार (संसीह) जमाते (मा भिभो) मुक्त (अतरण्या) अन्त करण वाला (सज्जय कर नरस तपस्य बरहो) कर, बरह्य, मेघ और मूल क समयमुक्त छात्र (सूर) शूर तथा (सज्जयय संपत्ता) सत्य और सरलता स सम्पन्न (भवति) होता है (सतिष्व) इतीय भावना काम निमहस्य (कामो) लोभ (न सेविद्यम्हो) नहीं करना चाहिए क्योंकि (लुडो लोको) लुब्ध-लोभी व्रतमें बचल बना हुआ (सेतस्स व बत्थुरस व कथेय) ब्र-जमीन या घर के लिये (भण्डेय अलिष्व) असत्य बोलता है ॥ १ ॥ (लुडो रोको) लोभी तथा बचल व्रत वाला (किचीय लोभस्स व कथस्य) कीर्ति अथवा लोभ-धन प्राप्ति क लिये (भण्डेय अलिष्व) मूठ बोलता है ॥ २ ॥ (लुडो लोको) लोभी व बचल व्रती (रिडीय व सोक्कारस व कथस्य) श्रद्धि या मूल के लिये (भण्डेय अलिष्व) मूठ बोलता है ॥ ३ ॥ (लुडो लोको) लोभी व बचल व्रत वाला (भण्डेय व पाण्डेय व कथस्य) भोजन व पानी के लिये (भण्डेय अलिष्व) मूठ बोलता है ॥ ४ ॥ (लुडो लोको) लोभी व बचल (पीठस्स व फलस्स व कथस्य) भण्डेय अलिष्व) पीठ व फलक-पाट के लिये मूठ बोलता है ॥ ५ ॥ (लुडो लोको) लोभी व बचल (सेग्गाण व मवारकरस व कथस्य) शय्या अथवा संस्तारक-छोटे बिल्लर क लिये (भण्डेय अलिष्व) मूठ बोलता है ॥ ६ ॥ (लुडो लोको) लोभी व बचल (पत्थस्स व पत्तस्स व कथस्य) वस्त्र अथवा पात्र के लिये (भण्डेय अलिष्व) मूठ बोलता है ॥ ७ ॥ (लुडो लोको) लोभी व बचल (बंजलस्स व पाण्डेय व कथस्य) बंजल या पाण्डेयजन रजोहरण क लिये (भण्डेय अलिष्व) मूठ बोलता है ॥ ८ ॥ (लुडो लोको) लोभी व बचल (सोमस्स व मिमीणीय व कथस्य) शिष्य अथवा शिष्याणी क लिये (भण्डेय अलिष्व) मूठ बोलता है ॥ ९ ॥ (लुडो लोको) लोभी व बचल (अन्नमुप एवमादिषु) फिर अन्य इस प्रकार क (बहुसु कारणमतसु) बहुत त गैदकों कारणों में (भण्डेय अलिष्व) मूठ बोलता है (लुडो लोको भण्डेय अलिष्व) लोभी व बचल मूढि मनुष्य मूठ बोलता है, (तन्हा लोभी न सेविद्यम्हो) इमलिये लोभ

(भावितो) युक्त (अंतरप्पा) अन्तः करण वाला—(संजय कर चरण नयण वयणो) हाथ पैर आख और मुख का संयमी साधु (सूरो) शूर (सच्चब्जवसंपन्नो) सत्य व सरलता से सम्पन्न (भवति) होता है। (पंचमकं) पाचवीं भावना हास्य त्याग (हास न सेवियव्यं) हास्य का सेवन नहीं करना चाहिए क्योंकि (हासइत्ता) हास्यरस के वशीभूत नर (अलियाइं) सत्य अर्थ को छिपाने, रूप अलीक और (असंतकाईं) मिथ्या बात बनाने रूप असत्य वचन को (जंपति) बोलते हैं (परपरिभयकारणं च हासं) और हास्य दूसरों के अनादर का कारण है (परपरि-वायपियं च हासं) और हास्य दूसरे के दूषण कथन को प्रिय समझने वाला है (च) फिर (हासं पर पीला कारणं) हास्य दूसरे को पीड़ा देने वाला है (च) और (हास भेदविमुक्तिकारक) हास्यचारित्र्यभेद और शरीर को विकृत-विकारयुक्त करने वाला है जो मोक्ष मार्ग का भेद करने वाला है (अन्नोन्नजनिगं च हास) और हास्य अन्योन्य-एक दूसरे से किया हुआ (होज्ज) होता है (अन्नोन्नगमन च होज्ज मम्मं) और फिर हास्य परस्पर में परदार गमन आदि मर्म कुचेष्टा का कारण होता है (अन्नोन्नगमन च होज्जकम्मं) फिर हास्य परस्पर गमन योग्य कर्म रूप होता है (कंदूप्पाभियोग गमणं च होज्जदास) कन्दर्प हास्यकारी और आभियोगिक-आज्ञाकारी देव जाति विशेष में गमन का हास्य हेतु होता है आसुरिय, असुर जाति के देवपन को (क्रिड्विसत्तणं च) और किल्बिषिक-नीच जाति के देवपन को (जणेषज्ज हास) हास्य-हंसी मजाक उत्पन्न करता है (तम्हा) इसलिए (हास न सेवियव्यं) हास्य-परि-हास नहीं करना चाहिए (एवं मोयेण भाविओ) इस प्रकार मौन से युक्त (अंतरप्पा) अन्तः करण वाला (संजय कर चरण नयण वयणो) हाथ पैर आख और मुख का संयमी साधु (सूरो) शूर (सच्चब्जव संपन्नो) सत्य सरलता से युक्त (भवति) होता है (एव मिणं) इस प्रकार यह (सवरस्सदारं) संवर का दूसरा द्वार (सम्म) सम्यक्-अच्छी तरह से (सवरियं) सुरक्षित (होइ) होता है, - (इमेहिं पच द्विवि कारणेहिं-) इन ऊपर कही गई पांच भावना रूप कारणों से (मण धयण काय परिरक्खणहिं) जो मन वाणी और काय से सुरक्षित हैं उनसे (सुप्पणिहियं) उत्तम निधान की तरह निज्जं सदा (आमरखंत) मरण पर्यन्त (एसजोगो) यह योग (धित्तिया मत्तिया) धीर तथा बुद्धिमान् साधु को (सेयव्वो) पार ले जाने योग्य है (अणामवो) आस्रव रहित (अकलुसो) पाप रूप मल रहित

शुभं, तस्मान्नमेतद्वयम्, मयस्य वा व्याधेर्वा रोगस्य वा ज्वराया वा सूत्रोर्वाऽन्यस्य वा
 प्रथमाधे । एवं चैर्यण भाषितो भवत्यन्तरात्मा संयतकर चरखनयनयन्त दूरः सन्वा
 र्भवसम्पन्नः । पञ्चमकं हास्यं न सविशेषम् अलीकान्यसत्काणि व्यस्यन्ति हास्यावता
 परपरिमवकारणद्वयस्य परपरिषादप्रियस्य हास्यं परपीडाकारकं च हास्यं मेव
 मुक्तिकारकं च हास्यमन्योऽन्यद्वनितं च, भवेद्वास्तव्यम्, अन्योऽन्यगमनस्य भवेत्सर्व
 अन्योऽन्यगमनं च भवेत्कर्तुम् कन्तुर्पामिषागमनस्य भवेद्वास्तव्यम्
 आसुरं किस्विदित्यं न जनयेद्वास्तव्यं तस्माद्वास्तव्यं न सेवितव्यम् एव, मौनेन भाषितो
 भवत्यन्तरात्मा संयतकर चरख नयन यन्त शूरः सत्यावयसम्पन्नः । एवमिदं संयत
 द्वारं सन्यक्तं सङ्गतं भवति सुप्रणिहितमेतैः पञ्चभिः कारणैर्मनोवचनं काय परिच्छिन्नं
 नित्यमावस्थान्तं चैव योगेनेतद्व्योऽवृत्तिमता मतिमताऽनास्रवाऽवृत्तुपोऽन्विताऽ
 रिषावी-मसंभ्रष्टः सर्वजिनाऽनुज्ञातः । एवं द्वितीयं संयतद्वारं सृष्टं पार्श्वं
 शोषितं तीर्थं कौर्तितमनुपाशितमाज्ञयाऽऽराधितं भवति । एवं ज्ञातमुनिना मग्नता
 प्रकृतं प्ररूपितं प्रसिद्धं सिद्धवर शासनमिदमाज्ञतं सुवेशितं प्रशस्तं द्वितीयं संयतद्वारं
 समाप्तमिति ब्रवीमि । इति द्वितीयं द्वारम् । सूत्र । २५ ।

अन्व०—“ (चक्रवर्त्त) चौवी भाषना मय फा त्यागना रूप (न भावमव्य भव नही
 करना चाहिये (भीतकु) भयभीत मनुष्य को (भया अर्थात् शत्रुस्य) शत्रु ही भय
 प्राप्त कर लेते हैं (भीता अवितिष्ठन्मोक्षसो) बड़ा हुआ मनुष्य अद्वितीय सदा
 यता रहित होता है (भीतो भूतेर्हि पिप्लव्) भीत मनुष्य भूत प्रेतों में चर बिता
 जाता है (भीतो अन्नं पिबु मेसेव्या) बड़ा हुआ वृद्धों को भी बड़ा बेटा है (भी
 तो तव संजम पिबु सुप्रव्या) बड़ा हुआ मनुष्य तप संवस को भी छोड़ देता है (भी
 तो न भर्तु न तित्परेव्या) और भीत मनुष्य कर्तव्य मोक्ष को भी पीछे नहीं छोड़ता
 है (संपुरिसनिमेविषयं) और मनुष्यों में सेवित (सर्मा) मार्ग को (भीतो)
 बड़ा हुआ मनुष्य (अशुचरित) आचरण में जाने के लिये (न समत्या) समर्थ
 नहीं होता है (तन्मा न मातिषव्यं, इसलिये भय नहीं करना चाहिये । (भवरसवा)
 भय अनु-नुष्ठ मनुष्य आवि स चाहिये, वा रोगस्य वा) अथवा शीत से वा व्याधि
 स अथवा शर आवि स वा तीर्थ कालिक क्रुद्ध आवि से (ज्वरा वा) अथवा
 दृष्टावत्वा स (मधुस पा) अथवा शत्रु स (अक्षरस वा पथसाद्विराम) अथवा
 पथ ही दूर कारणा स डरना नहीं चाहिये (पर्व) इस प्रकार (वेदेषु) धर्म से

(भावित्रो) युक्त (अंतरप्पा) अन्त. करण वाला—(संजय कर चरण नयण वयणो) हाथ पैर आख और मुख का संयमी साधु (सूरो) शूर (सम्बज्जवसंपन्नो) सत्य य सरलता से सम्पन्न (भवति) होता है। (पचमकं) पाचवीं भावना हास्य त्याग (हास न सेवियव्वं) हास्य का सेवन नहीं करना चाहिए क्योंकि (हासइत्ता) हास्यरस के वशीभूत नर (अलियाइं) सत्य अर्थ को छिपाने रूप अलीक और (असंतकाइ) मिथ्या बात बनाने रूप असत्य वचन को (जपति) बोलते हैं (परपरिभवकारणं च हासं) और हास्य दूसरों के अनादर का कारण है (परपरि-वायपियं च हासं) और हास्य दूसरे के दूषण कथन को प्रिय समझने वाला है (च) फिर, (हासं पर पीला कारणं) हास्य दूसरे को पीड़ा देने वाला है (च) और (हास भेदविमुक्तिकारक) हास्यचारित्रभेद और शरीर को विकृत-विकारयुक्त करने वाला है जो मोक्ष मार्ग का भेद करने वाला है (अन्नोन्नज्जनियं च हासं) और हास्य अन्योन्य-एक दूसरे से किया हुआ (होज्ज) होता है (अन्नोन्नगमन च होज्ज मम्मं) और फिर हास्य परस्पर में परदार गमन आदि मर्म कुचेष्टा का कारण होता है (अन्नोन्नगमन च होज्जकम्मं) फिर हास्य परस्पर गमन योग्य कर्म रूप होता है (कंठ्वाभियोग गमणं च होज्जहासं) कन्दर्प हास्यकारी और आभियोगिक-आह्लाकारी देव जाति विशेष में गमन का हास्य हेतु होता है (आसुरियं असुर जाति के देवपन को (किन्विस्सत्तणं च) और किल्बिषिक-नीच जाति के देवपन को (जणेज्ज हासं) हास्य-हंसी मजाक उत्पन्न करता है (तम्हा) इसलिए (हास न सेवियव्वं) हास्य-परि-हास नहीं करना चाहिए (एव मोणेण भावित्रो) इस प्रकार मौन से युक्त (अंतरप्पा) अन्त करण वाला (संजय कर चरण नयण वयणो) हाथ पैर आख और मुख का संयमी साधु (सूरो) शूर (सम्बज्जव संपन्नो) सत्य सरलता से युक्त (भवति) होता है (एव मिण) इस प्रकार यह (सवरस्सदारं) सवर का दूसरा द्वार (सम्म) सम्यक्-अच्छी तरह से (संवरियं) सुरक्षित (होइ) होता है, (इमेहिं पच हिंवि कारणेहिं) इन ऊपर कही गई पाच भावना रूप कारणों से, (मण धयण काय परिरेक्खएहिं) जो मन वाणी और काय से सुरक्षित हैं उनसे (सुप्पणिहियं) उत्तम निधान की तरह (निच्चं) सदा (आमरणत्त) मरण पर्यन्त (एसजोगो) यह योग (धितिमया मत्तिमया) धीर तथा बुद्धिमान साधु को (सेयव्वो) पार ले जाने योग्य है (अणामवो) आस्रव रहित, (अकलुसो) पाप रूप मल रहित

(अग्निहोत्र) कर्म ग्रहण के योग्य विद्वत् रक्षित (अपरिग्रहाधीन) कर्म जल का नहीं बहाने वाला तथा (अत्रिभित्तितो) संस्कार रक्षित और (सर्वव्यभिचमणुज्जामो) सब तीर्थहृत् से अनुज्ञात है (एवं) इस प्रकार (वित्तियं संस्कारं) दूसरा सत्त्वतः रूप संस्कार (कासियं) वचन से स्पर्श-स्वीकार किया हुआ (पालियं) मन से पाला गया (सौहियं) शेष के निवारण करने से शुद्ध किया गया (तिरिं) पूर्णता तक पहुँचाया हुआ, (किरिं) सब भाव से प्रशंसा योग्य किया गया (अणुपालियं) अनुकूलता से पाला गया (आद्याय आराधियं भवति) आज्ञा की आराधना करने वाला होता है (एवं) ऐसा (नाथ मुणिया आत्मया) शक्ति मुनि भगवान् महावीर ने (पञ्चवियं) कहा है (पञ्चवियं) उदाहरण पूर्वक समझाया है (पसिद्धं सिद्धवर साधुमिथं) यह प्रसिद्ध और उत्तम सिद्ध पुरुषों का शासन है (आपवितं) देव आदि का सम्मान पात्र (सुहोवियं) पूर्ण कानिष्ठों से सम्बन्ध कहा गया है तथा (पसत्यं) प्रशस्त है ऐसा यह (वित्तियं) दूसरा (संस्कारं) संस्कार (समर्थं) पूर्ण हुआ (तिवेमि) ऐसा मैं कहता हूँ ॥ २ ॥ २५ ॥

भावार्थ—“सत्त्वतः का पूर्व कथित यह प्रवचन भगवान् महावीर ने असत्य कटु आदि अवाच्य वचनों से आत्मा को रक्षित रखने के लिये कहा है। जो कि आत्मा के लिये हितकारी व परलोक और भविष्य के कल्याण का कारण है। शुद्ध वाच युक्त वाच्य सब दुःखों का शमन करने वाला है। असत्य वचन त्यागरूप उस दूसरे ज्ञान की पाँच भाषना ज्ञत की रक्षा के लिये कही गई हैं। इनमें प्रथम भाषना—सत्य ज्ञत के स्वरूप को सुनकर तथा परमार्थ को सम्यक् जानकर बोलना चाहिए। बेग बुद्ध आदि सावध वचन नहीं बोलना, किन्तु स्वयं और हितकारी आदि परिमित वचन ही साधु की समय पर बोलना चाहिए। इस प्रकार विचार पूर्वक बोलने वाला संयमी सत्य और आर्जव से युक्त होता है।

दूसरी भाषना क्रोधवश नहीं बोलना। क्रोधवश अनुपपन्न असत्य बोलता है, पैशुन्य और कठोर वचन बोलता है। घैर, कलह और धर्मविरुद्ध कथा को क्रोधी करता है। सत्य और शील का हनन करता, विनय को र्ग करता, और लोकमें अमीति का भाजन बनता है। क्रोध से सम्पन्न इन्द्रिय वाला अनुपपन्न इस प्रकार अन्य भी अवाच्य बोलता है इसलिये क्रोध नहीं करना चाहिए। समायुक्त साधु सत्य का शासन करने वाला होता है।

तीसरी भावना—लोभके वश होकर नहीं बोलना, क्योंकि लोभी चंचलचित्त होकर खे तवाही व घरके लिये झूठ बोलता है। ऐसे ही कीर्ति और अर्थ प्राप्ति के लिये ऋद्धि तथा सुख सामग्री के लिये और खान पान के साधनों के लिये अथवा पाद आदि आसनों के लिये तथा अनेक प्रकार के शय्याओं के कारण या वस्त्र पात्र आदि के लिये अथवा कंबल और रजोहरण तथा शिष्य आदि ऐसे सैकड़ों कारणों पर असत्य बोलता है। इसलिये लोभ नहीं करना चाहिए। निर्लोभत, युक्त साधु सत्यव्रत का आराधक होता है।

चौथी भावना—भय त्यागरूप है—‘डरा हुआ मनुष्य अनेक प्रकार के भयों को पाकर असहाय अकेला हो जाता है। भयभीत को ही भूत भी पकड़ते हैं। भयभीत दूसरों को भी डरा देता है। डरा हुआ तप सयमको भी त्याग देता है। भयभीत मनुष्य सत्पुरुषों से सेवित सत्यमार्ग पर नहीं चल सकता है। इसलिये रोग, व्याधि जरा, मृत्यु आदि ऐसे किसी भी भय के हेतु से नहीं डरना चाहिए। धैर्ययुक्त संयमी सत्यव्रत का पालक होता है।

पाचवी भावना परिहास त्यागरूप—क्रोध, लोभ, भय और अधिचार की तरह हंसी भी असत्य का कारण है। हंसी करने वाले असत्य या मिथ्या बोलते हैं। परिहास का वचन दूसरे के अपमान का कारण, निन्दाप्रिय पीडाकारक और चारित्र्यभेद आदि का कारण है। एक दूसरे से क्रिया गया हास्य परस्पर की कुचेष्टा और परदार गमन आदि दुष्कर्म का प्रवर्तक होता है। हंसी करने वाला साधु देवगतियोग्य आयु सञ्चय करके भी कान्दर्पिक या आभियोगिक रूप कुदेवपन में जाता है। असुरभाव और किल्बिषिकपन को हास्यरस उत्पन्न करता है। इसलिये हास्य का सेवन नहीं करें। इस प्रकार वचन के संयम वाला साधु सत्यव्रती होता है। इस प्रकार यह सत्यव्रतरूप संवर का दूसरा द्वार इन पांच कारणों से सुरक्षित होता है आदि उपसहार पूर्ववत्। यह दूसरा संवरद्वार पूर्ण हुआ।

❀ समाप्तं द्वितीयसंवरद्वारम् ❀

❀ सञ्चार्य सान्प्रचार्य भाट्टार्यम् ❀

७ तृतीय संस्कार द्वारा ७

सम्बन्ध-द्वितीय अध्ययन में मृपावाद-अक्षर-निष्ठस्वरूप दूसरे संस्कार का प्रतिपादन किया है, उस सत्यव्रत का पालन और्य कर्म के स्वागत पर ही सुकर होता है, इसलिये इस अध्ययन में अवतादान विरह्यारूप सवर का वर्णन किया जायगा। सूत्र क्रम से सम्बन्धित इस अक्षरव्रत का स्वरूप दिखाते हुए शास्त्रकार इस प्रकार कहते हैं-

मूल-“अह् ! वचमणुभाय संदरी नाम होति वसियं सुव्रता ! मह्यं सं । शुद्धव्रतं परदम्ब हरण-पडिरिरह-करणपुत्रं, अपरिमिय मलय-सङ्गा-पुण्य-महिम्ब-मख-वयस-कलुस-आयास मुनिगहियं । सुसंजमिय मखो'इत्य-पायनिमियं, निर्गात्र येद्विक निरुषं निरासर्व नि-मयदिगुषं । उत्तम-नरवसम-पवरबलवग-मुविहित ज्ञमंसमं, परमसाहुषम्मचरवं, जत्य य गामागर-नगर-निगम-खेड-कन्वड-मडब-दोखमुह-संवाह-पङ्क्यासमगपंच, किंचि दम्बं मेखि-मुच'-सिलप्पवाल-कंस-दूस-रय-वर कयाग-रययमादि, पडियं पम्पुट्टं विप्यशाहु, न कप्पसि कत्सवि कडे उं वा, गेयिहउ वा । अहिरण सुबभिकेण समलेट्टु कंचयेयं अपरिमाह संवुडेयं होगेमि विहरियम्बं । धंपिय होज्जाहिदम्बजातं खलगतं सेतगतं रअमंतरगतं वा किंचि पुप्फ-फल-वय-प्यवाल-कद-मूल-वय-कट्ट-सक-रादि, अप्पं च बहु च, अणु च पूल्लं वा, न कप्पसि उग्गाहमि अदियंमि गियिहउ अे । हयि हयि उग्गाहं अणुअविय गेयिहयम्बं । वज्जेय्यो य सप्पकालं अथियच धरप्येसी । अथियच सच्च पाखं । अथियच-पीड-फल्लग-सेज्जा-संयारग-वत्य-पच-कंबल-दंडग रयहरय-निसेज्ज-चोत्त-पङ्क-मुहपोत्थिय-पायण अशाह-मायलभंडोवहि उवकरवं, परपरिवाओ,

परस्स दोसो, पर-ववणसेखं जं च गेएहइ । परस्स नासेइ जं च सुकयं,
दाणस्स य अंतरातिंयं, दाण विण्णणासो, पेसुन्नं चेव मच्छरित्तं च ।

छाया-“जम्बू । दत्ताऽनुज्ञातसंवरो नाम भवति तृतीयम् सुव्रतं । महाव्रतं ।
गुणव्रतं परद्रव्यहरण-प्रति विरति-करणयुक्तम् अपरिमिताऽनन्त-तृष्णाऽनुगत-
महेच्छ-मनो-वचन-कलुषाऽऽदानसुनिगृहीतं, सुसंयमित मनोहस्त पादनिवृत्तं,
निर्ग्रन्थ नैष्ठिक निरुक्तं निरास्त्रयं निर्ययं विमुक्तम् । उत्तम नर वृषभ-प्रथर-बलवस्तु
विहितजन संमतं, परमसाधु धर्मचरणम् । यत्र च प्रामाकर नगर-निगम-खेड-कर्बड
मढम्ब-द्रोणमुख-सवाह-पट्टणाऽऽक्रमगत य किञ्चिद् द्रव्यं मणि-मुक्ता-शिला
प्रवाल-कोस्य-दूष्य-रजत-चर कनक-रत्नादि पतित प्रमुष्टं विप्रणष्टं, न कल्पते
कस्यापि कथयितुं वा ग्रहीतुं वा । अहिरण्य सौवर्णिमेन समतेष्टुकाञ्चनेन अप-
रिमह संवृतेन लोकेविहृत्यम् । यद्दि च भवेद् द्रव्यजातं खलगतं चेत्यगतमरण्याऽ-
न्तर्गतं वा किञ्चित् पुष्प-फल-त्वक्-प्रवाल-कन्द-मूल-तृण-काष्ठ-शर्करादि अल्पं
च बहु च, अणुच स्थूलकं वा, न कल्पतेऽव्यग्रहेऽदृष्टं ग्रहीतुम् । अहन्ग्रहनि अवग्रह-
मनुज्ञाप्य ग्रहीतव्यम् । वर्जयितव्य सर्वकालमपीत गृहप्रवेश । अप्रीतिकारक भक्त
पानम् । अप्रीतिकारक पीठ फलक-शय्या-संस्तारक-वस्त्र-पात्र-कम्यल-दण्डक-
रजोहरण-निषद्या-चोल पट्टक-मुखवस्त्रिका-पादप्रोञ्जनादि-भाजनमण्डोपभ्युपकरणं
पर परीवाद, परस्व दोष, परव्यपदेशेन यच्चगृह्णाति, परस्य नाशयति यच्च सुकृतं,
दानस्य चान्तराधिकं, दानविप्रणामा, पैशुन्यञ्चैव मत्सरित्त्व च ।

अन्व०-(सुव्रतया जंबू) हे सुव्रत जम्बू ! (ततिव) तीसरा (दत्तमणुआयस्वर
नाम होति) दिये गए अन्न आदि और ग्रहण करो इस प्रकार आज्ञा पाये हुए पीठ
आदि जिसमें लिखे जाय वह दत्तानुज्ञात नामका संवर होता है (मद्वय) यह
महाव्रत है (गुणव्रत) सद्वृत्तों का कारण होने से गुणव्रत है (परद्रव्यहरण
पछि विरहकरणयुक्त) पर द्रव्य के हरण की निवृत्ति वाला (अपरिमित मण्यतएव
गुणय महिच्छ मण्यवयण कलुष आयाण सुनिगृहीतं) अपरिमित असीम द्रव्यों में
अनन्त-समाप्ति रहित जो तृष्णा उससे अनुगत-युक्त और अतिशय इच्छा वाले
विचार तथा वचन से मलिन जो अदत्त ग्रहण उसका सम्यक्-निग्रह करने वाला
(सुसंयमित मण्य हत्य पाय निमित्त) अशुभ भावना में संकोच शील मन के कारण
परधन ग्रहण से रुके हुए हैं हाथ पैर जहां पर ऐसा (निगम) बाध आभ्यन्तर

७ तृतीय संस्कार श्रवण ७

सम्बन्ध-द्वितीय अध्ययन में सुपावाह-असत्त्व-निवृत्तिरूप दूसरे संस्कार का प्रतिपादन किया है, इस संस्कार का पालन पौर्य कर्म के स्वागत पर ही मुकुर होता है, इसलिये इस अध्ययन में अक्षतावान विरम्यरूप संस्कार का वर्णन किया आया। इस क्रम से सम्यन्वित इस अक्षेयव्रत का स्वरूप दिखाते हुए शास्त्रकार इस प्रकार कहते हैं-

मूल-"अंशु ! वृत्तमणुभाय मन्त्रो नाम होति तत्तियं सुम्भता ! महज्ज तं । सुखञ्च तं परदब्ब हरस्य-पडिदिद-करसज्जुत्त, अपरिमिय मयंत-तण्णा णुगय-महिच्छ-मस्य-वयस्य-कम्म-आयास्य सुनिगगहियं । सुसंजमिय मयो'इत्थ-पायनिमियं, निगगं योद्धिकं निरुत्तं निरासवं निम्मयं मुत्तं । उत्तम-नरवसम-पवरवलवग-सुविहित अण्णसंमतं, परमसाहुम्मचरसं, अत्थ य गामागर-नगर-निगम-खेद-कम्बड-मढं-दोसमुह-संवाह-पड्ढासमगयं, किंचि व्वं मसि-मुत्तं-सिलप्यवाल-कंस-दूत-रय-वर कस्य-रयस्यमादि, पडिय पम्मुट्ठं विप्पससु, न कप्पति कस्सति कहे त वा, गेयिहत्त वा । अदिरण सुवभिकेस समलेट्ठ कंचेखेस अपरिग्गह संवुडेसं लोगंमि विहरियव्वं । अपिय होज्जादिदव्वज्जासं खलगतं खेत्तगतं रभमंतरगत वा किंचि पुप्फ-फल-तय-प्यवाल-कंस-मूल-तस्य-कट्ट-सक-रादि, अप्यं च वडु च, अण्ण च भूखगं वा, न कप्पति उग्गाहमि अदिएसंमि गियिहत्त जे । इत्थि इत्थि उग्गाहं अण्णभयिय गेयिहयव्वं । वज्जेयव्वो य सम्बकासं अयियत्त धरप्पवेसो । अयियत्त मत्त पायां । अयियत्त-पीड-फल्लग-सेज्जा-संघारग-वत्थ-पत्त-कंसल-दंठग रयहरस्य-निसेज्ज-घोल-पड्ढग-मुहपोथिय-पायणु क्कसाह-मायसमडोवहि उपकरसं, परपरिवाओ,

पर ले सकते हैं, ऐसा पूछकर (गेहियवृत्तं) ग्रहण करना चाहिए । (सम्बकालं) सर्वदा (अचियत्त परणवेसो) अप्रीति कारक घर में प्रवेश (वज्जेयवृत्तो) छोड़ना चाहिए, और (अचियत्त भत्तपाणी) अप्रीति कारक के घर का आहार पानी और (अचियत्त-पीठ-फलग-सेवजा-संथारग-वत्थ-पत्त-कंवल-दंडग-रथ हरण-नितेज्ज-चोलपट्टग-मुहपोत्तिय-पाय पुच्छणाह) अप्रीति करने वाले के पीठ, फलक-पाट, शय्या, संसारक, वस्त्र, पात्र, कंवल, दण्ड-सकारण लेने योग्य छाठी, रजोहरण, निषया-आसन, चोल पट्टक-पहने का वस्त्र, मुख पोतिका-मुख धलिका और पादमोक्षन आदि (भायण भंडोवहि उवकरण) पात्र मिट्टी के भाण्ड और वस्त्र आदि उपकरण 'वर्जित करना चाहिए' (परपरियायो) दूसरे की निन्दा (परस्स दोसो) दूसरे के साथ द्वेष करना (ज च पर ववणसेण) और जो अचार्य आदि दूसरे के चाम से (गेहह) ग्रहण करता है (जंच) और जो (परस्स) दूसरे के (सुकयं) उपकार या सुकृत को (चासेइ) नष्ट करता या छिपाता है (दाणत्स य अंतरात्थिय) और दान में अन्तराय करता (दाण बिण्णालो) दाता के नाम को छिपाता-अपलाप करता और (पेसुन्न) पैशुन्य-धुगली (वेव) और (सच्छरिसा) मत्सरता-द्रोष करता है ।

मूल-“जेविय पीठ-फलग-सेवजा-संथारग-वत्थ-पाय-कंवल-दंडग-रथहरण-नितेज्ज-चोल पट्टग-मुहपोत्तिय-पायपुच्छणादि-भायण भंडोवहि उवकरण असंविभागी, असंगहरती, तवतेथे य, वदतेथे य, आचारे चेव भावतेथे य । सहकरे, कम्भकरे, कलहकरे, वेरकरे, विकहकरे, असमाहिकरे । सया अप्पमाण भोती, सतत अणुबद्धवेरे, य निच्चरोसी से तारिस-ए नाराहण वयमिणं । अहकेरिसए पुणाई आराइए दयमिणं ? जे से उवहि भत्तपाण-संगहण-दाणकुसले, अच्चंतवाल-दुच्चल-गिलाण-बुड्ड-खमके, पवत्ति-आयरिय-उदज्जाए-सेहे-साहम्भिके, तवस्सी-कुल-गण-संध-चेइयट्ठे य निज्जरट्ठी वेयावच्चं अणिसिसियं दसणिहं बहुभिहं करेति । न य अचियत्तस्स गिहं पवसइ । न य अचियत्तस्स गेहह भत्तपाणं । न य अचियत्तस्स सेवइ पीठ-फलग-सेवजा-संथारग-वत्थ-पाय-कंवल-दंडग-रथहरण-नितेज्ज-चोल पट्टग-मुहपोत्तिय-पायपुच्छणाह-भायण भंडोवहि

ग्रन्थि रहित (नेटिक) सब धर्मों में परमन्तवर्ती याने यह सब धर्म की निष्ठा वाला है (निरुक्त) सर्वज्ञों के द्वारा अच्छी तरह कहा गया अस्त निरुक्त (निरासर्ग) मोती के आसव से रहित (निष्पर्व) निर्मग (निर्मुक्त) लोम रूप शोभने मुक्त हुआ (उत्तम नर पद्म पद्म पद्म पद्म पद्मसुविहितजल समन्त) प्रधान बलकारी उत्तम अनुपम और क्रियापात्र साधु साध्वियों से सम्मत तथा (परमस्वाधु धम्मचरस) उत्तम साधुओं का धर्मापराध है (अस्त य) और जिस तृतीय स्तर में (ग्रामाग्र-नगर-निगम-लेह-कण्ड-महं-शेषमुह-संवाह-पट्टासमगर्ग्य) ग्राम, आग्र-सुवर्ण आदि के उत्पत्ति स्थान, नगर, निगम-यशिशु वसति, जेट, कर्षट, महन्, शेषमुह, संवाह, पद्म और आग्र में रहा हुआ (निष्पर्व) कोई भी इन्ध (मणि-मुक्त-सिलपवाक-कस-इस-रवय-पर कणग-रवणमार्ग) मणि-कन्त कान्त आदि, मौक्तिक-मोती, शिला मन्नाल-मूगा, कांस्य कांसी के पात्र आदि, इस-उत्तम मन्त्र, रजत-चांदी, उत्तम सोना और रत्न आदि (पर्वि) किसी का गिरा हुआ हो। (पन्कट) भूला हुआ हो (विष्णु) सोजने पर भी मालिक को नहीं मिला हो, वैसा इन्ध (कस्तुरि) किसी गृहस्थ आदि को (शेष वा) कहना नेटिक या) अथवा ग्रहण करना (न कल्पति) योग्य नहीं है। (अद्विज सुचमिकेण) हिरण्य सुवर्ण को नहीं रखने वाले साधु को (लोभमि) लोभ में (समलेदु दुर्बल्येण) पत्थर और सुवर्ण में समदृष्टि तथा (अपरिमाह सुबुद्धेय) अपरिमित-धन आदि के संग्रह रूप से प्रमूर्खा से रहित व संयतमुक्त होकर (विहारि पर्व) विचरना आदि (अपि) और जो भी (होजहि) होते हैं (इन्ध अस्त) इन्ध समूह (अस्तगत) अन्त में रहा हुआ, (सेतगत) सेत में पड़ा हुआ (वा) या (रत्नमंतरगत) अरण्य जंगल के भीतर पड़ा हुआ (निर्धि) कोई (पुष्प-फल-तप-पवाक-कट-मूक-तप-पट्ट-सम्पराधि) फूल, फल, तप-छात, मन्नाल, कन्द, मूल वृक्ष, फाट और पाल-धूलि आदि पदार्थ है (अर्प य इह य) छोटा या बहुत (अणु य मूलग) छोटा या बड़ा (उमाहमि अद्विजमि) घर टमा जगल आदि अथवा स्थान में स्वामी के नहीं देने पर या आशा नहीं मिलने पर (गिरिष्प म पप्पति) कोई भी पराग ग्रहण करने को नहीं कहपती याने दिना दिने ग्रहण करना योग्य नहीं है। इसलिये (इति इति) मतिरिक्त (उमाह अणुमि) अथवा की आशा लेकर अर्थात् आपके स्थान पर अमुक वस्तु है जो कि आशा देने

पर ले सकते हैं, ऐसा पूछकर (गेहहृत्वं) ग्रहण करना चाहिए । (सम्बकालं) सर्वदा (अचियत्त-घरप्पवेसो) अप्रीति कारक घर में प्रवेश (वज्जेयन्शो) छोड़ना चाहिए, और (अचियत्त भत्तपाणं) अप्रीति कारक के घर का आहार पानी और (अचियत्त-पीठ-फलंग-सेज्जा-संधारग-वत्थ-पत्त-कंबल-दडग-रथ हरण-निसेज्ज-चोलपट्टग-मुहपोत्तिय-पाय पुंछणाह) अप्रीति करने वाले के पीठ, फलक-पाट, शय्या, संस्कारक, वस्त्र, पात्र, कंबल, दण्ड-सकारण लेने योग्य क्लाठी, रजोहरण, निषया-आसन, चोल पट्टक-पहने का वस्त्र, मुख पोतिका-मुख वस्त्रिका और पादप्रोक्षण आदि (भायण मंडोवहि उवकरणं) पात्र मिट्टी के भाण्ड और वस्त्र आदि उपकरण 'वर्जन करना चाहिए' (परपरियायो) दूसरे की निन्दा (परस्स दोसो) दूसरे के साथ द्वेष करना (ज च पर ववएसेण) और जो अचार्य आदि दूसरे के नाम से (गेहहृ) ग्रहण करता है (जंच) और जो (परस्स) दूसरे के (सुकरं) उपकार या सुकृत को (वासेइ) नष्ट करता या छिपाता है (दाणस्स य अंतरात्थि) और दान में अन्तराय करता (दाण विण्णयासो) दाता के नाम को छिपाता-अपलाप करता और (पेसुन्न) पैशुन्य-चुगली (चेव) और (मच्छरित्ता) मत्सरता-द्वेष करता है ।

मूल-“जेविय पीठ-फलंग-सेज्जा-संधारग-वत्थ-पाय-कंबल-दडग-रथहरण-निसेज्ज-चोल पट्टग-मुहपोत्तिय-पायपुंछणादि-भायण मंडोवहि उवकरणं असंविभागी, असंगहरती, तवतेणे य, वइतेणे य, आयारे चेव भावतेणे य । सहकरे, भञ्जकरे, कलहकरे, वेरकरे, विकइकरे, असमाहिकरे । सया अप्पमाण भोती, सत्त अणुबद्धवेरे, य निचरोसी से तारिस-ए नाराहए वयमिणं । अह्मकेरिसए पुणाइं आराहए वयमिणं १, जे से उवहि भत्तपाण-संगहण-दाणकुसले, अच्चंतवाल-दुब्बल-गिलाण-बुद्ध-समके, पवत्ति-आयरिय-उवज्झाए-सेहे-साहम्मिके, तवस्सी-कुल-गण-संघ-चेहयट्ठे य निज्जरट्ठी वेयावच्चं अणिसिसयं दसविहं बहुविहं करेति । न य अचियत्तस्स गिहं पवसइ । न य अचियत्तस्स गेहहृ भत्तपाणं । न य अचियत्तस्स सेवइ पीठ-फलंग-सेज्जा-संधारग-वत्थ-पाय-कंबल-दडग-रथहरण-निसेज्ज-चोल पट्टग-मुहपोत्तिय-पायपुंछणाह-भायण मंडोवहि

उद्यमरस । न य परिचार्यं परस्स जं पति, खयावि दोसे परस्स गेण्हति,
परवधएसेस्सवि न किंवि गेण्हति, न य विपरिणामेति कंविजसं, न
पावि खासेति दिक्क सुकम्प, दाऊस्स य काऊस्स य न होइ पच्छातावि ।
संमागसीले सगहोवग्गहक्कसले से चारिसते आराइते वयमिणं ।

छाया—‘षोडपिच पीठ-पल्लक-शय्या-संस्तारक-वस्त्र-पात्र-कम्बल-मुखपोषिका
पादप्रोम्ब, नादि-भाजनमण्डोपभ्युपकरणम् असंविभागी-असंग्रहचित्तपक्वेन्द्र,
वाक्स्तेन रूपस्तेन, आचारे चैव सावस्तेन । शब्दकरो मन्त्राकरकलाकरो वैरकरो
विक्रमाकर-असमाधिकर । सहाजमाखमोजी, सततमनुबद्धैः नित्यरोपी, यथा
दशो नाऽऽराधयति व्रतमिवम् । अथकीदृश पुनराराधयति व्रतमिवम् ? षोडशतु
पथिमक्षपान-संग्रहण-दानपुराणोऽस्मन्त-पाल-दुर्वल-ज्ञान-वृद्धापके, प्रवर्तकाऽऽपा
योपाध्याये, शौचे, साधर्मिके, उपरिच-कुल-गण-संघ-वैस्वार्थी च निर्जराधी वैवा-
द्व्यमनिमित्तं वराविषं बहुविषं करोति । न चाऽप्रीतिकरस्य गृहं प्रविराति । नचाऽ
प्रीतस्य गृहाति मक्षपान । न चाऽप्रीतिकारकस्य सेवते पीठ-पल्लक-र-र-संस्तार
क-वस्त्रपात्र-कम्बल-वृद्ध-रजोहरण-निपणा-बालपट्टक मुखपोषिका-पादप्रोम्ब
नादि-भाजन-मण्डोपभ्युपकरणं, न च परीषाहं परस्य अल्पति । न चापि होषत्
परस्य गृहाति । परवधपदेशोनाऽपि न किञ्चिद् गृहाति । न च विपरिणमयति क्व
पिजनं, न चापि नाशयति वृत्तमुद्धतम् । एत्वा च कृत्वा च न भवति पञ्चावत ।
सम्माग शीतं संश्लोपमहकुराणं स सादृशक आराधयति व्रतमिवम् ।

अर्थ—(अविष) और ओ मी (पीठ-पल्लक संज्ञा-मंभारण-वस्त्र-पात्र-कम्बल
रंङ्ग-रयहरण-निषत्र-बालपट्टक-मुखपोषिक-पात्र पु ङ्गणादि) पीठ, पल्ल, शय्या,
संस्तारक, वस्त्र, पात्र, कम्बल, वृद्ध, रजोहरण, आसन, बालपट्टक, मुखपोषिका
और पादप्रोम्बन आदि (मायण-मंभारण उद्यमरण) पात्र-मिट्टी के माण्ड
और पल्ल आदि उपकरण का (असंविभागी) आचार्य आदि के लिये जो सींच
भाग नहीं करता (असंग्रहणी) गण्ड के उपयोगो पाठ आदि उपकरणों के संग्रह
में रुपि नहीं रक्षता (तथ सेवण) और उपस्था का चोर अर्थान्तरपत्नी न हान्तर
मी लोक में तपस्वी तृतीके अपना परिचय देने वाला (वरुथेय व) फिर वाक्य
स्तेन-वचन का चोर जाने वचन लक्षि नहीं होने पर भी जमता में झूठे वचन से
सिद्ध पदज्ञान पाठा (कर मेण य) तथा शरीर की सुन्दरता का किना पात्र साधु-
का चपचा पेच गयी होत हुए भी लोक में उत्तरपक्षे परिचय देने वाला-रूपस्तेन और

(आचारे वेव) ऐसे ही आचार-साधु-आचार में बनावटीपन करने वाला, और (भाव तेण्येय) दूसरे के ज्ञानादि गुणोंसे अपने को जानी कहने वाला भावमत्तेन और (सहकरे) रात्रि में जोर से बोलने वाला या गृहस्थ की जैसी सावद्य भाषा बोलने वाला, (भंभकरे) गच्छ में भेद पटनने के कार्य करने वाला, (कलहकरे) कलहकारी (बेरकरे) वैर विरोध करने वाला (विकहकरे) स्त्री आदि की धर्म विरुद्ध कथा करने वाला (असमाहिकरे) असमाधि-चित्त की अत्यस्यता को करने वाला (सया अप्पमाण्णोती) मृदा बिना प्रमाण के भोजन करने वाला (सतत अणुयद्धवेरे य) और निरन्तर वैर को बाधने वाला तथा (निच्चोसी) सदा क्रोध में रहने वाला (से तारिसए) इस प्रकार की वृत्ति वाला यह मनुष्य (नाराहए वयमिण) इस व्रत को आराधन नहीं करता है । (अह) अब (केरिसए पुणइ) फिर कैसा मणुष्य, (आराहए वयमिण) इस व्रत का आराधन करता है ।

उत्तर- (जे) जो साधु (उवहि-भत्तपाण-संगहण-दाणकुसले) उपधि और खान पान के दान और सग्रहण में कुशल है (अरुवंत वाल-दुब्बल-गिलाण-बुड्ढ-खमके) अतिशय बालक बहुत दुर्बल, खान-रोगी, वृद्ध और तपस्वी के विषय में (पवत्ति-आयरिय उवज्जाए) प्रवर्तक-तप सशम आदि में यथायोग्य साधुओं को लगाने वाला, आचार्य और उपाध्याय के विषय में (सेहे) नय दीक्षित साधु (साहम्मिके) साधर्मिक-समान धर्म वाले के सम्बन्धमें और (तवस्सी कुल) तपस्वी, एक गुरु से वाचना लेने वाले साधुओं के समूह रूप कुल (गण-सघ-वेइ यट्टे य) गण-अनेक कुलों का समूह, संघ-साधु साध्वी श्रावक और श्राविका रूप इन सबके चित्त की प्रसन्नता के लिये (निज्जरट्ठी) निर्जराधी-कर्मक्षय की इच्छा वाला साधु (अणिसियं) कीर्ति आदि की अपेक्षा बिना (एसविहं) सेव्य की प्रपेक्षा दश प्रकार की (वेयावच्चं) सेवा को (बहुविहं) अन्न पानादि दान रूप से अनेक प्रकार की (करेति) करता है, (से) यह (अचियत्तस्स) अप्रीति कारक गृहस्थ के (गिहं) घर में (नय पविसइ) प्रवेश नहीं करता और (नय अचियत्तस्स) न अप्रीतिकारक के यहा का (भत्त पाण गेण्हइ) आहार पानी ग्रहण करता है- (न य अचियत्तस्स सेवइ पीढ-फलग-सेज्जा-सयारग-वत्थ-पाय-कंयल-इंडग-रयहरण-निसेज्ज-बोल पट्टय-मुह पोत्तिय-पाय-पुंछुणइ) और अप्री-

ति कारक के पीठ, फल्लग, शय्या, संस्कारक, यज्ञ, पात्र, कर्मण, दण्ड, रजोहरण, आसन, परिधान वस्त्र, मुखवस्त्रिका और पादप्रोक्षण सेवन नहीं करता है (माय्य मंहोवदि व्यवरणं) पात्र, माय्य एवं वस्त्र आदि उपकरण भी नहीं लेता (नय परि वायं परस्स जंपति) और दूसरों की निन्दा नहीं करता है (न यावि दोसे परस्स गेय्यति) और दूसरे के शोषों को भी ग्रहण नहीं करता है (पर ययप सेणवि न किंवि गेय्यति) और जो दूसरे के नाम से भी कुछ नहीं लेता है (नय विपरिणा मेति किंविमय्यं) और न किसी मनुष्य को दान आदि धन से विमुक्त करता है (न यावि यासेति विम मुक्यं) और दूसरे के दानरूप सुकृत या धर्माचरण को नहीं मिटाता है (शाऊण म) और देकर (काऊण्य) करके (पञ्जातादिप) पञ्जाताप करने वाला (न होइ) नहीं होता है (सारिसप) पैसा (से) वह (समागसीले) आचार्य आदि समूह के जिसे अन्न आदि का संविभाग करने वाला (संगहोवगइ कुसले) संग्रह और आहार व ज्ञान आदि से उपकार करने में कुराज (वयमियं आराहवे) सेवा साधु इसव्रत का आराधन करता है ।

भाषार्थ—सुप्रम स्वामी महाराज अपने शिष्य जम्बू से कहते हैं कि हे जम्बू ! दीप्त्य संपर इन्द्राज्जात नाम का है । यह महाव्रत सदगुणों का कारण और पर ब्रह्म हरण से निवृत्ति करने वाला है । अपमिष्ठ ब्रह्म में अनन्त लुब्धा यात्रा और क्लृपित अदत्त ग्रहण का निग्रह करने वाला है । संयम युक्त मन के कारण यह हाथ पांव को अदत्त ग्रहण से रोकने वाला है । निग्रह्य आदि विरोधयुक्त उत्तम पुरुष और विरा पात्र जनों से सम्मत तथा उत्तम साधुओं का धर्माचरण है । इसव्रत में प्राप्त बगैर क्षेत्र में रहे हुए भविष्य शौचिक आदि कोई भी परार्थपक्षे हुए मूले हुए वा — जो जने परमी नहीं मिले हुए अगर दृष्टि में आजाय तो ब्रती को न किसी से कहना चाहिये और न स्वयं ही लेना चाहिये । क्योंकि साधु सुवर्ण आदि का स्वागी है । उसको कंधन और मिट्टी पर समजुति होकर रहना चाहिये । अपरिग्रह भाव उसका मुख्य धर्म है । चाहे कोई ब्रह्म जाले में हो क्षेत्र में या जंगल में पहेलों बेसे, फल फल आदि अल्पमूल्य वाले या बड़ी कीमत के, छोटा अदत्त या बड़ा कोई भी ब्रह्म स्वामी के बिना दिये ग्रहण करना मर्माहाते विकृत है । इसलिये ब्रती को प्रतिदिन गृहपति आदि की आज्ञा ग्रहण करनी चाहिये । जिस घरमें जाने से गृहपति को अप्रीति हो उस घर में ब्रती को कभी प्रवेश नहीं करना चाहिये, तथा अप्रीति का कारण माय्य

हो तो वैसा आहार पानी पीठ पाट भाण्ड आदि उपकरण भी नहीं लेना चाहिए। दूसरे की निन्दा और परदोष कथन भी त्यागना चाहिए। क्योंकि तीर्थङ्करों से निषिद्ध होने के कारण इनका सेवन अदत्त^१ रूप है। अचौर्य व्रत वाले को दूसरे के नाम से कोई वस्तु ग्रहण करना और दूसरे के सुकून को मिटाना तथा दान में अन्न-दाय देना दाता के नाम को छिगाना और दूसरे की चुगली या मत्सरता करना वर्जित है। ऐसा करने से अचौर्य व्रत में दोषापत्ति होती है। फिर कैसा व्यक्ति अचौर्यव्रत को नहीं पाल सकता? इसे दिखाने हुए कहा गया है कि जो पीठ आदि भण्डोपकरण का सविभाग नहीं करता। गच्छवासी होकर भी स्वधर्मियों के योग्य साधन संग्रह में रचि नहीं रखता। दूसरे के तपोबल व धातुबल से अपनी क्याति कराता है। सुसाधु के वेष आचार और ज्ञान आदि भावों की चोरी करता अर्थात् इन गुणों के अभाव में भी वैसी महिमा चाहता एवं दूसरों के सामने वचन का छल करता है। प्रहर रात्रि के बाद जोर से बोलता और समूह में भेद डालता है। फलह तथा धैर्य को करने वाला, स्त्री आदि की कथा करने वाला एवं असमाधि करने वाला जो सदा बिना परिमाण के खाता है। निरन्तर वैर बाधता, तथा सदा रुष्ट रहता है। वह अचौर्य व्रत का पूर्ण पालन नहीं कर सकता। कौन पालन कर सकता है? इसको दिखाते हैं,—"उपधि और भक्त पान के योग्य संग्रह व दान में कुशल, और जो बाल, वृद्ध, दुर्बल, ग्लान आदि की प्रसन्नता के लिये निर्जरार्थी होकर विविध प्रकार से सेवा करता है। जहां जाने से अप्रीति हो वैसे घर में नहीं जाता और न वैसे घर के आहार पानी और पीठ आदि भण्डोपकरण ही लेता है। फिर जो दूसरे की बुराई नहीं करता और दूसरे के दोषों को ग्रहण नहीं करता है। दूसरे के नाम से स्वयं कुछ नहीं लेता है। न हिंसी को धर्म से विमुख करता है। दूसरे के दान आदि सत्कर्म को भी नहीं छिपाता और न देकर या करके स्वयं पश्चात्ताप ही करता है। सविभाग करने वाला और जो गच्छ समूह के उपयुक्त सामग्री का संग्रह कर, उसका उपकार करने वाला है। वह अचौर्यव्रत का पूर्ण पालन कर सकता है।

मूल—''इमं च परदव्व हरणं वेरमसं—परिरक्खणं दुयाए पावयणं मगवया सुकहितं, अत्तहितं पेच्चाभावितं, आगनेसिमहं. सुद्धं नेयाउयं, अकुडिलं,

१—सामीजीवादत्तं तित्थयरेण तदेव य गुरुदिं,—स्वामि—अदत्त, जीव अदत्त, तीर्थङ्कर और गुरु का अदत्त इस तरह चार प्रकार के अदत्त हैं।

अशुचर, सम्बदुक्ख-पादाण विभोवसमर्ण । तस्स इमा पच भावयातो एति
 पस्स होति परदब्धहरण वेरमण परिरक्खणहुयाए । पढम-देवकुल-सम प्पवा
 दराह-कस्समूल आराम-कंदरागर-गिरिगुहा-कम्म-उज्जाण-जाससाला
 हवितमाला-मंडव-सुशुभर-सुसाण, लेख-आवण भन्न मियएव भादिपंभि,
 दग-महिर-बीजहरित-तस पाण असंससे अहाकहे कासुए विदिसे
 पसत्थे उवस्सए होइ विहरियव्वं । आहाकम्म बहुले प जे से आसित
 संमन्निव-उस्सित्त-सोहिय-स्वायत्त-दूमज-लिपण-अणुलिपण-जल्ल-मड
 चाल्ले अतो बहिं च असंजमी जत्थ बड्ढती, रजयाण अहा वज्जेपव्वोहु
 उवस्सओ से तारिमए सुचपडिक्कहे । एवं विविचशस-वसहि-समिति
 ओगेण भावितो भवति अंतरप्पा निच्चं अहिकरण-करण-कारावण-पाव
 कम्म-विरतो दधमणुभाय ओग्गइस्ती ।

बितीर्य-आराइजाण-काणण-वणप्पदेसमारे अं किंचिइक्कं व कठि-
 खणं च संतुणं च परामेर-कुण-कुस-डम्म-पलाल-भूयग-अककय-पुप्फ-
 फल्ल-वय-प्पवाल-कंद-मूल-वख-कड्ड-सककरादी गेयइह सेज्जोवहिस्स
 अट्ठान कप्पए उग्गइह अदिन्नांमि गेयिइउंजे, इयि इयि उग्गइह अणुभविय
 गेयिइपव्व । एवं उग्गइहसमिति ओगेण भावितो भवति अंतरप्पा निच्चं
 अहिकरण-करण-कारावण-पाव-कम्मविरते दधमणुभाय ओग्गइस्ती ।

तवीर्य-पीठ-कल्लग-सेज्जा-सवारगहुयाए कस्सा न छिदिपव्वा, न
 छेदखेण मेपयेण सेज्जा कासपव्वा, जस्सेव उवस्सत वसेज्ज सेज्ज एत्येव
 गयेसेज्जा, न य बिसमं समं करेजा, न निषाय पपाय उस्सुगर्च, न डसमस
 गेत्तु सुमियप्पं, अग्गी धूमो न कायव्वो । एवं संजम बहुले संवर बहुले
 संपुड बहुले समाहि बहुले धीरे काणण कासपंथो सययं अज्जप्पज्जकाय
 छुपे मयिअ एगे चरजवम्म । एवं सेज्जा समिति ओगेण भावितो भवति

अंतरप्पा निर्व्वं अहिकरण-करण-कारावण-पावकम्मविरते दत्तमणुत्ताय उग्गहस्ती ।

छाया-“इदञ्च परद्रव्यहरण-विरमण-परिरक्षणार्थाय प्रवचनं भगवता सुकथितमात्महितं प्रेत्यभावित्तमागमिष्यद्भद्रं, शुद्धं न्यायोपेतमकुटिलमनुत्तर सर्वदुःख-पापानां व्युपशमनम् । तस्येमाः पञ्चभावनास्तृतीयस्य भवन्ति परद्रव्यहरण-विरमण-परिरक्षणार्थाय ।

प्रथमं-देवकुल-सभा-प्रपाऽवसथ-वृत्तमूलाऽऽराम-कन्दराऽऽकर-गिरिगुहा-कर्मोद्यान-यान शाला-कुपितशाला-मण्डप-शून्यगृह-रमशान-लयनाऽऽपणे, अन्य-स्मिन्चैवमादिके-उदक-मृत्तिका-म्रीज-हरित-त्रस प्राण्यसप्तष्टे यथाकृते, प्रासुके, विविक्ते, प्रशस्ते-उपाश्रये भवति विहर्तव्यम् । आधाकर्मबहुलश्च यः स आसिक्त-संमार्जितोत्सिक्त-शोभित-रङ्गादन-धवलन-लिम्पनाऽनुज्जिन-ज्वलन-भाण्ड चालनम् अन्तर्बहिश्चाऽसंयमो यत्र वर्द्धते, सयतानामर्थे वर्जयितव्यो हि उपाश्रयः सतादृशः सूत्र प्रतिकृष्ट । एव विविक्तवास वसति-समिति योगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा नित्यमधिकरण-करण-कारणा-पापकर्मविरतो दत्ताऽनुज्ञाताऽवग्रहरुचि ।

द्वितीयमारामोद्यान-कानन-वनप्रदेश भागे यत्किञ्चिद्वृक्षदं वा-वृक्षल सदृशं वृण-विशेष, कठिनकञ्च, जन्तुकञ्च, परामेरा-(मुखसरिका) कूर्च-कुरा-दर्भ-पलाल-मृयक-वल्गज-पुष्प-फल-त्यक्-प्रवाल-रुन्द-मूल-वृण-काष्ठ-शर्करादि गृह्णाति शय्योपधेरर्थाय । न कलस्ते अवग्रहेऽदत्ते प्रहीतुम् । अहन्यहनि अवग्रहमनुज्ञाप्य प्रहीतव्यम् । एवमवग्रह समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा नित्यमधिकरण-करण-कारणा-पापकर्म विरतो दत्ताऽनुज्ञाताऽवग्रहरुचि ।

तृतीयं-पीठ-फलक शय्या-सस्तारकार्थाय वृक्षा न छेदनीया । न छेदनेन भेदेनेन शय्या कारयितव्या । यस्मैवोपाश्रयेवसेत्, शय्या सत्रेष्वेव वेपथीया न च विषमां समां कुर्यात् । न च निवात-प्रवातोऽसुखत्वं, न दूरामशक्तेः क्षुभितव्यम्-अग्निधूमो न कारयितव्यः । एवं सथम बहुलं सवर बहुलं सवृत बहुलं समाधि बहुलं । धीर कायेन स्पृशन् सततमध्यात्मध्यानयुक्तं समित्या एव अद्वैतम् । एवं शय्या समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा नित्यमधिकरण-करण-कारणा-पापकर्म विरतो दत्ताऽनुज्ञाताऽवग्रहरुचि ।

अन्व०-“(इमं) और यह अचौर्यं व्रत सम्बन्धी (पावयण) प्रवचन (पर-द्रव्य हरण-विरमण-परिरक्षणद्वारा) पर द्रव्य हरण-विरति रूप व्रत की रक्षा के

लिये (भगवत्या) भगवान् महावीर ने (मुकुहित) अच्छी तरह सोचा है जो
 (अचहित) आत्म हितकारी (पेक्षाभाजित, आगमेधिमर्द) परलोक में शुभ फल
 लाता और-मयिष्य में कल्याण का कारण है- (सुखं नेमाउर्ध्वं अकुञ्चित) शुद्ध गाय
 युक्त एवं कुटिलता रहित है (आयुधर) सर्व भेद्य (सर्ववृक्ष पाषाण विभोवसम्भ)
 सर्व वृक्ष एवं पाषाणों का उपभोग करने वाला है (तत्स) उस अथर्व वेद की
 (त्वा पंच भावणाद्यो) ये पांच भावनार्थ (तद्विषय परब्रह्महरणमेवमण-परि
 रक्षणादुपाय) सीखने परब्रह्म हरण विरति रूप व्रत की रक्षा के लिये (होति)
 होती है । (पठन्) पढ़ती भावना-विविध वसति सेवन रूप जैसे (देवकुल-सम-प्राप्त
 बसह-स्नानमूत्र-आराम-कंदरात्म-गिरिगुहा-कर्म-आण जाय साक्षा-कुवित
 साक्षा-मन्त्र-सुमधर-सुसाण-जेण-आवणे) वैश्व-वैव स्थान, समा-विचार स्थान
 या व्याख्यान सभा, प्रपा-प्राक्, आवसथ-परिव्राजकों का स्थान, इष्ट मूत्र,
 आराम-तथा मन्त्र आदिने युक्त वनविशेष, कन्दरा-गुहा, आकर-स्थान, गि-गुहा,
 कर्म-सुधा आदि बनाने का स्थान रसरासा आदि, उद्यान-वाटिका, यानशास्त्र-
 वाहनादि रखने का घर, कुपित शाला-वृक्ष आदि सामान रखने का घर, मध्य-
 विवाह आदि प्रसङ्ग में बना हुआ समा मन्त्र, मूत्र पर इम्रान, कपन-पद्मा में
 वन हुआ घर और कुल में (अन्निमि य एव मादियमि) और इस प्रकार के
 अन्य स्थान में जो (इग-मन्त्रिज बीज हरित-तस्य पण्य-असंसृष्ट) सचित्त जल, मिट्टी,
 बीज वृक्ष आदि हरी और त्रस प्राणिमों ने रहित हो (अहन्त्रे) गृहस्थ ने अपन
 लिय जिने बनाया हो उसे (पण्य) प्राणु-निर्वीच (विविध) वृक्ष व्रत एवं
 (पस्ये ज्वत्सप) प्राप्त-वृक्ष उपाय में (विहरियव्य इह) विचरना आदिने
 (आहकम्स बहुलं य जे) साधुओं के निमित्त जिसमें हिंसा की जाय जैसे आधा
 कम रूप दोष की अधिकता वाला और जो (आसित-संमार्जि-वसित-साहिब-
 छावण-दूमण-लिपण-अणु-पण-अण्य भंड वाक्य-अंतो वदि व) आसित
 पानी से आधा सींचा हुआ संमार्जित-आह से संमार्जन किया हुआ, वसित-सूत्र
 पानी सींचा हो, रोमित-पुण्य वाला आदि से रोमित हो, छावण-छाव आदि से
 छान किया हो, दूमण-झड़ी आदि से पोता हो, लिपण-गोबर आदि से लिपा हो
 अणु लिपण-लिपे हुए को पुनः लोपा हो ज्वलन-अग्नि जला कर उपाया हो या
 प्रकाशित किया हो, माधु के तिल मर्दों का दूदाया हो और घर के भीतर या बाहर

(जल्य अमजमो वट्टनी) जहा अमंथम-जीवों की विराधना बढती हो (संजयाण अट्टा से वज्जेयन्वो हु उवन्सओ) साधुओं के लिये वह उपाश्रय निश्रय से वर्जनीय है, क्योंकि (तारिसए) वैसा स्थान (सुत्तपडिकुट्टे) सूत्र से निषिद्ध है (एवं चिवित्त वास-वसहि समिति जोगेण) इस प्रकार निर्दोष वास स्थान में व सतिरूप समिति के योगसे (भावितो) परिवश्र किये हुए (अंतरप्पा) अन्तःकरण वाला मुनि (निक्ख अहिकरण-करण-कारावण-पावकम्म विरतो) सदा, दुर्गति के कारण पापकर्म-के करने व करवाने से निवृत्त (दत्तमणुज्जाय-ओग्गहवती) दत्त अनुज्ञात अवग्रह से रुचि वाला (भवति) होता है।

(द्वितीय) दूसरी भावना-अनुज्ञात संस्तारक ग्रहण रूप, जैसे-(आरामुज्जाण काणण-वण-प्पदेस मागे) आराम, उद्यान-धर्मोद्या, कानन-नगर के समीपवर्ती 'सामान्य वन, वन-नगर से दूर का वन प्रदेश इन सब स्थानों में (जं किंचि) जो कुछ भी (इक्कड) इक्कडजाति का घास, तथा (कठिणं) कठिन-तृण जाति (च) और (जंतुगं) जन्तु-पानी में पैदा हुआ तृण (च) और (परामे-कुब-कुन-डम्भ-पलाल-मूयरा वक्कय-पुप्प-फल-तय-प्पवाल-कंद-मूल-तण-कट्ट-सक्करादी) परा-एक प्रकार का तृण, मेरा मुँज की तन्तु, कूच-जुलाहे के कूची बनाने का तृण कुश और डाम, पलाल-वान्य विशेष का डाल, मूयक-एक प्रकार का तृण, धत्तक, पुष्प, फल, त्वचा, प्रवाल, कन्द, मूल, तृण, काष्ठ और शर्करा आदि द्रव्य (गेण्हइ) ग्रहण करता है (सेज्जोवहिस्स अट्टा) शय्या और उपधि के लिये (उग्गहे अदिन्नं मि) उपाश्रय के भीतर की ग्राह्य वस्तुओं को दाता के बिना दिये (गेण्हइ) लेना (न कप्पय) नहीं कल्पता है इसलिये (हयिहयि) प्रति दिन (उग्गइ अणुज्जविय) ग्राह्य वस्तु की आज्ञा लेकर (गेण्हयव्व) ग्रहण करना चाहिए। (एव) इस प्रकार (उग्गहसमिति जोगेण) अवग्रह समिति योग से (भावितो) युक्त (अतरप्पा) अन्तःकरण वाला साधु (निक्खं) सदा (अहिकरण-करण-कारावण-पावकम्म विरते) दुर्गति के कारण स्वरूप पाप कर्म के करने व कराने से विरक्त हुआ (दत्त मणुज्जाय य ओग्गहवती) दत्त और अनुज्ञात अवग्रह-पदार्थ को रुचि वाला (भवति) होता है।

(तृतीय) तृतीय भावना-शय्या परिकर्मवर्जन रूप, जैसे-(पीठ-फलग सेज्जा-सयारागट्टयाए) पीठ, पाट, शय्या और समस्तारक के हेतु (-वक्खा) वृक्ष (न

तवोविधम्नो, तम्हा विणओ पउंजियव्वो । गुरुसु माहूसु तदस्मीसु य ।
एवं विणतेण भाविओ भवति अंतरप्पा णिच्चं अधिकरण-करण-कारावण
पापकम्मविरते दत्तमणुत्ताय उग्गहरूई । एरमिणं संवरस्सदारं सम्मं संवरियं
होइ सुपण्हियं एवं जाव आधविगं सुदेसितं पसत्थं ॥ तृतीयं संवरदारं
समत्तं तिवेमि ॥ सू० २। २६ ॥

छाया-“चतुर्थं साधारण पिण्डपात्रलाभे भोक्तव्य संयतेन सम्यक्-नशा-
कसूपादिकं, नाऽधिकं न वेगितं, न त्वरितं, न चपलं, न साहसं, न च परस्य
पीडाकर सावयं, तथा भोक्तव्यं यथा तस्य तृतीयं व्रतं न सीदति । साधारण
पिण्डपात्र लाभे सूक्ष्ममदत्ताऽऽदानव्रतनियमं विरमणम् । एवं साधारण पिण्ड
पात्रलाभं समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा नित्यमधिकरणं करणं, कारणं पाप
कर्मविरतो दत्ताऽनुज्ञाताऽवग्रहृचिः । पञ्चमकं साधर्मिकं विनयः प्रयोक्तव्य उपकरण
पारणासु विनयः प्रयोक्तव्यो, वाचनपरिवर्तनासु विनयः प्रयोक्तव्यः । दानं ग्रहणं
पृच्छासु विनयः प्रयोक्तव्यो निष्क्रमणं प्रवेशोऽसु विनयः प्रयोक्तव्यः । अन्येषु चैवमादि-
केषु बहुषु कारणशतेषु विनयः प्रयोक्तव्यः । विनयोऽपि तपः, तपोऽभिधर्मः तस्माद्वि-
नयः प्रयोक्तव्यो गुरुषु साधुषु तपस्विषु च । एवं विनयेन भावितो भवत्यन्तरात्मा
नित्यमधिकरण-करण-कारणा पापकर्म विरतो दत्ताऽनुज्ञाताऽवग्रहृचिः । एवमिदं
संवरस्य द्वारं सम्यक् सद्गतं भवति सुप्रणिहितम् एव यावत् आह्वयं सुवेशितं प्रश-
स्तम् । तृतीयं संवरद्वारं समाप्नोति ब्रवीमि । २ । सू० २६ ।

अन्व०-“(चत्थं) चतुर्थं भावना-अनुज्ञात भक्तादि भोजन रूप (साधारण पिण्ड-
पात्रलाभे) सब साधुओं के लिये सम्मिलित आहार आदिके मिलाने पर (सज्जणं)
साधु को (समियं) सम्यक् यतना पूर्वक (भोक्तव्यं) आहार करना चाहिए, जैसे
(न सायसूयादिकं) शाक और सूप की अधिकता घाला नहीं खाना चाहिए (न
खद्धं) साथ बैठकर स्वयं अधिक या जल्दी २ नहीं खावे (न वेगितं) वेग युक्त नहीं
खाना (न तुरियं) जल्दी २ भी नहीं खाना (न चवलं) न चचलता युक्त
(न साहसं) न बिना विचारे खाना चाहिए (न य परस्स पीडाकर सावज्जं)
और दूसरे को पीडाकारक तथा सदोष रीति से नहीं खाना चाहिए (तद्
भोक्तव्यं जह से ततिय वयं न सीदति) उस प्रकार आहार करना चाहिए जिस
प्रकार से उस साधु का तीसरा अचौर्य व्रत नष्ट नहीं हो (साधारणपिण्ड-

पापत्रयम्) साधारण निश्चयार्थ के लक्ष्य में (मुद्रम्) यह सूत्रम् (अहिमाराण-व्य निषमवेत्तम्) अहिमाराण को प्रतिनियम से रोकने वाला अथवा अहिमाराण विर मलयप्रस आत्मा का निगमन करने वाला है (एवं) इस प्रकार (साधारणपिब पापत्रयम्) साधारण पिब पापत्रय लक्ष्य में (समितिप्रयोगेण समिति के योग म (माहिता अंतरणा) युक्त अन्तःकरण वाला छात्र (निष्कं) सदा (अहिमाराण-करण-काराण-पापकर्मविरते) अधिहरणरूप पापकर्म के करने कराने रूप कम म विरत (इत्यमगुमात्र उमादृष्टी) इत्य और अनुज्ञात अवयव की रुचि वाला (अवति, होता है।

(पंचमम्) पाँचवी माध्या-माध्यामिक विनय करने रूप, जैसे- 'साहमिण वि णमा पञ्च विषयो) माध्यामिक के सम्बन्ध में विनय करना चाहिए (उपकारण पार णाम्) उपकार और उपरक्षा की पारणा-पूर्ति-में (विणमा पञ्च विषयो) विनय-प्रयोग करना चाहिए (वाच्य-परिषदासु) मूत्र ग्रहणरूप पापना में और मूत्र की, आरुति में-पुन पठन में (विणमा पञ्च विषयो) विनय करना चाहिए (वाच्य-परिषदासु विणमो पञ्च विषयो) मित्रे हुए अन्न दि माध्यामिक का इन में और दूसरों से ग्रहण करने एवं विमूत्र मन्त्रार्थ की पुन पृष्ठमें प्रितर करना चाहिए (निष्कवत्त पत्रेयसु विणमो पञ्च विषयो) स्वप्न म निद्रातन य प्रवृत्ति करने में आराध्य और विनय करना चाहिए (अन्तः सु पञ्चमादिषु) और (इति-इति प्रकार के दूसरे (वहुसु कारणमात्र) बहुत त औरों काओं में (विणमा पञ्च विषयो) विनय करना चाहिए। (विणमो वि-स्यो) विनय भी तप और (तपो विषयो) तप भी वम इ (तथा विणमा पञ्च विषयो) इसलिये विनय करना चाहिए।

दिन के सम्बन्ध में विनय कर्तव्य है ?

उत्तर-(गुरुसु सामसु तपसीसु च) गुरुओं में ब्राह्मणों में और तपस्विओं में। (एवं) इस प्रकार (विणमो माहिता) विनय से युक्त (अंतरणा) अन्तःकरण वाला छात्र (निष्कं) सदा (अहिमाराण-करण-काराण पापकर्म विरत) अधिहरणरूप पाप क करने व कराने म विरत (इत्यमगुमात्र उमादृष्टी) इत्य और अनुज्ञात अवयव में विचाला (अवति) होता है। (पंचमम्) सपरम्परा (इति प्रकार अर्चोर्ब्रह्मरूप यह संबंधकार (मर्म) अर्चणी तरह (अवति) पावन

किया गया (मुष्णिहिय) सुरक्षित (झोड़) होता है। • एवं जाय) इस प्रकार यावत् (आद्यविद्यं मुदेसितं) देव आदिओं के माननीय ज्ञानियों के द्वारा अच्छी तरह कहा हुआ (पसत्यं) प्रशस्त है।

(ततिय संवरद्वारं समस्तं तिवेमि) तीसरा संवरद्वार समाप्त हुआ ऐसा मैं कहता हूँ। सूत्र २। २६।

भावार्थ—“पर इन्द्र्य हरण से निवृत्तिरूप इस व्रत की रक्षा के लिये यह प्रवचन भगवान् महावीर ने अच्छी तरह कहा है। जो आत्मदित्तकारी और यावत् सवदुःख एव पापों का उपशमन करने वाला है। व्रत की रक्षा के लिये इस तीसरे व्रत की पांच भावनायें हैं, जैसे—

पहली भावना गृहस्थ के द्वारा उनके अपने लिये बनाये गए, संचित जल आदि अन्न स्थावर जीव रहित प्राणिक, स्त्री आदि विकारी साधन शून्य एकान्त और प्रशस्त उपाश्रय में रहना चाहिए। देवकुल, सभा आदि १८ प्रकार के और ऐसे अन्य निर्दोष स्थान में ठहरना चाहिए। जो मकन साधु के लिये आरम्भ करके बनाया हो, या पानी में सींचा हो, फूल माला आदि से सजाया हो, डाम आदि से छत बनाना, चूने सड़ी से पोतना, गोबर से लीपना अग्नि जलाना, और भाण्ड वर्तन वासन इधर उधर करना ये सब क्रियाएँ जहाँ घर के भीतर या बाहर साधु के लिये की गई हों साधुओं को पैदा हिसाबुक्त उपाश्रय वर्जन करना चाहिए, क्योंकि ऐसा स्थान सूत्रज्ञा से निषिद्ध है। इस प्रकार यह विधित्त-विशेष वान्त वस्तुिगुण प्रथम भावना है।

ऐसे वगीचे आदि के वन प्रदेश में जो कुछ इक्कड़ आदि वास और फूल, फल त्वचा आदि वनरपति के अन्न तथा वाष्प आदि कोई ग्रहण करता है व्रती-साधु को उनमें से कोई भी पदार्थ स्वामी की आज्ञा लिये बिना ग्रहण करना योग्य नहीं है। इसलिये प्रति दिन प्राण्य पदार्थों की आज्ञा लेकर ही ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार अवग्रह समिति रूप दूसरी भावना है।

पाट पाटिया व शय्या के लिए वृक्ष नहीं कटाने चाहिए। छेदन भेदन से पाट आदि शय्या नहीं बनवानी चाहिए, किन्तु जिस उपाश्रय में ठहरें वहाँ पर ही शय्या की गवेषणा करनी चाहिए। विषम स्थान को सम नहीं बनाना, वायु रहित अथवा अधिक वायु वाले स्थान में उत्सुकता नहीं करना। दांस मच्छर

आदि से छुष्य नहीं जाना और उनके निवारणार्थ अग्नि या धूम का प्रयोग भी नहीं करना, इस प्रकार संयम आदि माष की प्रयत्नता से समाभिमुख भीर मुनि शरीर से सदा अचौर्य व्रत का पालन करे। आत्मभ्यासे युक्त सम्यक् प्रवृत्ति बाधा और राग द्वय रहित होकर धर्मका आपरण करे। यह शम्भा समिति रूप तृतीय भावना है।

चौथी भावना—साधु समूह के लिये साधारण पिण्ड के मिलने पर प्रती की पठना पूर्वक सेवन करना चाहिए। शक्त आदि संप्रचुर भोजन को अधिक अथवा जल्दी २ नहीं करे चपलता युक्त बिना विचारे और दूसरे के लिए पीडा कारक सहोप आहार का वर्जन करे। साधु को उस प्रकार जाना चाहिए जिस प्रकार से अचौर्य व्रत का मङ्ग नहीं हो। यह अदत्तादत्त विरमण व्रत का सूत्रम नियम है। यह साधारण पिण्ड नाम की समिति रूप चौथी भावना है।

साधर्मिक साधुओं के साथ योग्य विनय करना चाहिए। उपकार और पारयुक्त आदि विभिन्न प्रसङ्गों पर गुरु, सामान्य साधु—ब्रह्मी और तपस्विओंके विषयमें विनय करना चाहिए। क्योंकि विनय भी एक प्रकार का तप है और तप भी धर्म है। इसलिये विनय साधन करना चाहिए। इस प्रकार विनय समितिरूप पाँचवी भावना होती है।

इस प्रकार प्रत्येक भावना संयुक्त अन्तःकरण बाधा साधु सदा अधिकाररूप पाप कर्म के करने व कराने से विरत होकर वृत्तानुज्ञात अवग्रह अर्थात् अचौर्य व्रत की रक्षि वात्ता होता है। इस प्रकार यह अचौर्य व्रत तृतीय संवर का धार है। उपरोक्त भावनाओं के द्वारा अच्छी तरह पाला जाता है। उत्तम है। इस प्रकार सुषम स्वामी कहते हैं कि यह तीसरा संवत्सार पूण हुआ। सू० ॥ २ ॥ २६ ॥

साटीरा—इस अभ्यसन में ब्रह्म और माव दोनों प्रकार के चौर्यकर्म का निषेध किया गया है। क्योंकि काष्ठ के यह और साहित्य का अंश लेकर अपनी विद्वत्ता बताना भी एक प्रकार की चोरी है। इस व्रत की रक्षा के लिये पाँच बातें परम अपेक्षित हैं। निर्दाप व एकांत स्थान का सेवन करना बिना दिये दण्ड तक भी ग्रहण नहीं करना शम्भा आदि के लिये वृक्ष आदि नहीं कटवाना, और प्रतिकूल परिस्थिति में भी छुष्य नहीं जाना मित्रा सं प्राप्त आहार का निषिक्त सेवन करना, गुरु, और साधुओंमें यथा योग्य विनय करना, साधकको इन्हीं ध्यानमें रखना चाहिए।

❀ समाप्त तृतीयसंवरधारम् ❀

❀ अष्टमं शान्त्यार्थं भावार्थम् ❀

८ चतुर्थ संवरद्वारय ८

सम्बन्ध-तृतीय संवर में अचौर्यव्रत का विधान किया गया है। वह ब्रह्मव्रत के धारण करने पर ही निर्वाध पाला जा सकता है, इसलिये चतुर्थ अध्ययन में सूत्र क्रम से सम्बन्धित ब्रह्मचर्यव्रत का निरूपण करते हैं-

मूल-“जंबू ? एतौ य ब्रह्मचरं उत्तम-तव-नियम-शाण-दंसण-
चरित्त-सम्मच्च-विणयमूलं, जम-नियम-गुणप्पहाणजुत्तं, हिमवन्त महत्त-
सेयमन्तं, पसत्थ-गंभीर-धिमित्त-मज्झं, अज्जव-साहुज्जा चरित्तं, मोक्ख-
भग्गं, विसुद्ध-सिद्धिगति-निलयं, सासयमब्बावाहमपुण्णम्भवं, पसत्थं सोमं
सुमं सिवमचलमक्खयकरं। जतिवर-सारक्खित्तं, सुचरियं सुभासियं,
जवरिमणिवरेहि महापुरिस-धीर-खर-धम्मिय-धित्तिमन्ताण य सया
विसुद्धं, मब्बं मब्बज्जाणुचिन्तं, निस्संक्रियं, निम्भयं, नित्तुमं, निरायासं,
निरुक्खेवं, निव्वुत्तिवरं, नियम निप्पकपं तव संजम-मूल-दलियोम्मं,
पंच महव्वयं सुरक्खियं, समिति गुत्ति गुत्तं, भाणवर-कवाड-सुकयमज्झप्प
दिक्कफलिहं, संनद्धोच्छइयदुग्गइयहं, सुगतिपहदेसगं च, लोसुत्तमंच व-
यमिणुं, पउमसरत्तलाग-पालिभूर्यं, महासगड अरगतुं व भूर्यं, महा-
विडिमरुक्खक्खं व भूर्यं, महानगर पागार कवाडफलिहभूर्यं, रज्जु पिण्णिद्धो
व-इंदकेतू विसुद्ध खेग गुण संपिण्णद्धं। जंमिय भग्गमि होइ सहसा सर्व्व
संमग्ग-मथिय-चुन्निय-कुसल्लिय-पल्लद्ध-पडि-खंडिय-परिसडिय-विण्णा-
सियं, विण्णपसील-तव-नियम गुणसमूहं, तं वंमं भगवन्तं-गहगण न
क्खत्त तारगाणं वा जहा उडुपती १, मणिसुत्त-सिल-प्पवाल-रत्त रयणा-
गराणं व जहा समुद्धो २, वेरुलिओ चेव जहा मणीणं ३, जहा मउडो चेव
भूसणाणं ४, वत्थाणं चेव खोम जुयलं ५, अरविदं चेव पुण्णजेट्ठं ६, गोसी-
सं चेव चंदणाणं ७, हिमवन्तो चेव ओसहीणं ८, मीतोदा चेव निन्नगाणं ९,

स्वर्णित-परिशोधित-विनाशितं । विनश्वील-तपो-नियम-गुणसमूहं, तद्वन्नचयं
 भगवद्, -प्रहणं नत्तत्र तारकाणां वा यथोद्भूतः १, मलिमुकाशिला-प्रवाल-रक्त
 रत्नाऽऽकराणां च यथा समुद्रः २, वैदूर्यञ्चैव यथामण्यो ३, यथा मुकुटञ्चैव भूष-
 णानां ४, वस्त्राणाञ्चैव जौमयुगलम् ५, अरविन्दञ्चैव पुष्पज्येष्ठ ६, गोशीर्षञ्चैव
 चन्दनानां ७, दिग्वाश्चैव औपधीनां ८, शीतोदाचैव निम्नगानाम् ९, उदधिषु यथा
 'स्वयन्मुत्तमण १०, रुचःतररचैव मोण्डलिक पर्वतानां प्रवरः ११, ऐरावत इव कुञ्ज-
 राणाम् १२, सिंहोदया मृगाणां प्रवरः १३, पायकानां चैव वेणुदेवो १४, धरण्यो
 यथा पद्मगेन्द्रराजा १५, कल्पानञ्चैव ब्रह्मलोकः १६, सभासु च यथा भवेत्सुधर्मा
 १७, स्थितिषु त्वसप्तमावा प्रवरा १८, दानानाञ्चैवाऽभयदानम् १९, कृमिराग इव
 कम्बुजानाम् २० संहननेषु चैव वज्रवर्ध २१, सस्थाने चैव समचतुरस्रम् २२, ध्यानेषु
 च परमशुक्त ध्यानम् २३ ज्ञानेषु च परमकेवलं तु सिद्धम् २४ लेशयासु च परमशुक्ल
 लेश्या २५, तीर्थङ्करो यथा चैव मुनीनाम् २६, वासेषु यथा महाविदेहो २७, गिरिराज
 रचैव सन्दरवरः २८, वनेषु यथालन्दनवनं प्रवरः २९, द्रुमेषु यथा जम्बूः सुदर्शना
 विश्रुतयथा यस्यानान्नाचार्यं द्वीपः ३० तुरगपति रजपतीरथपतिर्नरपतिर्यथा विश्रुत-
 रचैव राजा ३१, रविकश्चैव यथा महारथमतः ३२ । एवमनेके गुणा अहीनाभयान्ति
 एकस्मिन् ब्रह्मचर्ये । यस्मिन् चाराधिते आराधित ब्रतमिह सर्वम् । शील तपश्चवित्त-
 यश्च संममश्च, क्षान्तिर्गुप्तिर्मुक्तिस्तथैव ऐदितौक्तिक पारलौकिक यशश्च कीर्तिश्च प्रत्य
 यश्च तस्मान्निर्भूतेन ब्रह्मचर्यं चरितव्यम् । सर्वतो विशुद्ध यावज्जीवन यावच्छ्रेयोऽर्थि
 सशमिनेति, एवं भणितं ब्रतं भगवता ।

अन्व०“(जंबू !) हे जंबू ! (एतोय) फिर इस तृतीय ब्रत के आगे (बंमचैर)
 ब्रह्मचर्य ब्रत है, जो (उत्तमनव-नियम-गुण-दृग्ग-चरित्त-सम्मत-धियायमूल)
 उत्तम अनशन आदि तप, नियम-उत्तर गुण, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सम्यक्त्व और
 चिनय का मूल है (जम-नियम-गुणपदाणजुत) अहिंसादि पाच यम और गुणों
 की प्रधानता वाले नियम से युक्त (हिमवन्त महत्तनेयमत) हिमवान् पर्वत के समान
 यद्वा और तेजस्वी (पसत्यगमीरथिमितमग्ग) प्रशस्त गम्भीर और स्थिर मध्य याने
 मनुष्य के अन्तःकरण बाला, (अज्जय साहु जणा चरितं) सरल भाव युक्त साधु
 पुरुषों से आमेयित (मोक्खमग्ग) मोक्ष का मार्ग (विशुद्ध सिद्धिगति निलय)
 विशुद्ध रागादि रहित निर्मल सिद्धि गति रूप पर बाला (सासयमब्बावाहमपुण

भूमि) शाश्वत, बाधारहित और पुनर्जन्म की रीकमे वाला (पञ्चर्षं सोम सुमं) प्रशस्त-उत्तम गुण वाला तथा सौम्य, शुभ अथवा सुख रूप-(सिधमचक्षुमक्षयकरे) शिब-निष्ठपद्म अथवा और अक्षय या पूर्ण पद्म को करने, वाला (अतिथर सार किस्त) प्रमान मुनिओं से सुरक्षित (सुचरितं सुभासितं) अच्छी तरह आचरण किया हुआ, सम्यक प्रकार से उपदिष्ट नवरि) केवल (सुविशेषेति) उत्तम मुनिओं से 'उपदिष्ट है' (महा पुरिस-वीर-सूर-धम्मिय-भित्तिमंताय च) उत्तम महा पुरुष अत्यन्त साहसी और धार्मिक व धृति वाले पुरुषों का व्रत (सया) सदा (विमुक्त) होव रहित अथवा सभी अवस्थाओं में शुद्ध पाला गया है (भव्य) कल्याण का कारण तथा (भव्यवसायगुणिन्) भव्यजनो से पाला गया है (निस्संकिणं) वह शंका रहित (निष्मयं निपुणं) निर्मय और बुद्ध-विस्तारता से रहित है (विरायासं निवलेनं) स्नेह रहित व स्नेह के अप-क्षेप से रहित (निम्नुतिथरं) चित्त शान्ति का घर (नियम निष्कर्षं) नियम से अविच्छल (तत्संयम-मूल-हृदिय-लेख्यं) तप और संयम के मूल वल्लके समान (पंचमहज्ज वसुधस्सिक्खं) पांच महाव्रतों में विशेष सुरक्षित (समिति-गुप्तिगुत्तं) पांच समिति और तीन गुप्तिओं से गुप्त (म्हा खबर-कबाड-सुकुय-भम्मवदिम्वल्लिहं) रक्षा के लिये उत्तम ध्यानरूप सुविशेषित कपाटवाला और अघ्यात्म-सद्भावनामय चित्त ही वहाँ ही हुई आगता है, ऐसा (संनोच्छ्रय-दुग्गहर्हं) बड़े हुए और बड़े हुए की उरही दुर्गतिमार्ग का प्रति बन्धक (च) और (सुगतिपद्मेसंगं) सुगति के मार्ग को दिखाने वाला (होगुत्त मंच) और लोक में उत्तम (वयमिच्छं) यह व्रत (पञ्चमसत्-तहाग-पात्रिभूवं) पञ्च सटीकर के पालतुस्थ (महासगड-अरग-तुंज-भूवं) बड़े रबके बरूमें लगे हुए छदिओं के लिये नामितुस्थ (महाविहिमवस्त-वत्सभमूवं) तथा अतिराव बिस्तार वाले बड़े हुए के स्कन्ध के समान (महानगर-पागार-कबाड-वज्रिभूवं) बड़े मगर के प्राकार में कपाट की आगता के समान, [धर्मरूपनगर-कपाट की प्रप्रव्रत आगत है] (रज्जुपिण्डो-ईहकेतु) छोटी से बड़े हुए इन्द्र अत्रही तरह (पिण्डरुण-गुण-संपिण्डं) अनेक बिहूय गुणों से युक्त है (वम्मिय मग्गमि) और जिसके मंग होने पर (सहसासम्भं) सहसा सब विष्णुवर्द्धित-तब-नियम-गुणमयूहं) दिनय, शील, तप और नियम आदि गुणसमूह संभवा-मधिय-पुनिय इत्यस्ति पञ्च-पदिय-अधिय-वग्गिय-विण्णसिधं) पूछे हुए पन्नी तरह संभम,

दही के जैसे मथा हुआ, अटि के जैसा चूर्ण किया हुआ, कांटा लगे शरीर के समान शल्ययुक्त, पर्वत से शिला की तरह धर्म से लुडका हुआ, गिरा हुआ, लकड़ी के जैसे दो भाग होकर टूटा हुआ, बुरी हालत में पहुँचा हुआ और अग्नि में जल कर उड़े हुए काष्ठ के समान विनष्ट (होइ) होता है, (तं बंभ भगवतं) इस प्रकार का वह ब्रह्मचर्य भगवान् अतिशय सम्पन्न है।

अब ३२ उपमाओं से इस ब्रह्मचर्य का वर्णन करते हैं—(गहगण-नक्षत्र-तार गणों का जहा उडुपती) ग्रह नक्षत्र अथवा तारकों के बीच जैसे चन्द्र (मणि-मुत्त-सिलपवाल-रत्न-रयणनाराणं च जहा समुद्रो) और मणि, मोती, विद्रुम अथवा पद्मराग आदि रत्न खानों में समुद्र के समान (बेरुलिओ चैव जहा मणीणं) और मणिओं के बीच जैसे वैडूर्यमणि प्रधान है (जहा मड्डो चैव भूसणाय) आभूषणों के बीच जैसे मुकुट और (वत्याण चैव सोमजुयलं) वस्त्रों के बीच जैसे सौमयुगल कपास का वस्त्र ही उत्तम है (अरविंदं चैव पुष्पजेट्टं) फूलों में जैसे अरविन्द-कमल ही श्रेष्ठ है (गोतीसं चैव चंद्राण) चन्द्रों में गोशीर्ष जैसे प्रधान है और (हिम-वतो चैव ओसहीण) औषधी-चमत्कारिक औषधिओं का जैसे हिमवान् उत्पत्ति स्थान है (सीतोदा चैव निम्नगाण) और नदियों के बीच जैसे सीतोदानदी प्रधान है (उदहीसु जहा सयंभुरमणो) समुद्रों में जैसे स्वयम्भुरमण समुद्र बड़ा है (रुयंग वरे चैव माडलिक पड्याणपवरे) माण्डलिक गोल पर्वतों में जैसे रुचकवर गिरि प्रधान है (एरायण इव कुजराणं) हाथियों के बीच जैसे ऐरावण प्रवर-श्रेष्ठ है (सीहोव्व जहा मिगाणं पवरे) मृग-जंगल के चतुष्पद प्राणिओं में जैसे सिंह प्रधान है (पावकाणं चैव वेणुदेवे) सुवर्ण कुमारों के बीच जैसे वेणुदेव (धरणो जह पयणग इदराया) नागकुमारों में जैसे धरणेन्द्र नागराजा प्रधान है (कप्पाण चैव बंभलोए) कल्प-देवलोक में जैसे ब्रह्मलोक बड़ा और (सभासु य जहा भवे सुहम्मा) सभाओं में जैसे सुवर्मा-देव सभा प्रधान है (ठेठिसु लव सत्त मव्वं पवरा) स्थितिओं में जैसे अनुत्तर-विमान वासी देवों की स्थिति प्रधान व बड़ी है (दायाण चैव अभय दाण) अनेक प्रकारों के दानों में जैसे अभयदान (किमिराउ चैव कंवलणं) कम्बलों में जैसे कुमिराग-रक्त कम्बल प्रधान है (संघयणे चैव वज्जरिसभे) संहननों में जैसे यक्ष ऋषभनाराय संहनन और (संठाणे चैव समचउरंसे) छः संस्थानों में जैसे समचतुरस्रसंस्थान प्रधान है—(आणेषु य परम सुकव्वाणं)

चार प्रकार के धातुओं में जैसे परम शुद्ध ध्यान और (याज्ञेय य परम केवल तु सिद्ध) पाषाण धातुओं में जैसे केवल ध्यान पूरा रूप से प्रसिद्ध है और (सप्तसुपत्य सुकृतेत्या) छः खरारामों में परम शुद्ध खराराम जैसे उत्तम है (उत्पद्यते अहा चेव-मुखीयं) मुनिओं में जैसे तीर्थहर प्रधान है (य सेमु अहा महा धियेहे) वर्ष क्षेत्रों में जैसे मद्रादिरे क्षेत्र, (गिरिराया चेव मद्रा वरे) पर्वतों में जैसे मन्दर पर्वत गिरिराज है, (यणपु अहा मरुतययं) दलों में जैसे मन्वन वन (पवर) क्षेत्र है (तुमेमु अहा अङ्ग सुवसया पीसुव असा) वृक्षों में जैसे अन्व सुवर्तन वृक्ष विमुक्त-विस्मृत कीर्ति वात्सा है (जीम नत्मेणव अवर्धयो) जिसके नाम से यह जीम-अन्व द्वीप कहा जाता है (तुरगवती गवधती रक्षती नत्पती अह पीसुव चेव राया) अश्वपति, गजपति, रक्षपति और नत्पति राजा जैसे विस्मृत है, यैने यह ब्रह्मव्रत भी उत्तम और विस्मृत है (रक्षिष चव अहा महा रक्ष गण) वृक्ष रूप पर बैठा हुआ जैसे रक्षिष वृक्षों का अभिभव करने वाला होता है (एवमश्वगा गुणा अदीसा मरति) इस प्रकार अनेक गुण पूर्ण और स्वाधीन होते हैं (अभिष) और जिस (एवमभिषमपरे आराधियमि) एक अष्टाध्यायी की आराधना करने पर (आराधिय वयमियं सव्यं) यह सब नियमव्रत पाजित होता है । [व्रत गिनाते हैं] (सोमं) शीघ्र-समाधान (सपो य) और तप (त्रिषमो य) विनय और (संजमा य) संयम तथा (अंजो गुची सुची) जमा, गुप्ति, मुक्त-निकोम शक्ति (तदेव) इसी तरह (इह लोश्य पारलोश्य असे य किचो य) इहलोक और परलोक सम्बन्धी यश और कीर्ति-दान पुण्य के फल भूत अथवा एक शिन्धु अगपिनो प्रसिद्धि और (पञ्चमो य) प्रत्यय-विश्वास का कारण है (तन्हा) इसलिये (निवृण) स्विद विच से (सव्यमो विमुद्धं बमवेरं वरियवर्) सर्वमा याने त्रिभुव त्रिगग से विमुद्ध होय रहित ब्रह्मव्रत का पाजन करना चाहिये । (आयम्योपाय आव सवट्टि संवडति) आजीवन के जिये वाचन्य भेदाधीन या सपस्या से निर्मास जाने के कारण साधु रवेतास्मि कहाता है । (एवमभिषमं ययं अगवया) इस प्रकार भगवान् महावीर ने अष्टाध्यायी व्रत को कहा है ।

भाय-दे अथु १ तीसरे संवर के बाद चतुर्थ संवर अष्टाध्यायी है । यह प्रधान तप, नियम और ध्यानारि का मूल तथा यम नियम आदि प्रधान गुण धारा है । क्षिमा पात्र के समान बड़ा सेव्यरी अष्टाध्यायीर हृदयवाता आदि अनेक विरोधय स्पष्ट

है। जिस ब्रह्मचर्य के भङ्ग होने पर सहसा विनयशील और तपनियम आदि गुण समूह सब नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं। अतिशय सम्पन्न होने से वह ब्रह्मचर्य भगवान् है। घत्तीस उपमाओं से इसका महत्त्व कहा गया है।

जैसे—‘नक्षत्र मण्डल में चन्द्रमा के समान १, मणि आदि रत्नों की खानों में समुद्र के समान २, मणिओं में वैदूर्य के समान ३, आभूषणों में मुकुट के समान ४, वस्त्रों में शौमयुगल-कपास वस्त्र के समान ५, पुष्पों में कमलके समान ६, चन्द्रनों में गोशीर्ष के समान ७, औषधि स्थानों में हिमवान् के समान ८, नदियों में शीतो-दा नामकी नदी के समान ९, समुद्रों में स्वयम्भू रमण के समान १०, भाण्डलिक पर्वतों में रुचकगिरि के समान ११, हाथियों में पेरारण हाथी के समान १२, जंगली पशुओं में सिंह के समान १३, सुपर्ण कुमारों में वेणुदेव के समान १४, नागकुमारों में धरणेन्द्र के समान १५, बारह देवलोकों में ब्रह्मदेवलोक के समान १६, सभाओं में सुधर्मा के समान १७, स्थितिओं में अनुत्तर विमानवासी देवों की स्थितिके समान १८, दानों में अभयदान के समान १९, कम्बलों में कुमिराग-रक्त कम्बलों के समान २०, शरीर के सदननों में वज्रऋषभनाराच के समान २१, छः प्रकार के स्रंठाणों में समचतुरस्र संस्थान के समान २२, चार ध्यान में शुद्ध ध्यान के समान २३, पाच ज्ञानों में केवल ज्ञान के समान २४, छ लेशवाओं में परमशुक्त लेशवा २५, मुनिओं में जैसे तीर्थङ्कर २६, क्षेत्रों में जैसे महाविदेह प्रधान है २७, पर्वतों में सुमेरुके समान २८, वनों में नन्दनवन के समान २९ वृक्षों में जंबूवृक्ष के समान ३०, तुरगपति आदिओं में जैसे चक्रवर्ती राजा ३१, रथिकों में जैसे महारथी उत्तम है ऐसे ही व्रतों में ब्रह्मचर्य बड़ा और प्रधान है ३२। इस प्रकार एक ब्रह्मचर्यव्रत में अनेक गुण पूर्ण तथा निवास किये रहते हैं। ब्रह्मचर्य व्रत के पालन करने पर वह निरर्न्य प्रब्रज्यारूपव्रत अखण्ड पालन किया होता है। शील, तप, विनय, संयम, क्षमा, गुप्ति और निर्जोभता तथा सिद्धि एवं इस लोक परलोक की यश कीर्ति का भी आराधन हो जाता है। इसलिये स्थिर भावसे ब्रह्मचर्य का श्रिकरण त्रियोग की शुद्धि पूर्वक पालन करना चाहिए। जीवन पर्यन्त इसमें स्थिर रहना आदि, इस प्रकार श्री महावीर प्रभु ने ब्रह्मचर्यव्रत को कहा है वह इस प्रकार है। जैसे—

भूत-“तच्च इमं-पचमहृष्य-सुभ्य-मूलं, समसमशादल-साहुसुचिन् ।

वेर विरमस्य-पञ्चबसाखं, सन्धसमुद-महोदधितित्यं ॥ १ ॥

तित्वकरेहि मुदेसिय-मर्गं, नरय तिरिच्छ-विषजिप्रयमर्मा ।

सन्धपवित्ति-मुनिमिषयारं, सिद्धिविमाय-अर्बगुयदरं ॥ २ ॥

द्वेव-नरिद-नमसियपूर्यं, सन्धजगुत्त-प्रगलमर्गं ।

दुदरितं शुभनायगमेर्कं, मोक्षपदस्त वडिसकभूर्यं ॥ ३ ॥

जेश सुद्वचरिष्य भवइ सुबंमसो, सुममशा सुसाह, सइसी समुबी
ससंअप सएवमिक्खु जो सुद्धं चरणि बमचेरं ।

इमं च रति-राग-दोस-मोह पवद्वसकरं किमज्झ-पमाय-दोसपासत्त-
सीलकरणं अम्मंगसाखिय तेष मज्झसायि य अभिक्खणं कक्खा-सीस-कर
चरस-इदस-धोदस-संवाइस-गायकम्म- परिमदयाणुलेवस- दुम तस
पूवस-सरीर परिमदस-भाउसिक (य) इसिय-मखिय-नइगीय-
वाइय-नइ-नइक-अन्न-मन्न पेज्जस-वे लंक्क वाखिय सिंगारागागसि य
अभाणिय एवमादियाणि तव-सज्जम-बमचेर-धातोवधातियाइ अणुचर
भाणेश वंमचेरं वज्जेववाइ सण्डकासं ।

मावेयव्वो भवइ य अंतरप्पा इमेहि तव निपस-सील-जोगेहि निषकालं,
कित्ते !-अण्हासक-अदंतभाबस-सेय-मल-ज्झ-चारखं मूखवय-कंसलोण
य लम-दम-अपेलग-सुप्पिकास लापव-सीतोसिषकट्टसेजा-धूमिनिसेजा
परचर पवेस-लद्धावलद्ध-मायावयास-निदस-इस-मसगकास नियम-
तव-गुण विजयमादिणि अशा से धिरतरं होइ बंमचेरं । इमं च अर्बमचेर
विरमस्य परिरक्खसइयाण पावयणं मगवया सुकडियं (अचहितं) पंचामा
विकं भागमसिमइ सुद्धं नेयाउयं अकुडिखं अणुचरं सन्धदुक्ख पावाव
विउसवणं ।

प्रावा-“तच्चर्क-“ पञ्चमहावत सुमतमूलं समनकाज्जाविल सामुसुपीर्यम् ।

वेर विरमप्रपर्वसार्जं, सर्वसमुद्रमहावधि तीर्थम् ॥ १ ॥

तीर्थद्वारे सुदेशितमार्गं, नरक तीर्थम् विवर्जितमार्गम् ।

सर्वं पथि (प्रवृत्ति) सुनिर्मितसारम्, सिद्धि विमानाऽपनुद्वारम् ॥ २ ॥

देवनरंन्द्र नभस्वितपूज्यम्, सर्वजगदुत्तम मङ्गलमार्गम् ।

दुर्द्वारं गुणनायकभेदम्, मोक्षपथस्याऽवतन्मकभूतम् ॥ ३ ॥

येन शुद्धाऽऽचरितेन भवति सुब्राह्मण सुश्रमण सुसाधुः, सञ्चरिषि समुनि, स संयतः स एवभिद्धुः, य शुद्धं चरति ब्रह्मचर्यम् । इदञ्च रति-राग-दोष-मोह प्रवर्द्धन करं किमभ्य (गत्य) प्रमाद-दोष-पार्वस्थ-शीलकरणम्, अभ्यवद्वनानि च तैलमज्जनानि (मर्दनानि) च, कक्ष-शीर्ष-ऊरु-चरण-वदन-वाहन-सवाहन-गात्र कर्म-परिमर्दनाऽनुलेपन-चूर्णवास धूतन-शीर-परिमण्डन-वाकुशिक-हस्मित-भणित-नृत्य-गीत-वादित-नट-नर्तक-जङ्गल-मङ्गल-प्रेक्षण चेलंगका (विदूषका) नि, ये शृङ्गारगृहाश्च, अन्यानि चैवमादिकानि तपः सगम-ब्रह्मचर्य-घातोपघातकानि, अनुचरता ब्रह्मचर्यं वर्जनीयानि सर्वकालम् । भावयितव्यो भवन्त्यन्तरात्मा, एभिस्तपो-निमयशीलयोगैर्नित्यकालम् । केते ? (तद्यथा) अस्नानम् अद्वन्तधावनम्, स्वेदमङ्गल-जङ्गलधारणम् गौनव्रतकरलो गच्छ क्षमा-दमाऽचेलक-क्षुत्पिपासा लाघव-शीताण-काम शय्या-भूमि निपचा-परगृहप्रवेश-लाभालाभ-मानाऽपमान-निन्दन-वृंश-मशक-स्पर्श-निग्रम-नपो-गुण, त्रितयादिकैर्यथा तत् स्थिरतरं भवति ब्रह्मचर्यम् । इदञ्च ब्रह्मचर्यं धिरमण परिरक्षणार्थाय प्रवचन भगवता सुकथित प्रेत्यभाविकम् आगमिपद्मद्रं शुद्ध न्यायोपेतम् अकुटिलम् अनुत्तरं सर्वदुःखपापाना व्युपशमनम् ।

• अन्व०—“(तं च) और ब्रह्मचर्य विषयक यह वचन इस प्रकार है—(पंच महत्त्व य सुव्ययमूल) पंच महान्त रूप सुव्रतों का जो मूल की तरह मूल है अथवा साधुओं के शुभ व्रत और अशुव्रतों का जो मूल है तथा हे सुव्रत ? ऐसा सम्बोधन भातकर भी अर्थ किया गया है (समग्रमण्डलसाहसु चिन्तं) भाव पूर्वक शुद्ध रवभाव वाले साधुओं से सम्यक् सेवन किया गया (वैर विरमणपञ्चवसारण) वैर की निवृत्ति और अन्त करने वाला (सव्र समुद्र-महोदधि-तित्थ) सब समुद्रों में बड़े स्वयम्भुरमण समुद्र के समान दुस्तर तथा तैरने का उपाय होने से तीर्थ है ॥ १०॥ (तित्थकरेहि सुदेशितमग्ग) तीर्थद्वारों से अच्छी तरह दिखाये गये मार्ग वाला (नरय-तिरिच्छ-विबज्जिप्रमग्ग) नरक तथा तिर्यञ्च गति के मार्ग को बंद करने

पासा (सट्ट-पवित्र-मुनिमियसारं) सष पवित्र अनुष्ठानों को सार शुद्ध करने
 पासा (सिद्धि विमाख अद्यगुणहारं) सिद्धि और वैमानिक गति के द्वार को खोलने
 पासा ॥ ॥ (देव नरिह नर्मसियपूर्ण) देव तथा नरेशों से नमस्कृत अनुष्ठान के
 निये पूजनीय (सषत्रगुत्तम-भगवत्तमम्) अगत् के सष मङ्गलों का मार्ग या उनमें
 प्रयत्न है (दुस्तरिचं) दुर्धर्म-किसी से परामर्श नहीं पाने वाला, अथवा दुष्कर
 (शुण्य नायगमेस्कं) अद्वितीय गुणों का नायक (मोक्ष पदस्त्र) सम्यग्वर्तनादि
 मोक्ष मार्ग का (बहिसकभूर्यं) श्रेष्ठ भूत है ॥ ३ ॥ (जेष सुद्ध चरिण्य) जिसके
 सुद्ध आसेवन करने से (भवद् सुबन्धयो सुसमयो सुमाहू) सुत्राद्य-सषा न ह्य
 यथार्थ तपस्वी और निर्याय साधक सषा साधु होता है तथा (जो सुद्ध चरति दम्बेरे)
 जो सुद्ध रीति से ब्रह्मचर्य का पालन करता है । (स इसी) वह अपि यथावत् पद
 ब्रह्मा है (स सुयी) वह यथोक्त मुनि तथा (स संख्य) वह संयत-संयम्बान और
 (स पब भिक्खु) वही भिक्षु है । अथ ब्रह्मचर्य में स्थापने योग्य व्यवहारों को कहते
 हैं (इमं) और इस (रति-राग-दोम-मोह-पवहुडणकरं) रति-विषय राग-राग
 मोह राग होंप और मोह को बहाने वाला (निमम्भ-पमाय-दोस-पासत्य-सीत
 करणं) निस्सार प्रमाद होप और ज्ञानादि आधार से बहिर्भूत नष्टही साधुओं का
 सा व्यवहार करना (अर्भगयाणि य) बृत्त आदि की माक्षिरा और (विलमज्जयाणि य)
 वेष्टकगाकर स्नानकरना तथा (अभिबन्धनं) आरम्भार (कक्क सीस कर-चरण पदसं
 धोय-संवाहण गायकम्म-परिमहणमुत्तेपण-पुनवास-पूषण-सरीर परिमंढण-
 या रसिक-हसि-मखिय-नह-गीय-वायम नह-महक-अल्ल-मल्ल-पेच्छण वेसवक)
 कम्म-वगल शिर, हाथ पाँव और मुख को धोना, संवाहन-मर्दन करना, पैर आदि
 अङ्गों का अपम आदि करना, सष ओर से वेह को मलना, और विसर्पन करना,
 गूर्ण पास-सुगन्धित वस्त्र से शरीर को सुपासित करना, अंगर आदि से धूप देना,
 शरीर का मण्डन करना, आदि का रंग प्रिगि करने वाली मल केश आदि की
 रचना करना, हसित-हास, व विहार शुद्ध बोलना, नाच गीत और भरी आदि
 पाय की ध्वनि, मट-माटक करने वाले नर्तक-नृत्य करने वाला, अस्त्र-होरी पर
 रोवने वाले तथा मङ्ग-शुली लाने वाले-इन सषका देरना, और दिव्यक सम्बन्धी
 राग वेष्टा (पाणि य , और जो (सिगारागाराणि य) गृह्णार रसके घरकी तरह
 (अभायि य) और अग्न इम प्रकार की बस्तुयें (तप-संजम-दम्बेरे पातोह

चातियाई) तप, संयम और ब्रह्मचर्य के घात व उपघात को करने वाली याने तप
 आदि का आशिरु वा सर्वथा नाश करने वाली है (बंभचेरं अणुचर माणेण)
 ब्रह्मचर्य के आसेवन करने वाले को उपरोक्त घातें (सन्वकालं) सर्वदा (धर्मेश
 व्याह) वर्जन करने योग्य हैं । (इमेहिं तव-नियम-शील-जोगेहिं) इन आगे कहे
 जाने वाले तप नियम और शील के व्यापारों से (निष्कालं) सदा (अंतरणा)
 अन्तः करण भावेयव्यो भवइ) भावित करने योग्य होता है (किते ?) वे व्यव-
 हार कौनसे हैं ?

उत्तर--(अह्माण्ड-अर्द्धधावणसेय-मल्ल-जल्लधारणं) स्नान नहीं करना, हस्त
 धावन नहीं करना, पसीना और मल को धारण करना (मूखवय-केस तोप यं) और
 मौनव्रत व केश का लुञ्चन करना, (खम-इम-अवेजग-खुपिवास-लाचव-
 सीतोसिण-कटुसेजा-भूमिनिमेजा-परघर पवेस-ज्झावत्तद्ध-माणावमाय-निदणं
 हंस मसग फास-नियम तव-गुण विणयमाविर्हिं) क्षमा, दम-इन्द्रियनिग्रह,
 अवेजग-अल्पयत्न रखना, या वज्र रहित होना, मूख, व्यास, उपधि से हल्कापन,
 ठंडी और गर्मी, काष्ठशय्या-पाठ-आदि की शय्या, भूमि निबध्या-भूमि का आसन
 तथा पर घर में जाने पर कुट्ट मिलना या नहीं मिलना मान अपमान, निन्दा और
 डास मच्छर आदि का कष्ट सहना, द्रव्य आदि के अभिग्रह रूप नियम, तप, मूल
 व्रत आदि गुण और विनय आदि से अन्त करण को भावित करना चाहिए (जहा
 से धिर तरंग होइ बंभचेरं) जैसे उस व्रती का ब्रह्मचर्य अत्यन्त स्थिर हो । (इमंच)
 और यह (अग्रमचेर-विरमण-परिरक्खणुट्टयाए) अग्रम-तैथुन के निद्रुतरूप व्रत की
 रक्षा के लिये (पावयणं) प्रवचन (भगवया) भगवान् महावीर से (सुकहियं)
 अच्छी तरह कहा है 'जो कि' (पेसाभाविकं) परलोक में शुभ फलदायक (अण-
 मेसिमहं) भविष्य में कल्याण का कारण (सुद्धं) शुद्ध (नेयाउयं) न्याययुक्त
 (अकुडिलं) कुटिलता रहित (अणुत्तरं) सर्व श्रेष्ठ और (सव्वदुक्ख पावाणं
 थिउसयणं) सब दुःख व पापों का उपशमन करने वाला है ।

मूल--"तस्स इमा पंच भावणाओ चउत्थयस्स होंति अवमचेर वेरप्रण-
 परिरक्खणुट्टयाए, पढमं सयणासण-घर-दुवार-अंगण-आगास-गवक्ख-
 सास-अमिलोयण-पच्छवत्थुक-पसाहणक-एहाणिकावकासा अवकासा

जे प वेसिपार्श्व, अच्छंति य जत्य इत्यिकामा, अभिचल्य मोह दामरति
 राग बद्धयीमो कहिति य कदाओ बहुविहाओ, तेऽविदु वज्रविजा, इरिय
 संसत्त—सफिलिद्धा अन्नेवि य एवमादी अवकासा तेहु वज्रविजा, जत्य
 मणोयिम्ममो वा, मंगो वा मंसणा (मंसगो) वा अहु रुइ च हुज्जकासं
 त तं यज्जेज्ज वज्जमीरू अशायतणं । अंत पतवासी एवमसत्त—वास-वसही
 समित्तिजोगेण भावितो भवति अतरप्पा आरतमण—दिरय—गामभम्मे जिते
 दिए पमचेर गुणे ॥ १ ॥

वितिर्य नारीव्रणस्त मज्जे न कहेयवा कदा, दिदिता विम्बोय—
 विलास—सपडचा हास—सिंगार लोइयकइव मोहवशशी, न आवाह—वि
 वाह—रकडाविव इत्थीयं वा सुमग, दुमग कदा, चउअठ्ठिं च महिला
 गुहा, न वम-देस-जाति-कुल-रूव-नाम-नेवत्य परिग्रहकदा (व) इति
 पाथ अभाधिय एवमादियाओ कदाओ सिंगार कलुग्याओ तद—संजम
 पमचेर—धातोवधातियाओ, अणुवरमाणेशं पमचेर न कहेयवा, न सुये
 यवा, न चितेयवा । एवं इत्थी कह विरति समिति जोगेण भावितो भवति
 अतरप्पा आरत—मण—विरय गामभम्मे जितेदिर पमचेर गुणे ॥ २ ॥

ततीयं नारीव इसित्त मणितं चेद्धिय विप्येक्खित-गह—विलास कीर्तिर्य,
 विम्बोतिय—नट्ट—गीत—धातिय—सरीर सठास—वक्कर—चरण—नयन—छा
 घण्य रूव—जीम्बण—पयोहरावर—वत्थालंकार—मूसणाशि य गुज्जोवका
 सियाइ अभाधि य एवमादियाई वव—संजम—पमचेर—धातोवधातियाई
 अणुवरमाणेशं यमचेर न वक्तुसा, न मणसा, न वयसा पत्येयवाई पाव
 कम्माई । एवं इत्थीइव विरति—समिति जोगेण भावितो भवति अतरप्पा
 आरतमण विरय गामभम्मे जितेदिए पमचेरगुणे ॥ ३ ॥

चउय पुप्परय—पुप्पकीसिय—पुप्प संगय—मंय संयुया, जेते आवाह

विवाह-धोलकेषु य तिथि मुजन्ने सु उस्सवेसु य शिगारागार-चारु देमाहिं
 हाव-भाय-पल्लिय-विकखेव-विलाम-सालिणीहिं अणुकूल पेम्पिकाहिं
 सद्धि अणुभूया सवण-संपओगा, उदुसुइ-दरकुसुम मुरभिचंदण सुगंधि-
 वर वास-धूव-सुइ फरिस-वत्य-भूसणगु गोमवेया, रमणेज्जा उज्जगेय
 पउर-नड नट्टक(ग)-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिरु-नेलवग-कइग-यवग-लासग-ग्राइ
 कखग-लंख-भंख-त्तणइल्ल-त्तं व धीणिय-जालायर-पकरणाणिय बहुणि
 महुरसर-गीत सुस्सराइं, अन्नाणि च एवमादिगणि-तय-संजम-बंभ
 चेर-घातोवघातियाइं अणुचरमाणेणं बंभचेर न तान्ति समणेण लब्भा
 दट्ठुं न कहेउं, नविसुमरिउं जे । एवं पुव्वरय-पुव्वकीलिय-विरति समिति
 -जोगेण भावितो भवति अंतरप्पा आरयमण-विरत-गामधम्मो जि इंदिए
 बंभचेर गुत्ते ॥ ४ ॥

पंचमगं आहार-पणीय-निद्ध भोयण-विवज्जते, संजते सुसाहू,
 ववगय-खीर-दहि-सप्पि-नव नीय-तेल्ल-गुल-खंड-मच्छंडिक-महु-
 मज्ज-भंस-खज्जक-विगति-परिचत्तकयाहारे ण दप्पणं, न, बहुसो, न
 नित्तिकं, न सायसूपाहिकं, न खट्ठं तद्वा भोचव्वं जह से जाया माता य
 भवति । नय भवति विवममो न भंसणा य धम्मस्स । एवं पणीयाहार विरति
 समिति जोगेण भावितो भवति अंतरप्पा आरयमण विरत गाम धम्मो
 जिइंदिए बंभचेर गुत्ते ५ । एवमिणं संवरस्स दारं सम्भं संवरियं होइ सु-
 पण्हितं इमेहिं पंचहिवि कारणेहिं मण-वयण-कायपरिरिक्खिएहिं शिच्चं
 आमरणंतं च एसो जोगो खेयव्वो, धित्तिमता (या) मत्तिमता (या) अणासवो,
 अकलुसो अच्छिहो अपरिस्सावी असंकलिहो, सुद्धो सव्व जिणमणुच्चातो,
 एवं चउत्थं संवरदारं फासियं पालित सोहितं तीरितं किट्ठितं आणाए
 अणुपालियं भवति, एवं नायमृणिया मगवया पन्नविद्यं परुविद्यं पसिद्धं

सिद्धं वरं सामर्थ्यमिच्छं आशुचिरं सुखेतिष्ठ पसुन्यं चउत्वं संतरदारं समर्प
चिदेमि । सू० २ । २७ ।

आया-तररेता पञ्चभाषणाप्रगुर्वस्य भवन्ति, अमहाचर्यं विरमया परिरक्ष
आयाध । प्रथमं-शयनाऽऽसन-गृहद्वाराऽङ्गणाऽऽकारा- गवाह- शांताऽमितोक्त
पञ्चाङ्गास्तुक्त-प्रसाधक-आतिकाऽङ्कारा-द्वयकारा, ये च वेत्यानामासते च वत्र
क्षिप । अमीश्वरं मोहं दोषं गतिं रागवर्द्धिन्या कथयन्ति च कथा बहुविधा, तेऽपि हि
वर्जनीया श्री संसक्त सन्निष्ठा अन्येऽपि वैवर्मादयोऽङ्कारास्ते हि वर्जनीया । यत्र
मनो-विभ्रमो वा मङ्गो वा अशक्तो वा आर्षं रौद्रक्यं भवद्भ्यान् उत्तद्वर्जयेत् वर्म
भारं अनायतनमन्त प्रान्तवासी । एवमसंसक्त वास यस्यैव समितिं योगेन भावितो
भवत्यन्तरात्मा आसतमना विरतमामयमोक्षितेन्द्रियो ब्रह्मचर्यगुप्त ॥ १ ॥

द्वितीयं-नारी जनस्य मध्ये न कथनीया कथा, विभिन्ना विष्णोर्ब्रह्मास-सम्भ
युक्ता हास्यशृङ्गार कौटुम्बिकयेव मोहजननी, न आवाह-विवाह-वरकथेव कीर्त्या वा
सुमगदुर्मगकथा, चतुर्पक्षिष्व मद्भिज्ज गुण्या, न वर्य-वरा-प्राप्ति-कुल-रूप-नाम्न
नेपथ्य परिजनकथा कीर्त्यामप्याद्यपि च एवमाद्यं कथा शृङ्गार वदया तप
संयम-ब्रह्मचर्यं पातोपपातिका अनुचरता ब्रह्मचर्यं न कथनीया, न श्रोतव्या न
चिन्तितव्या । एवं श्री कथा-विरति-समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा आसत
मनाविरतमामयमोक्षितेन्द्रियो ब्रह्मचर्यगुप्त ॥ २ ॥

तृतीयं-नारीणां हसितमस्मितं वेष्टित-विप्रेक्षित-गतिविलासक्रीडितम्, विष्णो
क्लितद्वारागीत-वार्तिक-शरीर संस्थान-वर्य-कर-वरण-नयन-लावण्य-रूप-शौक्ल
पयोधराऽवर बालाङ्गार मूषणानि च गुह्यावकारिकानि अवाणि च एवमाविकानि
तप संयमब्रह्मचर्यं पातोपपातिका अनुचरता ब्रह्मचर्यं न चक्षुषा न मनसा न
वचसा प्रार्थितव्यानि पापकर्मणि । एवं श्रीरूप विरति समितियोगेन भावितो
भवति अन्तरात्मा आसतमनाविरत मामयमोक्षितेन्द्रियो ब्रह्मचर्यगुप्त ॥ ३ ॥

चतुर्थं-पूर्वरत-पूर्णक्रीडित-पूर्णसंमथ-प्रमथसंस्तुता, ये ते-आवाह-विवाह-
शौक्लेषु च विपिषु यज्ञेषु क्लेशेषु च शृङ्गाराऽङ्गार चारुनेपाभिर्हवभाष प्रकाशित वि
सृप बिलास शान्तिनीमि अनुकूलप्रेमिकाभि सार्धमनुभूता शयनसम्प्रयोगा चतुस्तुल
पर (कर) इन्दुम-सुरमिचम्बन-मुगाधिवर वास दूष भुरत्परी-बन्ध-भूर य गुह्योपयेता
रमणीया आलोचनप्रचुर (पद्मेय प्रचुर) नट-नर्तक-जल-मल-मौष्टिक-विद्यम्य

कथक-स्तवक-ता (रा) सकाऽऽरुपापक-खख-मङ्ग-तूणद्वज-तुम्बवीणिक-ताला-
चर-प्रकरणानि च द्रवृन्ति मधुरस्वर गीत सुस्वराणि-अन्यानिचैवमाद्वानि तपः
सन्धम ब्रह्मचर्य-धातोपधातिकानि-अनुवरता ब्रह्मचर्यं न तानि श्रमणेन लभ्यानि
द्रष्टुं, न कथयितुं, नापिस्मर्तुम् । एवं पूर्ववत्-पूर्वक्रीडित-विरति समितियोगेन भा-
वितो भवत्यन्तराऽऽत्मा आरतमना विरतप्रामधर्मो जितेन्द्रियो ब्रह्मचर्यगुप्त ॥ ४ ॥

पञ्चमकम्—आहार पानीय-स्निग्ध भोजनविवर्जक. संयत सुसाधुव्यपगत
क्षीर-दधि-सर्पि-नवनीत-तैल-गुड-खरब-मत्स्यरिडक-मधु-मद्य-मास-खाद्यव-
विकृति परित्यक्त कृताऽऽहारो न दर्पण, न बहुशो, न जैश्विक, न शाक सूपाधिकं,
न भूत । तथा भोक्तव्यम्, यथा तस्य यात्रामात्रायभवति । न च भवति दिभ्रमो
न भ्रंशना च धर्मस्य । एवं प्रणीताऽऽहार-विरति समिति-योगेन भवितो भवत्य-
न्तरात्मा आरतमना विरतप्रामधर्मो जितेन्द्रियो ब्रह्मचर्यगुप्त ॥ ५ ॥

एवमिदं संवरस्य द्वारं सम्यग् संवृतं भवति सुप्रसिद्धितम् । एतैः पञ्चभिः कारणै
र्मनोवचन कायपरिचितैर्नित्यमामरणान्तं चैव योगो नेतव्यो धृतिमता मतिमताऽना
स्रबोऽकलुषोऽक्लिद्धोऽपरिस्त्रावी असक्लिष्ट शुद्ध सर्वजिनाऽनुज्ञातः । एवं चतुर्थं
संवरद्वारं स्पृष्टं पालितं शोधित तीर्थं कीर्तितम् अज्ञयाऽनुपालितं भवति । एवं
ज्ञातमुनिना भगवता प्रज्ञप्त प्ररूपितं प्रसिद्ध सिद्धवर शासनभिदमाज्ञापितं सुदेशितं
प्रशस्तम् । चतुर्थं संवरद्वारं समाप्तमिति ब्रवीमि ॥

अन्ध०—“ (तरस) उस (चतुर्थयत्स) चतुर्थ ब्रह्मचर्य व्रत की (इमा) ये
निम्नोक्त (पञ्चभावणाओ) पांच भावनायें (अबंसचेर-वेरमण-परिरक्खणद्वयाए)
अब्रह्मचर्य के निवृत्तिरूप व्रत की रक्षा के लिये (होति) होती हैं ।

(पदम) प्रथम भावना-स्त्री युक्त आश्रय वर्जन रूप जैसे—(सयणासण-घर-
दुवार-अगण-आगास-गवक्ख-साल-अभिलोयण-पच्छवत्थुक-पसाहणकण्हा-
णिक्कावकासा-अवकासा) शय्या, आसन-विस्तर, गृह द्वार, आगन-घर का चौक
आकाश ऊपर से खुला स्थान, गवाक्ष-जाली मत्तोखा, भांड आदि रखने की शाला,
अभिलोकन-बैठकर देखने का ऊंचा स्थान, पश्चाद् गृह-पीछे का घर, प्रसाधन-
शरीर के महन और स्नान करने के स्थान, स्त्री ससक्त त्यागने योग्य है (जे य)
और जो (वेसियाण अवकासा) वेश्याओं के आश्रय स्थान हैं (अच्छति य जत्थ
इत्थिकाओ) और जहां बिया बैठती हैं (अभिक्खण) और बार बार (मोह दोस

रति राग और बहुवृत्तीभो) मोह-अज्ञान द्वेष रति-कामराग और स्नेह राग को बढ़ाने वाली (बहुविहाभो कदाभो कहिति) बहुत प्रकार की कथाओं को कहती हैं (से विदुषञ्जिज्ञा) वे भी पूर्वोक्त शयनादि श्वागने साम्य हैं (इत्थि संसप्त-संनिद्रा) जो सम्बन्ध से व्याप्त-संनिद्रा (अन्नविष्य) और दूसरे भी जो (अयकासा) म्यान (एवमाही) इस तरह के हैं (तेदुषञ्जिज्ञा) वे इस प्रकार के स्थान वर्जनीय है (जत्य) जहां (मणो विष्ममो वा) मन की भ्रान्ति अस्थिरता हो या (मगोषा) ब्रह्मचर्य का मंग, अथवा (मंसगोवा) कुल भंरा में व्रत का भंग हो तथा (अहृत्स्वं च) मार्त और रौद्र (दुश्चक्राण्य) व्याप्त हो (सं त बन्धे श्रवज्ज मीरु अखायतमे) उस उस अनायतन-अयोम्य स्थान का पाप मीरु त्याग करे (अतपंत वासी) साधु इन्द्रियों के प्रतिकूल स्थान में रहने वाला है । (एवमसंसप्त पास बसही समिति ओगेष्) इस प्रकार शियों के सम्बन्ध रहित निषास वाली घसति के समिति-भोग से (माविरो) युक्त (अतरप्पा) अन्त-करय्य बाका आरत मय-भिरय गाम धम्मे) ब्रह्मचर्य में मर्यादा से आसक्त मन वाला तथा विषय प्रत्यक्ष रूप इन्द्रिय स्वभाव से निगुणि बाका (चित्तेदिप) चित्तेन्द्रिय (बंमबेर गुत्तो) ब्रह्मचर्य से गुप्त (भवति) होता है ॥ १ ॥

(चित्तिव्यं) दूसरी भाषना-श्री कथा विवर्जन रूप से—“(नारी जयरस) श्री जनों के (मन्ने) बीच में (प्रियिता कहा न कहे यव्वा) प्रियित्र प्रकार की कथा नहीं कहनी चाहिए, कैसी कथा ? (विष्गोप विज्ञास-संपउत्ता) विष्गोप-शियों की कामुक चेष्टा, विलास-स्मित कटाक्ष आदिके वर्णनोंसे भरी हुई (वाससिगार-साइय-कदम्ब) हास्य व मृगार रस प्रधान लौकिक कथा की तरह (मोहबख्शी) मोह को उत्पन्न करने वाली (न भावाह विवाह वर कहा विष) द्विरागमन गौना प विवाह की कथा भी नहीं कहनी चाहिए (इत्थीणं वा सुमग दुमग कहा) अथवा शियों के सौभाग्य दुर्भाग्य की कथा भी तथा (अउसट्टि च महिला गुणा) शियों की चर्चक कलायें और (न बभ-देस-जाति-कुल-रूप-नाम-नेवरय-परिचय कहा) शियों के वर्ण-वंगत्य, वंश, जाति, कुल, रूप-सौंदर्य-पध्दिनी प्रियणी आदि मेघ, वेग और परिजनों की कथा तथा (अभाविष्य) अन्य भी इस प्रकार की जो (कदाभो टिंगार कटुणाभा) कथायें गृहकार मार्ग्य से युक्त हो तथा (सव संभ्रम-अमबेर-पातोष पातियाभो) तप, संवम और ब्रह्मचर्य की धाम उपधान करने वाली हैं (बंमबेर

अणुचरमाणेण) ब्रह्मचर्य के पालन करने वाले साधुओं को वैसी कथायें (न कहे-
यन्वा) नहीं कहनी चाहिए (न सुणेश्वन्वा) न सुननी चाहिए (न चित्तेयन्वा) न
चिन्तन करनी चाहिए (एवं) इस प्रकार (इत्थी कद् धिरति-समिति जोगेण)
स्त्री कथा से धिरतिरूप समिति के योग से (भावितो अंतरप्पा) युक्त अन्तःकरण
वाला (आरतमण विरतगामधम्मो) ब्रह्मचर्य में लीन मन वाला, और स्त्री सम्भोग
रूप इन्द्रिय विकार से दूर रहने वाला (जित्तिदिण्ण) जित्तेन्द्रिय (वमचेरगुत्ते) ब्रह्म
चर्य से गुप्त (भवइ) होता है ॥ २ ॥

(ततीयं) तीसरी भावना-स्त्रीरूप दर्शन के निषेधरूप है, जैसे- (नारीण)
स्त्रियों के (हसितभण्णिणं) हास्य और विकारयुक्त भाषण को तथा (चेष्टिय-विप्पे
क्खिन-गड-पिलास-कील्लियं) हाथ आदि की चेष्टा, बिप्रेक्षण- कटाक्षयुक्त देखना,
गति-गज हस के समान चलना तथा विलास और क्रीडा को (विव्योत्तिय-नट्ट-
गीत-वातिय-शरीर सठाण-वज्ज-कर-चरण नयण लावण्य-रुव-जोवण-पयोहरा
धर-वत्थालंकार-भूषणाणि य) अनुकूल वस्तु मिलने पर अभिमान वश किया गया
तिरस्कार भाव, नाट्य, नृत्य, गीत-गाना, वीण आदि बजाना, शरीर का आकार
और गौर श्याम आदि वर्ण हाथ पैर व आंखों का लावण्य-मनोहरपन, रूप, यौवन
स्तन, अघर-नीचे के ओष्ठ, वस्त्र अलङ्कार और सौभाग्य चिन्ह भूत तिलक आदि
भूषण इन सबको (य) और (गुञ्जोवकासियाड) गुञ्ज प्रदेशों को (अन्नाणि य
और अन्य प्रकार के स्त्री सम्बन्धी चेष्टा व अङ्गोपाङ्ग आदि जो (तव-मज्जम-वम-
चेर-वातोवधातियाड) तप, संश्रम और ब्रह्मचर्य के वातोपघात करने वाले हैं
'ऐसे विकारी भावों को' (वमचेरं अणुचरमाणेण) ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने वालों
को चाहिए कि (न चक्खुसा न मनसा न धमसा) आँखों से न देखें, मन से न सोचें,
और वचनों से न बोलें और (न पत्थेयन्नाइ पावकम्माइ) पाप युक्त कर्मों की प्रार्थना-
इच्छा भी नहीं करें (एवं) इस प्रकार (इत्थीरुव धिरति समिति जोगेण) स्त्रियों
के रूप दर्शन की धिरति-विरमण रूप समिति के योग से (भावितो) युक्त (अंत-
रप्पा) अन्तःकरण वाला साधु (आरत मण विरत गाम धम्मो) ब्रह्मचर्य में लीन
मन वाला और स्त्री सम्भोग से निवृत्ति वाला (जित्तिदिण्ण) जित्तेन्द्रिय (वमचेर गुत्ते)
ब्रह्मचर्य से गुप्त (भवति) होता है ॥ ३ ॥

(चउत्थं) चौथी भावना-कामोत्तेजक वस्तुओं के स्मरण दर्शन आदि का त्याग

रति राग और बहङ्गणीयो) मोह-अज्ञान द्वेय रति-कामराग और स्नेह राग को कहाने वाली (बहुविहाभो कदाभो कहिति) बहुत प्रकार की कथाओं का कहती हैं (ते दिव्यवज्रशिखा) वे भी पूर्वोक्त शयनादि रथागने योग्य हैं (इति संवत्-सन्निहिता) जो सम्प्रदाय से व्याप्त-संश्लिष्ट (अन्नविषय) और दूसरे भी जो (अयकादा) स्थान (एवमासी) इस तरह के हैं (ते दिव्यवज्रशिखा) व इस प्रकार के स्थान वर्जनीय है (अय) जहां (मयो विक्रममोषा) मन की भांति अश्विस्ता हो या (भगोषा) ब्रह्मचर्य का भंग, अथवा (भंसगोषा) कुछ अंश में प्रवृत्ति का भंग हो गया (अहं नृप) भारत और रौद्र (बुद्धिमान्) ध्यान हो (तं तं वज्रं शिवं मीरु अणायतनं) उस उस अनायतन-अयोग्य स्थान का पाप मीरु त्याग करे (अंतर्गत वासी) साधु इन्द्रियों के प्रतिकूल स्थान में रहने वाला है । (एवमंतसत्त वास वसती समिति जोगेय) इस प्रकार स्त्रियों के सम्बन्ध रहित निवास वाली वसति के समिति-योग से (मावितो) युक्त (अंतरात्मा) अन्तःकरण वाला भारत मण्ड-विरय गाम घग्ने) ब्रह्मचर्य में सर्पाश से आसक्त मन वाला तथा विषय प्रदूषण रूप इन्द्रिय रजमाण से निवृत्ति वाला (शिवेन्द्रिय) शिवेन्द्रिय (वमचेर गुप्तो) ब्रह्मचर्य से गुप्त (भवति) होता है ॥ १ ॥

(वित्तियं) दूसरी भाषणा-श्री कथा विवर्जन रूप जैसे—“(नारी जयरत्न) श्री जनों के (मन्त्रे) बीच में (विधिता कहा न करे यक्षा) विभिन्न प्रकार की कथा नहीं कहनी चाहिए, कैसी कथा ? (विक्रम विज्ञास-संप्रवृत्ता) विक्रम-स्त्रियों की कामुक चेष्टा, विलास-स्मित कटाक्ष आदिके वर्णनोंसे भरी हुई (हाससिगार-सौह्य-कृष्ण) हास्य व शृंगार रस प्रधान लौकिक कथा की तरह (मोहवज्रणी) मोह को धरम करने वाली (न आवाह विनाह धर कहा विष) हिरागमन-गौता व विषाद की कथा भी नहीं कहनी चाहिए (इत्थीयं वा सुभग दुभग कहा) अथवा स्त्रियों के सामान्य दुर्भाग्य को कथा भी तथा (अस्मिन् विषय मतिता गुणा) स्त्रियों की चौंसठ कलायें और (न वज्र-वेस-जाति-कुल-रूप-नाम-नेत्रय-परिजय कहा) स्त्रियों के वर्ण-रंगरूप, देश जाति, कुल, रूप-सौन्दर्य-पद्मिनी धियणी आदि मेघ, धूप और परिजनों की कथा तथा (अस्माभिय) अन्य भी इस प्रकार की जो (कदाभो विगार कृष्णयो) पपायें शृङ्गार मार्गव से युक्त हो तथा (सव संश्रय-वमचेर-पातोव पातिपाओ) तप, संयम और ब्रह्मचर्य की पात उपपात करने वाली हैं (वमचेर

(न वहेड) कहने के योग्य भी नहीं हैं (न वि सुसरिष्ठ) स्मरण करने के योग्य भी नहीं हैं (एवं) इस प्रकार (पुण्डर्य-पुवकीजिय-विरति-समिति जोगेण) पूर्वगत, पूर्वक्रीडित-स्मरण विरतिरूप समिति के योग से (भाविजो) युक्त अंत रप्पा) अन्त करण वाला (आरयमण-विरतगामधम्म) ब्रह्मचर्याराधन में लीन मन वाला और सैयुन से निवृत्त (जिइदिण) जितेन्द्रिय, (वंभचेर गुत्ते) ब्रह्मचर्य से गुप्त (भवइ) होता है ॥ ४ ॥

(पचममं : पांचवीं भाषणा-प्रणीत भोजन त्याग रूप, जैसे—(आहारपाणीय-शिद्ध-भोग्य विषज्जते) प्रणीत भोजन-सरस आहार और स्निग्ध-चिकने भोजन का परिहार करने वाला (सज्जते) संयमी (सुसाहू) सुसाधु (ववगय-खीर-ददित्ति-सन्नि-तथनीय-तेत- गुज-खड-मच्छडिठ- महुप्रज्ज-सस- खगज-रु-विगतिपरित्त कयाहारे) दूध दही, घी, मक्खन, तेल, गुड़, खांड, मखंडी-सीसरी, मधु, मद्य, मांस, खाद्यक-पक्वान और विगई के भोजन रहित आहार करने वाला (ण दप्पणं) दर्प कारक आहार नहीं 'खावे' (न बहुसो न नितिकं) दिन में बहुत बार नहीं 'खावे', लगातार नित्य नहीं 'खावे', (न साय सूपादिकं) न दाल और सालनक-व्यञ्जन की अधिकता वाला (न खद्व) और ज्यादा भी नहीं (तथा मोत्तव्यं) वैसे खाना चाहिए (जहा , जैसे (से) उस ब्रह्मचारी के (जाया माता य) व्रत निर्वाह मात्र के लिये (भवति) होवे । ऐसा आहार सेवन करने से (न य भति विट्ममो) विभ्रम-मन की वंचलता नहीं होती (नय भंसणा धम्मस्स) ब्रह्मचर्य धर्म का नाश भी नहीं होता (एवं) इस प्रकार (पणीयाहार-विरति-समिति जोगेण भाविजो) प्रणीताहार विरति रूप समिति के योग से युक्त (अंतरप्पा) अन्तःकरण वाला (आरयमण-विरत-गाम धम्मे) ब्रह्मचर्याराधन में लीन मन वाला और सैयुन से निवृत्त अतएव (जिइदिण) जितेन्द्रिय व (वंभचेरगुत्ते) ब्रह्मचर्य से गुप्त (भवति) होता है ॥ ५ ॥

(एवमिणं संवरस्स द्वारं) इस प्रकार यह ब्रह्मव्रत रूप संवरद्वार (सन्मं त्रवरियं) अच्छी तरह संवरण किया गया (सुप्पखिदियं) सुरक्षित (होइ) होता है (इमेहि पंचदि वि कारणे हि सण्ण धयण-काय परिक्खिण्हिं) मन, वचन काय इन तीनों से सुरक्षित इन पूर्वोक्त पांच भावना रूप पांच कारणों से (शिच्चं आमरणं तं) छदा सण्ण पर्यन्त (एवो जोगो) यह योग-व्यवहार (विठिमता भठिमता)

रूप, जैसे—(पुष्करय-पुष्करकीर्तिय पुष्पसंगम-गन्धसंधुषा) पहले के विषय भोग
 पूर्व स्त्रीहित-अग्रती वरा के जूना आदि होता तथा पूर्व सप्रज-गृहस्थ वरा के
 अगुर कुल सम्बन्धी शाले आदि और उनसे सम्बन्धित शाले की भी आदि तथा
 पूर्व के परिचित (जे व) जो ये लोग (आत्मा-विषाद-बोझकेसु) द्विरागमन-
 गीता, विषाद, पूजा कर्म-प्रथम मृगयन आर्षात् बालकों के शिक्षा पारख प्रसङ्ग में
 (य) और (तिमिसु धन्नेसु धस्सवेसु य) पवतिभिर्षो में, यज्ञो-भागादि पूजाओं में
 व अस्त्रों में (सिगारागार-बारु वेसादि) शृङ्गार के घर की तरह सुन्दर वेश वाली
 (हाव माय-पल्लवि-विकल्लेय-विलास साक्षिणीदि) हाव-मुक्त की चेष्टा, भाव-
 चित्त के अभिप्राय, प्रकलित-साहित्य युक्त कटाक्ष विशेष और विलास स्थान
 आसन व नेत्र आदि की क्रिया का प्रयोग विशेष इस सब से शीघ्रित होत वाली
 (अणुका पेम्भिकादि) अनुकूल प्रेम वाली ऐसी ऐश्यों के (छदि) साथ (अणु
 मूया सचय संनयोगा) अनुमय दिये हुए जो समय आदि विविध काम शालोक
 प्रयोग (उदुदुस्वर हस्तुम सुभिरवय सुगपिपर वास-पूर-सुह फी स-वत्स-भूषण
 शुणोववेया) श्रुत के अनुसार कुल वाले उत्तम कुरों की सुवास तथा श्रेष्ठ कन्दन
 की सुगन्धि, चूय निवे हुए अच्छे वासद्वय, धूप, सुसह स्पर्श वाले वस्त्र और
 भूषण इनके श्रुतों से युक्त (रमफिञ्ज) रमणीय (आचर-गेव-पठर-नङ-नहङ
 खल्ल-मल्ल-मुट्टिक-वेत्तवग-ऊङ्गा-पवग-सासग-आइक्कम-लल्ल-मल्ल-तूणहल्ल-गु व
 धीक्षिप-वत्थायर-पकरणाधिप) आठोथ-याथ अन्ति, श म, बहुत से मठ तथा
 मठक-नाथने वाले, खल्ल-होरी पर सेजने वाले, मल्ल-ऊट्टी करने वाले व शौद्धिक
 मल्ल आदि, विहम्भक-भिरूपक-विविध-पि हास कमा करने वाले, ध्रुवक-ज्जकने
 वाले, रासगान वाले, हुमाशुम बजने वाले लल्ल-बड़े वासपर सेजने वाले, मल्ल-
 चित्रमय पाणिषा लेकर फिरने वाले, मिश्रक-तूण नामक वाद्य बजाने वाले, पीणा-
 या उन्दुरा बजाने वाले और ठालपर इन सबकी क्रियाए (य) और (दहणि
 मधुर-सर-गीठ-सुखराई) बहुतसे मधुर अन्ति वाले गायकों के गीत और सुन्दर
 स्वर (अन्न फि य) और अन्न इस प्रकार के (ययमाविष सि) इत्यादि । ठव
 सज्जम-य म देर-आठोवपालियाई) उप संयम तथा ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले कार्य
 (अणुवरमापेण वमचेर) ब्रह्मचर्य के पाठन करने वाले (समणय) साधुओं
 (न तामिकम्म इदु) कामोदीपन करने वाले वे सब परार्थ देकने योग्य हैं

(न वहेउ) कहने के योग्य भी नहीं हैं (न वि सुमरिषं) स्मरण करने के योग्य भी नहीं हैं (एवं) इस प्रकार (पुव्वारय-पुव्वकीलिय-विरति-समिति जोगेण) पूर्वगत, पूर्वकीलित-स्मरण विरतिरूप समिति के योग से (भावितो) युक्त अंतरप्पा) अन्तःकरण वाला (आरयमण-विरतगामधम्मो) ब्रह्मचर्यापधन में लीन मन वाला और मैथुन से निवृत्त (जिहंदिय) जितेन्द्रिय, (वंभचेर गुत्ते) ब्रह्मचर्य से गुप्त (भवति) होता है ॥ ४ ॥

(पचमगं : पांचवीं भाषना-प्रणीत भोजन त्याग रूप, जैसे--(आहारपाणीय-शिल्ह-भोग्य विवज्जते) प्रणीत भोजन-सरस आहार और श्लिग्ध-विकने भोजन का परिहार करने वाला (संजते) संयमी (सुत्ताहु) सुत्ताधु (ववगय-खीर-वद्धि-सन्नि-नयनीय-तेत्त-गुल्ल-खड्ड-मच्छड्डिक-महुमज्ज-मल-खग्जरु-विगतिपरिचित्त कयाहारे) दूध दही, घी, मक्खन, तेल, गुड, खांड, मच्छडी-मीसरी, मधु, मद्य, मांस, स्वादरु-पक्वान और विगई के भोजन रहित आहार करने वाला (य वप्पणं) वर्प कारक आहार नहीं 'खावे' (न बहुसो न नितिकं) दिन में बहुत बार नहीं 'खावे', लगातार नित्य नहीं 'खावे', (न साय सूपादिकं) न दाल और सालनक-व्यञ्जन की अधिकता वाला (न खड्डं) और ज्यादा भी नहीं (तद्वा मोत्तव्यं) वैसे खाता चाहिए (जहा , जैसे (से) उस ब्रह्मचारी के (जाया माता य) ब्रत निर्वाह मात्र के लिये (भवति) होवे । ऐसा आहार सेवन करने से (न य भति विधम्मो) विधम्म-मन की चंचलता नहीं होती (नय मंसणा धम्मस्स) ब्रह्मचर्य धर्म का नाश भी नहीं होता (एवं) इस प्रकार (पणीयाहार-विरति-समिति जोगेण भावितो) प्रणीताहार विरति रूप समिति के योग से युक्त (अंतरप्पा) अन्तःकरण वाला (आरयमण-विरत-गाम धम्मो) ब्रह्मचर्यापधन में लीन मन वाला और मैथुन से निवृत्त अतण्ण (जिहंदिय) जितेन्द्रिय व (वंभचेरगुत्ते) ब्रह्मचर्य से गुप्त (भवति) होता है ॥ ५ ॥

(एवमिणं संवरस्स द्वारं) इस प्रकार यह ब्रह्मव्रत रूप संवरद्वार (सन्मं संवरियं) अच्छी तरह संवरण किया गया (सुप्पणिहियं) सुरक्षित (होद) होता है (इमेहि पंचहि वि कारणे हि मण्ण वयण-काय परिविखण्णिं) मन, वचन काय इन तीनों से सुरक्षित इन पूर्वोक्त पांच भाषना रूप पांच कारणों से (शिच्चं आमरणं तं) सदा सत्य पर्यन्त (एत्तो जोगो) यह योग-व्यवहार (विमिता भतिमता)

वैर्यवान् य मुद्रिमात् साधुको (गृध्रव्यो) लक्षणा बाह्ये । ओ (अस्मास्यो)
 व्यास्य रहित (अकलुषो) मरिन्ता रहित (अच्छिद्रो) भादभिद्र रहित (अय-
 रिस्ताबी) कर्म का आस्रवण नहीं करने वाला (असंदिग्धो) सप्तशेरा रहित
 (सुद्रो) हृद्य और (सम्यङ्दिग्गुभातो) सप्त तीक्ष्णों से अनुज्ञात है (यय च
 सत्त्वं समरदारं) इस प्रकार बोधा संवरधार (फासिष पालिषं) वेह से स्पर्श किया
 गया पालन किया गया (सोहित हीरित) अटिबार-शेष-से हृद्य किया हुआ
 और पूर्ण किया गया (दिट्ठि) वचन से कीर्तित, (आणाय अणुपालिषं) तीव्र
 हृत्तों की आज्ञा के अनुसार अनुपालित । भवति, होता है (एवं नायमुद्रिषा भग
 बया) इस प्रकार हातमुनि भगवान् महावीर ने (पल्लविषं बद्धा है (परविवर्ष
 पसिद्धं) युक्ति पूर्वक समझाया है प्रसिद्ध है (विदुवर सास्यमिष) भवतिवत
 सिद्ध अईन्तों का यह उत्तम शासन है (आचविषं) देव आदि के मानपात्र
 (सुवेसितं पसत्त्वं) अच्छी तरह तीक्ष्णों से कहा गया और प्रसार है (बद्धत्वं
 संवरधार समत्तं ति वेमि) चतुर्थ संवरधार पूर्ण हुआ ऐसा मैं कहता हूँ
 (सुधर्मा) । १ । १७ ॥

भाष-ब्रह्मचर्य का महत्त्व इस प्रकार है—“यह पञ्चमहाशक्तों का मूल है । निर्मल
 पित्त वाले साधुओं से भाषपूर्वक सबन किया हुआ है । वैर विरोध का अन्त करने
 वाला और बड़े समुद्र की तरह दुस्तर है । तीव्रहृत्तों ने इसका मार्ग अच्छी तरह
 दिखाया है । तरक त्रिवर्ण आदि दुर्गति से बचाने वाला, सब पवित्र अनुष्ठानों
 का सार और सिद्धिगति व वैमानिक गति के द्वार कोटने वाला है । देवेन्द्र और
 नरन्द्रों से नमस्कार पाने योग्य अग्न के सब मन्त्रों में प्रधान और दुर्लभ है । शम
 दम आदि गुणों का अतिशय नायक एवं मोक्षमार्ग का मूपण है । १ । इसके शुद्ध
 आचरण करने से प्रती पद्मान्नाह्वय भ्रमण और सुसाधु होता है । अग्नि, मुनि,
 संपत्ती और मित्र वही है ओ हृद्य ब्रह्मचर्य का पालन करता है । ब्रह्मचर्य की साधना
 में निम्न काय बर्चनीय है । उसे-काम राग आदि बहाने वाला मिस्सार प्रमाद,
 तथा संयम को शिथिल करने वाले सरोप व्यपहार निषिद्ध है । पीठी, वेष्टमर्दन,
 और हाम पैर मुह च शिर आदि को बार बार घोना, मर्दन करना, अङ्गों को,
 ध्याना, विलेपन करना, सुगन्धिपूर्ण स शरीर को सुगन्धित करना, और धूप देना;
 बर्च है । शरीर की सजावट, दास्य, विकारमुक्त वचन, और कृत्य गीत वाद्य आदि

जो इन्द्रियपोषक प्रसङ्ग हैं और अन्य भी ऐसे शृङ्गार रसके धरके समान तप संश्रम और ब्रह्मचर्य का घात करने वाले हैं ब्रह्मचारिओ को उन सबो का त्याग करना चाहिए । नीचे के इन तप नियमादि योगों से सदा आत्मा को युक्त रखना चाहिए । जैसे-१ स्नान व दन्त मंजन नहीं करना, स्वेद आदि को धारण करना, २ मौनव्रत और ३ केश का लुञ्चन करना, ४ धस्त्र के अभाव में या उनकी अल्पता में तथा भूख, प्यास, ठंडी गर्मी में रुद्धिष्णुता व जितेन्द्रिय होना ५ काष्ठशय्या, भूमिशय्या । ६ भिक्षा आदि के हेतु घरों में जाने पर लाभ अलाभ या मान अपमान आदि कुछ भी हो तथा ढाश भच्छर आदि का प्रतिकूल स्पर्श सहन करना चाहिये । और तप नियम विनय आदि गुणों से आत्मा को पवित्र करना चाहिए । इस प्रकार-उसका ब्रह्मचर्य स्थिर हो जाता है । ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये प्रभु महावीर ने यह अच्छा प्रवचन कहा है, जो परलोक में सुखद-भी यावत् सब दुःख और पापों का शमन करने वाला है । इस चतुर्थ व्रत की रक्षा के लिये पांच भावनार्य होती हैं-जैसे-१ स्त्री सम्बन्ध रहित वसति का सेवन करे । स्त्री सम्बन्ध से सक्लेश युक्त शय्या, आसन, और घर द्वार आदि सब स्थान और जो वेश्याओं के स्थान हैं तथा जहा रित्रिया रहती और मोह राग आदि दुर्भाव बढ़ाने वाली अनेक प्रकार की कथार्ये धारदार कहती हैं, ऐसे ही स्त्रियों के विशेष सम्बन्ध वाले अन्य स्थान भी वर्जनीय हैं । जहाँ मनकी स्थिरता या व्रत का भङ्ग हो, अथवा इष्ट वस्तु मिलाने और अनिष्ट निवारण की चिन्तारूप आर्त ध्यान व रौद्रध्यान हो । साधारण या इन्द्रियों के प्रतिकूल स्थान में रहने वाला पाप भीरु साधु पूर्वोक्त स्थानों का त्याग करे ।

२-स्त्री कथा त्यागरूप दूसरी भावना-व्रतों को स्त्रियों के बीच विचित्र प्रकार की कथा नहीं करनी चाहिए । जो कथा हास्य और शृङ्गाररस प्रधान लौकिक कथा की तरह विवशोक विलासयुक्त हो । आवाह और विवाह कथा की तरह मोह उत्पन्न करने वाली, तथा स्त्रियों के अच्छे बुरे भाग्य का वर्णन करने वाली हो और स्त्रियों की चौंसठ कलाओं के परिचयरूप या उनके रङ्ग रूप देश जाति और वेश आदि के वर्णन करने वाली हों । ऐसी अन्य भी जो शृङ्गाररस से भरी हुई और संयम की घातक हैं ब्रह्मचारी को वैसी कथार्ये न कहनी चाहिए, और न अथवा चिन्तन ही करना चाहिए ।

३-रूप दर्शन विरति रूप तीसरी भावना-स्त्रियों का दंशना, विचार युक्त बोलना

प्रेष्टा, पटाक्ष आदि क्रियायें और शरीर के अङ्गोपाङ्ग प आकार तथा पञ्चालंकार आदि धेप भूषा और शोध्य रङ्ग ऐसे अन्य भी अष्टाध्यायी को नहीं देखना चाहिए, न मन में इनका विचार करना चाहिए और न इन विनिर्दिष्ट प्रकारों की भावना हा करनी चाहिए। क्योंकि इनके वर्णन स्मरण तप संयम के घातक हैं।

४-पूर्व स्त्रीहित भोग आदिके स्मरणका त्यागरूप चौथी भावना पूर्वस्त्रीधन की रति झोडा और पूव के जो विविध सम्बन्धी हैं तथा विवाह आदि विविध प्रसङ्गों पर सुन्दरी और प्रेमपरी क्षियों के साथ जो संभोग आदि अनुभव किये हैं। ऋतु के अनुकूल सुखा वतम कृष आदि सुगन्धि और स्पर्श आदि अन्ध सुख मुक्त, पाप आदि के कई रमणीय साधन और गवैशों के मधुर गीत तथा ऐसे अन्ध प्रसङ्ग जो तप संयम के घातक हैं, अष्टाध्यायी को उनका वर्णन करना, देखना और स्मरण करना योग्य नहीं है।

५-प्रणीत भोजन त्याग रूप पाँचवीं भावना-संयमी मुसाधु सरस एवं तिम्र भोजन का रपागी हीता है। जो दूध दह भी आदि विहित कारक पदार्थों का आहार नहीं करने वाला है। भोजन के विशेष नियम-काम वर्द्धक आहारनहीं करना १ परदिन में बहुतवार नहीं खाना २ प्रतिदिन लगातार नहीं खाना ३, शक प हाल की अधिकता वाला भोजन भी नहीं करना, ४ सर्पाश् से आश भी भोजन नहीं करना ५

सर्पश-स प्रकार खाना चाहिए जिससे प्रतीकी संयम यात्रा निर्वाच पकती रहे। ऐसा करने से मनकी अस्थिरता और प्रवृत्ता भङ्ग-नहीं होता। इस प्रकार प्रणीताहार विधि से कुछ अन्तःकरण वाला साधु अष्टाध्याय में स्वीत तथा मैथुन से निवृत्त होता है। अतएव त्रिविध्य और अष्टाध्याय गुप्त रहता है। ५। ५। इस प्रकार संवर का यह पार्थक्य अन्ध संवरण किया हुआ सुरक्षित रहता है। मन, वाणी और कामस सुरक्षित इन पाँच कारणों से सदा मरण पर्वन्त यह योग धीर बुद्धिमान् को निमाता चाहिए। यह आशय उचित यापन सपत्नीर्षद्वयों से अनुसृत है। इस प्रकार चौथा संवर द्वार स्पर्शन किया गया यापन तीर्थद्वयों की आश्रय प्राप्त होता है। इस प्रकार छठ मुनि प्रमुखाधीन में इसे कहा है। यह अर्थन्तों का शासन यापन पत्तम है ॥ चौथा संवर द्वारपूर्ण हुआ।

ॐ समाप्तं चतुर्थं संवरद्वारम् ॥

● अष्टाध्याय्यं सान्निध्यं यावत्तमम् ●

पञ्चम संवरद्वारम् ७

सम्बन्ध-पूर्व अध्ययनमे मैथुन विरमण रूप अतुर्थव्रतका वर्णन किया । वह परिग्रह से निवृत्त होते पर ही सुख भोज होता है । इसलिये अब सूत्र क्रमसे सम्बन्धित अपरिग्रह व्रतका रूप अध्ययनमें वर्णन करते हैं । उसका पहला सूत्र निम्न लिखित है—

मूल—“जंजू ! अपरिग्रह संजुडे य समणे आरंभ परिगहातो धरिते, रिते कोहमाण माया लोभा । एगे असंजमे, दो चेय राग दोला, तिन्नि य दंडगारदाय गुत्तीयो, तिन्नि, तिन्नि य विराहणाओ, चत्तारि कसाया, भाण—सन्ना—विकहा—तहा य हुंति चउरो, । पंच य किरियाओ, समिति—इदिय—सहव्याइंच । छज्जी निकाया । छच्च लेगीओ, सत्त भया, अट्ट य भया, नन चेव य वंभचेर य गुत्ती । दसप्पकारे य समण धम्म । एकारस य उदासकाणं, । बारस य भिक्खु पडिमा । किरियठाणा १३, य भुयगामा, १४, परमा धम्मिया १५, गाहासोलस या असंजम १७, अबंभ—१८, णाय—१९, असमाहिठाणा, २०, सवला, २१, परिसहा, २२, खयगड २३, उक्कण—देव—२४, भावण २५, उद्देस—२६, गुण—२७, एकप्प—२८, पावसुव—२९, मोहणिज्जे, ३०, सिद्धातिगुणा ३१, य, जोगसंगहे, ३२, तिच्चीसा ३३, आसातणा, । सुरिदां आदि एकातिथं करेत्ता एककुत्तरियाए वड्ढिण (डूढी) तीसातो जाय उ भवे, तिकाहिका धरिती पण्णिहीसु, अरिती सु य एवमादिसु वहसु ठाणेउ जिणपसत्थेसु अवितहेसु सासयभावेषु अवट्ठि एसु संकं वंख निराकरेत्ता सद्वहे, सासयं मगवतो अणियाणं अगार वे अलुद्धे अमूढ मण वयण काय गुचे ॥ सूत्र १ । २८ ॥

आया-“हे जन्तू । अपरिमहसंपृथक् भ्रमणं आरम्भपरिमहाद्विरतो, विरतं क्रोध
मान माया लोभात् । एकोऽसंयमः, द्वौ च रागद्वेयौ, त्रीणि च वयस्य गौरवाणि ।
तिस्रो गुणश्च, ऽस्मिन् विराधना । अस्वारः कथायाः, ध्यान-संज्ञा-विक्रमास्तथा
भवन्ति अस्वारः । पञ्च च क्रियाः समितीन्त्रिय-महाप्रतानि च । पञ्च जीवनिष्कायाः
पञ्च क्षेत्राः । सप्तमयानि, अष्टौ च महाः मयः चैव महागुणवः । द्वाभ्यकाराश्च भ्रमणं
भर्मा । एकादश कोपासकानाम् । द्वादश च मिश्रप्रतिमाः । क्रियाग्यामानि च ।
“भूतमात्रा”, परमाद्य भिन्ना, गान्धा पोडराकानि । असंयमाऽऽद्य-ज्ञाताऽसमाधि-
स्थानानि । शब्दाः परोपदाः सूत्रकृताऽध्ययनानि । देव-मावन्तो-देश-गुण-अकल्प-
पापभूत-मोक्षतीर्थानि । सिद्धातिगुणाः च योग संमहा । त्रयन्निशानातना ।
सुत्रेन्द्रादिका एकादिका कृत्वा एकोत्तरिकाया इत्यादि त्रिंशदायद् भवेत् त्रिकाऽधिका ।
विरति प्रक्षिप्य कश्चित्सिद्धि चैवमारिरेपु, इहपुः तथा पु जिनप्रसातेषु अवितथेषु
शास्त्रतमवेषु अपरिचितेषु शङ्काकोर्षा निराकृत्य भवन्ते, शासनं मन्त्रसोऽनिदानोऽगौ
रवोऽनुकरोऽमूढा मनोवचन कावगुणः । सू० १ । २८॥

अन्व-“ (जंघ) हे जन्तू (अपरिमहसं पृथक्) भूषणां रहित और इन्द्रिय व
कपाव के संवरण वाला, फिर प्रकट में आने गुण युक्त तथा (आरम्भ-परिमहातो)
आरम्भ-द्विजा व बाह्य आरम्भपरिमह से (विरते) अन्तर्गत है (समण विरते
कोह माण माया लोभा) और जो साधु क्रोध मान माया एवं लोभ से निवृत्त है ।
(एगे असंयमे) अविरति रूप असंयम एक है (दो येव राग दोसा) और राग
द्वेय रूप दो ही बन्धन हैं (तिमि य वंश गारवा) और तीन वृद्ध और तीन गारव
हैं (च) और (गुत्तीओ तिमि) तीन गुप्तिर्वा (तिमि य विराहायाओ) और
तीन विराधनायें हैं (अस्वारि कसाया) अस्वार कथाय-क्षेत्र आदि । ध्याय-संज्ञा)
ध्यान, संज्ञा (विक्रहातहा य हुति वरणे) और येमी ही विक्रमायें बार बार हैं
(पंच य क्रियाओ) काबिबी आदि पांच क्रियाएँ (समिति-इन्द्रिय-महाप्रतानि)
और समितिर्वा इन्द्रिय व महाप्रतान भी पांच ही हैं (च) और (छत्रजीवनिष्काया)
पृथ्वी काय आदि जीव निष्काय छत्र हैं (अक्षतेस्साओ) क्षेत्राये मी छत्र हैं (सप्त
महा) सात भव (अट्ट य मया) और आठ मय स्थान (नव क्षेत्र य बंमचेरम
शुली) फिर भव ही प्रकटवर्षवत् की गुप्तिर्वा हैं (वसणकारे य समस्यपम्मे) और द्वा
भकार का भ्रमणभर्म (एकारम्भ य कथासकायं) फिर इग्वारह भावकों की पञ्चिमा

और (वारस य भिक्खुपडिमा) चारह साधुकी पडिमा-अभिग्रह विशेष हैं (किरिय
ठाणा) क्रिया स्थान तेरह हैं, फिर (भूयगामा) जीवों के १४ भेद (परमाधम्मिय)
परमाधार्मिक (गाहासोलसया) सूत्र कृताङ्ग प्रथम श्रुतस्कन्ध के १६ अध्ययन
(असंजम-अवंभ-णाय-असमाहिठाणा, सबला) १७ प्रकार के असंयम, अत्रत्त-
१८ प्रकार का मैयुन, ज्ञात-ज्ञाताप्रथमश्रुतस्कन्ध के १९ अध्ययन, असमाधि-२०
असमाधि स्थान, शबल दोष-२१ प्रकार के शबल दोष हैं (परीसहा) परीषह-
छुधा आदि २२ परीषह (स्यगड्जम्भयण-देव-भावण-उद्देश-गुण-पक्कप-पापसुत-
मोहणियजे) सूत्र कृताध्ययन सूत्रकृताङ्ग के २३ अध्ययन, देव-२४ प्रकार के देव,
भावना-पाच महाव्रतों की पच्चीस भावनार्ये, उद्देश-२६ उद्देशन काल, गुण-मुनिवर
के २७ गुण, प्रकल्प-२८ आचारप्रकल्प, पापश्रुत-२९ पापश्रुत और मोहनीय-३०
मोहनीय स्थान (सिद्धातिगुणा) सिद्धाति गुण-सिद्धों के ३१ अतिशय गुण (य)
और (जोग संगहे) योग समग्र-वत्तीस योगसंग्रह (तिस्तीसा आसातया) और
तैंतीस अशासनार्ये, (सुरिंदा आदि, एक्कातिथं करेत्ता एक्कुत्तरियाए तद्धिए) सुरेन्द्र
आदि को एक आदि रक्खा युक्त करके फिर उत्तरोत्तर एक एक की वृद्धि से (तीसा
तो जाव उ भवेत्तिकाहिका) यावत् तीन अधिक तीस याने तैंतीस-होते हैं, इन सब
में तथा (विरती पण्णिहीसु अविरती सु) विरति-प्राणातिपातादि से विरति तथा
चित्त की विशिष्ट-एकाग्रता में व अविरति और (एव मादिसु बहूसु ठाणेषु) इस
प्रकार के बहुत से स्थानों में जो (जिण-पसत्थेसु अबितहेसु सासय-भावेसु अव-
ट्टिए सु) तीर्थद्वारों के शासित, सत्य और शाश्वत-नित्यभाव अवस्थित-सदा
समान रहने वाले हैं, उनमें (सक कल निरा करेत्ता) शङ्का-संशय और अन्यमत
ग्रहण रूप कात्ता को हटाकर (भगवतो सासण सहित्ते) वह साधु भगवान के
शासन की श्रद्धा करता है (अणियाणे) श्रद्धा प्रार्थनादि सिद्धान रहित (अगारवे)
श्रद्धा आदि तीन गारव रहित (अलुद्धे) लोभ रहित (अमूढ-मण-वयण-काय-
गुत्ते) मूर्खता शून्य और मन वचन व शरीर से गुप्त है ॥ १।२८ ॥

भावा०-अपरिग्रह के कारण और संवर युक्त साधु आरम्भ परिग्रह से निवृत्त तथा
क्रोध, मान, माया, व लोभ से अलग रहता है, एक प्रकार का असंयम राग द्वेष
रूप दो बन्धन और मनोदण्ड आदि तीन दण्ड, श्रद्धा, रस, एवं सातारूप तीन गारव
और मनोगुप्ति वगैरह तीन गुप्ति तथा ज्ञान विराधना आदि तीन विराधना, क्रोध

आदि चार कपाय, चार प्यात, चार संज्ञा तथा चार ही विक्रया होती है, कायिकी आदि पांच क्रियायें, ईर्ष्यादि पांच समिति और भोत्रेन्द्रिय आदि पांच इन्द्रियों व अहिंसा आदि पांच महाव्रत हैं और पृथ्वी आदि छः जीव समूह और कृष्णनील आदि छः सरमायें यावत् तैत्तिरीय अशातनार्थ वत्तीस या चौगुठ देवेन्द्र हैं (विरोध परिचय टिप्पण में देखें) एक आदि संज्ञा को प्रथम करके एक एक की आत्मा बुद्धि से चापत् तैत्तिरीय होते हैं ऐसे अम्ब भी चौत्तीस आदि के बहुत से स्वाम हैं, जिन प्रदर्शित सत्य शास्त्र और नित्य एक रूप रहने वाले उन भावों में तथा विरति आदि में गुठ संज्ञा आदि से रांका कटा को दूर कर वह प्रभु के शासन पर पूर्ण भ्रष्टा करता है, निदान, गारव और सोमादि रहित मुनि मन वचन शरीर से गुप्त होता है ॥ १ । २८ ॥

अपरिमह जती साधु का स्वल्प कहा अब प्रस्तुत अप्रमयन के विषय मूल अपरिमह को कहते हैं—

मूल—“ ओ सो वीर वर-वयण-विरति-ववित्तर-बहु विहृष्यकारो सम्मत्त-विसुद्ध मूलो धितिकंदो विषयवेतितो निग्गत-तिलोकर-विपुल अत निविद्ध-पीण-यवर-सुजातखण्डो, पञ्चमहज्वल-विसालसालो, मादशतयं तज्ज्वाण-सुमज्जोग-नाख पद्मव-शरकरपरो, बहुगुणसुमसमिद्धो, सील-सुगणो अणणहव-फलो, पुखोय मोक्खवर बीजसारो, । भदरगिरि सिद्धर घूलिका इव इमस्स मोक्खवर-सुक्किमग्गस्स सिद्धरभूमो संवर वर पादपो चरिमं संवरदारं । अत्य न कप्पह गामागर-नगर-खेठ-कम्बड-मंडप-दीण-सुह-पट्टसासमगपं व किंचि अप्प व बहु व अणु व पूलव तस थावर, काय-दव्वजायं मखसावि परिचेत्तु । श हिरण्य-सुवण्य-खेठ वत्थु, न दामी-दास-मयक-पेस-हय-गय-गवलर्गं वा (प,) न आस-सुग्ग मयणासणाइ, ख छत्तक-न कुडिया, ७ उवाखदा, न पेडुण-वीण-तालियंका, श पावि अय-उउए-तंथ-सीसक-कंम-रपव-जातरूव-मयि-मुपा चार पुठक-संख-दंथ-मयि-सिंग-सेल-कायवर-चेत्त पचाई मद रिहाई परम्म अज्जमोवयाय-सोमज्जण्णाई परियद्धेत्त, गुणममो न

याचि पुष्प-फल-कंद-मूलादियाइं सणसत्तरसाइं सव्वधन्नाइं तिहिवि जो-
गेहिं परिघेतुं । ओसह-भेसज्जभोयणट्टयाए संजए खं । किं कारणं ! अप-
रिमितणाणदंसणधरेहिं सील-गुण-विणाय-तव-संजम नायकेहिं तित्थय-
रेहिं सव्वजगजीव-वच्छलेहिं तिलोयमहिण्हिं जिणवरिंदेहिं एसजोणी जंम
माणं दिट्ठान कप्पइ जोणिसमुच्छेदोचि, तेण वज्जंति समणसीहा । जंपिय
ओदण-कुम्मासगंज-तप्पण-मंधु-भुजिय-पलल-सूप-सक्कुलि-वेढिम-वर
सरक-चुन्न-क्रोसगपिंड-सिहरिणि-वट्ट-मोयग-खीर-दहि-सप्पि-नवनीत
तेल्ल-गुल-खंड-मच्छंडिय-मधु-मज्ज-मंस-खज्जक-वंजण विधिमादिकं,
पणौयं उवस्सए, परघरे व रन्ने न कप्पति तंपि सन्निहिं काउं सुविहियाणं
जंपि य उदिट्ठ-ठविय रचियग-पज्जवजातं, पक्किण-पाउकरण-पाभिच्चं,
मीसकजायं, कीयकडपाहुडं च दाणट्ट-पुचपगडं, समण-वणीमगट्टयाए
व कयं, पच्छाकम्मं पुरेकम्मं, निच्च कम्मं, भक्खियं, अतिरित्तं, मोहरं चैव
सयग्गहमाहडं, मट्ठिउवलित्तं, अच्छेज्जं चैव अणीसट्ठं जंतं तिहीसु जन्नेसु
ऊसवेसु य अंतो व चहिं व होज्ज-समणट्टयाए ठवियं, हिंसा सो वज्ज-
संपउत्तं न कप्पति तंपि य परिघेतुं ।

छाया-‘‘योऽसौ वीरवर-वचन-विरति-प्रविस्तर-बहुविधप्रकारः सम्यक्त्वं-
विशुद्धमूलो घृतिकन्दो विनय-वेदिक स्त्रैलोक्य-निर्गत-विपुलयशो निषिद्ध-पीन-प्रवर
सुजातस्कन्धः पञ्चमहाव्रत-विशालशालो भावना-त्वगन्तर्ध्यान-शुभयोग-ज्ञान
पञ्च-चराक्षुरधरो बहुगुण-कुसुमसमृद्धः शीलसुगन्धि-अनास्रव फलः पुनश्च मोक्षवर
बीजसारो, मन्दरगिरि-शिखर चूलिक इवाम्य मोक्षवर-मुक्तिमार्गस्य शिखरमूतः
संवर वरपादपः चरमं संवरद्वारम् । यत्र न कल्पते ग्रामाकर-नगर-खेड-कर्बट-महम्भं
द्रोणमुख-पट्टनाऽऽश्रमगतश्च किञ्चिदप्यल्पं वा यद्वा, अणुवा स्थूलं वा, अस्रं स्थावर
काय द्रव्यजातं मनसापि परिप्रीहीतुम् । न हिरण्यं सुवर्णं चित्रवस्तु, न दासी-दास
भूतक-प्रेष्य-हय-गज-गवेलकश्च, न यान-शुण्य-शयनादि, न छत्रकं, न कुशिका,
नोपानदी, न मयूरपिच्छ-न्यजन-तालवृन्तकं न चाप्ययस्त्रपुक-ताम्र-सीसक-कांस्य

रजस-जातरूप-मणि-मुक्ताऽऽधार पुष्क-र-स-र-त-मणि-र-शैल-काचपर-वेत-
 चर्म पात्राणि महार्हाणि परस्याधुपपाठ-ज्ञानजननानि परिकल्पितुं गुणपत ।
 न चापि पुष्प-फल-कन्द-मूलादिकानि मन-सप्त-दशकानि सर्पधान्यानि, त्रिमि-
 रपि योगैः परिग्रहीतुम् । औषध-औषध-भोजनार्थं संयतेन (यतस्य) । किं कारकम् ?
 अपरिमित-ज्ञानदर्शनं घरे शैल-गुण-विमल-रूपं संयमनामके स्तीयकट सर्प-
 जगद्गीयपत्तसत्तिलोदमदितैश्चिनपर-द्रै । ग्वायोनिऽङ्गमानाष्टा, न, कल्पते
 योनिस्समुद्भेद इति तन्वयार्जयन्ति ममयासिहा । यद्यपि च ओद्भूत कुलमाप-गंज-
 (भाष्य विशेष)-तर्पण-(सक्तु)-मन्थु-(यदरादिर्गुण)-भर्त्तु-तिल-पुष्पपिष्ट
 सूप-शोष्ठुपी-अष्टिम-अर सरक-वर्ण-कोशकपिष्ट शिकारिणी-यतक-(पन्तीमन)
 मोदक-सीर-दधि-सर्पिनचनीत-तेल-गुड-खण्ड-मत्स्यमिश्रका-मधु-मध-मान-
 साधक-कश्चन-विद्यादिके-प्रणीतमुपाभय परगृह्णरण्या 'म कल्पते तदपि सति'
 पीकृत्तु सुविदितानाम् । यद्यपिचोदित-स्थापित-रभितक-पर्ययजातं प्रकीर्णप्रादुर्भे-
 रणऽपमिथं, मिमकजातं, क्रीतक-प्रादुतज्ज, ज्ञाना-गुणप्रकृतं, ममय-यनीप-
 कार्यं पाकृत, पञ्चात्मकं, पुरं कम, नित्यकम, अक्षिन्म, अक्षिन्म, मौल्यं चैव,
 रचयमाहम् आहृतम्, अक्षिकोपलितम्, आच्छेद्य चैव, अनिसृष्ट यत्तत् विधितु
 वक्ष्ये चत्तयपु चान्तर्वां वदियां भवेत्तमयाथं स्थापित-दिसा सावय-सम्भुक्त न
 कल्पते तदपि परिग्रहीतुम् ।

— १ १ १ —

अन्व० (ओ) अपरिमह (वीरवर-वचन-विरति-पवित्र-पदुनिर्हृत्कारं)
 भीमहापीर के वचन से की हुई परिग्रह-निष्ठति के विस्तार से जो दृष्ट अनेक प्रकार
 का है (सम्पत्त-विमुक्तमूलो) सम्यक्त्व रूप निर्वाप मूल वाला (धितिकदा) चित्त,
 की स्वस्वता ही अिसका कल्प (विद्यावर्तितो) विनय रूप चारों ओर वेदिका
 वाला (निमात-तिलोक्त-विपुल-अस-निष्ठ-पीण-पवर-मुजात संभो) धीनों
 लोक में फैला हुआ दिव्यीर्ण यश रूप सधन योष्टा और कम्बार्थ युक्त बड़े स्कन्ध,
 धात्रा (पंच महत्त्वय-विसाक्ततातो) पांच महाप्रत रूपी विशाल शाखा-झाल वाला
 (मावय-तर्पण-गकाय-सुमजोग-नायपहव-बुरकुर बरो) अनिरयता आदि मावता
 रूप स्वभा और धर्म ध्यान व शुभ योग तथा ज्ञान रूप प्रधान पञ्च के अक्षरों को
 पारख करने वाला (बहुगुण-कृष्णसमिद्धो) बहुत से उत्तर गुण रूप पूरों से समृद्ध-
 भर पुर (मील-सुगंधो) शैल की सुगंध वाला इस लोकक पञ्चो की अपेक्षा रहित सत्य

ते ही जहां सुगन्ध है।] (अणुखवफलो) अनास्रव रूप फल वाला (पुण्यो य) और
 पर 'मोक्खवर-बीजमारो) मोक्ष रूप उत्तम बीज के सार वाला (मंदर गिरि-सिंहर
 लिका इव) मेरु पर्वत के शिखर पर चूलिका की तरह जो (इमस्स मोक्खवर
 त्तिमग्गस्स) इम कर्म क्षय रूप प्रधान मोक्ष के निर्लोभता रूप मार्ग का (सिंहर
 ओ) शिखर रूप है (संवर वर पादपो) अपरिग्रह रूप उत्तम संवर वृक्ष (सो)
 ह (चरिम सवरदारं) अन्तिम संवरद्वार है (जत्थ) जहा (गामा गर-नगर-खेड
 न्दवड-मडय-दोणमुड-पट्टणासमगयं) ग्राम, आकर, नगर, खेड, कर्बट, मडंय,
 रोणमुख, पत्तन और आश्रम में पड़ा हुआ, (किंचि) कोई पदार्थ (अप्प व बहु व)
 मूल्य से अल्प हो या धहुत (अणुं व थूलव) प्रमाण से छोटा हो या बड़ा (तस
 धावर-काय-द्वव जायं) वस्त्र-शस्त्र आदि, स्थावर-रत्न आदि काय के वृव्य समूह
 को (न कप्पड मणल्लायि परिघेतु) मन से भी ग्रहण करना नहीं कल्पता (न हिरण्य
 सुवण-खेत-यत्थु) चांदी सोना क्षेत्र और धातु-गृह भी ग्रहण करना नहीं
 कल्पता (न दासी-दाम-भयक-पेस-हय-गय-गबेल्लाव) दासी, दास, भृत्य-नियत
 वृत्ति पाने वाला मेवक, प्रेक्ष्य सवेश ले जाने वाला दास, घोड़ा, हाथी और बैल आदि
 ग्रहण करना भी नहीं कल्पता है (न जाण-जुग्ग-सयणाड ण छत्तक) यान-रथ
 आदि, युग्ग-डोली, शयन आदि और छत्र का ग्रहण करना भी नहीं कल्पता है
 (न कुडिया न उवाण्हा) न कमण्डलु, न जूता (न पेहुण-वीयण-तालियंटका)
 पेहुण-मोरपिच्छी, वास आदि का बीजना और तालवृन्त-तालपत्र के पत्ते इनका
 ग्रहण करना भी नहीं कल्पता है (न यावि अय-तउय-तय-सीसक कस-रयत-जात
 रुव-मणि-मुत्ताऽऽधारपुडक-संख-दत्त-मणि-सिंग-सेल-कायवर चेल चम्म पत्ताइं
 महिरिहाइ) और लोह, त्रपु-बग, ताम्र, सीसा, कांस्य, चांदी, सोना, मणि और
 मोती का आधार-शुक्ति पुट, शख, दन्तमणि-प्रधान दात, शृङ्ग-सींग, पाषाण,
 उत्तम काच, वस्त्र और चर्मपात्र इन सबको भी नहीं ग्रहण करना (परस्स अज्झोव
 वाय-लोभजण्णाइ परिअट्ठेउं) ग्रहण करने से चित्त की एकाग्रता और लोभ को
 उत्पन्न करने वाले दूसरे के अधिक मूल्यवाले पदार्थों को बढ़ाना या उनका वचाव
 करना (गुणवत्थो न) अपरिग्रहरूप गुण वाले को 'योग्य नहीं' (बावि पुप्फ-फल
 कद-मूलादियाइ) और पुष्प, फल, कन्द, मूल आदि तथा (सण-सत्तरसाइ) सन
 जिनमें सत्तरवा है ऐसे (सन्नधन्नाइ) सन्न धान्यों को भी (सजए) साधु (ओसइ

मैसत्र-मोययद्वयाप) औपध, औपम्य, और मोजन के लिये (तिद्विजोमदि परि
येत्) मन वचन और कायरूप तीनों योगोंसे ग्रहण नहीं करे ।

(किं कार्य) नहीं लेने में क्या कार्य है ?

उत्तर—(अपरिमित-शाण-यस्य परदि) अपरिमित ज्ञान तथा इरान को
धारण करने वाले (मीलसुय-विशय-तद्य-संज्ञम-नायकेहि) शील-चित्त शांति,
गुण आदिशा आदि, विनय, और तप सयम की उन्नति करने वाले (सन्वजगज्जीव
व्यवहारे) जगत् मरक जीवों के वत्सल—(तिलोय-महिषहि) तिलोयी
से पूजित (सित्यवरहि) श्री श्रीवृद्ध (जिह्वपरिहि) जिनेन्द्र देवने (जंगमार्थ)
मन जीवों की (पञ्चजोयी) यह पुष्प पञ्चरूप-योनि-उत्पत्ति-रत्नान (विट्वा) केवल
ज्ञान से रक्षा है (न कप्पइ ओधि-समुच्छेयोधि) योनिधों का समुच्छेद विनाश
करना योग्य नहीं है । (तेष रज्जति समएसीहा) इसलिये भेद्य सुनि पुष्प आदि
का वर्जन करते हैं (अपिय ओ य-कुम्मास-गंठ-उत्पस-मंथु-मुज्जिय-पल्ल-सू-
सकल्लि वेदिम-वर सरक-पुज-कोसग-पड-सिहरिस्सि-वट्ट-मोयग-और-वहि-स
पि-नबनीत-तेह-गुज-जंठ-मच्छिदि-मधु-मज्ज-मंस-रज्ज-वज्ज-विदिम-
हिं रणीय) और ओ भी ओह-रू-कुम्माप-उज्ज वा नाके ववाले हुट्ट हुट्ट मूत्र
आदि गज-रक प्रकार का धाम्य, तप्य-सज्जु-सज्जु मंथु-बोर आदि का चूर्ण,
मुक्ति, नृ जे हुप पानी आदि पल्ल-तिरुके फूलों का पिष्ट, सू-रात, राक्षसी-
तिल पाण्डी वेदिम-अदेवी आदि, परसरक और चूर्ण कोरा-साधपदार्थ
विरोध पियठ-गुह आदि के पिष्ट, सिद्धि गि बहो में शक्कर आदि बेकर बना हुआ
शिकरण बट्ट-बडा, मोहक-कट्ट वृष, वही, धी, मक्कल, पैल, गुह, लोड,
मच्छाडी-मिसरी मधु, मध मांस और अशोकवृक्ष आदि साध तथा अनेक प्रकार
के शाक आदि प्रणीत-लाया हुआ (उवरसप) वनाश्रय में (परचरे व) अथवा
अम्य चर्म या (रन्ने) अटली में हो (तं) उसका भी (सुविदिमार्थ) क्रियापात्र
साधुओं को (सभिहिं फाड) सज्जय करना (न कप्पती) नहीं कल्पता (अपि य)
और ओ भी (पविट्ट-उदिय-पियग-पञ्चवजात) चरित-साधुमात्र के लिये बनाया
हुआ स्थापित-साधु के लिये रक्षता हुआ, और रचित-साधु के लिये तपाकर
बनाये हुए मोहक व दि पर्यवजात अवस्थान्तर को पाये हुए वैसे बाबल और वही
गिराकर बना हुआ कर्मवा आदि (पकिण-पाकण्य-पामिण्य) प्रकीर्ण-गिरात

हुए दिया गया था बिखरा हुआ, प्रादुर्भरण-प्रकाश करके दिया गया और अप-
मित्य-साधु के लिये उधार लिया हुआ, (सीसरुजायं) मिश्रजात-साधु व श्रावक
दोनों के लिये सम्मिलित बनाया हुआ (कीयकढ-पाहुडं) क्रीतकृत-साधु के लिये
खरीदा हुआ और प्राप्त-अग्नि में वलितरीके डाला हुआ या अग्नि से निकाला
हुआ (च) और (वानह-पुत्रपगड) वान के लिये तथा पुण्य के लिये बनाया
गया (समण-वर्षीमगदुयाएयकयं) पाच प्रकारके भ्रमण तथा धनीपक-भिखारी
के प्रयोजन से किया गया (पच्छाकम्मं) वानके बाद जहाँ हाथ छादि धोये जाय
या अन्य आरम्भ हो वह पश्चात्तर्भ (पुरे कम्म) हाथ धोने आदि आरम्भ करके जो
दिया जाय वह पुरा कर्म (नितिकम्मं) सदाव्रत की तरह जहाँ सदा साधुओं को
आहार आदि दिया जाय अथवा नियमितरूपसे सदा एक घर से आहार लिया
जाय वैसा (सक्खियं) सचित्तपानी आदि से भरे हुए हाथ या पात्र से दिया गया
(अतिरिक्तं) प्रमाण से अधिक (मोहयं चैव) और धात्वालता से-अधिक बोलकर
मिलाया हुआ (सयमहसाहड) स्वयं अपने आप ग्रहण किया हुआ, और अपने
शरीर या घर आदि से सामने लाया हुआ (मट्टि उवलित्त) मिट्टी आदि से लिप्ट
हुआ (अच्छेज्जं चैव) और ऐसे ही आच्छेद्य-निर्बल से छानकर दिया गया (अ-
शीसहं) अनिष्ट-अनेकों के हिस्से की वस्तु सबकी अनुमति के बिना दी गई हो
(जं तं तिहिंसु) जो आहार मदन त्रयोदशी आदि तिथि विशेष में (जन्ने सु उस-
वेसु य) यज्ञ और महोत्सवों में (अंतो व वहिं व ठोज्ज समणदुयाए ठविचं) उपा-
स्य के भीतर या बाहर साधुओं को देने के लिये रक्खा हो (हिंसा-सावज्ज-सप-
उत्त) हिंसारूप दोष से युक्त (तं पिय परिवेतुं न कप्पती) उस आहार को भी
लेना नहीं कल्पता है ।

मूल-“ अहकेरिसयं पुणाइ कप्पति ? जंतं एकारस-पिंडवायसुद्धं,
किण्ण-हण्ण-पयण-कय-कारियाणुमोयण-नव कोडीहिं सुपरिसुद्धं,
दसहिय दोसेहिं विप्पमुक्कं, उग्गम-उपाययेसणाए सुद्धं, ववगय-चुय-
चविय-चचदेहंच फासुयं ववगय-संजोग मणिगालं, विगय धूमं, छट्ठाण
निमित्तं, छक्काय परिरक्खणट्ठा हणि हणि फासुकेण भिदस्सेण वट्ठियव्वं ।
जंपिय समणस्स सुविहियस्स उरोगायंके बहुप्पकारंसि समुप्पन्ने दाताहिक-

पित-सिम-अतिरिच कुविय तह सणि-आतजाते व उदयपचे उल्ल-बल-
 विउल-तिउल-ककतह-पगाह-दुखे असुम-कहुय करुमे वंठफल विधाने
 महम्मय जीवियंत करणे सम्बसरीर-परितावण करे न कप्पति तारिस वि
 तह अप्पणो परस्म वा ओसह मेसज्जं, मच-पाणं च तपि संनिहिक्कं ।
 अपि य समसस्स सुविहिपस्स तु पडिग्गह धारिस्स मयति मायण-मंडोवहि
 उवगरणं, पडिग्गहा, पादबंधणं, पादकमरिया, पादठवणं च, पडिग्गहं
 तिन्नेव, रयत्ताणं च, गोच्छमो, तिन्नेव, य पच्छाका, रयोहरण-चोल
 पडिक्क-सुद्धन्तकमादीयं ण्य पि य संजमम्म उववृद्धयद्याम याया-यव-दंग
 ममग-मीय-परिरक्खण्ड्याम उवगरणं रागणेगरहिं परिहरियम्भं
 गणजणं विज्जं पडिन्नहण-पप्फोडण-पमज्ज्याण अहाय राभा य अप्पमचे
 ण हाइ मततं निक्खिदिय्यं च गिण्डिय्य च मायण, मंडोवहि
 उवगरणं एव स मज्जत विमुच निस्सगि निष्परिग्गह्छं निम्ममं
 निन्नद-बंधणे मच्च-पाव-धिरत वासी चंदण-ममाणक्कप्पं मम-
 तिम-मणि-मुत्ता-सट्ठ-कंसण समे य भागायमाण-वाण, समिय
 रत, ममिण रागदाम, समिण समितीगु, मम्मदिट्ठी ममपज
 मच्चपाण-भूतमु मह ममण गुण धारते उ उच संतत । ससाह सरणं
 मच्च भूपाणं मच्च जगवच्छल मधमारुक्कं य ममारतट्ठिते य तसार-सह
 रिद्धिन् स स मरणागुधारत, पारग य मच्चमि ममयाग पवपम मायाहि
 अट्ठहिं अट्ठम्म गती दिमादण, अट्ठम्य महग, मममय पुत्तल य मयति
 गुण दूकर निद्धिमम अट्ठिमगर वाहिंमि मया, मयापद्दामंमि य सुद्धज्जुत,
 गी दों य दिगनिरा, इगियाममिण मामाममिण णमणागजित आपाग
 मं-मग-निग्गवग्गा ममिण उणार-पामपग-वाल-मिपाग जल-परिद्धा
 वणिग्गा माभन मग्गुण पग्गुण पागुण, मुग्गिणि गुणपमगारी,

चाई, लज्जू, धन्ने, तवस्सी खंतिखमे, जित्तिदिए, सोधिए, अणियाणे, अव-
हिण्णेल्लेस्से, असमे, अर्किचणे, छिन्नगंथे, निरुवलेवे । सुविमल-वरकंस भा-
वणं १, व मुक्तोए, संखेविव २, निरंजणे, विगय, राग-दोसमोहे,
कुम्भो ३, इव इंदिएसु गुत्ते, जच्च-४, कंचणगंव जायरूवे, पोक्खरप-
त्तं ५, व निरुवलेवे, चंदो ६, इव सोमताए (भावयाए,) छरोव्व ७, दित्तेए,
अचले जह मंदरे, गिरिवरे, अक्खोमे सागरो व्व, यिमिए, पुढवीव
सव्व १०, फास सहे, तवसा ११, चिय भासरासि छन्निव्व जाततेए,
जलियहु १२ यासणो वि व तेयसा जलंते, गोसीस चंदणं पिव सीयले
सुगंधे य, हरयो १३ विव समिय भावे, उग्गोसिय सुनिम्मलं व आर्यंस १४
मंडलतलं व पागड भावेण सुद्धभावे, सौंडीरे कुंजरोव्व १५, व समेव्व १६ जाय
थामे, सीहे १७ वाजहा भिगाहिये होति दुप्पधरिसे, सारय १८ सलिलं व
सुद्ध हियए, भारंढे १९ चेव अप्पमत्ते, खग्गि दिसाणं २० व एगजाते,
खाणुं चेव २१ उड्डकाए, सुच्चा २२ गारेव्व अप्पडिकम्मे, सुच्चागारावण-
स्मतो २३ निवाय-सरण-प्पदीप-ज्झाणमिव निप्पकपे, जहा २४ खुरो चेव
एग धारे, जहा अही चेव २५ एगदिट्ठी, आगासं २६ चेव निरालंबे,
विहणे २७ विव सव्वओ विप्पमुक्के, कय पर निलये जहा चेव २८ उरए,
अप्पडिबद्धे अनिलोव्व २९, जीवोव्व ३० अप्पडिहयगती । गामे गामे एगरायं,
नगरे नगरे य पंचरायं दूइज्जं ते य, जित्तिदिए, जित परीसहे, निव्वओ,
विऊ सच्चिताचित्त-मीसकेहिं दव्वेहिं विरायंगते, संचयातो विरए, मुत्ते,
लहुके, निरव कंखे, जीविय-मरणासविप्पमुक्के, निस्संधि, निव्वणं चरिचं
धीरे काएण फासयंते सततं अज्झप्पभाणजुत्ते निहुए एगे चरेज्ज धम्मं । २।२८

छाया-“अथकीदृश पुन. वत्पते ? इत्तदेकादशपरिखपात् शुद्ध क्रयण-हनन-
पचन-कृत-कारिताऽनुमोदन-नवकोटिभि सुपरिशुद्ध, दशभिर्वैपैर्विप्रमुक्तम्, एदगमो-
त्पादनेपण्या शुद्धम्, व्यपगन-च्युत-च्चावित-त्यक्त देह च प्राशुकम्, व्यपगत

संबोगमतद्वायम्, विगत ब्रूमम्, पट्ट्यान्तक निमित्तम् पट्ट्याय परिरक्षणायम्, अह
 ग्यहनि प्राशुक्न मेदेयेण पतिर्दृश्यम् । यद्यपि च भ्रमणस्य सुनिहितस्य तु रोगावष्टे
 बहुप्रकारे समुपपन्ने वाताधिःपित्तश्लेष्मशोथितिरिक्तक्षुब्धे तथा समिपातघात-
 योश्चप्राप्ते चक्षुःशूल-मल-विजुल-कफश-प्रगाढदुःखे, अक्षुण्णमृदुल परापे, चरद फल
 पिपाके महामये जीयितान्तकप्रणे, सर्वशरीर-परिहापनकरे, न कल्पते तादृशोऽपि
 तयाऽऽत्मन परस्पर वा औपवर्धेवार्ध भक्त पानञ्च तद्यपि समिपीक्युम् । यद्यपि च
 भ्रमणस्य सुनिहितस्य तु पठम्पह-भारिणा भवति भाजन भवदोषभ्युपकरणम्, पठम्पह
 पात्रव चनञ्च, पात्रफेसरिका, पात्रस्थापनं, पट्टकानि-त्रीयेष्व, रज्ज्वाण्यञ्च, गो
 च्चदकं, त्रय एव च प्रच्छादा, रजोहरण-चोत्तपट्टक-मुत्तानन्तकादिभ्यम् । पठम्पि च
 संयमस्वोपहृ इणार्थां च वाताऽऽतपईश-मराङ्ग-शीत-परिरक्षणार्थम् उपकरणं राग
 द्वेपरिदितं पतिर्दृश्यम् । संयतेन नित्यं प्रसुपेक्ष्य-प्रस्फोटन-प्रमाज्जनायामहनि च
 रात्रौचाऽप्रमत्तेन भवति सततं निद्रोऽप्यस्य गृहीतक्यञ्च, माज्जनमण्डपभ्युपकरणम् ।
 एवं च संयतो विमुक्त्ये निस्सङ्को निष्प्रतिमहर्षिर्निर्ममो निःस्नेह चन्दनं सर्वपाप
 विरक्तो वासी-चन्दन-समानकस्य समवृण-मणि-मुक्ता-हंस्तु काञ्चनं समम् माना
 उपमानम् । शमितरजस्कं शमितरागम् च, शमितं समितिपु चम्पगृष्टिः, समम्
 यं चम्पगिन्नुत्तु सद्भिर्मन्त्र, भुक्तचारणं चतुर्क संयतं मुमापुं शरणं सर्वभूतानां,
 सर्वजगत्सक्तं, सारवमापनञ्च संसारोऽन्तरित्यञ्च, समुन्निष्पन्नसंसारं सततं मरणा
 रागं, पाणञ्च मयर्षां संशयानां, प्रवचनमात्रमिरक्षामिरष्टयम् श्विबिमापञ्चोऽष्टमान
 मवनं स्व सप्तशतम् भवति, मुक्ता दुर्लभादिशोच आश्रयन्तर वाद्ये सदा तप
 उपधानं च मुष्टगुणं, चाण्डालान्च दितनिरुत, ईर्ष्यामिता भापासमित, एषणा
 शमित, आदान मण्डाऽमन्त्र-निष्पण्णासमित, चकार-प्रमपण-राज-शिष्य-मन्त्र-
 परिष्ठापनिका शमितो मनोगुमा चपनगुमा कावगुमा, गुफाश्रितो गुमप्रमपाटी, स्वागी
 लागुपन्यसपम्पी, चान्तिचमो, श्रितनिरुत, शाधिताऽनिष्ट नोऽपदिर्लेखोऽममादि
 चपनरिदमपम्पा, निरुपलेषः । मुविमन्त्र-चर । म्य भाजनमिष मुक्तगोचः १, राज्ञ इव
 निरुत्तनो विगतराग इव मोहः २, ब्रूमहर्षिरेव गुणो ३ अक्षयकाञ्चन मिव जात
 कृता ४, बुद्धरपत्रमिव मिदामपः ५, पञ्च इव सौम्यमाचनवा, ६, सर्वेष्व शीत
 तत्रा ७, अपतो यथा मग्नीं गिरिवत ८, उद्योतनं सागर ९, इव निमित्त, दृष्टी
 च एवं सप्तशत १०, यथापि च भ्रमणारोपणम् इव जातं तत्रा ११, चन्द्रिणम्

ताशनइव तेजसाज्वलन् १२, गोशीर्षचन्दन इव शीतलः सुगन्धश्च, हृदइव समितभावं
 चदृष्टसुनिर्मलमिव आदर्शमण्डलं तलमिव प्रकटभावेन शुद्धभावः, शौण्डीरः कुङ्कुम-
 इव, वृषभइव जातस्थामा, सिंहोवा यथा मृगाधिपो भवति दुष्प्रघर्षः, शारदः सलिल-
 मिव शुद्धहृदयः, भारण्ड इवाऽप्रमत्तः, खट्विविषाणमिवैकजातः, स्थाणुरिवोद्धर्ष-
 कायः, शून्याऽऽगारमिवाऽप्रतिकर्मा, शून्यागाराऽऽसन्निधात-शरण-प्रदीपध्यानमिव
 निष्प्रकम्पः, यथाक्षुरश्चैरुधारः, यथाऽहिरश्चैवैकदृष्टिः, आकाशमिव निरवलम्बः,
 बिहगइव सर्वतो धिप्रमुक्तः, कृतपरः निलयो यथाचैवोरगः, अप्रतिघट्टोऽनिल इव,
 जीव इवाऽप्रतिहतगतिः । ग्रामे ग्रामे-एकरात्रम्, नगरे नगरे च पञ्चरात्रम् दूयमानः-
 बिह्रश्च, जितेन्द्रियो जितपरीषहो निर्भयः विद्वान् सचित्ताऽचित्तमिश्रकैर्द्रवैर्बिरागं
 गतः, सञ्चयाद्विरतो, सुक्तो लघुको निरवकांक्षः, जीवितमरणाऽऽशाधिप्रमुक्तः, निस्स-
 न्धिर्निर्व्रणं चरित्र धीरः कायेन स्पृशन् सततमध्यात्मध्यानयुक्तो निश्चल एकश्च-
 रेद्धर्मम् ।

अन्व०“(अहंकेरिसयं पुण्याह कम्पति ?) तब फिर कैसा ओदन आदि पदार्थ
 लेना कल्पता है ?

उत्तर-‘जं तं’ जो वह ओदन आदि पदार्थ (एकारसपिडवायसुद्धं) इग्यारह
 पिंडपात से शुद्ध आचाराङ्ग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में प्रथम अध्ययनके एकादश उद्देशों
 में कहे हुए दोषों से रहित (किण्वण-हृण्वण-पयण-कय-कारियाणुभोयण-नवकोडो
 हिं सुपरिसुद्धं) खरीदना, हिसा करना, और पकाने रूप क्रिया से कृत, कारित और
 अनुमोदन के द्वारा बनी हुई नवमोदिओं से पूर्ण शुद्ध हो (इसहिं दोसेहिं विष्प-
 सूक्तं) और एषणा के दश दोषों से रहित (लगम उप्पायणेस्सणाए सुद्धं) उद्गम
 और उत्पादनारूप एषणा-गवेषणा व ग्रहणपणा रूप एषणा से शुद्ध (वयगय-चुय-
 चयिय-चत्तेहं) सामान्यरूप से अचेतन बने हुए, जीवन क्रिया से भ्रष्ट, आयुक्ष्य
 के कारण जीवन क्रियाओं से गिराया गया और शरीर की वृद्धि रहित (फासुयं)
 अतएव प्रासुक-निर्जीव बना हुआ (ववगय-संजोगमणिगालं) संयोग और अगार
 रूप माछलिक दोष से दूर तथा (विगयधूमं) उत्तम आहार के प्रशंसारूप धूम दोष
 से रहित (छट्टुणनिमित्तं) छ कारणों के निमित्त वाला । छफाय परिरक्खणट्ठा)
 छ काय के जीवों की रक्षा के लिये (ह्णिं ह्णिं फासुएण भिक्खेण वट्ठिदब्धं) प्रति
 दिन निर्दोष भिक्षा में निर्वाह करना चाहिए (जपियं) और जो भी (समणस्स-

सुविहितम्) सुविहित माधु क (रोगार्थके बहुष्पकारिणि) अनेक प्रकार के रोग
या आतङ्क (समुत्पन्ने) उत्पन्न होने पर (वाताहिक-पित्त-सिम-अतिरिक्त-कुबिम्)
वात की अधिकता व पित्त कफ का अतिशय प्रकोप (तह) तथा (समिवात जैसे
बहुवर्धते) समिपात त्रिदोष उत्पन्न हुआ हो (सज्जलवत् विचल कबलवत् पगाव-दुक्ते)
अथवा सुख रहित बलवाम् कष्ट से भोगने योग्य विस्तीर्ण या मन बधन आदि तीनों
योगों को तोड़ने वाले अत्यन्त कठोर दुःख क (उदयपत्ते) उदय प्राप्त होने पर
(असुप्त कहुय-पदसे) असुप्त या कटु द्रव्य की तरह असुख अनिष्ट कठोर स्पर्श
रूप तथा (बन्धफलविषागे) दुःखरूप हाठख फल वाला (सहम्मये) अत्यन्त
मयङ्कर (जीविर्भूत करण) जीवन के अन्त करने वाले और (सम्प्रसरिर-परिता
पणकरे) सब शरीर को परिताप करने वाले (तारिसवि) जैसे रोगादि के प्रसङ्ग में
भी (अप्यस्य परस्वया) अपन या पर के लिये (तह) तथा (ओसह-मेसम्भे)
औपम्य मैपम्य । मत्त पाण्य च) और आहार पानी (सं पि संनिहिक्यं) वह सब
भी सचय करके रखना (न कल्पनि) नहीं कल्पता-योग्य नहीं है । (जपिय । और
ओ भी (पडिगाह धारिस्त सुविहितस सम्यस्त) पात्रधारी सुविहित-क्रियापात्र
माधु के पास (भायखमंभेवहितवगरणं) पात्र, मिट्टा के भाँड और सामान्य उपद्रि
तथा सकारण रखने के उपकरण (मयठि) हात हैं, जैसे- (पडिगाहो) पात्र । पात्र
बंधणं) पात्र बधन, (पादकेसरिवा) पात्र केसरिका-पोंछने का बन्ध (पादठवण्यं
च) और पात्र स्थापन-क्षिप्त पर पात्र रखने आंग (पडहाई) पन्त-पात्र डहन के
सीन वस्त्र (रयत्ताण्यं) और रजसाण्य-पात्र लपटने का बन्ध (गोचद्रो गा छक
पात्र वस्त्र आदि प्रमार्जन करन के लिये पूजनी (तिन्नयय पच्छाका और तीन
ही प्रच्छाद-ओहने के बस्त्र । रयोहरण-चोलपट्टक-मुख्यतक माहीयं) रजोहरण-
आपा, चोलपट्टक-पहनन का बन्ध और मुखान्तक-मुखवस्त्रिका आदि (एवं
पिय) यह सब भी (संजमस्त उवगृहणद्वयाप) संपन्न के उपद्रव्य-वृद्धि
के लिये हैं (वायापय-वृत्त-मसग-सीय-परिरक्ताण्यद्वयाप) बात-प्रतिभूत वायु
सूर्य की ताप, ब्रह्म-मण्डल और शीत स सरक्षण करने के लिये (पवगरणं) रजो
हरण आदि उपकरण को (राग-शोस रहियं) राग द्वेष रहित होकर (संजण्यं)
आयु का (शिष्य) सहा (परिहरिवम्भ) धारण करमा आदिय (पडिसहण-
पण्डण-पमप्रणाय) प्रनिन्यना-आगों म दमना, प्रणयन-काटना और

मार्जन रूप क्रिया में (अहोयरात्रौ) दिन और रात (अप्पमत्तेण सततं)
 नेरन्तर प्रमाद रहित (भायण-भंडोवहि-उवगरणं) भाजन भाण्ड और उपधिरूप
 उपकरण (निम्बिहियव्वं) नीचे रखना (च) और (गिण्हियव्वं) ग्रहण करना
 योग्य (होइ) होता है (एवं) इस प्रकार (सेसज्जेते) वह संयमी (विमुत्ते निमग्गे)
 ग्रनादि रहित, निस्सङ्ग-मोह रहित (निप्परिग्गहरुई) परिग्रहरुचि से दूर (निम्ममे)
 ममता रहित (निन्नेहयवणे) स्नेह और बंधन से रहित (मन्व पाव धिरते) सब
 पापों से निवृत्त (वासी-चट्ठण-समाण कप्पे) वासी-कुल्हाड़ी मारने वाले और
 चन्दन का लेप करने वाले-दोनों पर समभाव रखने वाला (सम-तिण-मणि
 मुत्ता-लेट्ठु-काचणे) रुण और मणि, मोती तथा पत्थर व सुवर्ण में समबुद्धि रखने
 वाला । समेय माण वसमाणण्ण) और मान अपमान की क्रिया में भी
 मम हर्ष विषाद रहित (समिथरते) उपशान्त पापरजवाला अथवा विषय रति के
 उपशम वाला या शान्त वेग वाला (समित राग दोसे समिए समितिसु) उशान्त
 राग द्वेष वाला व पाच समितियों में सम्यक् प्रवृत्ति वाला (सम्मदिट्ठी) सम्यग्
 दृष्टि (समेय जे सव्व-पाण-भूतसु) और जो समस्त व्रत स्थावर जीवों में समान
 भाव रखता है (मे हसमणे) वही श्रमण (सुयधारत्तं) श्रुत धारक (उज्जुत्ते)
 ऋजु-निष्कपट या आलस्य रहित (सज्जेते) व सयमो है (ससाहू सरणं सव्व
 भूयाणं) वह सुसाधु सर्वभूत-छाया जीवोंका शरण-रक्षक है (सव्व जग-वच्छल्ले)
 सब जगत् का वत्सल-हितैषी है (सव्व भासके) सत्यवक्ता है (ससारत्तट्ठिते)
 ससार के अन्त में स्थित (य) और (ससारसमुच्छिन्ने) भव परम्परा रूप ससार
 का जिसने उच्छेद कर दिया है, ऐसा (सतत मरणाणुपारते, सदा मरण के पार पाने
 वाला (पारो य सव्वेसि ससायाणं) और सब सशयों का पारगामी (पवयण-
 मायाहिं अट्ठहिं) आठ श्रवचनमाता-पाच समिति तीन गुप्ति रूप में (अट्ठ कम्म-
 गठी-विमोयके) आठ कर्मों की ग्रन्थि-गाठ को छुड़ाने वाला (अट्ठमय-महणे) आठ
 मर्दों को नाश करने वाला (ससमय कुत्तले) अपने सिद्धान्त में निपुण (भवति)
 होता है (सुख-दुक्ख-निव्विसेसे) सुख दुःख में विशेषता रहित अर्थात् हर्ष शोक
 रहित (अहिमतर-वहिरमिसवा तवोवहाणं मिथ सुट्ठु उज्जुत्ते) आभ्यन्तर और
 बाह्य तप रूप गुण की रक्षा करने वाले-उपधान में सदा अच्छी तरह से उद्यम

करने वाला (कृति कृति य) समाधाम् और जितेन्द्रिय (हियनिभते) स्वपर का हि
कारी (ईरिया-समित) ईया समिति युक्त (भासा समित) भाषा समिति-निर्
वचन-बोलने वाला, (पसयासमिते) एषया समिति युक्त (आयाश-महम
निक्लेवणा समिते) आवाहन मोह मात्र निक्षपणा समिति वाला (छवार पासव
कोत-सिपाय-ब्रह्म-परिद्वारविषया समित) मलमूत्र, श्लेष्म, संधान-नाक का म
अज्ञ-वेद का मज आवि पछिने की समिति वाला (मशुगुत्तो वयगुत्तो कायगुत्तो
मनो गुप्त, वचन गुप्त और काय गुप्त-शरीर के संयम वाला (गुप्तिविप) ।
इन्द्रिय-विषयों से इन्द्रिय का रक्षक करने वाला (गुप्त-ईमपारी) प्रत्यक्ष
गुप्ति से युक्त (चाईलकू) त्यागी-सर्वसग का त्याग करने वाला वा दानी रज्जु
समान सरल (धन्यं तपस्वी) धन्य, तपस्वी-प्रशान्त तपोयुक्त (क्षतिकमे) क
द्वारा सहने वाला (क्षितिविप) जितेन्द्रिय (साधिप) गुणों से शांभित या इ
हुआ (अशियाणे) निदान रहित (अचद्विस्लेस्त) जिसकी चित्तवृत्ति संयम
बहिर्भूत नहीं है (असमे अकिचण) ममता से दूर व धन से रहित (क्षिगमे
लेह बंधन को काटने वाला (निहवसेवे) कर्म के उपलेप रहित माने कर्म का
नहीं करने वाला । (सुविमल-वर कंसभावर्ष्य व मुक्कतोये) स्व निर्मल व
कांस्य भाजन की तरह स्नेहरूप अलस दूर (संलेविप निरंजये) रज्जु की ठ
निर्मल-रागादि मल रहित (विग्व-राग-दोष माह) राग द्वेष और मोह से ।
(कुम्मा इव विपमुगुत्तो) कूर्म-रक्षण की तरह इन्द्रियों के विषय में गुप्त-संय
वाला (अच-कंधयुगं व आयरुने) आति सम्मम सुवर्ण की तरह जातरूप-रागा
हुमाव रहित अपने स्वरूप को पाया हुआ (पोक्कर पत्तं व निहवसेवे) पद्म
की तरह भोग के लेप रहित (यशो इव सोमभावया) सौम्य भाव से अन्त्र के समा
(सूर्योप्य दिततप) सूर्य के जैसे तपस्या के तेज वाला (अचल जह मंदरे गिरिबरे
सन्दर-मेरु पर्वत के समान अचल (अचलोप्ये सागरोप्य विमिप) धाम रवि
सागर के जैसे स्थितिभावों की तरङ्ग से दूर (पुढरी व सक्क फाससहे) दूरी ।
तरह अनुकूल प्रतिकूल सब स्पर्शों को सहने वाला (तवसा विप मासरासिर्वा
ब्रजासतेप) और तपस्या से भ्रम की डेर से डकी हुई अग्नि के जैसा यन्त्रे जै
भस्म से डकी हुई अग्नि भीतर अलसी और बाहर से मुझीसी दिलती है, वैसे तपस
का शरीर बाहर से पीका किन्तु अन्तस्तेज भे भीम रहता है (अक्षिय-हुयासर

धिव तेजसा जलते) जलती हुई अग्नि के जैसे ज्ञानरूप तेजसे जलता हुआ (गोसीस चक्षुं धिव धियले सुगवे) गोशीर्ष चन्दन की तरह शीतल-मानसिक तापरहित और शीलरूप सुगन्ध वाला (हरयोधिव समिधभावे) हृद की तरह समभाव वाला वायु के अभाव में जैसे तालाब का पानी स्वरूप में रहता है, वैसे निन्दा सत्कार में समभावयुक्त (उन्वोसिय-मुनिम्मलं व आयंस-मडल तलं व) अच्छा घिमा हुआ होने से अत्यन्त निर्मल दर्पण के तल की तरह (पागड भावेण सुद्वभावे) प्रकट भाव-निष्कपट भावसे शुद्ध हृदयवाला (सोडरे कुंजरोव्व) कुञ्जर-हाथी की तरह परीपद सैन्य के लिये शूर (वसमेव्व जायथामे) धृष्ट के समान जात स्याम-स्वीकार किये हुए व्रतभार के निर्वाह में समर्थ (सीहे या जहा गिगाहिवे) मृगपति सिंह के जैसे (दुप्पधरिसे होति) परीपदरूप मृगों के लिये जो दुर्द्धर्प होता है (सार य सलिलं व सुद्वहियए) शरत्काल के पानी की तरह शुद्ध हृदय वाला (भारंडे चेव आपमत्ते) और भारंड पक्षी के समान प्रमाद रहित (खमि-विसाण व एगजाते) खड्ग-गैडा के सींग की तरह एकभूत-रागादि के संहार रहित (खाणुं चे व उड्ड काए) स्थाणु-खूटे की तरह कायोत्सर्ग में शरीर को स्थिर खड़ा रखने वाला (सुन्ना मारेव्व अप्पडिक्कमे) शून्य घर की तरह देह की सम्भाल नहीं करने वाला (सुन्ना गारावणासतो) शून्य घर या सूती दुकान में वर्तमान-रहा हुआ (निवाय-सरण-प्पदीपउत्ताणमिव निप्पकपे) वायु रहित घर में शीप की बत्ती की तरह दिव्य आदि उपसर्ग में भी शुभ ध्यानरूप कोष्ठक में अकम्प-निश्चल चित्त धृति वाला (जहा खुं चेव एगधारे) छुर-छूरे के जैसे विधिमार्गतप एक धार वाला (जहा अही चेव एगदिट्ठो) फिर सर्प के जैसे मोक्ष साधन रूप एक दृष्टि वाला (आगासं चेव निएलवे) आकाश की तरह बाह्य आलंबन रहित (विहगे विव सब्बओ विप्प मुक्के) विहग-पक्षी की तरह सबसे विप्रमुक्त (कय-पर-निलये जहा चेव उरए) जैसे सर्प दूसरे के बनाये घर में रहता है वैसे साधु परगृह में रहने वाला (अप्पडि वद्धे अनिलोव्व, जीवोव्व अप्पडिहयगति) वायु की तरह प्रतिबन्ध रहित और जीव की तरह अप्रतिहतगति-रूकावट रहित गति-वाला (गामे गामे एगरायं) गांव गांव में एकरात (य) और (नगरे नगरे पचराय) नगर नगर में पाचरात' (दूह-

१-गांव में एक रात्रि और नगर में पंच रात्रि का परमाणु पद्धिधारी साधु की अपेक्षा है ।—टीका०

यस्ये य) विपरता-भ्रमण करता हुआ और (जित्तिदिष्ट) चित्तेन्द्रिय (चित्तरिपरी
सहे) परीपरी को जीतने वाला (निष्काम्यो) निर्मय (विऊ) विद्वान् (सचित्ता
चित्तरिपरीकेन्द्रियेदि) सचित्तरिपरी व भिन्न-वृत्तों में (विरागगत) विराग
प्राप्त (संन्यासो विरग) असंन्यास मर्मह से दूर (मुक्त) मुक्त की तरह बन्धन रहित
(सहृदये) गौरव रहित होने में शत्रु-हृदय (निर्विकल्प) व्यापक रहित (जीवित
मरणास-विपरमुक्त) जीवन मरण की व्यापक में दूर, तथा (धीरे) धीरे (निष्काम्य
निष्काम्य चरितं) सचित्तरिपरी परिणाम के विच्छेद रहित, निर्दोष चरित्र को
(कायण फासयति) शरीर से पालन करता हुआ (अस्मिन्मरणाद्युक्ते) अस्मिन्
तम ध्यान-शुभ विचार से मुक्त तथा (निष्काम्य) उपशांत कथाय वाला माधु (गो)
मकाकी रागादि रहित होकर (मत्त) सदा (धर्म धर्म) धर्म या आचरण
करे।

भाव-‘सूत्र में अपरिमित को वृत्त की उपमा दी गई है जो तीक्ष्ण की व्याख्या
नुसार की गई निगूहित के विस्तार में बहुत प्रकार का है। वृत्त के साथ अपरिमित
की समता करने हुए उसके अङ्गों का परिचय दिया है। जैसे—अपरिमित-वृत्त का
सम्बन्ध ही निर्दोष मूल है और धर्म रूप कन्ध, विनय ही चतुरस्र वेदिका और
त्रिकोणी में फैला हुआ विमल यश ही बड़ा स्कन्ध है, महात्रय ही पांच शाखाओं और
भावना रूप छात्र है। धर्म ध्यान शुभ याग तथा ज्ञान रूप पञ्चाङ्ग और विविध
गुण ही अपरिमित वृत्त के फूल हैं। शीत उसकी सुगन्धि और अनामय ही
फल है। कर्म बन्ध से मुक्ति इसके बीजों का सार है। इस प्रकार मेरु की चूलिका के
समान यह मोक्ष मार्ग का शिखर भूत अपरिमित अन्तिम संवरधार है। अपरिमितप्रत
की यह मर्माह है कि धाम आदि में रहा हुआ कोई भी परार्थ मोक्ष या वृत्त, क्षोण
या बड़ा वृत्त मात्र मन से भी ग्रहण करना योग्य नहीं है। ऐसे आशी सोना या वासी
वास आदि निर्जीव या सजीव वृत्तों को तथा लोह आदि पालु एवं विविध प्रकार
के पात्र जो अधिक मूल्य वास्तु और दूसरे के पित्र की आसक्ति एवं लोभ को उत्पन्न
करने वाले हैं। उनका सम्बन्ध करना योग्य नहीं है और पुण्य फल आदि वनस्पति
तथा १० प्रकार के धान्या का जो औषध औषध और मांस के लिये साधु की सम्पत्ति
करना योग्य नहीं है। क्योंकि अनन्त ज्ञानी तीर्थहार देव ने ज्ञान वस्तु से इस पुण्य
आदिक समूहको व्रत जीवाकी उत्पत्तिका स्थान कहा है और किसी यात्रिका विनारा

करना ठीक नहीं है। इसलिये प्रवान मातु इसका वर्जन करते हैं। फिर जो भी ओदन आदि निर्जाय द्रव्य उपाश्रय में लाये गये या गृहस्थ के घर या जंगल में रखे हैं, क्रिया पात्र साधु को उन द्रव्यों का भी सञ्चय नहीं करना चाहिए। फिर जो आहार आदि उद्दिष्ट, स्थापित तथा मोदकादि रूप से साधु के लिये बनाया गया है, नीचे गिरना हुआ या साधु के लिये अन्धेरे से बाहर लाया हुआ एष श्रमण आ भिखारी के लिये बनाया गया है। उधार लाया हुआ, भिन्न, क्रीतकृत, प्राप्त, और दान पुण्य के लिये निकाला हुआ, तथा जो पश्चात्कर्म्म आदि अन्य दोषों से युक्त है। वह आहार तिथि, यज्ञ तथा उत्सव के प्रसङ्गों में उपाश्रय के भीतर या बाहर साधु के लिए रखा हो तो हिंसा रूप दोष वाले उस आहारादि को प्रती साधु ग्रहण नहीं करे। तब फिर कैसे आहार आदि को ग्रहण करना योग्य है, इसको दिखाते हैं—'जो पिण्डैषणा के ११ उद्देशों से शुद्ध और खरीदना १, खरीदवाना २, एवं खरीदने वाले को अनुमोदन करना ३, ऐसे हिंसा करना ४, कराना ५, व करने वाले का अनुमोदन करना ६, पकाना ७, दूसरे से पकवाना ८, और पकाते को अच्छा जानना ९, इन नव कोटियों से शुद्ध हो। एषणा के दश दोषों से रहित तथा जो उद्गम आदि एषणा से शुद्ध है। चेतनता से रहित और प्रासुक तथा सयोग आदि मङ्गल दोष से जो रहित है, प्रतिदिन वैसी प्रासुक भिक्षा का ग्रहण करना चाहिए। यह भी केवलवेदना आदि छ कारणों से जीव रक्षा के लिए ग्रहण करे। फिर क्रिया पात्र साधु को अनेक प्रकार के वात आदि से होने वाले रोगातङ्क उत्पन्न हो जाय तो भी अपने व परके लिये औषध भण्ड तथा भक्त पान रात्रि में पास रखना नहीं कल्पता।

फिर पात्र धारी साधु को भाजन आदि उपकरण होते, वे भी सहेतुक होते हैं। उपकरण और उनके धारण करने की विधि बताते हैं। जैसे—पात्र १, पात्र बन्ध २, पात्र पोंछने का वस्त्र ३, पात्र स्थापन—मण्डल ४, पटल तीन ५, रजस्माण ६ और गोन्लक—पूजनी ७, प्रच्छादन के वस्त्र ८, रजो हरण ९, चोल पट्टक १०, और मुख वस्त्रिका आदि उपकरण भी सगम की रक्षा के लिये तथा वातादि वृष्ट से देह के संरक्षण के लिये राग द्वेष रहित धारण करना चाहिए, और रात दिन सदा प्रति लेखन आदि क्रिया में अग्रमत्त होकर निरन्तर भाजनादि को रखना एवं ग्रहण करना योग्य है। इस प्रकार जो सयमी विमुक्त आदि १४ विशेषण युक्त है वही साधु श्रुत

धारक शत्रु य संयमी इ । सुसाधु आदि अनेक विशेषण युक्त बावत् यह धर्म लप मे रहित होता है । साधु की ११ उपमायें जैसे-१ निर्मल काँसी के भाजन की तरह स्नेह जल से अक्षित, २ शङ्ख के जैसे उज्ज्वल बाने राग हृष आदि रंग रहित, ३ कूर्म-कच्छप की तरह गुप्तेन्द्रिय, ४ वज्रम सोना जैसे शुद्ध स्वरूप वाला, ५ पद्म पत्र की तरह काल रंग मत्त के छेप रहित, ६ चन्द्र जैसे सौम्य, ७ सूर्य जैसे तेजस्वी, ८ मेढ पर्वत जैसे अचल, ९ अशोक सागर के समान बिभारों की चंचलता रहित, १० धूम्र की समान सबके स्पर्श को सहने वाला, ११ मत्स से डही हुई भाग के समान बाहरी शरीर से फीका व भीतर से तेजस्वी, १२ आम्बुधरमान बहि जैसे तेजस्वी १३ गोरीय चन्दन के जैसे शीतल व शील की सुवास वाला, १४ आतिमान् गम क समान परीपह सहने में शूर, १५ ह्व जैसे सम स्वभाव वाला, १६ स्वच्छ इपण जैसे प्रकट शुद्ध स्वभाव वाला, १७ घोटी बैल के जैसे छठाये हुए कार्य भार का निर्वाह करने वाला, १८ सिंह के जिस दूसरे से परामर्श नहीं पाने वाला, १९ शर स्काल के पानी के समान निर्मल, २० भारवृक्ष पक्षी जैसे सहा अक्षित रहता है जैसे प्रभाव रहित, २१ गैंडे के सींग की तरह एक-राग हृष रहित, २२ त्याग-भूटे के जैसे ऊँचे-सीधे ध्यान में लगे, २३ शून्य घर क जैसे शोभा संस्कार रहित, २४ निर्यात घर के होपक के जैसे ध्यान में अक्षय, २५ छुरे के जैसे नियि रूप एक घर वाला २६ सर्प के जैसे माघ मार्ग रूप पराजयवाला, २७ आकारा के जैसे बाहरी आलम्बन रहित, २८ पक्षी के जिस संपह रहित वा सर्वत्र गति वाला, २९ सर्प क जैसे घर घर में रहने वाला, ३० वायु के जैसे प्रतिबन्ध रहित, ३१ जीव के जैसे निर्वाप सर्वत्र गति वाला, इन इकतीस उपमाओं से कुछ साधु प्रति प्राय में एक रात और मगर में पाँच रात क प्रमाण से दास करते हुए भ्रमण करता है । अतिन्द्रिय, अति परीपह, निर्मल वापत जीवन की आशा व मरण भय से दूर मुनि निर्वाप अत्र की शरीर स पालन करता हुआ निरन्तर आत्म ध्यान से कुछ स्थिरमति होकर राग हृष रहित धर्म का आचरण करे ।

मूल-“इमं च परिगह-धरमण-परिरक्तणहुयाण पावणं भगवयां
सुहियं अचहियं, पेणामाविकं, आगमेसिमई, सुद्धं, नवाठयं अहुदिलं
अणुतर सत्त्वदुस्सपायाण विओसमणं, तत्सइमा पणमावयाओ परिमस्स

वयस्स होंति परिग्गह देरमण-रक्खणद्धयाए । पढमं-सोइंदिएण सोच्चा
सदाइं मणुन्नभद्गाइं, किंते !, वरसुरय-मुइंग-पणव-दद्दुर-कच्छभि-
वीणा-विपंची-वज्जियि-वद्धीसक-सुघोसनंदि-ससर-परिवादिणि-वंसतूणक
पव्वक-तंती-तल-ताल-तुडिय-निग्घोसगीयवाइयाइं, नड-नट्टक-जल्ल-मल्ल
मुट्ठिक-वेलंयक-कहक-पवक-लासग-आइक्खक-लंख-मंस-तूणइल्ल-तुं व
वीणिय-तालायर-पकरणाणि य बहूणि, महुरसर-गीत-सुस्सरारतिं, कंची
मेहला-कलापपत्तरक-पहेरक-पायजालग-वंटिय- खिंखिणि-रयणोरुजा-
लिय-हुदिय-नेउर-चलण-मालिय-कणग-नियल-जाल-भुसणसदाणि,
लीलाचंक्रममाणान्दीरियाइं, तरुणीजणहसिय-भणिय-कलरिभित-भंजु-
लाइं, गुणवयणाणि व बहूणि महुरजणमासियाइं, अन्नेसु य एवमादिएसु
सहेसु मणुन्नभद्दएसु ण तेसु समणेण सज्जियव्वं, न रज्जियव्वं, न निज्झि-
यव्वं, न मुज्झियव्वं, न विनिग्घायं आवज्जियव्वं, न लुभियव्वं, न तुसि-
यव्वं, न हसियव्वं, न सइं च मइं च तत्थकुज्जा । पुसरवि सोइ दिएण
सोच्चासदाइं अमणुन्न-पावकाइं, किंते ! अवकोस-फरुस-खिसण-अवमा
णाण-तज्जण-निव्वंछण-दित्तवयण-तासण-उक्कूजिय-रुल्ल-रडिय-कंदिय
निग्घूडरसिय-कलुणविलवियाइं, अन्नेसु य एवमादिएसु सहेसु अमणुन्न
पादएसु न तेसु समणेण खसियव्वं, न हीलियव्वं, न निंदियव्वं, न खिसि-
यव्वं, न छिंदियव्वं, न मिदियव्वं, न वहेयव्वं न दुगुं छावत्तियाएलव्वा
उप्पाएउं । एवं सोत्तिदिय-भावणा भावितो भवति अंतरप्पा मणुन्नाऽम-
णुन्न-सुब्बि-दुब्बिरागदोस-पण्हियप्पा साहू, मण-वयण-कायगुत्ते
संचुडे पण्हिहिंतिदिए चरेज्ज धम्मं ॥ १ ॥

छाया-“इदञ्च परिग्रह विरमण-परिरक्षणार्थं प्रवचन भगवता सुकथितमात्महितं
प्रेत्यभाविकम्, आगमिष्यद्भद्रं, शुद्धं, न्यायोपेतमकुटिलमनुत्तरं सर्वदुःखपापानां
व्युपशमनं, तन्मेमां पञ्चभायनाश्चरमस्य व्रतस्य भवन्ति परिग्रह-विरमण रक्षणार्थम् ।

प्रथम-भात्रेन्द्रियस्य भुत्वा शब्दान् मनोहमप्रकाश । कांस्तान् १-वर मुरज-मुरज-
 पण्य-वदु'र-कच्छमी-योगा-विपक्षी-वज्रकी-बद्धीसक-सुषोप-नन्दी-सूसर परि
 वादिनी-यंरा तूण ह-पयक-तन्त्री-तल्ल-ताल्ल-तुयं निर्योप-गीतवाणम्, नट-नतक-
 वल्ल-मल्ल-मौष्टिक-विहर्षक-कथक-पावक-लातकाऽऽचक्षक-(आवपायक)-
 कंस-संस-तूणइल्ल-मुम्बिबीणिङ्क-तालाऽऽचर-प्रकरणाणि च बहूनि, मधुरस्वरगीत
 सुस्मराणि काञ्ची-यस्वज्ञाकलाप-प्रतरक-प्रहरेक-पावजालक-पष्टिका-किङ्किणी-
 रत्नोदजालिका झुट्टिका-नूपुर-चञ्चनमाजिका-कनक-निगड जालक-भूषणशब्दान्,
 लीलावह्म्यमायोदीरितान् ०ठणीजन-इसित-मथित-कफरिभित-मङ्गुलान्, गुण
 वचनानि च बहूनि मधुरजन भाषितानि, अन्येषु चैवमादिष्यु शब्देषु मनोहकषु न
 तदु भवेन सञ्चितव्यम्, न रक्तव्यम्, न गर्दितव्यम्, न मूर्च्छितव्यम्, न निनि
 र्पातमापस्तव्यम्, न लोभितव्यम्, न सोष्टव्यम्, न हसितव्यम्, न स्मृतिव्यमतिव्य
 तत्र कुर्यात् । पुनरपि भोत्रेन्द्रियेण भुत्वा शब्दान् अमनोहप्रपापकान्, कांस्तान् १-
 आकोश-पठप-स्त्रिसखाऽवमानन-तर्जन-निमर्त्सन-शीतवचन अस्तनोत्कृजित-रहि
 ताऽऽरदित-कन्दित-निषुप्त-रसित-कण्ठ-विलापितान्, अन्येषु चैवमादिकेषु शब्द
 एवमनाहप्रपापकेषु न तेषु अमयन रोपितव्यं, न हीलितव्यं, न निन्दितव्यं, न स्त्रिस
 तव्यं, न छस्तव्यं न मेस्तव्यं, न ह्मस्तव्यं, न जुगुप्सा-वृष्टिका दम्भोपादितुम् । एवं
 भात्रेन्द्रियमावना-भाषितो मवत्यन्तरात्मा मनोह्राऽमनाह-सुरमि-दुरमि-रागद्वेष
 प्रसिद्धितात्मा साधुर्मनो-वचन-कायगुण संपूत प्रसिद्धितन्द्रियरचरेद्धर्मम् ॥ १ ॥

अन्व०-“(५) और (परिमाहवेरमण-परिरक्कमण्डुपाण) परिमह बिरमण
 प्रत की रक्षा के लिये (भगवता) प्रसु महावीर ने (इस पावयण) यह प्रयचन
 (मुकहियं) मण्डी ठरह कदा है (अत्तहियं, वेष्वा भाषिकं) जो आ-महितकारी
 व परलोक में शुभ का कारण है (आगमति अह) मविय में कस्याण कारक
 (मुदं) शुद्ध (मेयाउयं) ग्यायपुक्त (अकुहितं) कुटितता रहित (आणुत्तरं) सर्व
 भेद और (सच्चदुकरा-पावाण) सच दुःख एवं पापों का (बिष्पोसमणं) उप
 शमन करत वाला है (तम्भ चरिमस वयस्स) उस अम्मित अपरिमह प्रत की
 (इमा पंग भावना) ये पांच भावनाये (परिमाहवेरमण-रक्कमण्डुपाण) परिमह
 बिरमण प्रत का रक्षा के लिये (होति) हैं ।

अम-(पद्यम्) प्रथम भाषना-(मो इच्छिणम्) भात्रेन्द्रिय से (मणुप्रमदगाह)

“मनोज्ञता के कारण सुन्दर (सहाई) शब्दों को (सोचा) सुनकर,
(किते ?) कौन से वे शब्द हैं ?

उत्तर-। घर मुख-मुहंग-पणव-दुदुर-कच्छमि-वीणा-विपंची-बल्लथि-
बल्लीसक-सुघोसनदि-सूसर-परिवादिणि-धंस-तूणक पवक-तंती-ताल-तुडिग-
निगोस गीयवाइयाई) प्रधान मुरज-मर्दल मृदङ्ग, पणव-छोटा पडह, दुर्दुर-चर्म
से बंधे हुए मुख वाले कलस जैसा वाद्य विशेष, कच्छमि-वाद्य विशेष, वीणा,
विपंची और बल्लकी-एक प्रकार की वीणा, बल्लीसक-एक प्रकार का वाद्य,
सुघोषा-घण्टा, नन्दी-धारह प्रकार के तुर्य का निर्घोष, सुसर परिवादिनी-धीया
घश-धासरी, तूणक और पर्यक-वाद्य का एक प्रकार, तन्त्री-वीणा विशेष,
तल-इस्त तल, ताल-कास्य ताल इन सब वाद्यों के निर्घोष तथा सामान्य
गीत और वाद्य को (य) और (नड-तडक-जल्ल-मल्ल-मुट्टिक-वेगंभक-कहक
पवक-जालक-आइकलक-लख-मख-तूण इल्ल-तुंब वीणिय-तालायर पकरणानि)
नट, नर्तक, जल्ल-दास या डोरी पर खेलने वाले, मल्ल, सौष्टिक मल्ल, विटम्बक-
पिदूपर, कथा करने वाला, प्लवक-उछतने वाला, रास गाने वाले तथा पूर्वोक्त अर्थ
वाले, लख, मख, तूण इल्ल, तुंबवीणि और तालपर इनसे किये नाटक आदि
प्रकरणों को तथा (बहुणि मदुर-सर-गीत सुस्सरति) बहुत से मुर ध्वनि वाले
गायकों के सुस्वर गीतों को ‘सुनकर’ फिर (कंची-मेहला-कला वपत्तरक-पहेरक
पाव जालक-घटिय-खिखिणि-रयणोकजालिय-छुदिय-नेउर-चलण म रिय-कणग
नियल-जाल भूषण-सहाणि) काची-कमर का भूषण कदोरा, मेखला-उसी का
एक मेर, कलापक-गरदन का आभरण, प्रतरक और प्रहेरक-आभरण विशेष, पाव
जालक-पाव के नूपुर आदि आभरण, घण्टिका-घुघल, खिखिनी छोटी घुघुरी
वाला भूषण, रत्नोकजालक-रत्न सम्बन्धी जया के आभरण, छुट्टि ना-एक प्रकार
का आभरण नेउर-नेपुर, चरण मालिका तथा कनक निगड-पैर-के आभरण
विशेष, और जाल भूषण इन सबके शब्दों को जो (लील चक्रम माणारू
दीरियाई) लीला से चलती हुई स्त्रियों के गमन से उत्पन्न हुए हैं, (तरणी

१ तूर के बारह प्रकार—(१) मंभा, (२) मुदग, (३) मार्दल (४) दुड्डुडु, (५) तिलिमा, (६) करड, (७) कंसाज (८) काहल, (९) वीणा, (१०) वज, (११) शख, (१२) पणवक ।

अय-इमिय-अणिय-कलरिमित-मंजुलार्ह) तन्मयी शिष्यों के हाथ बचन, तथा त्वर के धोखना युक्त मधुर व सुन्दर शब्दों को (गुणवययाधि व बहुणि मधुरअण-भासियाई) अबवा मधुर अन-प्रेमी अर्गों से बोले हुए बहुत से स्तुति वचनों को (अन्तसु व एयमाविण्णु सरेसु मणुम-मरएसु) और अन्य इस प्रकार के मनोहरता से शुभ रूप ओ विरिष्ट शब्द हैं (मतेसु समणण सखियब्ध) उन शब्दों में साधु को आसक्त नहीं होना चाहिए (न रजियब्ध) राग नहीं करना चाहिए (न गिम्मियब्ध) गृष्टि-नहीं मिलने वाले शुभ शब्दों को आकांक्षा नहीं करनी चाहिए (न मुग्गियब्ध) न बेमान होकर मोह करना चाहिए, (न विमिग्याय आसखियब्ध) न उसके लिये अपना व परका नाश करना चाहिए (न लुमियब्ध) न लोभ करना चाहिए (न तुसियब्ध) प्राप्ति होने पर प्रसन्न भी नहीं होना चाहिए (न हसियब्ध) न विम्वय से हास्य करना चाहिए (न सईय मईय सत्थइजा) और न वहाँ-उन शब्दों में-स्तुति या मति अर्थात् स्मरण या उनका विचार भी नहीं करना चाहिए (पुणरुवि) फिर भी शब्द गत विचार को कहते हैं (खोइविण्णु अमणुम पावकाई सदाई सोण्णा) श्रोत्र इन्द्रिय से अमनोद और बुरे शब्दों को सुनकर [रोप आवि नहीं करना] (दिते?) कौन से वे अमनाद शब्द हैं?

उत्तर-(अकोस-कहस-सिसख-अवमाणण-तज्जण-निर्मसण-विचवयण-तामण-अकूजिय-कम-रजिय-कंदिय-निग्गुह रसिय-अरुण-विक्खदियाई) आक्रोश मरजा आवि प्रकार की गाली, पक्ष्य वचन-मूर्ख आदि पहना, लिसन-निम्न, अपमान और तर्जना-भय सूचक शब्द, निर्मत्सना-सामने से हट जा इत्यादि निरस्कार वचन बीज-काम्य युक्त, त्रासकारी, अकूजित-अक्षय्य खोर की ध्वनि, रोने के शब्द रजित-रङ्गे के शब्द, अन्धन-बियोग योग्य का आकन्दन निपुट-निर्घोष रूप, रचित-जानवर के समान भीत्कार, करुणा लयन करन वाले और विलाप रूप, (अन्तसु व एयमाविण्णु सरेसु अमणुम पावणु) और इस प्रकार के अन्य अमनाद या शब्द हैं (न तेसु समणेषु रुसियब्ध) उन शब्दों में साधु को रोप नहीं करना चाहिए (न हीलियब्ध) हीलना नहीं करनी चाहिए (न तिरियब्ध) निन्दा नहीं करनी चाहिए (न तिमियब्ध) लोफ समझ उनको बुरा नहीं कहना चाहिए (न तिरियब्ध) अमनोद शब्द के कारण ब्रह्म का देहन नहीं करना चाहिए

(नभिरिन्द्रियं) न उसका भेदन-दो भाग करना चाहिए (न घहेयन्वं) न घध-हन्तन-करना चाहिए (न दुगुंक्षा वत्तियाए लब्धा उप्पाएव) अपने या दूसरे के हृदय में जुगुप्सा उत्पन्न करनी भी योग्य नहीं है (एवं) इस प्रकार (सोइन्द्रिय भावणा भावितो) श्रोत्र इन्द्रिय की भावना से युक्त (अंतरप्पा) ध्वन्त-करण वाला (मणुत्ताऽमणुत्ताऽ सुत्थि-दुत्थि-राग-दोस-पण्हियप्पा) मनोह्र और अमनोह्र रूप वाले शुभाऽशुभ शब्दों में राग द्वेष के प्रणिधान-संवर-वाला-साधु (मण-वयण-कायगुत्ते) सत्त चाखी और काय से गुप्त (संवुडे) सवरवान् (पण्हित्तिदिप) गुप्त इन्द्रिय वाला होकर (चरेज्ज धम्म) धर्म का आचरण करे ॥ १ ॥

मूल-“वित्थियं-चक्खिदिण्ण पासिय रूवाणि मणुत्ताइं भइकाइं, सच्चित्ताऽचित्त-मीसकाइं, कड्ढे पोत्थे य, चित्तकम्मे, लेप्पकम्मे, सेले य, दंतकम्मे य, पंचहिं वण्णेहिं अणेग संठाण संठियाइं, गंथिम वेढिम-पूरिम-संघातिमाणि य मल्लाइं बहुविहाणि य अहियं नयण-भणसुइकराइं, वण संडे पव्वते य गामागरनगराणि य खुद्धि यपुक्खुरेत्थि-वावी-दीहियगुंजा लिय- सरसर पंतिय-साग-बिल पंतिय-खादिय-नदी-सर-तलाग-वप्पिणी-फुल्लुप्पल-पडम-परिमंडियाभिरामे, अण्णेग- सउणगण- मिहुणविच-रिए, वर मंडव-विविह-भवण-तोरण-चेतिय-देवकुल-सभ-प्यवा वसह-सुकय सयणासण-सीय-रह-सयड-जाण-जुग-संदण-नर नारिगणे य, सोम पडिरूवदरिसणिज्जे, अलंकितविभूसिते, पुण्वकयतवप्पभाव-सोहग्ग संपउत्ते, नड-नट्टग-जल्ल-मल्ल-गुट्ठिय-बेलंबग-कहक-पवग-लासग-आइ वखग-लंख-मंख-तण्हल्ल-तुंबवीणिय-तालायर पकरणाणि य बहुणि सुकरणाणि, अन्नेसु य एवमादिएसु रुवेसु मणुत्तभइएसु न तेसु समणेण सज्जियन्वं, न रज्जियन्वं, जाव न सइंच महंच तत्थकुज्जा । पुणरवि चक्खि दिण्ण पासियरूवाइं अमणुत्तपावकाइं, किंते ?-गंडि-कोटिक-कुणि-उदरि कल्लुल्ल-पइल्ल-कुज्ज-पंगुल-दामण-अविल्लग-एगचकवु-विणिहय-सप्पि-

सन्नग-बाहिरोग-पीलियं, विगथाणि य मयक फलेष्वराणि, सक्रिमिण कुहियं
च दध्यरासि, अन्नेसु य एवमादिषु अमणुष पावतेषु न तेसु समयेण रू-
सियध्वं, जाव न वृगु छावतिपावि सन्मा उप्पातेउ । एवं चदिखदिय
मावणा-मावितो मवति अंतरप्पा जाव चरेज्ज धम्मं ॥ २ ॥

सतियं धादिदिण्ण अग्वाइय-गंधाति मणुष भइगाइ, किते !-प्रलप
धलप-सरस-पुष्प-फल-पाख-मोयण-कुट्ट-तगर-पत्त चौय-दमखक -मरुम-
एलारस-पिक्कमसि-गोसीस-मरसचदण-फप्पूर-सर्वग-अगर-दु कुम-
कयकोल उसीर-सेय चंदण-सुगव-सारंग-शुचि-वर धूववासे, उउय पिंठि-
म खिहारिम-गाधिणसु अन्नेसु य एवमादिषु गंधेसु मणुष-भइणसु-न तेसु
समयेण सज्जियध्वं, जाव न सति च मइ च वत्थइज्जा । पुणरवि धादिदि-
ण्ण अग्वाति य गंधाणि अमणुष पायकाइ । किते ! अहिमड अस्तमड
इतिमड-गोमड-विग सुखग-सियाल-मणुय-मज्जार-सीइ दीविय-मय-
कुहिय-विण्ण-किविण बहुदुरमि-गंधेसु अन्नेसु य एवमादिषु गंधेसु अम-
णुष-पापणसु न तेसु समयेण रूसियध्वं, जाव पणि द्विय-पविदिण चरेज्ज
धम्मं ॥ ३ ॥

चउरय जिन्मिदिण्ण साइय रसाणि उ मणुषमइकाइ, किते !-उग्गा-
दिम विदिह-पाख मायण-गुलकय-खड कय तेसु पयकय-मज्जनु बहुविहेसु
जयणरस-मंजुतेसु महु-मंस-महुप्पगार मज्जिय-निट्ठाखग दालियंय सइय
दुद-दहि-सरय इज्ज-वर वाकणी-सीइ-काविसायण-सायहारय-धुप्पगारेसु
मायणसु य मणुष-दण-गंध-रम फास-बहु दध्व-संमितसु अन्नेसु य एवमा-
दिणसु रमसु, मणुष-भइणसु न तेसु समयेण सज्जियध्वं, जाव न सइ च मइ
च तइय इज्जा । पुणरवि जिन्मिदिण्ण साधिय रमाति अमणुषादगाइ,
दिन !-अरम दिरम-मीय-मुक्क मज्जिय-पाण-मोयणाइ, दुग्गीण शइय

कुट्टि-पूड्य-अमणुज-विण्ढ-पड्य-बहुदुःखमंगंधियाहं, तित्त-कडुय-कसाय-
अविल रस-लिडनीरसाहं, अन्नेसु य एवमाइरसु रसेसु अमणुज-पावएसु न
तेसु सगणेषु रुसियन्वं, जावचरेज्जधम्मं ॥ ४ ॥

छाया-“द्वितीयं चक्षुरिन्द्रियेण दृष्ट्वा रूपाणि मनोज्ञानि भद्रकाणि सचित्ताऽ
चित्त-मिश्रकाणि काष्ठे पुस्तके च चित्रवर्मणि, लेप्यवर्मणि, शैले च दन्तवर्मणि पञ्च
मिवर्णैस्तेन सत्त्वान-सत्त्वितानि, प्रन्थिम-वेष्टिमूर्ति-सघातिमानि च माल्यानि
बहुनिधानि, चाधिकं नयनमन सुखकराणि घनखण्डान् पर्वताश्च ग्रामाऽऽकर-नग-
राणि च, कुट्टिका-पुष्करणी-वापी-दीर्घिका-गुञ्जालिका-सरः-सरपक्विका-सागर
विला पक्विका-सातिका-नदी-सरस्तटाक-वप्रिणी-कुञ्जोत्पल-पद्मपरिमण्डिताऽभि
रमाणि, अनेक-शकुनगण-मिथुन धिरचितान्, वरमण्डप-विविध-भवन-तोरण
चैत्य-वेवकुज-सभा-प्रपाऽवसथ-शयनाऽऽसन शिविका-रथ-शकट-यान-युग्य-त्य-
म्बुन-नरनारीगणाश्च दर्शनीयान्, अलकृत-त्रिमूर्षितान्, पूर्वकृत-तप-प्रभाव-सौ-
भाग्य-सम्प्राप्तान्, नट-नर्तक-जङ्गल-मञ्ज-मौष्टिक-विडम्बक-कथक-प्लवक-लासका
ऽऽख्यायक-काल-मंस-तृणहृज-तुल्यधीणिक-तालाचर-प्रकरणानि च बहूनि सुक-
रणानि, अन्त्येपु चैवमादिवेषु रूपेषु मनोज्ञभद्रकेषु न तेषु श्रमणेन सञ्जितव्यं, न
रत्तवर्णं, यावन्न स्मृतिश्च मतिश्च तत्र कुर्यात् । पुनरपि चक्षुरिन्द्रियेण दृष्ट्वा रूपाणि-
अमनोज्ञपापकानि, कानि चानि ?-गरिड-कुट्टि-कुण्डुदरि-रुचकुल-कण्डूतिमच्छ-ली
पद-कुलज-पगु धामनान्यकैरुचकु-दिनिहतात्त-सर्पिशल्यक-व्याधिरोगपीडितानि,
विह्वलानि च मृतक कलेवराणि, रुक्मि-कुथित-द्रव्यराशिम् अन्त्येपु चैवमादिकेष्व
मनोज्ञपापकेषु न तेषु श्रमणेन रोषितव्यं, यावन्न जुगु-सावृत्तिरपि लभ्योत्पादयितुम् ।
एव चक्षुरिन्द्रिय भावना-भाषितो भवत्यन्तरात्मा यावच्चरेद्धर्मम् ।

तृतीयं-प्राणैन्द्रियेणाप्रायगन्धान् मनोज्ञभद्रकान्, कास्तान् ?-जलज-स्थलज-
सरस पुष्प-फल-पान-भोजन-कुष्ठ-तगर-पत्र-त्वक्-दमनक-मरुकैलारस-पक्वमा-
सी-गोशीर्ष-सरस चन्दन-कर्पूर-लवङ्गागरु-कुङ्कुम-वङ्गोलौरीर-श्वेत चन्दन-
सुगन्ध-सारङ्ग-युक्ति-वर धूपवासान् ऋगुज-पिशिडम-निर्हारिम-गान्धिकेषु अन्त्येपु
चैवमादिकेषु गन्धेषु मनोज्ञभद्रकेषु न तेषु श्रमणेन सञ्जितव्यं, यावन्न स्मृति च मति च
तत्र कुर्यात् । पुनरपि प्राणैन्द्रियेण आप्राय गन्धान् अमनोज्ञ पापकान्, कास्तान् ?
१ अदिपूताऽधम-दरितमृज-गोमृज-गुरु-शुनक-शृगाव-मनुज-मार्जार-सिंह-दीपिक

मृग-कुचि-विनष्ट-रुमि-बहुदुरभिगच्छेपु अन्येषु चैवमादिकेषु गच्छेपु अमनोऽपपाप
केषु न तेषु अमणेन रोपितकर्म, यावत् प्रणिहित-पर्यवेन्द्रियमरेदमम् ॥ ३ ॥

चतुर्य-विह्वेन्द्रियेण स्वाश्रयित्वा रसांस्तु मनोऽमद्रकाम्, कांस्तान् ?-अवगा
हिम-विधिष-पान भोजन-गुहकृत-सखकृत-तैलपूत-कृतमप्येषु बहुविधेषु, लवण
रससंयुक्तेषु मधु-मांस-बहुप्रकार-समिश्रक-निष्ठानक-वायिकाग्न, सेन्धाम्ना, दुग्ध
दधि-सरस-मध-यर पाठली-सीसु-कापिशायन-शाकाष्टादि-बहुप्रकारेषु-भोज
नेषु च, मनोऽप्यर्थ-गंध रस-स्पर्श बहुद्रव्य संयुक्तेषु, अन्येषु चैव मादिकेषु
रसेषु मनोऽमद्रकेषु न तेषु अमणेन सञ्चितकर्म, यावत् न स्मृते च मति च तत्र
कुर्मन् । पुनरपि विह्वेन्द्रियेण स्वाश्रयित्वा रसान् मनोऽपपापकाम्, कांस्तान् ? अरस
विरस-शीत-ठण्ड-निर्याप्यपान-भोजनानि, बोपास-कषापस-कुपित-पूतिकाऽमनोऽ
विनष्टप्रसूत-बहुदुरभिगच्छान्, तिष्ठ-कटुक-कषाषाम्ना-रस-तिन्त्रनीरसान्, अन्येषु
चैवमादिकेषु रसेषु अमनोऽपपापेषु न तेषु अमणेन रोपितकर्म यावत्पर्यवेदमम् ॥ ४ ॥

अन्य० (मितित्वं) बूसरी भावना-बहुविध संवद रूप जैते- (चक्रिहृदि
एष) बहु इन्द्रिय से, मणुभाई) मनोऽ (मदकाई) सुन्दर-शुभ (सविताऽपि
च-मीसकाई) सचित्त, अचित्त तथा मिश्र द्रव्य-सम्बन्धी (रुवाधि) रूपों को
(पासिय) दण्डकर, जो रूप- (चट्टे, पोत) काष्ठ के पट्टिया पर, पक्ष पर (य)
और (चित्तकर्म) चित्रकर्म में (क्षपकर्म) गोबर मिट्टी आदि के तप से बनाये
हुए लप्यकर्म में (सप्त य) पत्थर पर और (वृत्तकर्म) वृत्त की फोरखी में (पंच
हिं पक्षसिं अथग संठाण संठियाइ) पांचपक्ष में युक्त व अथक प्रकार के आकार
बाल (गंधिम) गूँबकर माला की तरह बनाए हुए (बह्मि-पूरिम-समाठिमाणि)
पटिम-वहन न बनाये हुए, पूरिम-विपक्षी आदि भरकर बनाये गये, तथा संभा
तिम-पूत आदि को एक दूसरे से मिश्रकर उनके समूह से बनाये हुए (य) और
(मज्जाणि बहुविधाणि च) बहुत प्रकार के मात्स्य-माला सम्बन्धी रूप, और (अ
दियं नयण-मण-गुहकाइ) नभ व मनको अधिक गुरका (यणगहि) बनसंड
(पध्वत) वर्षत और (गामागर-नवराणि) ग्राम, आकर तथा नगरों को (य)
थिर (मुदिप-पुष्परिधि-बायो-दीदिय-गु जालिय-सर-रारवनिय-सागर-विज
पतिप-रादिय-मही-सर-तलाग-बधिया-पुन्दुपन-पउम-परिमदियाभिरामे)
चुटिका-उज्जाइ, पुष्करणी-कमलपुल बागी, बागी-चौकीय बागडो, रीसिहा-सम्बी,

गुंजालिका-वक्रसारणी, सरः सरः पक्ति-परस्पर पानी के सम्बन्ध वाले अनेक सरोवरो की पक्ति, सागर-समुद्र, विलपक्ति-कूपश्रेणि या लोह आदि की खान में खांदे हुए खड्डों की श्रेणि, खातिका-स्वार्द, नदी, सर-थिना खोदे सहज बना हुआ जलाशय, तडान-तालाव, और वणिणी-कंदार-पानी की क्यारी विकसित नीलोत्पल तथा सामान्य कमलों से मण्डित एवं जो रक्षणीय हैं (अखेग-सदण गण-मिहुण-विचरिण) अनेक प्रकार के पक्षि समूह के मिथुन-जोड़े की गमना-गमन क्रिया से युक्त (घरमंडय-विपिह भवण-तोरण-चैतय-देवकुल-सभ-पचा-घसह-सुकय-सयणासण-सीय-रह-सवह-जाण-जुग-सदण-नर-नारिगणे) उत्तम मण्डप, अनेक प्रकार के भव्य भवन, तोरण, चैत्य-चितास्थान पर बने हुए स्मारक, देवकुल-देवालय, सभा-लोकों के बैठने का स्थान, प्रपा-प्याऊ, आवसथ-परिव्राजकों का आश्रम, सजाए हुए शयन-पलंग आदि, आसन-सिंहासन आदि, शिबिका-ऊपर से ढकी हुई पालखी, रथ, गाड़ी, यान और युग्म-कुछ विशेषता वाले वाहन, स्यन्दन-घुषल्दार रथ या सांप्राप्तिकरथ, और स्त्री पुरुषों का समूह (सौम-पडिरुव हरिसणिज्जे) जो सौम्य-प्रत्येक दर्शक के अनुकूल रूपवाले और दर्शनीय हैं (अलकित-विभूषिते) भूषणों से अलंकृत और वस्त्र आदि से विभूषित हैं। पुष्पकय-तवप्पभाव-सोहमा-सपत्ति) पूर्व जन्म में की हुई तपस्या के भभाव से प्राप्त सौभाग्य वाले (नह-नट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिय-बेत्तवग-रुहक-पवग-लासग-आइक्खग-लख-मंख-तूण इल्ल-तुव वीखिय-तालावर-पकरणाणि य) और नट, नर्तक, जल्ल, मल्ल, मौष्टिक, विदूषक, कथा वाचक, प्लवक, रास कथक, घातार्त बहने वाला, चित्र पट लेकर घूमने वाला, वास पर नाचने वाला, तथा तूण इल्ल, तुंबवी-खिक और तालचर इनके विविध प्रयोग (बहुणि सुकरणाणि) बहुत से सुन्दर कार्यों को, देखकर आसक्त नहीं होना चाहिए। अन्नेसु य एवमादिणसु खवेसु मणुज्ज भदणसु) और इस प्रकार के अन्य ऐसे मनोज्ञ व भद्ररूपों में (न तेसु समणेणसज्जियन्व) साधु को उन पूर्वोक्त शब्दों में तल्लीन नहीं होना चाहिए (नरजियन्व न राग करना चाहिए (जाव न सईच, मइच तत्थ कुज्जा) यावत् स्मृति और मति-विचार भी उनमें नहीं करना चाहिए (पुणरवि) फिर भी चतुरिन्द्रिय विषय को कहते हैं- (चर्किखदिण) चतुर् इन्द्रिय से (अमणुज-पावकाइ) असमोज्ञ व पापकारी (पामिय रुवाड) रूपों को देखकर रोष आदि नहीं करना, (किंते ? कौन से वे अम-

नोक्त रूप है ? (गण्डि-होदिह-कुक्षि-उदरि-कण्ठुल्ल-पक्ष-कुत्र-पंगुल-वामस्य
अधिलग्न-एगवक्तु-विशिष्ट-सर्पि-सङ्ग-वादि-रोग-पीडित्य) नात पित्त कफ
और सन्निपात से होने वाले गंधोगे वाला-गंधमासायुक्त, कुष्ठ-अठारह प्रकार के
कुष्ठ रोग वाला, कुक्षि-गर्भ रोग से जिसका एक हाथ और एक पैर छोटा है, उदरी
बजोहर मुक्त कण्ठुल्ल-सूत्राली के रोग वाला, पक्ष-रक्षीपद रोग वाला, कुत्र-कुत्र
पंगुल-पंगु-बहुने में असमर्थ, वामन अरन्त छात शरीर वाला, अध-वन्मन्म,
एक वस्तु-काया, विनिहत वस्तु अन्न के बाद किसी प्रकार के आपात से अन्ना
या काया बना हा, सर्पि शक्यक पीठ के बलपर ससर के या लकड़ी के सहारे चलने
वाला, अधया गिराव की तरह कुछ यह से घटा हुआ तथा शूद्रादि शत्रुवाला
और व्याधि एवं रोग से पीडित, "नमें से किसी को गिराविय मरुत्सेयराशि)
और विकृत-विगटे हुए मृतक क कलेयों को (सन्निमित्त कुर्वित् य दम्बराशि)
कीड़ों से युक्त और सबे हुए द्रव्य राशि को देखकर (अन्नासु य प्यमानिप्सु अन्न
गुप्त पायतायतेसु) और इस प्रकार के अन्य अमनोद्य प पापघाती ओ रण हैं (न
तेसु समण्य स्वमिदमर्थ) उन सब अमनोद्य रूपों में नाशु को उत नहीं होता ब हिर
(आव न दुर्गुण्यतिग मि कम्मा उपातेत्) यापत् स्वपर की दुर्गुणावृत्ति-वृत्त्या
भी अन्न करने योग्य नहीं है । एवं कनिष्ठरिय भाषणा मारितो) इस प्रकार
वस्तु शिष्ट्य की भावना से युक्त (अंतरणा) अट-करण वाला मुनि (मरुति)
होता है (आव करोअ धम्म) यावत् गुण होकर धर्म का आचरण करे ॥ २ ॥

(तदित्यं) तीसरी भाषना—प्राणशिरसं संवर हन, जैसे- प्राणशिरस्य अग्रा
इय गंधाति मणुज-महगार् प्राण इन्द्रिय से मनाह व शुभ गंधों का सूचक
(त्वि ?) य सुगन्ध कौनसे है ?

उत्तर—(अङ्ग-अङ्ग-सरस पुष्प फल-पाण्य मोर्य कुट्ट-तगर-पत्र-चौर
हमस्य-क महर-एतारस-पिकर गति गोरीस-सरस चर्य-इन्द्र-तर्ग-अगर
कुट्टम-इन्द्रोक्त-उत्तीर-सेव चर्य सुगंध-सारंग-शुक्तिपर-भूयपासे) अङ्ग एवं
पत्र में अन्न होने वाले सरस फल, फल पान तथा भाजन कुट्ट-अत्युत्त, तगर,
पत्र-समाप्तपत्र आर-सुगन्धी तथा नमन-पुष्प विशाग, मरु-मरुमा, एतारस
इत्यादी का रस विशदमसी-पफा हुआ माली नामक गन्ध द्रव्य, गार्शीर्ष नामक
धरस अन्न कपूर, लवण-शुग अमर सुशुभ चर्य-गालाकार सुगन्धि पत्र

उशीर-वीरशी घनरपति के मूल, श्वेत चन्दन, श्री खण्ड, अथवा श्वेद-
सुगन्धिरस और मलयगिरी, तथा सुगन्धि युक्त प्रधान अङ्गो के योग
घाला उत्तम धूप वाम (उडय- पिडिम- शिहारिमि- गंधिण्सु) जो ऋतु के
अनुकूल-पिण्डमय और वायु से उड़ने वाले गन्ध से सुगन्धि युक्त है
(अन्तेसु य एवमादिसु गंधेसु मण्डुजभद्रासु) और इस प्रकार के अन्य मनोज्ञ
तथा भद्र गंधों में (न तेसु समयेण सज्जियव्यं) इनमें साधु को आसक्त नहीं होना
चाहिए (जाय सतिच भद्रं च तत्त्व कुञ्जा) यावत् वहां-उन सुगन्धिओं में स्मृति व
विचार भी नहीं करना चाहिये (पुणरपि) फिर भी घ्राणेन्द्रिय के विषय को कहते
हैं-(घ्राणिदिएण अग्घातिथ गघाणि अमणुज-पावकाई) घ्राणेन्द्रिय से अमनोज्ञ
और बुरे गन्धद्रव्यों को सूँघकर (किते ?) कौन से वे दुर्गन्धिद्रव्य ? ।

उत्तर-(अहिमड- अरसमड- हत्थिमड- गोमड- विग-सुणग-सियाल-मणुय-
मज्जार-सीह-दीविय-मय-कुहिय-विणट्ट-किविण-वहुदुरभिगधेसु) सर्प का कलेवर
घोड़े का कलेवर, हाथी का मूत्रक, गौ का कलेवर, वृक, वशाग्र, कुत्ता, शृगाल,
मनुष्य, मार्जार-शिक्री, सिंह और चित्ता, इन सबके कलेवर जो सड़े हुए, पूर्ण
आकार से नष्ट तथा फीड़े युक्त हैं और अत्यन्त दुर्गन्धि वाले हैं (अन्तेसु य एवमा-
दिएसु गंधेसु अमणुज पावएसु) और इस प्रकार के अन्य ऐसे अमनोज्ञ गंधों में
(न तेसु समयेण रुमियव्व उन अशुभ गन्धों में साधु को रुष्ट नहीं होना चाहिए ।
(जाय पण्हिय-पचिदिए चरेज्ज धम्म) यावत् पाचो इन्द्रियों से संयम युक्त मुनि
धर्म का आचरण करे ॥ ३ ॥

(चउत्थं) चौथी भावना-रसनेन्द्रिय सवर रूप, जैसे-जिर्विभिदिएण साइय
रसाणि उ मणुज-भद्रकाई) जिह्वा इन्द्रिय से मनोज्ञ व सुन्दर रसों का आस्वाद
करके 'आसक्त नहीं होना' (किते ?) वे मनोज्ञ रस कौन से हैं ?

उत्तर-(उग्गाहिम- विविह- पाण- भोगण- गुतकय- खडकय- तेज्ज-धय-कथ
भक्खेसु) घी व तेल आदि में डुबा कर पकाये गये पकान्न-खाजे आदि, अनेक
प्रकार के पानक-द्राक्षापान आदि और भोजन, गुड़ या सफर के बनाये हुए, तेल
अथवा घी के बने हुए मालपूआ आदि पदार्थों में (बहुविहेसु लदण रस-सजुत्तेसु)
जो अनेक प्रकार के लवण रस से संयुक्त हैं । (मद्ध-भस-बहुप्पागार-मज्जिय-
निट्ठाणग-दालियंब-सेहंब-दुद्ध-दहि-सरय-भज्ज-वर वारुणी-सीहुका-बिसायण-

सापट्टारस बहुप्यगारेसु) मधु, मांस अनेक प्रकार की मक्खिका, निष्ठानक-अधिक मूत्र्य स बना हुआ, शालिकाम्भ-सूत्री वाला, सैम्बाम्भ-परार्थ समिभस्य स जट्टे निसे पाये रायता आदि, दूध, दही, सरस, गुड़ और घातकी से बना हुआ मधु, उत्तम बारुखी और सीधु का तथा पीशायन-एक प्रकार की महिरा, तथा अठारह प्रकार के शाक वाला पेसे अनेक प्रकार के (मण्डुल-बल्ल-गंध-रस-फास-बहुद्वय-संमितेसु भोयसु) मनोह्य धर्ण मन्ध, रस और स्पर्श युक्त अनेक द्रव्यों से बने हुए मोहनो में (अन्तेसु य दधमाणिषु रसेसु मण्डुल मण्डसु) और इस प्रकार के अन्य पसे मनोह्य सुन्दर रसों में (नतसु समषेय सन्धियस्य) उन शुभ रसों में साधु को आसक्ति नहीं करनी चाहिए (जाव न सईच सईच तस्य कुम्भा) यावत् स्मृति व बुद्धि भी जैसे भाजन में नहीं करना (पुणरपि) फिर भी जिह्वा इन्द्रिय के विषय को कहते हैं- (जिग्मिषिषु साधिय रसाति अमणुज-पायगाई) जिह्वेन्द्रिय से अम मोह व भुरे रसों का आस्वाद करके (किते ?) व अशुभ कौन से ?

उत्तर- (अरस-विरस-सिय-गुवस-खिम्ब-प-पाय भोयगाई) रस से रहित-रिग आदि स असत्कृत-विरस पुराना होने से विरस, शीत ठीक, सूखे और निर्यह करन में असमम पान मोहन को (दासीख-यात्र बुद्धिय-गुह्य अमणुज पिण्ड पत्न बहु दुष्मिगंधियाई) रात के दासी, व्यापन-रग बहस हुए, सके हुए तथा अपवित्र ज्ञान से जो अमनोह्य व अत्यन्त विद्वत दया को प्राप्त हैं, अथवा उनसे अन्य बहुत दुर्गन्ध वाले हैं (विन्न-कडुय-कसाय-अपिल रस, लिङ्गीरसाई) शीता, कटु-कडुआ, कपायला लहू, सिन्दूर-शेबाल रसित पुराने जल की तरह और नीरस पदार्थों को (अन्तेसु य दधमाणिषु रसेसु अमणुज-पायसु) और इस प्रकार के अन्य पसे अशुभ रसों में (न तेसु समणय रसियस्य) उन अशुभ रसों में साधु को रुच नहीं होना चाहिए (जाव चरेयम धम्म) यावत् इन्द्रियों से शुभ होकर धर्म का आचरण करता चाहिये ॥ ४ ॥

मूल-“ पंचमगं-कामिदिण्य फासिय फासाइ मणुअमण्डफाई, किते?-
दग-मंडय-हार-सय चंदय-सीयल-विमलजल-विचिह कसुम-सत्पर-
ओसीर-मुत्तिय-गुणास-दोसिणा-पेणुय-उक्खेदग-सासिपंट- वीयखग-
वणिपगुइ-भीपसे य पपये, गिम्हफासे सुइफासाणि य बहसि सयसाधि

आसणाणि य पाउरणमुखेय सिसिर काले अंगार-पतावणा य आयव-
 निद्र-मउय-सीय-उसिण-लहुया यजे उदु सुहफासा, अंगरुह निव्युहकरा
 ते, अन्नेसु य एवमादित्तुसु फासेसु मणुन भइएसु न-तेसु समणेण सजियव्वं,
 न रजियव्वं, न गिज्झियव्वं, न मुज्झियव्वं, न विणिग्घायं आवजियव्वं,
 न लुभियव्वं, न, अज्झोव वज्जियव्वं, न तूसियव्वं, न हसियव्वं, न सत्तिच
 मत्तिच तत्थकुज्जा । पुणरवि-फासिदिएण फासिय फासार्ति अमणुन पाव
 काडं, किंते?-अणेगवध-बंध-तालखंकण-अतिभारारोवणए, अंग भंजण-
 सूईनख-प्पवेस-गायपच्छण- लक्खारस-खार-तेल्ल- कलकलंत-तउअ-
 सीसक-फाललोह-सिंचण-हडिबंधण-रज्जुनिगल-संकल-इत्थंडुय-कुंभि
 पाक-दहण-सीहपुच्छण-उव्वंधण-सुलभेय-गयचलण-मलण- करचरण-
 कन्न-नासोड्ड-सीसछेयण-जिम्भंच्छण-वसण-नयण-हियय-दंत- भंजण-
 जोत्त-लय-कसप्पहार-पाद-परिह-जाणु-पत्थरनिवाय- पीलण- कवि-
 कच्छु-अगणि-विच्छुयडक-त्रायातव-दंस-मसक निवाते, दृष्टुण्णिसेज्जदुनि
 सीहिय-दुग्धि-कक्खड-गुरु-सीय-उसिण-लुक्खेसु, बहुविहेसु अन्नेसु य एव-
 माइएसु फासेसु अमणुन पावकेसु न तेसु समणेण रूसियव्वं, न हीलियव्वं,
 न निदिअव्वं, न गरहियव्वं, न खिसियव्वं, न छिंदियव्वं, न भिदियव्वं, न
 वहेयव्वं, न दुग्गुल्लावत्थियं च लब्भा. उप्पाएउं । एवं फासिदिय भावणा
 भावितो भवति अतरप्पा मणुनामणुन-सुग्धि-दुग्धि-राग-दोस-परिहियप्पा
 साहु, मण-वयण-कायगुचे संबुडे पणिहित्तिदिए चरिज्ज धम्मं ॥ ५ ॥

एवमिदं संवरस्त दारं सम्मं संवरियं होइ सुप्पणिदियं इमेहि
 पंचहि वि. कारयेहि मण-वय-काय-परिविख एहि निच्चं आमरणंतं च एस.
 जोगो नेयव्वो, धितिमया मतिमया अणासवो अकलुसो अच्छिदो अपरिस्तावी
 असंकिलिडो सुद्धो सव्व-जिणमणुज्जातो । एवं पंचमं संवरदारं फासियं

स्वामनोद्वाऽमनोद्वा-सुरभि-दुरभि रागद्वेष-प्रणिहित्वात्मा साधुर्मनोवचन-कायगुप्तः
 संवृत. प्रणिहितश्चरेद्धर्मम् । एवमिदं संवरस्य द्वारं सम्पन्नं संवृतं भवति सुप्रणिहित-
 म् । एभिः पञ्चभिरपिकारणैर्मनो-वचन-काय परिरक्षितैर्नित्यमामरणान्तं चैव
 योगो नेतव्यो, धृतिमता मतिमताऽनासन्नबोऽक्लृपोऽच्छिद्रोऽपरिस्त्रावी असक्लिष्टः
 शुद्धः सर्वजितैरनुज्ञातः । एवं पञ्चमं संवरद्वारं स्पष्टं, पालितं, शोधितं, तीर्णं कीर्तितं
 मनुपालितमाह्वयाऽऽराधितं, भवति । एवं ज्ञातं मुनिना भगवता प्रहस्यं प्ररूपितं
 प्रसिद्धं सिद्धं सिद्धवर शासनमिदमाह्वयं, सुदेशितं, प्रशस्तं, पञ्चमं द्वारं समाप्तमित्यहं
 ब्रवीमि । एतानि व्रतानि पञ्चापि सुव्रत-महाव्रतानि हेतुशत-विचित्र-पुष्कलानि
 कथितानि अर्हच्छासने पञ्चसमासेन संवराः, विस्तरेण तु पञ्चविंशत् समित-सहित-
 संवृतः, सदा यतना-घटना-सुविशुद्ध-दर्शनः, एतेनाऽनुचर्यः संयतश्चरमशरीरघरो
 भविष्यतीति । सू० १।२६

अन्व०-“(पंचमगं) पांचवी भावना-स्पर्श-इन्द्रिय-संवररूप-(फासिदियण
 फासिय फासाई मणुन्नभदकःई) स्पर्श इन्द्रिय से मनोह्र य सुन्दर स्पर्शों को छूकर,
 (किसे ?) वे मनोह्र स्पर्श कौनसे हैं ?

उत्तर-(दगमडव-हार-सेयचंदण-सीयल-विमलजल-धिविह कुसुम-सत्थर-ओ
 सीर-मुत्तिय-मुणाल-दोसिणा-पेहुण-उक्खेवग-तालियंट-विद्यणग-जणियसुहसीय
 लेय पवणे) उद्क मरुप-जलमरुप, मरने वाले मरुप, उद्कहार, श्वेतचन्दन-श्री
 खण्ड, शीतल और निर्मल पानी, अनेक प्रकार के फूलों के विस्तर, ओशीर-धीरेण
 का मूल, मोती, पद्मनाल, चन्द्र की चादनी, मोर पिच्छी का उत्क्षेप, तल्लुप्त-पंखा
 , और बीजना, इनसे की गई सुखकारी और शीतल हवा को (गिम्ह काले / प्रीति
 कालमें) (सुहफासाणि य बहूणि सयणाणि आसणाणिय) तथा सुख दायक स्पर्श
 , वाले बहुत से शयन-शय्या और आसनों को फिर (पावरण-गुणे य सिसिरकाले)
 प्रावरण गुण वाले वस्त्रादि को शीतकाल में (अगार-पत्तावणा य) और अग्नि से
 , देह को तपाना (आयव-निद्ध-मज्ज-सीय-उसिण-लहुया य) धूप, स्निग्ध-तेल
 आदि पदार्थ, कोमल और ठंडे, गर्म तथा हल्के (जे उदुसुहफासा) जो अतु के
 अनुकूल सुखस्पर्श (अगसुह-निव्वुडकरा) शरीर सुख और मनको न्वस्थ करने
 , वाले हैं (ते) वे स्पर्श (अन्नेसु य एवमादितेसु फासेसु मणुन्न भदएसु) और इस
 , प्रकार के अन्य ऐसे मनोह्र य शुभ स्पर्शों में (नत्तेसु समणेण सज्जियठ्वं) उन्न शुभ

स्पर्शों में साधु को आसक्ति नहीं करनी चाहिए, (न रश्मिपञ्च) राग नहीं करना चाहिए (न गिरिमयञ्च) गृहि-अप्राप्त की इच्छा भी नहीं करनी चाहिए, (न मुग्धपञ्च) न वे मान होकर मोह करना चाहिए, (न निश्चिन्ताय अपरिच्छिन्नपञ्च) न स्व पर का नारा ही करना चाहिए (न क्षुमिपञ्च) न शोभ करना चाहिए (न अश्लेष पञ्चपञ्च) तत्प्रीति भित्त बाधा नहीं होना चाहिए (न तृप्तिपञ्च) न स्वमें सन्तुष्ट होना चाहिए (न हसिपञ्च) न हसना चाहिए (न सति य प्रति य तत्पञ्च) स्मृति और वहाँ-वस विषयमें-विचार भी नहीं करना चाहिए (पुणरवि) फिर भी स्पर्शोन्मुख के विषय को कहते हैं—(फासिदिपण फासिप फासार्ति अमणुज पावकाई) स्पर्श इन्द्रिय से अमनोह व अमणुम स्पर्शों को कहकर (किते ?) वे अमणुम स्पर्श कौनसे ?

बचर—(अयग-वय-वय-नाकय-कय-अतिमात्रोदयण) अनन्त प्रकार का वय-नारा, छोरी आदि का बन्धन साधन-वपेटा आदि का प्रहार देना, अङ्गन-तपी हुई शलाका आदि से निराज्ञ करना, और अधिक भार छाड़ना (अगमज्जन-सूती-नक्ष-त्वेष गाय पञ्चदश-राजकारण-कार-सेत-कस्तकस्त-दृश्य-सीसक-काक लोह-सिचय-इतिवधय-रम्भु निगल-संकल-इत्युदु य-कुमिपाक-इहय-सीह पुञ्चय-वर्धय-सूतमे-गय चलय-मलय-कर-वरण कल-नासोट-सीस वेवय-विष्मदय-वसय-नयय विषय-इत मयय-ओच-लय-कसपहार-पाद परिह-छाणु-परवर-निवाय-पीलय-कवि कञ्चु-अगणि-विष्णुय उच-वायातव-ईस असग-निवाते) अग ठोकना शरीर में घुँसे या फल भोक्ता गात्र का मद्ययन याने हीन होमा, काल का रस कार सैक सदा अत्यन्त सपने के कारण कल कल करते हुए सीसा या काले लोह से लह को सीधना यान ४५५ लाकारा आदि शरीर पर डालना, काष्ठ के कोड़े में बाँधना छोरी के निगल बन्धनों से समेटना और इस्तान्मुक से बाँधना, कुम्भि में पकाला अग्नि से अलाना, पूज ठोकना, बाँधकर ऊपर से लटकाना धूल से पिरोना हाथी के पैर नीचे डवाना, अथवा मलना, हाथ, पैर, कान, नाक, ओष्ठ और शिर में धँस करना, जिह्वा को जीभ कर निकालना, अङ्ग कोश, नेत्र इहय और दाँत या आँस को मोड़ना, या ठोकना गाड़ीमें झूप्से ओड़ना, बेंत या बाबुल का प्रहार करना, पापपरिह-पैर की पड़ी, पुटमा सवा पत्थर को अङ्ग पर गिराना, पीडन-यन्त्र में पीडना, कपिकण्डू-वन्दर जैसे अरवञ्ज धुजली होना,

या खुजली करने वाले फल का छूना, और अग्नि आदि का स्पर्श, बिच्छू का डंक और वायु, धूप तथा ढास मच्छरों का अङ्ग पर गिरना (दुष्ट-एकसङ्ग-उनिशी हिय-दुद्धि-कञ्जखट-गुरु-सीय एसिण-लुक्खेसु) दुष्ट निपणा-बुरे आसन और अयोग्य स्वाव्यायभूमिमें तथा अशुभ गन्ध युक्त, कर्कश गुरु भारी और ठंढे, घण व रुच (बहु बिहेसु) बहुत प्रकार के स्पर्शों में (अन्नेसुय एव माहणसु फानेसु अमणुन्न-पावकेसु) और इस प्रकार के अन्य ऐसे अमनोज्ञ स्पर्शों में (न तेसु समणेषु रुसियव्व) उन अशुभ स्पर्शों में साधु को रुष्ट नहीं होना चाहिए न हीलियव्वं न निदियव्वं न गरुडियव्वं) न हीलना करनी चाहिए, न निन्दा करनी चाहिए, तथा न लोक समझ गहाँ करनी चाहिए, (न खिसियव्वं, न छिदियव्वं, न भिदियव्वं, न वहेयव्वं) खिसना नहीं करना चाहिए, अशुभ स्पर्श वाले द्रव्य का छेदन नहीं करना चाहिए, न उसका भेदन-दो भाग ही करना चाहिए, स्व पर का इनन नहीं करना चाहिए (न दुगुं छावत्तिर्यं च लब्भा सप्पाएव) और स्व पर की घृणा वृत्ति भी उत्पन्न करना योग्य नहीं है (एव फासिदिय भावणा भावितो) इस प्रकार स्पर्शेन्द्रिय सवर की भावना से युक्त (अंतरप्पा) अन्त करण वाला (मणुत्तामणुत्त-सुग्धि-दुद्धि-दाग दोस-पणि हियप्पा) मनोज्ञ व अमनोज्ञ-गन्धयुक्त, अच्छे या बुरे स्पर्शों से राग द्वेष का सगरण करने वाला (साहू साधु भण-ययण-कायगुत्तो) मन वचन एवं काय से गुप्त (भवति) होता है। (सवुडे पण्हित्तिदिय) सवर युक्त सत्येन्द्रिय मुनि (चरिज्जधम्मं) धर्म का आचरण करे ॥ ५ ॥

(एवमिण सवरस्स दारं सम्म संवरियं सुप्पखिदिय होह) इस प्रकार यह सवर का पंचमद्वार सम्मत् सवरण किया गया सुरक्षित होता है (इमेहि पंचहि विकार-शेहि मण-यय-काय-परिक्खिस्सपहि) मन वचन और काय के द्वारा सुरक्षित इन पाँचों कारणों से (निच्च आमरणंतं) सदा और मरण पर्यन्त (एसजोगो) यह प्रवृत्ति (धितिमया मतिमया) धृतिमान् और बुद्धिमान् को (नेयव्वो) ले चलना योग्य है याने पालने योग्य है (अणासवो अकलुप्पो अच्छिदो अपस्सावो असकिलिट्ठो सुद्धो सन्नज्जिण मणुत्तातो) आलस्य रहित, निर्मल, मिथ्यात्व आदि छिद्र रहित, अत-एव अपरिसावी, सकलेश रहित, शुद्ध तथा सर्व तीर्थङ्करोंसे अनुज्ञात है (एवं पंचम) इस प्रकार पांचवा (सवरदारं) संवरद्वार (फासियं, पालियं, सोदियं, तीरियं, पिट्ठियं, अणुपालियं, आणाए आराहियं भवति) शरीर से स्पर्श किया हुआ, पालन किया

हुआ, अतिथार इत्यादि शब्दों द्वारा किया हुआ, पूर्ण किया हुआ, यथन से कीर्तन किया हुआ, अनुपातित और तीर्थङ्करों की आज्ञा के अनुसार आराधित होता है (एवं नाथ-मुनिना भगवया पञ्चविधं) इस प्रकार-पूर्वोक्त रीति से ज्ञात मुनि भगवान् महावीर ने कहा है (पञ्चविधं) प्रत्यक्ष-श्रुति से समझाया है (पसिद्धं, सिद्धं, सिद्धपर साधनमिह) प्रसिद्ध, सिद्ध और अर्हत रूप भवस्थ सिद्धों का उत्तम शासन यह (व्यापविधं) कहा गया है (सुवसिधं) तीर्थङ्करों से अच्छी तरह उपदिष्ट और (पञ्चमं पञ्चम संवरधारं समत्तं, विधमि) प्रशस्त है सुधर्माचार्य-पञ्चम संवरधार पूर्ण हुआ ऐसा मैं कहता हूँ ॥

उपसंहार—(पञ्चाति वयाई पञ्चवि) पापोंको संवर रूप अथ (सुकथं ? महत्तव पाई) है सुव्रत ? महा व्रत हैं (होय सय-विधित-मुक्तडाई) निर्दोष या विविध सौकर्यों हेतुओं से विस्तीर्ण (अरिहत साधण) अर्हत्त्वों के शासन में (कहिमाई) बड़े गये हैं (पञ्च समासेण संवरं) संक्षेप से पांच संवर हैं । (वित्तरेणुव) विस्तार से तो (पयवीसति) प्रत्येक व्रत की भावनाओं को मिलाकर पचीस होते हैं, (समित्त-सहिय-सुखे) समितिओं से समित, पूर्वोक्त पचीस भावनाओं से सहित या ज्ञान ध्यान से पुष्ट और सुविहित कथान् आदि के संवर वाला, जो (सवा जयण-पढण-सुविदुद्वसण) सदा प्राप्त संयम योग में बल और अप्राप्त में प्रयत्न रूप घटना से अच्छी तरह निर्मल भन्ना वाला है (एव अणुवरिय-सबत्त धम्म सतीर धरे मयित्ततीति) इन पांच संवरों का आचरण करके वह साधु चरम शरीरी होगा अर्थात् संसार में फिर से शरीर धारण नहीं करेगा ॥ १२६ ॥

भाव-परिच्छिन्न विरमण व्रत की रक्षा के लिये भगवान् महावीर ने यह उत्तम प्रवचन कहा है, जो आत्महितकारी धायत्तव्य हुआ और पापों का उपशमन करने वाला है । इस अपरिमितरूप अमिथम व्रत की रक्षा के लिये ये पांच भावनायें हावी हैं, जैसे—

प्रथम भावना जोत्रेन्द्रिय संवररूप जिसमें कहा गया है कि प्रधान मूर्त आदि बाप और अनुपातित की तथा नष्ट आदि के लोभ प्रयोगों को एवं श्रियों के मन्त्रीर मेमता आदि के मधुर ध्वनि की श्रवण से गुणकर इनमें व इस प्रकार के अन्य श्रेष्ठ शक्तों में साधुको आसक्त नहीं होना चाहिये । राग, श्रुति, मूर्च्छा और इसके लिये स्वपर का नाश नहीं करना चाहिये । इनमें आम, मानसिक सुखी तथा हास्य भी

नहीं करना, और न मनसे उसका स्मरण और विचार ही करना चाहिये। ऐसे अप्रिय शब्दों को सुनकर द्वेष नहीं करे, जैसे गाली व रोने आदि के शब्द जो द्वेष व कष्टजनक हैं, ऐसे अन्य भी अमनोछ-बुरे शब्दों में साधु को रोष नहीं करना चाहिए, और न उन शब्दों की हीलना, निन्दा व खिसना करनी चाहिए। छेदन, भेदन व वधभी नहीं करे और उन शब्दों के ऊपर स्व पर की घृणा भी, उत्पन्न नहीं करे। इस प्रकार श्रोत्रेन्द्रिय सवरयुक्त अन्तःकरण वाला अच्छे बुरे शब्दों में राग द्वेष रहित तीनों गुणों से शुभ होता है। संवरवान्, जितेन्द्रिय मुनि इस प्रकार अपरिग्रह धर्मका आचरण करे।

दूसरी भावनामें-बलु-इन्द्रियसे सुन्दर सचित्त अचित्त और मिश्र इन तीनों रूपों को देखकर राग नहीं करना चाहिए। जो रूप काष्ठपर, वस्त्रपर तथा लेप्यकर्म या पत्थर व दांत की कोरणा में बनाये गए हैं, तथा पांच रंग से अनेक प्रकार के आकारमें बने हुए और गाढ़ ठेकर तथा चिपड़ी आदि भरकर बनाए गए, अनेक प्रकार के मांस और नेत्र व मनको प्रसन्न करने वाले हैं। वनखण्ड, पर्वत और प्राम आदि अनेक स्थानों को जो जल एव वनस्पति के कृता मण्डप आदि से सुशोभित तथा पत्तों समूह से सुशोभित हैं। ऐसे उत्तम प्रासाद आदि भव्य भवन और शयन, आसन और वाहन आदि को, तथा प्राप्त संचित तपस्या से सौभाग्यशाली स्त्री पुरुषों को तथा नट आदि के विविध खेल व प्रयोगों को और इस प्रकार के अन्य सुन्दर रूपों को देखकर मुनि को उनमें आसक्त नहीं होना चाहिए। यावत् मनमें भी उस विषय का विचार नहीं रखना चाहिए। शुभ रूपों की तरह अशुभ रूपों को देखकर द्वेष भी नहीं करना चाहिए। जैसे गलगण्ड आदि अनेक रोगग्रस्त को व मरे हुए कलेबरों को जो सड़ गया हो, जिसमें कीड़े पड़े हों ऐसे पदार्थों को देखकर मुनि को रोष नहीं करना चाहिए। यावत् दूसरी भावनासे युक्त होकर धर्मका आचरण करना चाहिए।

तीसरी भावनामें-नाकसे सुगन्धित पदार्थों को सूँघकर दर्प नहीं करना चाहिए। जैसे-जल-एव यलके अनेक प्रकार के फूल, जिनके परिमल हवासे दूर दूर तक फैल रहे हैं, ऐसे अन्य सुगन्धि वाले पदार्थों में भी मुनिको आसक्त नहीं होना चाहिए। यावत् उस विषय में विचार भी नहीं करना चाहिए। ऐसे सर्प आदि हन्यारह कलेवर जो सड़े हुए व अत्यन्त दुर्गन्ध वाले हैं। वैसी दुर्गन्ध को सूँघकर उनमें मुनि को द्वेष भी नहीं करना चाहिए, यावत् धर्मका आचरण करना चाहिए।

श्रीश्री भावनामें-रसनेन्द्रिय से अनेक रसों को चलाकर राग होव नहीं करना चाहिए। जैसे पी आदि में हुआकर बनाये गए विविध पान मात्रा तथा मसुर अनेक भक्षण पदार्थ जो लवण आदि रसों से संयुक्त हैं इस प्रकार अच्छे चर्करस गन्ध व स्पर्श वाले द्रव्यों से बने हुए भोजन में एवं अन्य सुन्दर रसों में साधु को आसक्त नहीं होना चाहिए, और मनमें विचार भी नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार नीरस, दृढ़ तथा बिकृत वृत्ता को प्राप्त ऐसे अन्य अशुभ पान भोजनों में साधु को रोग भी नहीं करना चाहिये, वायु पम का आवरण करना चाहिये।

पाँचवी भावना में-स्पर्श इन्द्रियों से विविध स्पर्शों को छूकर मुनि हर्ष नहीं करे। जैसे-मीन काज में फुरारे के मण्डप आदि से शीतल व सुलभासी वायु को तथा सुलभ स्पर्श वाले शान आसन आदि को पाकर तथा शीत काल में ठुराले आदि प्रावरण खोगड़ी का सेऊ, तथा सूर्य किरण के ताप आदि। देने बिहने व कोमल शब्दों के अनुकूल सुख स्पर्श जो शरीर व मन को प्रसन्न करने वाले हैं, उन इह स्पर्शों में साधु आसक्ति नहीं करे, वायु पनका विचार भी नहीं करे। फिर विरोधी स्पर्शों को छुट्ट मुनि रोग भी नहीं करे, वे विरोधी स्पर्श इस प्रकार हैं-अनेक प्रकार के वप, बन्धन साङ्ग व अतिमाद और अहों का मङ्ग, सुई मोरना आदि, तथा अयोग्य आसन वगैरह के स्पर्श होने वाले पटीपटों में साधु को बह नहीं होना चाहिए, वायु किसी के मन में उनके लिये पूया भी उत्पन्न नहीं करनी चाहिए। इस प्रकार स्पर्शेन्द्रिय संवर की भावना से मुक्त अन्तःकरण वाला अच्छे सुरे स्पर्शों में राग होव रहित व गुप्त होता है। इस प्रकार संवत्तन्द्रिय मुनि को अनुकूल प्रतिकूल स्पर्श मात्र में समभाव रहने हुए धर्म का आवरण करना चाहिए ॥ २ ॥

इस गच्छ संवर का यह पद्यमन्त्र सम्बद्ध मंत्राणां किंवा हुमा सुदृष्टिद्वारा। इन पाँच भावनाओं के साथ तीनों योग से धीरे मेधावी साधु को यह प्रवृत्ति सदा जोरत वर्जित रहनी चाहिए। क्योंकि यह संवर कम बन्धके कारणों का रोक्ने वाला एवं गन्ध लापट्टों में अनुज्ञान है। विधि पूरक यह पद्यमन्त्र संवरद्वारा देह में करसा गया शान्त अनुकूल रूप से पावन किंवा गरा लोचक्यों की आत्मा से आराधित होता है। वेना ज्ञान मुनि महावीर ने कहा व हेतु पूरक गम होता है। यह प्रमित मित्र मित्रि य मि - ३।

निगमन-द्वे सुव्रत ? ये पांचों महाव्रत निर्गोप या विचित्र सैकड़ों हेतुओं से विस्तार वाले अर्द्ध-शासन में बड़े गये हैं। संक्षेप से संवर पांच और विस्तार से भावनाओं को मिठाकर पचीस होते हैं। भावना रूप समिति वाला और ज्ञान दर्शन सदित जो सवरवान् मुनि सदा प्राप्त संश्रम योग में यतना और अप्राप्त में घटना करने से विशुद्ध श्रद्धा वाला है, वह इन पांच संवरों का पालन करके इस देह से समार वन्धन का छेदन कर मुक्त हो जाता है ॥ १ ॥ २६ ॥

मूल—“पण्डावागरणे खं एगो सुयक्खो, दस अज्झयणा, एकसरगा, दमसु चेव दिवसेसु उदिसिज्जंति, एगंतरेसु आर्यविलेसु निरुद्धेसु, आउत्तमच पाणएणं । अगं जहा आचारस्स । सू० १ । ३० ॥

पण्डावागरणं दसतं अगं सुचओ समत्तम् । ग्रन्थमानं १३००

छाया-प्रभवाकरणे एक. श्रुतस्कन्धो, दशाऽध्ययनानि, एकसरकाणि, दशसुचैव दिवसेषु-उदिरयन्ते, एकान्तरेषु-आर्यविलेषु निरुद्धेषु आयुक्तराजभोजनेनाऽऽहं यथाऽऽचारस्य । सू० १ । ३०।

॥ इति प्रभवाकरणाऽऽहं दशमाङ्गं छायातः समाप्तम् ॥

सूत्र परिचय और वाचना विधि-

अन्व०—(पण्डावागरणे) प्रभवाकरण नामक सूत्रमें एगो सुयक्खो) एक श्रुत स्कन्ध (दस अज्झयणा) दश अध्ययन (एक सरगा) समान शैली वाले हैं (दस सु चेव दिवसेसु) और दश ही दिनों में (एगंतरेसु आर्यविलेसु निरुद्धेसु) एकान्तर आर्यविलेयुक्त दिनों में (आउत्त-भत्त-पाणएण) उपयुक्त आहार पानी वाले साधु से (उदिसिज्जंति) इसके उद्देश क्रिये जाते हैं । (अगं जहा आचारस्स) अङ्ग जैसे आचाराङ्ग का वर्णन है, विशेष वैसा समझना चाहिये ॥ सू० १ । ३० ॥

इति प्रभवाकरणाख्य दशमाङ्गं समाप्तम् । ग्रन्थमात्रं १३०० ।

भाव-अन्त में सूत्र का परिचय और वाचन की विधि बड़ी गई है। प्रथम व्याकरण सूत्रके एक ही वृत्तस्वरूप तथा एकसरके द्वारा अध्ययन हैं। इसकी वाचना संन वाह साधु को एकान्तर आयम्बिक युक्त सपरया सं वरा दिनों में वाचना को पूर्ण करना चाहिए। आचार्यजी जैसे शेष ब्रह्म का वर्णन समझना चाहिए ॥ १ ॥ ३८ ॥

इति श्री प्रथम व्याकरण सूत्रस्य भाषा व्याख्या समाप्ता ।

अन्यान्त मङ्गलरूपा टीकावारोक्ति :

प्रथम व्याकरणमिदं नमनं धर्मं गमीदार्थकं
मद्वेयाऽऽर्तु-विषयुक्तवर्गवी ह्यङ्गनीतोपमम् ।
मक्तपाऽर्तु मति शक्ति युक्ति निवहात्रिकोऽप्यर्थापंभ्रमं
सन्त्वस्मात्परमेष्ठिनो मयि सदा पञ्चानुकम्पाश्रिता ।

ॐ समाप्तं पंचमं संतरदात्म ॐ

ॐ पञ्चमं मान्यार्थं पञ्चमं , —



श्री प्रश्नव्याकरणसूत्रम्

परिशिष्टम्

विशिष्टपदं दिप्पणानि

प्रश्न व्याकरण सूत्रगत पारिभाषिक शब्दानां विशेषनाम्नां च सूची



शब्द	अ	अर्थ
अकारको	-	अकर्ता
अकिरिथा	-	अक्रिया
अकिच्च	-	हिंसा का श्वा नाम
अगर	-	सुगन्धित द्रव्य विशेष
अगम्ग गामी	-	राहकी वहन आदि मे गमन करने वाला
अगार	-	घर
अगुत्ती	-	अगुप्ति-परिग्रह का २३वा भेद
अचक्षुसे	-	आंख से नहीं दिखने वाले
अच्छभक्त	-	रिच्छ-भालू
अज्मत्पज्माण	-	अध्यात्मध्यान
अजयक सेल	-	अजनक पर्वत
अटालग	-	अटालिका
अट्ट	-	आत
अट्ट बिह	-	आठ प्रकार
अट्टालग	-	अटारी
अट्टि	-	हड्डी
अंज	-	अण्डे से पैदा होने वाले
अणबल	-	कर्जदार
अणस्थको	-	अनर्थ करने वाला परिग्रह का २३वा भेद
अण्यो	-	" " "
अणजा	-	अनार्थ

शब्द	अर्थ
आयतण - -	आयतन-अहिंसा के ४७वां नाम
आयासो - -	खेद का कारण, परिग्रह का २४वां नाम
आयाण भंड निक्खेयणा समित्ते-आदान भाड मात्र निक्षेपना समिति वाला	
आडय कम्मस्सुवहवो	हिंसा का १२वां नाम
आरब - -	अरब देश
आराम - -	बगीचा
आवण - -	दुकान
आवत्त - -	एक सुर वाला जीव
आवसह - -	परिम्राजको का आश्रम
आसम - -	आश्रम
आसत्ती - -	आसक्ति
आसालिया - -	जीव विशेष

इ

इफडे - -	इफड जाति का घास
इक्खुगार - -	इषुकार पर्वत
इड्काड - -	इंटे
इड्ठि - -	अद्रि
इंद केतु - -	इन्द्र केतु
इंदिय - -	इन्द्रिया

ई

ईरियासमिते - -	ईर्या समिति मे युक्त
----------------	----------------------

उ

उखल - -	उखल
उच्छ - -	उच्छु-सांठा
उट - -	ऊट
उडुपत्ती - -	चन्द्रमा

शब्द	क	अर्थ
फफोल	- -	फल विशेष,
फसुर	- -	उस्तरा-केश काटने का अस्त्र
फकच	- -	करवत-लकड़ी चीरने का अस्त्र
फच्छभ	- -	फलुआ
फच्छभि	- -	वाय-घाजा विशेष
फच्छुल्ल	- -	खुजली के रोग वाला
फठिण्गं	- -	फठिण तृण विशेष
फडुय	- -	फलुआ
फडग मइणं	- -	कटक मईन-हिंसा का १५वां नाम
फणग	- -	सोना
फणग नियल	- -	सोने का बना गहना विशेष
फणक	- -	एक प्रकार का धाण
फण्ण	- -	कान
फन्दु	- -	लोही भुंजने का एक पात्र
फज्जालियं	- -	कन्या के सम्बन्धी झूठ
फप्पणि	- -	कैची
फपिजलक	- -	फपिजल पत्ती
फप्पूर	- -	कपूर
कमल	- -	कमल
कमडलु	- -	कुण्डी, कमण्डलु
कम्म	- -	रसायन शाला
करक	- -	करक पत्ती
करणाणि	- -	इन्द्रिया
करम	- -	ऊंट
करयल	- -	करतल
करयय	- -	करवत

शब्द	अर्थ
उत्पाय	— — सत्पात पर्वत
उद्	— — सद्वंश
उदरि	— — अलोदर
उद्वय्या	— — हिंसा का ६वां नाम
उद्रेस	— — उद्रेस
उन्मिब	— — भूमि को फोड़कर उत्पन्न होने वाला जीव
उन्माय	— — उन्मान-भापने का एक प्रकार
उन्मूलखा	— — उन्मूलना-हिंसा का २रा नाम
उरग	— — पेट के बल से चलने वाला सर्प विशेष
उमहिया	— — उगाड़ करने वाला उग
उपनयन्य	— — उपनयनमन्त्र
उपचयो	— — उपचय, परिग्रह का चतुर्थ नाम
उपवापिष	— — एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने वाले जीव
उपासक	— — उपासक
उपाण्डा	— — उता
उत्तम्रो	— — उत्तम-भाप की उत्पत्ति अहिंसा का ४२वां नाम
उत्तीर	— — उत्तीर-सुगन्धित द्रव्य
उत्तर	— — वृद्धा
ए	
एगवन्तु	— — काया
एगोदिए	— — एक इन्द्रिय वाला जीव
एकीमारा	— — अग एकजन के जिसे हिरणी लेकर फिरने वाला
एकारस	— — इलायची का रस
एमणा समिते	— — एमणा समिति युक्त
ओ	
ओदय	— — बाबल-भाप,
ओसाह	— — औषध,

शब्द	अर्थ
कीव	कीव, पक्षी
कुक्कड	मुर्गा
कुक्कुटाजनक	कोयले की आग
कुब्ज	घूबड़
कुटिल	कुटिल-टेढ़ा
कुपी	कर से हीन
कुदा	क्रोधी
कुम्भास	चढ़द
कुरर	कुरर पक्षी
कुरग	हिरण
कुलल	कुलल पक्षी
कुलक्व	कुलल पक्षी की एक जाति
कुलिगी	कुत्तीर्थी
कुलिय	खुला
कुली कोस	कुटी क्रोश पक्षी
कुवित साला	तृण आदि रखने का घर
कुल	कुश-तृण विशेष
कुसधयण	कमजोर, अस्थिर
कुसठिया	खराब आकार वाले
कुहण	कुहण देश
कुर्व	कुर्वी बनाने का तृण
कुडमाणी	मूठा माप करने वाले
कूरकम्मा	कूर कर्म करने वाले
कूव	कूआ
केकय	केकय देश
केवल नाखी	केवल ज्ञानी
केवलीय ठाय	केवलियों का स्थान अहिंसा का ३६ वां नाम
केसरिमुहविष्कारगा	सिंह का मुह फाटने वाले

शब्द	अर्थ
कलाय	— — सुनार
कलिफरदा	— — कलाह की पंटी, परिग्रह का १६वाँ नाम
कलाण	— — पञ्चाणकारी—अहिंसा का २६वाँ नाम
कलाव	— — गरदन का आभरण
कवाड	— — कपट
कवाड	— — खराब नगर
कवाड	— — कपाट केवाड
कवित	— — कवित पक्षी
कवौय	— — कपूतर
कम	— — कमल का पाशुक
कमाय	— — कपायसा
कहक	— — क्या करने वाला
काउदर	— — काकादर—एक प्रकार का माँप
काक	— — कौआ
काण्डा	— — काण
कादम्बक	— — इस विशेष
कायबर	— — उत्तम काय
कायगुप्ते	— — कायगुप्त
कारंछग	— — कारंछक पक्षी
कादम्बा	— — छायें—शिल्पी
काभादधि	— — कासोदधि समुद्र
किती	— — कीर्ति अहिंसा का ३ वाँ नाम
किप्रर	— — किप्रर देव बाण विजय
किप्ररी	— — किप्रर देव की इक्षिया
किमिप	— — कृमि—भावे
किरिबा	— — प्रशान्त कार्य
किरिबादाय	— — किपा ग्याल

शब्द

अर्थ

ख

खग	-	-	पक्षी
खग्गा	-	-	खन्ना-गेंडा
खग्ग	-	-	खन्ना-तलवार
खचर	-	-	आकाश में चलने वाले जीव
खर	-	-	गधा
खस	-	-	खस देश
खाडईल	-	-	गिलहरी-टिलोडी
खासिय	-	-	खाई
खासिय	-	-	खासिक देश
खिल भूमि	-	-	बिना जोती हुई भूमि
खील	-	-	खीले
खुब्जा	-	-	कूबड़ा
खुदिय	-	-	तलाई
खुहो	-	-	खुद्र
खुरो	-	-	छुरा
खुल्लप	-	-	खुल्लू कौड़ी का जीव
खेड	-	-	खेडा-छोटा गाव
खहरक्ख	-	-	चूंगी लेने वाला अथवा कोतवाल
खंड	-	-	खाड-शक्कर
खती	-	-	शान्ति अहिंसा का १३ वा नाम
खिखियो	-	-	पायल आभूषण विशेष

ग

गंडि	-	-	गड माला
गथ	-	-	हाथी
गथकुल	-	-	गज कुल
गय	-	-	गदा अस्त्र विशेष

शब्द		कोश
काइल	- -	कोकिल
काकठिय	- -	लोमड़ी
कोट्टागारं	- -	कोठार
कोटिक	- -	कुछ रोगी
कोणाक्ष	- -	कोणाक्षक पक्षी
कोरल	- -	कुड़ाही
कोरग	- -	कोरग पक्षी
कोल	- -	कोल गूहे के समान सीढ़
कोल मुणक	- -	बड़ा सुन्दर
कोसिकार कीड़ा	- -	रेराम के कीड़े,
कक	- -	कंक पक्षी
कचखक	- -	कालनक पर्वत
कंचना	- -	कंचना, एक भारी
कपी	- -	काशी-कन्धोत
कुंरिया	- -	कुन्ही कमबहुत,
कवी	- -	कान्ति-चमक, अहिंसा का ६ ठा नाम
कर मूसाई	- -	कन् मूल
कस	- -	कांस्य कासी के पात्र
किकरा	- -	मोकर
कुंजम	- -	कुंजम
कुंथ	- -	क्रीप पक्षी
कुंटा	- -	खराब हाथ धाला
कुंटल	- -	कुन्डलाकार पर्वत
कुंत	- -	माला भरा विशेष
कोकणग	- -	कोकण देश,
कोत	- -	भाते
कोच	- -	कोच देश

शब्द		अर्थ
गंध	- -	कपूर
गंध धारक	- -	गन्धधारक देश
		घ
घट	- -	घी,
घायला	- -	हिंसा क छट्टा भेद,
घीगेली	- -	घरमें रहने वाली गोह,
घटिश	- -	घंटिका-घुंघुल ।
		च
चण्ड्रेण	- -	चकौरपच्ची
चञ्चरिदिण	- -	चार इन्द्रिय वाला जीव
चक्रवाग	- -	चक्रवाक
चक्र	- -	चक्र चक्रव्यूह
चक्रवर्ती	- -	चक्रवर्ती
चक्षुसे	- -	चाक्षुष-आख से देखने योग्य
चटुत	- -	चचल
चट सालिय	- -	चन्द्रशाला, महल के ऊपर की शाला
चमर	- -	चमरी गाय
चम्स	- -	चमडा
चम्सटिल	- -	चमगादर
चम्स पात्र	- -	चर्म पात्र
चम्मेट्ट	- -	चमड़े से मढ़ा पत्थर
चय	- -	वस्तुओं की ढेडी परिग्रहों का शरा भेद
चरिया	- -	चगर और कोट के मध्य का मार्ग
चलण मालिय	- -	भूपण विशेष
चवल	- -	चपल
चाटुयार	- -	सुशामदी
चाणूर	- -	चाणूर मझ

शब्द		कोश
गरुडबूह	-	गरुड-बूह
गरुड	-	गरुड पक्षी
गवय	-	रोम नीली गौ
गवाक्षिय	-	गाय सम्बन्धी झुठ
गन्तगा	-	चकरी
गागर	-	घड़ा
गाय	-	गौ
गाक्ख्वा	-	हिंसा का एक नाम
गाहा	-	ग्राह-जल जम्बु
गुप्ती	-	गुप्ति
गुप्ताय विराड्यसि	-	गुप्ती की विराधना हिंसा का १० वां नाम
गुरुत्पम्भो	-	गुरु पत्नीगामी
गुल	-	गुल
गोचर	-	गोपुर-नगर का मुख्य द्वार
गोक्षय्य	-	शेखर वाता नीपाया जानवर
गोच्छम्भो	-	पूजनी
गोड	-	गोड बैरा
गोण	-	गाय बैल
गोणस	-	बिना फल का सर्प
गोष	-	गाधा
गामड	-	गाय का कक्षेवर
गोमिया	-	गाय रखने वाला गवाक्षिया
गोहा	-	गाधा
गोसीस सरस चहन	-	गोशीर्ष नामका शीतल जम्बु
गंज	-	एक प्रकारका धान्य
गंडूलप	-	गिंडोला जम्बु
गंगि मेरुग	-	गंड काटन वाला

शब्द		अर्थ
छविच्छेओ	- -	हिंसा का २१वां नाम
छीरल	- -	बाहुओं से चलने वाला जीव
छुट्टिय	- -	आमरण विशेष
	ज	
जग	- -	यकृत-पेट के दाहिनी तरफ रहने वाली मांस ग्रन्थि
जगवय	- -	देश
जतन	- -	यजन अभयदान अहिंसा का ४८ वां नाम
जन्नो	- -	यज्ञ, अहिंसा का ४६ वां नाम
जग पुरिस	- -	यम पुरुष
जमकवर	- -	यमकवर पर्वत
जरावय	- -	जरायुज जब के साथ उत्पन्न होने वाला
जरासिंघ माण महया	-	जरासन्ध राजा के मान को मथने वाला
जलयर	- -	जलचर
जलगए	- -	जल में रहने वाले कीड़े आदि
जलमए	- -	जल के जीव
जल्ल	- -	जल्लदेश या डोही पर खेलने वाला
जलूर्य	- -	जलूका
जबख	- -	गधन लोग
जवा	- -	जौ-जव
जाण	- -	यान
जाण साला	- -	यान शाला, वाहन आदि रखने का घर
जातरुव	- -	सोना
जाल	- -	ज्वाला
जालक	- -	जालियां
जाइक	- -	काटे से ढका हुआ शरीर वाला अम्बु
जिणेहि	- -	जिनेन्द्र देव
जीव निकाया	- -	जीव निकाय

शब्द	अर्थ
भारक	- - धन्वी खाना
भार	- - गुप्त वृत्त
भारिचमोह	- - भारिच को रोकने वाली माह कर्म की प्रकृति
बाध	- - धनुष
बास	- - बास पक्षी
बिडिग	- - बिडी
बिष्ट	- - बिष्टकृत पर्वत
बिचममा	- - बिच समा
बिठि	- - भित्ति आदि का बनाना
बिल्लाग	- - लीन
बिल्लम	- - बाता या दो खुर बाता मनु बिरोध
बीया	- - बीन देरा
बिल्लाप	- - बिल्लात देशवासी
धुमकासग	- - धूर्त कारा- धान्य बिरोध
बूत्तिया	- - बूत्तिका
बैतिष	- - चैत्य
बल	- - बल
धौम्य	- - धातु आदि का शब्दों भद्र
भारिचकरण	- - धोरी करना
धोलाग	- - धरम का प्रथम मुरखन
धाल पट्ट	- - धोल पट्टा-साधु के पहनने का वस्त्र
धने १	- - धन की जाली या बाध बिरोध
धंदा	- - ध्यत
धनक	- - धौडी
धनुषा	- - धनुष
	६
धगत	- - धर की लफ्फ जालि

शब्द	अर्थ
गह्राणं	सौभाग्य स्नान
गह्रास्त्रिणि	स्नायु
गिग्घिणो	धृणा रहित
गिस्सेणि	निस्सरणी
गिस्ससो	नृशंस कूर
गेडर	नैपुर
गंबर	अम्बर कपडे
	त
तडय	त्रपु
तक्करा	चोर
तयद्दा	दृष्ट्या परिग्रह की २७वां भेद
तत	धीणा
तप्पण	सत्तू
तय	त्वचा
तय ताल	वाद्य विशेष
तरच्छ	जंगली पशु
तलाग	तालाब
तव	तप
तस	त्रस जीव
तारा	तारा
तालर्यट	ताल पत्र के पंखे
तिक्त	तीक्ष्णरस
तिक्ती	दक्षि अहिंसा का १०वां नाम
तिक्तिय	तिक्तिक देश
तिक्तिर	तीक्ष्ण पक्षी
तिमि	बड़े भत्स्य
तिमिगिल	बहुत बड़े भत्स्य

शब्द		अर्थ
छुप	- -	धुग
छीबियत करयो	- -	हिंसा का २२ वां नाम
छीरञ्जीवक	- -	चकोर पक्षी
छूँकरा	- -	छुआरी
छोग संगदे	- -	छोग संघ
छोखी	- -	छोनि-कन्म स्थान
छत	- -	छन्त्र
छट्ठरा	- -	पानी से पैदा होने वाला कुछ विशेष
	म्ह	
मस्त	- -	जल जम्मु
माय	- -	भान
	ठ	
ठिति	- -	स्थिति, अहिंसा का २०वां मंत्र
	ड	
डम्भ	- -	डाम कुछ बिना
डोव	- -	डोव जाति
डोबिलग	- -	डोबिलग देश
	ड	
डेयिमासग	- -	डेयिमासग पक्षी
डिक	- -	डिक पक्षी
	ण	
खड्ग	- -	मकुल
खरक	- -	नक (मकार)
खग	- -	पक्षी
खगर	- -	मगर
खह	- -	मक

शब्द	अर्थ
दधिमुह	दधिमुख पर्वत
दसविहं	दश प्रकार का
दाढि	दाढ
दाण	दान
दामिणी	ढोढी
दार	दरवाजा,
दालियंघ	खड़ीवाल,
दीबिया	चीता,
दीबिय	दीमक पक्षी
दीहिया	धाबडी,
दुर्घ	दुष्कृत,
दुद्ध	दुग्ध
दुरप्पा	दुष्ट आत्मा
दुरित नाग दण्ड महत्ता	पाप रूप गज के दण्ड की मथने वाले
दुवातस विद्या	बारह प्रकार के
दुस्तील	दुश्शील
दुहण	दुधन-वृक्षों को गिराने वाला सुखर दुहना
देवकुल	देव मन्दिर
देवई	देवकी रानी
दोण मुह	जल मार्ग और स्थल मार्ग दोनों से जाने योग्य नगर
दोण	छोटी नौका
दुतट्टा	द्वार के लिए
दुतमणि	प्रधान द्वार
दुसण	सामान्य बोध अद्वाण
धणित	अत्यर्थ
धचरिदुग	धार्तराष्ट्र-हंस विशेष

शब्द		अर्थ
ठिरिय	- -	तिर्यङ्ग
तिल	- -	तिल धान्य
तिषामया	- -	हिंसा का १०वां नाम
ठिहि	- -	तिथि
तूणक	- -	बाघ विरोध
तेन्द्रिय	- -	तीन इन्द्रिय वाले जीव
तेक	- -	तेक
तोमर	- -	बाण
तोरण	- -	तोरण
तठी	- -	छन्नी बौणा
तंज	- -	ताम्र
	थ	
थलापर	- -	स्थलपर
थावरकाय	- -	थावर काय
थूभ	- -	स्तूप
	द	
द्वैवतप्रभावधो	- -	भाग्य के प्रभाव से
दुगतुड	- -	दुग तुंड पक्षी
दहर	- -	बाघ विरोध
दम्भ पुष्प	- -	एक प्रकार का सर्प
दमा	- -	दुषा अहिंसा का ११वां भेद
दरदुद्ध	- -	कुछ अना हुआ
दम्पसारो	- -	दम्पसार वाला परिग्रह का १ वां भेद
दबिज	- -	प्रबिज
दह	- -	दह
दहपति	- -	दहपति पक्ष दह आदि
ददि	- -	दही

शब्द	अर्थ
नेरइय	नरक-के जीव
नेहुर	नेहर देश
नेह	स्नेह
नंगल	हल
नइमाणा	नन्दमानक पत्नी
नंदा	सप्तर्षि, हाथक, अर्द्धसप्त का २४वां नाम
नवि	घाघ विशेष
नंदिसुह	नन्दि-मुख पत्नी

प

पइल	शशीप्रद-स्त्रीसर्पाव
पउमावई	पद्मावती स्त्री
पण्णीमारा	विशेष रूपसे िरितियों को मारनेके लिये फिरने वाले
पकप	प्रकल्प-अध्ययन विशेष
पकाअ	सरस भोजन
पकाणिय	पक्कणिक देश
पक्कवाय	प्रत्वाख्यान
पच्छाया	ढकने का वस्त्र
पजत्त	पर्याप्त
पडिस	प्रहरण विशेष
पढगार	जुलाहा
पलम	पल्लव्यूह
पेहुय	भोर पिच्छी
पोकरण	पोकरण देश
पोकरणी	पुकरिणी की छोटी घापड़ी
पोत घाया	पतिओं के बच्चे को मारने वाला
पोतज	पोतज-हाथी वगैरह
पोय सत्वा	पौका के व्यापक

शब्द	अर्थ
धर्म	माझी
धर्म	धर्म धर्म के वेद में दृष्टा भवता
धर्म	धर्म धर्म का रक्षा नाम
न	न
न	न
न	न
नगर गोपिय	नगर रक्षक
नृप	नरक
न	न
न	न
नय	नेत्र
नयनोत्त	नयन
न	न
नाराय	नारे की धर्म
निष्कर्म	निष्कर्म
निगम	निष्कर्म का निष्पाद रक्षक
निगम	नारे की धर्म
निगुणो	निगुण
निगो	निगम
निगपण	निगम का रक्षा नाम
निगपणारिणो	निगम धर्म
निगपण	निगम धर्म, धर्म का रक्षा नाम
निगपण	नारी करना, नरुमक बनाना
निगपण	निगम-मोक्ष, धर्म का रक्षा नाम
निगपण	निगम धर्म का रक्षा नाम
निगपण	निगम, धर्म का रक्षा नाम
नृप	नृप-धर्म
नृप	नृप

शब्द	अर्थ
परिष्पव	पारिष्पव
परीखहा	परिपह-कष्ट
परियार	तलवार की म्यान
पल्लव	पल्लव-छोटा-तालाब
पलाश	पलाश-पोआल
पलित	प्रदीप्त
पयक	उछलने कूदने वाला
पयवण माया	प्रयत्न माता
पयक	घाघ विशेष
पवा	प्याऊ
पवित्रा	पवित्रा हिंसा का १७वां नाम
पवित्यरी	घन का धिन्तार परिग्रह का २०वां भेद
पङ्गीसग	घाघ विशेष
पसय	दो खुर वाला जानवर
पहरक	भूषण विशेष
पाक्क	पैदल
पागार	कोठ
पाठीण	एक जाति का मत्स्य
पाणवहो	प्राणवध हिंसा का १९वां नाम
पादकेसरिया	पोंछने का बस्त
पादजालक	पाँव नू पुर
पाद बंधण	पात्र धन्धन
पापटवण	पात्र ठवणी जिस पर पात्र रक्ता जाय
पारस	फारस देश
पारिष्पव	पारिष्पव जन्तु
पारेवय	कबूतर
पाव कोबो	हिंसा का १६वां नाम

शब्द	कोश
पोसहार्य	पौषर्षों का
पंगुवा	पंगु
पिंगुलक	पिंगुल पक्षी
पिंगुल	पिंगुल पक्षी
पिंडो	पिंड परिमल का १२वां मेर
पौंडरीक	पुंडरीक पक्षी
पडिमाही	पात्र
पडिलेह्य	प्रति लेखना
पडिरयो	-प्रतिदन्ध बाह्य पक्षों में स्नेहमन्त्र होता परिमल का १२वां मेर
पण्य	बाध विरोध
पण्डव	पण्डव वेष
पसरक	मूष्य विरोध
पसेम सरीर	प्रत्येक शरीर
पमासा	प्रमासा अतिशय क्षीति वाली अहिंसा का १२वां भाग
पमोमो	प्रमाह अहिंसा का २२वां भाग
परहार लेख्य	पर की गतन
पबाध	प्रबाधपति
परमव संकामकारणो	हिंसा का १८ वां भाग
परम क्रियसेव संहिष	परम क्रम्य लेख्य बाह्य
परमा धर्मिया	परमा धार्मिक देव
परसु	परसु दुःखाना
परा	रुण विरोध
परिमाही	परिमल का १२वां मेर
परिचारणा	अभिचार में सहायक
परितापण अण्यो	हिंसा का २६वां भाग
परिपण	परिजन
पि ट्वापणिया-समिति	-यस मूत्र आवि परमने की समिति

शब्द	अर्थ
बलदेवा	बलदेव
बहलीय	बहिर्लीक देशवासी-
बहिरा	बहरे
बादर	बादर नामक-कर्म
बिल्लज	बिल्वल देश-
बुद्धी	बुद्धि अहिंसों का १६वां नाम
बेदिष	दो इन्द्रिय वाला
बेलवक	बिह्वक
बोही	बोधि अहिंसा का १६वां नाम
बंजुल	बजुल पक्षी-
बभचेर	ब्रह्मचर्य

भ

भट्ट भजयाणि	भाट में बना के जैसे भूजना
भडग	भडक जाति
भडा	सैनिक
भक्तपाण	आहार पानी
भडा	भट्टा कल्याणकारी, अहिंसा का २५वां नाम
भसर	भैरवा
भयक	भोकर
भयंकरो	हिंसा का २३वां नाम
भरुई	भरत क्षेत्र
भल्ल	माला
भवण	भवन
भाइल्ला	सेवक
भायण	पात्र
भारो	भार आत्मा विशेष भारी करने वाला, परिग्रह का १७वां पद

शब्द	अर्थ
पावसुठ	पाप सुठ
पायतोमो	दिसा का २०वां भाग
पासाब	प्रासाव
पिकठमंठी	पिकठमंठी नाम का द्रव्य
पिण्ड	पूज
पित्त	शरीर का एक दोष
पिट्टक	पीटा
पियरो	पिता आदि
पिसुख	पुष्प कोर
पिपीलिव	पपीहा पी पी करने वाला पत्ती
पीसख	पीसना
पोकलरिणी	कमल वाली वागडी
पुरवर	मधान नगर
पुडी	पुष्टि अदिसा का २३वां भाग
पुरिचकारो	पुरुषार्थ
पुत्रव	पुत्रक एक प्रकार का माद
पुलिब	पुलिब देश
पूया	अदिसा का २२वां भाग

क

कलक	विस्तारपूर्वी आदि
कलिका	परिचा आताक
कलुप	मासुक निर्जीव
किल्फिस्	कुल्फिस् देश का भीतरी भाग

ख

खक	खयका
खकाका	खयका

शब्द		अर्थ
मञ्जार	- -	बिल्ली
मञ्जिय	- -	मञ्जिका
मणगुत्ते	- -	मनो गुप्त
मणपञ्जवन्तारणी	- -	मन.पर्यव ज्ञानी
मणि	- -	चन्द्र कान्त आदि
मणुय	- -	मनुष्य
मत्थुलिंग	- -	मस्तुलिंग
मधुकरी	- -	भ्रमरी
मयणसात	- -	मैना
मधु	- -	शहद
मया	- -	मद
मयूर	- -	मोर
मरुट्ट	- -	महाराष्ट्र देश
मरुय	- -	मरुआ
मरुगा	- -	मरुक देश
मलय	- -	मलय देश
मल्ल	- -	पहलवान
मसग	- -	मशक
महव्वया	- -	महाव्रत
महाकुम्भि	- -	बड़ी कुभी
महा सङ्घि पूतना रिपु	-	महा शुकनि और पूतना के शत्रु
महार्दि	- -	अपरिमित थाचना वाला, पहिपइ का १४वां भेद
महिच्छा	- -	तीव्र इच्छा वाला
महिस्त	- -	भैमा
महुकोसण	- -	मधु के छत्ते
महुघाय	- -	मधु लेने वाला

शब्द	अर्थ
भाष्य	- - भाषना
भाषित्री	- - भाषित सुसंस्कार वाला -
भाष	- - भाष पक्षी - -
भाषा समिती	- - भाषा समिति वाला
मिक्षु पक्षिमा	- - साधु की पक्षिमा -
मिगार	- - मिगारक पक्षी - -
मिगार	- - मारी - -
भुञ्जि	- - भूजे हुए घानो - -
भूमि घर	- - सल घर { }
भूष गामा	- - बीपों के समूह -
भेषधिरुषण	- - हिंसा का एक नाम -
भेषज	- - भेषज
भोमाद्विष	- - भूमि सम्बन्धी कुछ -
मन्त्रोपगारय	- - मिट्टी के भाँड
मिडिपात्र	- - मिडिपात्र - -
मद्य	- - मद्यिके सेत मोलने के बाद बेजा मोलने का मोटा काष्ठ -
मज्जि	- - फल वाले सप - -
मगर	- - मगर मच्छर - -
मच्छरवपा	- - मच्छरी पकड़ने वाला
मच्छरि	- - मच्छरी लोग - -
मच्छि	- - मच्छर हिंसा का ११वाँ नाम
मच्छरी	- - मिनी - -
मद्य	- - मद्य
मद्यज	- - पक्षम

शब्द	अर्थ
मूका	— — गृंगा
मूढा	— — मूर्ख
मूयक	— — एक प्रकार का तृण
मूलकम्भ	— — गर्भ पात आदि मूल कर्म
मेय	— — मेद-वातु
मेत	— — मेद देश
मेर	— — मंज के तन्तु
मेहला	— — मेखला
मोक्खो	— — मोक्ष
मेहुण	— — मैथुन
मोगगर	— — मुद्गर
मोयग	— — मोटक
मोस	— — मिथ्या
मोहणिज्जो	— — मोहनीय
मौलि	— — मुकली सर्प
मौस्टिक	— — मुष्टि प्रमाण पत्थर
मगल	— — मङ्गलकारी, अहिंसा का ३०वां नाम
मडवाण	— — मण्डपों के
मडव	— — मण्डप
मधु	— — घोर आदि का चूर्ण
मदर	— — मेरु पर्वत
मदुक्क	— — मेढक
मदुय	— — मन्दुक-जल
मंमणा	— — तूतनी धोलने वाला
मस	— — मांस
मिजा	— — मज्जा
मुगुस	— — मंगुस

शब्द		अर्थ	
महुर	-	महुर वेश	-
महाररा	-	बड़ा सर्प	-
माइ	-	ममिला	-
माया	-	मान	-
माणुसोत्तर	-	मनुषोत्तर पर्वत	-
माया	-	माया कपट	-
माया भासो	-	माया मृषा	-
मारया	-	हिंसा का उर्बा नाम	-
माक्य	-	मारुत बामु	-
माखव	-	माखव वेश	-
मास	-	मास वेश	-
मिच्छदिष्टी	-	मिथ्या दृष्टि बोला	-
मिय	-	मृग	-
मुसंग	-	मृग	-
मुगुम	-	मृग-मुग परिसर्प जन्तु	-
मुष्टिभ	-	मौष्टिक वेश	-
मुष्टिप	-	मौष्टिक मल्ल	-
मुच	-	माती	-
मुदा	-	मोड़	-
मुन्दुर	-	अग्नि क कण	-
मुख	-	भर्तृल	-
मुरु द	-	मुसंड वेश	-
मुमभ	-	मूसल	-
मुमावाही	-	मूठ बोलन वाला	-
मुमुदि	-	महर्ष विराप भुराई	-
मुद्वनक	-	भुग पश्चिका	-
मदी	-	मर्ती मदिता-सम्पन्न, अहिंसा का १५वां भव	-

शब्द	—	अर्थ
रोहिणी	—	रोहिणी
ल		
लउद	—	लघुद-छोटा डंडा
लद्धी	—	लविध अर्धिसा का २७वां नाम
लवण	—	लवण समुद्र
लवंग	—	लौंग
लाबक	—	लघे
लासग	—	रास गाने वाले
ल्हासिय	—	ल्हासिक देश
लुद्धा	—	लोभ
लेद्दु	—	पत्थर
लेण	—	पहाड में बना घर
लेरसाओ	—	लेश्या
लोह सकल	—	लोह की बेड़ी
लोह पजर	—	लोह के पंजे
लोहप्पा	—	लोभात्मा, परिग्रह का १३वां भेद
लछण	—	लाइन चिह्न बनाना
लुपणा	—	हिंसा का २६वां नाम

व

वह जोगस्स	—	वचन का व्यापार,
वडर	—	वज्र
वउस	—	वक्रादेश,
वक्षय	—	वलकल
वग्गुली	—	वागुल
वज्ज रिसह नाराय संघयणा	—	वज्र ऋषभनाराय चंहनन,
वज्जो	—	हिंसाका २५ वां नाम.
वट्टक	—	वशक

शब्द	अर्थ
	ए
रक्ता	— — रक्त, अहिमा का रक्षा नाम
रक्त सुमित्रा	— — रक्त सुमित्रा
रतिकर	— — रतिकर पर्यंत
रती	— — रति प्रेम
रत्नीय	— — समुद्र, अहिमा का रत्नी नाम
रत्न	— — रत्न
रत्न	— — रत्नी
रत्नसाय	— — रत्नों से रत्न
रत्नोत्पत्ति	— — रत्नों का उत्पत्ति
रत्नोत्पत्ति	— — रत्नोत्पत्ति
रत्नि	— — रत्न
रत्न	— — रत्न
रत्नस	— — रत्नस
रत्ना	— — रत्ना
रत्नसम	— — अरिष्ट नामक वृक्ष
रत्नि	— — अरिष्ट अहिमा का रत्नी नाम
रत्नो	— — अरिष्ट
रत्नमूल	— — रत्न मूल
रत्नकर	— — मरुत्तकार रत्नक गिरि
रत्नीय	— — रत्नीय
रत्ना	— — रत्न
रत्न महिमा	— — रत्नोत्पत्ति
रत्न	— — रत्न
रत्न	— — रत्न वेश
रत्न	— — रत्न वेश, वान
रत्न	— — रत्न पशुविशेष

शब्द	अर्थ
वामण	छोटेशरीर वाला
वायर	वादर-स्थूल
वायस	कौवा
वालरज्जुय	वालकी रस्सी
वावि	कमल रहित या गोल बावड़ी
वासहर	वर्षभर हिमवान आदि
वासि	वसूला
वासुदेवा	वासुदेव
वाहण	गाड़ी आदि
वाहा	व्याध
विकल्प	एक तरह का-महल
विकहा	विकथा
विग	भेडिया व्याघ्र
विगिघ	व्याघ्र
विचित्त	विचित्र कूट पर्वत
विच्छुय	विच्छू
विहंग	कबूतरों का घर
विण्णसु	हिंसा का २७वा नाम
विण्णुमय	विण्णुमय
वितत	ढोल
विततपक्खि	वितत पक्षी
विद्धि	वृद्धि, अहिंसा का २१वा नाम
विपची	वीणा
विभूती	विभूति, अहिंसा का ३२वा नाम
विमुत्ती	विमुक्ति, अहिंसा का १२वां नाम
विमल	विमल, अहिंसा का ५५वां नाम
वियल	वीजना

शब्द	अर्थ
पट्ट पङ्कज	— — गीलाकार पर्वत
पथ परगा	— — अंगल में घूमने वाला
पण्य	— — बकुडा
पण्यस्सह	— — बभरपति
पदीसक	— — बाघबिरोध
पत्पयि	— — पानी की नाली
पप्पियि	— — बाघड़ी
पय	— — प्रत
पयगुरो	— — धपनगुम
पयजन	— — श्रीजना
पयय	— — कमड़े की डोही
पूर पोठ	— — अहाज
परहिण	— — मयूर
परादि	— — इष्टिबिप-सर्प
पलकी	— — बीया
पलर	— — खेत बिरोध
पयसाओ	— — पयसाय, अहिंसाका ४४ वां नाम
पयवर	— — वर्षर बेरा
पसा	— — पयरी
पहण	— — मौका
पहखा	— — हिंसाका ८ वां नाम
परसपिरय	— — मुञ्जपरिसर्प
पाउरिय	— — आल सेकर-भूमने वाला
पाखिवगा	— — पयिकु लाग
पानर कुय	— — पयूर आति
पानर	— — पयूर
पामसो कबारी	— — निपरीत बोलने वाला

शब्द		अर्थ
सगड	- -	शकट-गाड़ी
सण	- -	आसन
सण्ण	- -	नखयुक्त पैर वाले
सत्तग्वि	- -	तोप
सत्ति	- -	शक्ति त्रिशूल
सत्ती	- -	शक्ति, अस्त्र भेद अहिंसा का ४र्थ नाम
सद्धूल	- -	शार्दूल सिंह
सद्धल	- -	माता
सज्जी	- -	सज्जी
सपरिगह	- -	परिग्रह के साथ
सपि	- -	घी
सवर	- -	शवर भिक्षु जाति
सभा	- -	सभा
समणधम्म	- -	श्रमण धर्म
सम चउरससठाण	- -	सम चतुरस्र चारों कोण बराबर
समय	- -	मिद्धान्त
सम्मत्त विसुद्ध मूलो	- -	सम्यक्त्व रूप विशुद्ध मूल वाला
सम्मदिट्ठी	- -	सम्यग्दृष्टि
सम्पत्ताराहणा	- -	सम्यक्त्व की आराधना, अहिंसा का १४वां नाम
समाहि	- -	समाधि-समता, अहिंसा का ३रा नाम
समिह	- -	समिति, अहिंसा का ३८वां नाम
समिद्धि	- -	समृद्धि, अहिंसा का १६वां नाम
सागपत्त	- -	शाकपत्र
साण	- -	धान-कुत्ता
सामलिपोंड	- -	शाल्मली वृक्ष के फल
सामली	- -	नरक का शाल्मली वृक्ष
सारस	- -	सारस पक्षी

शब्द	अर्थ
वियम्ब	- - व्याघ्र के बच्चे
विरतीय	- - हिंसा रूप पाप से विरत
विरल्ल	- - विरल्ल-मकड़ी
विराहणाभो	- - विराधना
विलवलि कारकायं	- दूसरे को व्यामोह में डालने के लिये बिस्वर बोलन वाक्ता
बिस्संभ बाह्मो	- - बिम्बासपाटी
बिसिट्ट दिडडो	- - बिशिष्ट दृष्टि अहिंसा का २८वां नाम
बिसुडो	- - बिष्टुष्टि, अहिंसा का २६वां नाम
बिसाय	- - हाथी का हात
बिहार	- - मठ
बिहंग	- - पक्षी
बिहसग पास हत्था	- - छंडास और जाल हाथ में रखन वाक्ता
बीसासो	- - बिम्बास, अहिंसा का २९वां भेद
बीही	- - बीही बाणस -
बडिम	- - बडिम-जलपी
बेरिय	- - बेरिका बसूतरा
बेदको	- - मोछा
बेसर	- - पक्षी विशेष
पोरमण	- - हिंसा का १६वां नाम
बंजुल	- - एक प्रकार का पक्षी
बंस	- - बंजुली
स	
सङ्ग	- - शकुन पक्षी
मक	- - शक्येश या जाति
मकटा	- - मूँल
सम्पुलि	- - तिल पापड़ी
महं	- - मायार्थी

शब्द	अर्थ
सुद्यग	— — श्रुतज्ञान, अहिंसा का ध्या नाम
सुन्दर विज्जुमतीए	— — सुरूपविद्युन्मती
सुधरण गुलिया	— — सुवर्ण गुलिका
सुसाण	— — श्मशान
सुहुम	— — सूक्ष्म
सुई	— — सूची-मूई
सूकरे	— — सूअर
सूतो	— — शुचि-अहिंसा का ५६वा नाम
सूय	— — दाल
सूप	— — सूपडा
सूक्त	— — चुगलखोर
सूयगढ	— — सूय कृताङ्ग
सूतिय	— — शूली
सूसर परिवारिणी	— — वीणा
सेण	— — श्येन-बाजपक्षी
सेणावती	— — सेनापति
सेतु	— — पुल
सेल	— — पापाय
सेलक	— — शल्यक जन्तु
सेह	— — शरीर पर काटे वाला जन्तु
सेहव	— — रायता आदि
सोणिय	— — रक्त
सोय	— — शोक
सोयरिया	— — सूअरों के द्वारा शिकार करने वाला
सोलहविह	— — सोलह प्रकार का
सकम	— — उतरने की मार्ग
सकरो	— — धस्तुओं का परस्पर मिलाना, परिग्रह का ७ वा भेद

शब्द	अर्थ
शास्त्री	शास्त्री धान्य विरोध
साधारण शरीर	साधारण शरीर
सिद्धातिगुप्ता	सिद्धों के गुण
सिद्धावासो	माकुवास अर्द्धि का ३०वां नाम
सिप्पकला	सिप्पकला
सिपल	शृगल
सिरियल्लग	सिपल्लक
सिक्क	प्रयाक
सिब	सिब-उपग्रह रहित अर्द्धि का ३७वां नाम
सित्ता	शिष्य
सिद्ध	शिष्य
सिद्धिणि	वही और शब्द से बना
सीमागार	एक प्रकार का प्राद
सीसा	वही पालकी सीसा
सील	सील अर्द्धि का ३६वां नाम
सील परिपतो	सील परिपद अर्द्धि का ४१वां नाम
सीमक	सीसा
सीह	सिंह
सीहल	सिंहल दग
सु मूढ	सूक्ष्म-तीक्ष्ण शोष वाता पद
मुषाम	घंटा
मुक	तोता
मुक्य	मुकूट
मुगग	मुक्ता
मूय	माता
मुनागी	मुनागी

शब्द		अर्थ
हस्थद्वय	— —	हस्तान्दुक एक प्रकार का बन्धन
हय	— —	घोड़ा
हय पुंडरिय	— —	हृद पुण्डरीक पक्षी
हरिण्या	— —	चाण्डाल
हल	— —	हल
हस्त	— —	हास्य
हृत्तयंत	— —	हृदय और आंत
हिरण्या	— —	चांदी
हुरग्न	— —	भेड आदि उल्लूखाले जीव
हृत्तिर्य	— —	शीघ्र
हूण	— —	हूण जाति
हंस	— —	हंस
हिंसयिहंसा	— —	हिंसा का ४था नाम
हुंड	— —	बेडोल शरीर-कुरूप



शब्द	अर्थ
संस	— — राष्ट्र
सचयो	— — यन्त्रियों की अधिकता परिमह का २२ वां मेद
संजयो	— — संजम, अहिंसा का ४ वां नाम
सठास तोंड	— — संठास की आकृति की तरह मुह वाला जीव
समया	— — बाह्य पदार्थों का अधिक परिचय, परिमह का २०वां मेद
सभि झंझ	— — स्नात झोहन वाला
संपाङ्गपामको	— — झूठ आदि पाप को करने वाला, परिमह का १८ वां मेद
सपुड	— — सम्पुट
संरुण	— — पुत्र तथा देव रथ
संवर	— — संवर
संसारो	— — संसार या अच्छी तरह से धारण किया बाप परिमह का ६ठा मेद
संमुच्छिम	— — सम्पूर्णता बिना गम के उत्पन्न होने वाला जीव
संवरो	— — संवर, अहिंसा का ४२ नाम
संवरुगसंसेवी	— — हिंसा का एक नाम
संसेस्त	— — पसीने से पैदा होने वाला
संरुक्कया	— — संरुक्कया-मोहवरा शरीर आदि की रक्षा करना परिमह का १६वां मेद
सिंग	— — सींग
सुसुमार	— — जलपर जगु विरोध
ह	
हदि	— — काष्ठ का थोड़ा
हदि	— — हाथी
हदिमह	— — हाथी का कलवर

को कर्मबन्ध का हेतु बनाते हैं। ज्ञानी के लिये वे ही पदार्थ कर्म निर्जरा के हेतु हैं। अतएव पदार्थों को आस्रव नहीं कहा गया।

सब आस्रवों का आधार योग है। इस योग प्रवृत्ति से होने वाला आस्रव शुभ अशुभ भेद से दो प्रकार का है। पुण्य बन्ध के कारण पुण्यास्रव और पाप बन्ध के हेतु पापास्रव कहाँत हैं। अशुभयोग के निरोध की अपेक्षा शुभयोग को संवर भी कहा है, किन्तु परमार्थ दृष्टिसे योगमात्र ही आस्रव है। अतः शुभ प्रवृत्ति भी शुभास्रव कहाती है। कर्मबन्ध का हेतु होने से आस्रव त्याग्य है। फिर भी शुभास्रव एकान्तरूप से हेय नहीं है। तीर्थङ्कर नाम कर्म के बन्ध हेतु २० बोल अपेक्षासे शुभास्रव होकर भी उपादेय है, क्योंकि तीर्थङ्कर पत्र संवर निर्जरा का प्रचार करने वाला पद है। अतः जिस पुण्य प्रवृत्ति से उसका लाभ हो वह भी उपादेय है। यदि ऐसा नहीं माना जाय तो मुनिओं की देशना, उपासकों की उपासना और सेवान्वत आदि सारी प्रवृत्तियाँ त्यागने योग्य हो जायगीं किन्तु ऐसा नहीं है।

समुद्र पार जाने वाले यात्री को जैसे गाड़ी छोड़कर समुद्र में जहाज धाव होती है और पार पहुँच जाने पर जहाज भी छोड़ दी जाती है। वैसे संसार सागर पार होने वाले साधक के लिये साधनावस्था में पाप छोड़कर पुण्य उपादेय हो जाता है, क्योंकि शुभानुबन्धी पुण्य उनको साधना के अभिमुख करता और उसमें सहायक होता है। हा, जब साधना पूर्ण हो जाती है तब सिद्धावस्था के लिये पाप की तरह पुण्यास्रव भी त्यागने योग्य हो जाता है, किन्तु प्रथम से ही उसको त्याग्य नमस्क लेना उचित नहीं कहा जा सकता।

प्रस्तुत शास्त्र में केवल सांपरायिक आस्रव का ही वर्णन किया है। ऐर्वापथिक या शुभास्रव का नहीं, क्योंकि शुभास्रव न वैसा आत्मा के लिये अहितकर है और न इसका छूटना ही कठिन है, जैसाकि साम्परायिक आस्रव का। अतएव हिंसा, मूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह रूपसे पांच आस्रवों का यहा वर्णन किया गया है। ये आस्रव दुर्गति के कारण होने से सर्वथा हेय हैं।

२. संवर—

जीव रूप तालाब में कर्म प्रवाह को जिन कारणों से रोका जाय वह संवर है। आस्रव की तरह इसके भी द्रव्य भाव रूप से दो भेद हैं। सौका या सात्ताब के जल मार्ग को रोकना द्रव्य संवर और ममिति गुप्तियों के द्वारा कर्मास्रव को रोकना भाव संवर है।

प्रश्नव्याकरण सूत्रस्य विशिष्टाद टिप्पणानि

१ अग्रहय, संवर—

आलय और संवर प्रभङ्गाकरण का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। प्रथम सूत्र में आलय तथा संवर पर कहन की प्रतिष्ठा की गई है। अतएव टिप्पण में भी प्रथम स्थान इन्हीं दो को दिया जाता है। आलय का अर्थ है कि जिसके द्वारा आत्मा में कर्म प्रवेश करे, अथवा जिसके द्वारा कर्म का उपाजित हो वह आलय है। जैसे सरोवर में प्रवाह रूप से पानी का आगमन होता है और जल के आन से सरोवर लवालय भर जाता है वैसे ही आत्मस्थ सरोवरमें जिस मार्गसे कर्म प्रवाह आता है, वह मार्ग एव कर्मों का आना आलय है। इसके मुख्य मेरु हैं। ब्रह्मालय और और मावालय। नौका में छिद्र के द्वारा जल का प्रविष्ट होता ब्रह्मालय और इन्द्रिय आदि से 'बीज' में कर्म का आना मावालय है। यहां केवल कर्मान्त्रय से अभिप्राय है। कर्मान्त्रय के ब्रह्म मिष्ठात्त्व, अविरति, प्रसाद, कृपाय और वांग ऐस पांच हैं। इनमें योग सबका आधार है, जो तीन प्रकारका है। मनोयोग, वाग्योग, और काय योग। मानसिक प्रवृत्ति को मनोयोग, वाचिक को वचन योग तथा कायिक प्रवृत्ति को काय योग कहते हैं। योग के साथ जब कृपाय क्रोध आदि भाव का सम्बन्ध होता है तब उसे साम्प्रदायिक आलय कहते हैं और कृपाय रहित केवल योग प्रवृत्ति को पर्यायधिक आलय कहते हैं। इन दोनों में साम्प्रदायिक आलय के ५ इन्द्रिय ४ कषात्र ५ अक्षर, २५ क्रिया और ९ योग मिलकर ४९ भेद होते हैं। प्रकारान्तर से आलयके २० भेद भी होते हैं। इन्द्रिय और मनमें विकार पैदा करने वाले बाह्य पदार्थ संसार में अगणित हैं परन्तु वे सब कर्म बन्धमें मियत हनु नहीं हैं। क्योंकि बन्ध या निर्मला में ब्रह्म बनाता आत्मा के अधीन हैं। आद्याती त्रिजल कक्षमन्त्रादि पदार्था

को कर्मबन्ध का हेतु बनाते हैं। ज्ञानी के लिये वे ही पदार्थ कर्म निर्जरा के हेतु है। अतएव पदार्थों को आस्रव नहीं कहा गया।

सब आस्रवों का आधार योग है। इस योग प्रवृत्ति से होने वाला आस्रव शुभ अशुभ भेद से दो प्रकार का है। पुण्य बन्ध के कारण पुण्यास्रव और पाप बन्ध के हेतु पापास्रव कहाते हैं। अशुभयोग के निरोध की अपेक्षा शुभयोग को संवर भी कहा है, किन्तु परमार्थ दृष्टिसे योगमात्र ही आस्रव है। अतः शुभ प्रवृत्ति भी शुभास्रव कहाती है। कर्मबन्ध का हेतु होने से आस्रव त्याग्य है। फिर भी शुभास्रव एकान्तरूप से हेय नहीं है। तीर्थङ्कर नाम कर्म के बन्ध हेतु २० बोल अपेक्षासे शुभास्रव होकर भी उपादेय है, क्योंकि तीर्थङ्कर पद संवर निर्जरा का प्रचार करने वाला पद है। अतः जिस पुण्य प्रकृति से उसका लाभ हो वह भी उपादेय है। यदि ऐसा नहीं माना जाय तो मुनिओं की देशना, उपासकों की उपासना और सेवाव्रत आदि सारी प्रवृत्तियां त्यागने योग्य हो जायगीं किन्तु ऐसा नहीं है।

समुद्र पार जाने वाले यात्री को जैसे गाड़ी छोड़कर समुद्र में जहाज भाड़ा होती है और पार पहुँच जाने पर जहाज भी छोड़ दी जाती है। वैसे संसार सागर पार होने वाले साधक के लिये साधनावस्था में पाप छोड़कर पुण्य उपादेय हो जाता है, क्योंकि शुभानुबन्धी पुण्य उनको साधना के अभिमुख करता और उसमें सहायक होता है। हा, जब साधना पूर्ण हो जाती है तब सिद्धावस्था के लिये पाप की तरह पुण्यास्रव भी त्यागने योग्य हो जाता है, किन्तु प्रथम से ही उसको त्याग्य समझ लेना उचित नहीं कहा जा सकता।

प्रस्तुत शास्त्र में केवल सांपरायिक आस्रव का ही वर्णन किया है। पेर्यापथिक या शुभास्रव का नहीं, क्योंकि शुभास्रव न वैसा आत्मा के लिये अहितकर है और न इसका छूटना ही कठिन है, जैसाकि साम्परायिक आस्रव का। अतएव हिंसा, भ्रूट, चोरी, मैथुन और परिग्रह रूपसे पाच आस्रवों का यहा वर्णन किया गया है। ये आस्रव दुर्गति के कारण होने से सर्वथा हेय हैं।

२. संवर—

जीव रूप तालाब में कर्म प्रवाह को जिन कारणों से रोका जाय वह संवर है। आस्रव की तरह इसके भी द्रव्य भाव रूप से दो भेद हैं। नौका या तालाब के जल मार्ग को रोकना द्रव्य संवर और समिति गुप्तियों के द्वारा कर्मास्रव को रोकना भाग संवर है।

प्रश्नव्याकरण सूत्रस्य विशिष्टपद टिप्पणानि

१ अग्रहय, संवर—

आलव और संवर प्रश्नव्याकरण का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। प्रथम सूत्र में आलव तथा संवर पर कहने की प्रतिष्ठा की गई है। अतएव टिप्पण में भी प्रथम स्थान इन्हीं दो को दिया जाता है। आलव का अर्थ है कि जिसके द्वारा आत्मा में कर्म प्रवेश करते, अथवा जिसके द्वारा कर्म का उपार्जन हो वह आलव है। जैसे सरोवर में प्रवाह रूप से पानी का आगमन होता है और-जल के आने से सरोवर लवालव भर जाता है वैसे ही आत्मरूप सरोवरमें जिस मार्गसे कर्म प्रवाह आता है, वह मार्ग एवं कर्मों का आना आलव है। इसके मुक्त भव हो हैं। ब्रह्मात्मक और भावात्मक। नीचा में चित्र के द्वारा जल का प्रविष्ट होना ब्रह्मात्मक और इन्द्रिय आदि से 'जीव' में कर्म का आना भावात्मक है। यहां केवल कर्मात्मक से अभिप्राय है। कर्मागमन के हेतु मिथ्यात्व, अभिरति, प्रमाद, कषाय और वाग ऐसे पांच हैं। इनमें योग सबका आधार है, जो तीन प्रकारका है। मनोयोग, ध्यानयोग, और काय योग। मानसिक प्रवृत्ति को मनोयोग, भाविक को बन्धन योग तथा कायिक प्रवृत्ति को काय योग कहते हैं। योग के साथ जब कषाय क्रोध आदि भाव का सम्बन्ध होता है तब उस साम्प्रदायिक आलव कहते हैं और कषाय रहित केवल योग प्रवृत्ति को पर्यायिक आलव कहते हैं। इन दोनों में साम्प्रदायिक आलव के ५ इन्द्रिय ४ कषाय, ५ अग्रत, ०५ क्रिया और ३ योग मिलकर ४९ भव होते हैं। प्रकारान्तर से आलवके ००८५ भी होते हैं। इन्द्रिय और मनमें विकार पैदा करने वाले पांच पदार्थ संसार में अग्रहित हैं परन्तु वे सब कर्म बन्धनमें नियत हेतु नहीं हैं। क्योंकि वाय वा निर्जरा में हेतु बनाना आत्मा के अधीन है। अतानी भिन अकूप्यन्तादि पदार्थों

उसके शरीर को कुछ भी क्षति नहीं पहुँचाई, फिर भी जब तक उसका जीवन है वह अन्यत्र रहकर भी आपसे बढ़ता लेना चाहेगा। उसका हृदय वैर को नहीं भूल सकेगा, क्योंकि आपने उसका आश्रय छुड़ाया है। असमर्थ होकर भी जैसे जर्मन ब्रिटिश के साथ वैर नहीं भूला वैसे ही जिस प्राणी के प्राणों का अपहरण किया गया है वह जन्मान्तर में जाने पर भी अपने प्राण घातक के साथ वैरानुबन्ध नहीं भूलता। दूर वसे हुए भी शरणार्थियों की तरह उसका हृदय वैर से कलुषित रहता है। प्राण छूटने पर भी उसके आश्रित जीने वाले प्राणी अमर रहते हैं। इसलिये कहा है कि--“पञ्चेन्द्रियाणि त्रिविधं बलञ्च, उच्छ्वास निश्वासमथान्यदायुः प्राणा दशैते भगवद्भिरुक्ता--स्तेषां वियोगी करणं तु हिंसा ॥ पाच इन्द्रियां, ३ बलश्वास और आयु रूप दश प्राणों का जीव से वियोग करना ही हिंसा है। इसलिये हिंसा को प्राणबध कहा गया।

किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि दूसरों को कष्ट पहुँचाना हिंसा नहीं है। प्राण नाश का कारण होने से दुःख या क्लेश पहुँचाना भी बध कहा गया है। जैसे कि--‘तप्पज्जाय विणासो, दुक्खुप्पातो य संक्लेशो य। एस व्हो जिण भण्णिओ वज्जेयव्वो पयत्तेण ॥ शरीर पर्याय का नाश और दुःख एव संक्लेश उत्पन्न करना इसको तीर्थङ्करों ने बध कहा है जो प्रयत्न पूर्वक त्यागना चाहिए।

प्राणबध भी व्यवहार दृष्ट्या प्राणबध को कहते हैं।

४. हिंसाके कारण—

अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग रूपसे हिंसा के प्रमुख दो कारण हैं। उनमें अन्तरङ्ग कारण क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, वैदिक अनुष्ठान अर्थ, धर्म, काम और जीत-रूढि पालन के लिये हिंसा की जाती है।

बहिरङ्ग कारण—

चमड़ा १ चरवी २ मांस ३ मेद ४ रक्त ५ यक्ष्म ६ फिफफस-फेफड़ा ७ मस्तुजुंग-कपाल का मेजा ८, हृदय ९, आत १० पित्त ११ फोफस १२ दात १३, अस्थि १४ मज्जा १५, नख १६ नेत्र १७, कान १८ स्नायु-नसें १९, नाक २० धमनी-नाडी २१ सींग २२, दाढ़ २३, पिच्छ या पूछ २४, विप २५, विपाण-हाथी दात २६ और बाल २७ इनके लिये गो महिष आदि पञ्चेन्द्रिय जीवों की हिंसा होती है। मधु-आदि के लिये चतुर्दिन्द्रिय भ्रमर आदि की, शमीर और उपकरण शुद्धि के लिये

कर्म निर्गोप के उपाय तरीक 'संवर के ५७ मेव होते हैं—“बैते-५ समिति ३ गुमि, १ यतिधर्म, १२ भाषना, २२ परीपह और ५ बारित्र कुल ५७। शुभाशुभ कर्माश्रय को रोकने के कारण संवम या बारित्र को भी संवर कहत हैं। आश्रय की विपरीत सारी प्रवृत्ति संवर का कारण है। इसक मुख्य मेव सम्बन्ध, व्रत, अप्रमाद, अकृपाय और अयोग रूप से पांच हैं। मिथ्यात्व आदि पांच हेतुओं से होत वाञ्छा कर्माश्रय बाड़ी देर के लिये कल्पना कीजिए कि १११११ का है। जब मिथ्यात्व का द्वार बन्द कर दिया जाय, तब ११११ बाँकी रहत हैं। दस हजार का कर्ज कम हो गया। एम अप्रत का दूसरा द्वार बन्द कर देने पर एक हजार कम हो गया, और प्रमाद एवं कृपाय के संवरण कर देने पर तो बांग मिमिक्तक एक रुपया बितना ही कर्ज बाँकी रहता है। असंख्य जो प्राणी मिथ्यात्व का द्वार बन्द कर चुके हैं, उनके लिये पहाँ हिंसा असंख्य आदि-त्याग रूप पांच संवर कह गये हैं।

इन पांच संवरों के द्वारा अप्रत रूप दूसरा द्वार बन्द हो जाता है, और प्रमाद कृपाय एवं योग के संकुचित हो जाने से उनके द्वारा होने वाला आश्रय भी अल्प हो जाता है। आश्रय घटने से आत्मा कर्मभार से हल्की रहती है। अतएव ये पांच संवर उपाय हैं।

३ प्राणवध—

हिंसा का एक प्रसिद्ध नाम प्राणवध है, जिसको प्रकारान्तर से प्राणानिपात भी कहत हैं। प्राणवध का अर्थ है—प्राणों का नारा-ध्वजान् अपने २ कामाधिष्ठान में सुषटित दस प्राण का विघटित करना। लोक व्यवहार में बिसे जीव हिंसा कहते हैं कमसे यहाँ प्राणवध क नाम से कहा गया है। कारण यह है कि आत्मा अल्प दान से किसी से मारी नहीं जा सकती कवल उसके प्राणों का नारा किया जा सकता है।

पाठक सोचेंगे कि हिंसा ऐसा सरल नाम न दकर प्राणवध ऐसा क्यों लिया ? यदि हाथना क लिये लिखना या तब भी जीव हिंसा लिखत ? क्योंकि प्राण तो मारे जात नहीं फिर प्राणवध कैसा ?

उत्तर यह है कि बाल्य में आत्मा अमर है। यदि बड़ी मर जाय तब तो भूत पादियों क कथनानुसार पुण्य पाप और परक्षा क भी अभाय हो जायगा। दृष्टान्त क रूप में गांधी कि आपन किसी मृत्यु का परम बाहर कर दिया है,

उसके शरीर को कुछ भी चिन्ता नहीं पहुँचाई, फिर भी जब तक उसका जीवन है वह अन्यत्र रहकर भी आपसे बदला लेना चाहेगा। उसका हृदय बैर को नहीं भूल सकेगा, क्योंकि आपने उसका आश्रय छुड़ाया है। असमर्थ होकर भी जैसे जर्मन ब्रिटिश के साथ बैर नहीं भूला वैसे ही जिस प्राणी के प्राणों का अपहरण किया गया है वह जन्मान्तर में जाने पर भी अपने प्राण घातक के साथ वैरानुबन्ध नहीं भूलता। दूर वैसे हुए भी शरणार्थियों की तरह उसका हृदय बैर से कलुषित रहता है। प्राण छूटने पर भी उसके आश्रित जीने वाले प्राणी अमर रहते हैं। इसलिये कहा है कि—“पञ्चेन्द्रियाणि त्रिविधं बलञ्च, उच्चैश्चास निश्चान्मृधान्यदायुः प्राणा दशैते भगवद्भिरुक्ता—स्तेषां वियोगी करणं तु हिंसा ॥ पाच इन्द्रिया, ३ बल आस और आयु रूप दश प्राणों का जीव से वियोग करना ही हिंसा है। इसलिये हिंसा को प्राणवध कहा गया।

किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि दूसरे को कष्ट पहुँचाना हिंसा नहीं है। प्राण नाश का कारण होने से दुःख या क्लेश पहुँचाना भी वध कहा गया है। जैसे कि—“तत्पञ्चाय त्रिणासो, दुक्खुपातो य सविलेसो य। पस व्हो जिए भण्णिओ वज्जेयव्वो पयत्तेण ॥ शरीर पर्याय का नाश और दुःख एवं सक्लेश उत्पन्न करना इसको तीर्थङ्करों ने वध कहा है जो प्रयत्न पूर्वक त्यागना चाहिए।

प्राणवध भी व्यवहार दृष्ट्या प्राणवध को कहते हैं।

४. हिंसाके कारण—

अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग रूपसे हिंसा के प्रमुख दो कारण हैं। उनमें अन्तरङ्ग कारण क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति अरति, शोक, वैदिक अनुष्ठान अर्थ, धर्म, काम और जीत-रूढ़ि पालन के लिये हिंसा की जाती है।

बहिरङ्ग कारण—

चमडा १ चरबी २ मांस ३ मेद ४ रक्त ५ यक्ष्म ६ फिफफस-फेफडा ७ मस्तुलुंग-कपाल का भेजा ८, हृदय ९, आंत १० पित्त ११ फोफस १२ दात १३, अस्थि १४ मज्जा १५, नख १६ नेत्र १७, कान १८ स्नायु-नसें १९, नाक २० धमनी-ताड़ी २१ सींग २२, दाढ़ २३, पिच्छ वा पूछ २४, विप २५, विपाण-हाथी दात २६ और बाल २७ इनके लिये गो भक्षि आदि पञ्चेन्द्रिय जीवों की हिंसा होती है। मधु-आदि के लिये चतुर्भिन्निव्र अमर आदि की, शरीर और उपकरण शुद्धि के लिये

तेष्विन्द्रिय जीवों की और धर धरा की सफाई रंगाई तथा रेशम आदि के लिये यं न्द्रिय जीवों की हिंसा होती है।

इसके उपरान्त रथावर जीवों की हिंसा के सैकड़ों कारण सूचक हैं खेती, बेषक, पौध आदि पृथ्वीकाय की हिंसाके कारण बताया गया है। इस प्रकार धर्म आदि धर्म या अनर्थ से अतुल्य लोग हिंसा करते हैं। यह आग एवं देवोपासना में की जाने वाली हिंसा को भी कमबल्य का कारण कहा है। जैसे कि परतौर्यिक ने भी कहा—
हिंसाजन्म्यश्च पापश्च क्षमते नात्र संशयः अर्थात् धर्म के नाम पर भी की गई हिंसा पाप पैदा करती है। यथार्थ हिंसा के बदले पापको पाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इस कारण को उत्कृष्ट विद्वानों ने जोर शोर से समर्थन किया है। जैसेकि,—
देवोपाहारं ध्यामेन यश्च ध्यामेन केऽपचा। प्रप्तिं क्त्स्नून् गतपूणा, चारुं च यान्ति दुर्गतिम् ॥ वेदान्ती भी कहते हैं—^{१४} अन्धे तमसि मज्जाम पशुभिर्ये यजामहे। हिंसा नाम मयेदमो—नम्रो न भविष्यति।

ध्यासन भी कहा है—^{१५} प्राणिपातास्तु यो धर्म—भीक्ष्वे मूढ मानसः। स वाक्कति सुपातुर्हि, कृष्णहिमुत्त कोटरात् ॥

इत्यादि सहस्रों प्रमाण मनु स्मृति आदि ग्रन्थों के दिय जा सकते हैं, जो विस्तार भय न नहीं दिये गये हैं।

५. प्रमाद—

असक कारण जोक कर्तव्य का भान भूल, उसे प्रमाद कहते हैं। कोपहार अमरमिह न प्रमाद के लिये अनवधानता पद का प्रयोग किया है। जिन कि—
प्रमाणाऽनवधानता—दुर्बल, इच्छा और भाव भेद से प्रमाद या प्रकाट का है। कोप का गुणभूता के लिये आचार्यों ने प्रमाद के ४ एवं ८ भेद भी किये हैं। जैसे मय १ निषय शस्त्रादि २ कषाय ३ जिह्वा और विषया ४। ५ य प्रमाद के पाप प्रकाट हैं। आठ भेद में प्रथम अज्ञान, दूसरा संशय, ३ वा मिथ्या ज्ञान, ४ राग, ५ द्वेष, ६ मति भ्रम, ७ धर्म में अनाचार और ८ अनवधान एवं काय की अज्ञान प्रवृत्ति, यह आठवां प्रमाद है। कहा भी है—

कषाण १ संशयो २ भव, मिथ्याज्ञान ३ द्वेष ४ रागा शानो ५ मदधर्मो ६, अमरमिह अनाचारः। अण्यमन्ताण जीगार्ण प्रमाभा दोऽ अदृष्टा ॥

कुलकोटि—

जीवों की जाति विशेष को कुल कोटि कहते हैं। पञ्चेन्द्रिय की ५७ लाख इ कोटि हैं।

जैसे कि— पृथ्वी काय की १२ लाख कुल कोटि,
अपकाय की ७ लाख,
सेच काय की ३ लाख,
वायु काय की ७ लाख,
वनस्पति काय की २८ लाख,
वेदन्द्रिय की ७ लाख कुल कोटि,
सहन्द्रिय की ८ लाख,
चौरिन्द्रिय जीवों की ६ लाख कुल कोटि है।

पञ्चेन्द्रिय जीवों में, जलचर की १२ ॥ साढ़े बारह लाख-कुलकोटि खेचर पक्षियों की १२ लाख कुलकोटि। चतुष्पाद-हाथी घोड़े आदि की १० ल कुलकोटि। उर-परिसर्प-छाती के बल से ससरने वाले सर्प आदि की १० ल कुलकोटि। मनुष्य पञ्चेन्द्रिय की १२ लाख कुलकोटि भुजा से चलने वाले आदि की ६ लाख कुल कोटि ॥ देवों की २६ लाख कुलकोटि। नारक जीवों २५ लाख कुलकोटि है। इन सब संख्याओं को मिलाकर एक करोड़ सत्ता लाख पचास हजार कुल कोटियाँ होती हैं।

जैसे कि कहा गया है—“ एगिदिणसु पंचसु, बारस सत्त तिगसत्त अट्टवी य। विगलेसु सत्त अट्ठनव जल खह चउप्पय उरग भूयगे ॥ १ ॥ अट्ट-तेरस वा हस दस तथगं नरासरे नरए। बारस छव्वीस. पणवीस हुंति कुल कोडी क्खवाडं ॥ २ ॥

६. मृषावादी—

हिंसा की तरह मृषावाद भी पाप बन्ध का एक बड़ा कारण है। इसके दो वालों की कोई स्वतन्त्र जाति नहीं होती। जब से जब कुल में जन्मा हुआ भी भूठ बोलता है तो वह मृषावादी है। सूत्र में असत्य पूर्ण व्यवहार और सिद्धान्तों की अवेज्ञा मृषावादिशों के दो वर्ग किये गये हैं। एक लोक व्यवहार

आजीविका निमित्त या मोह वश मूठ बालने वाले और दूसरे सैद्धान्तिक अंगत में सबों का मिथ्या स्वरूप बताने वाले ।

प्रथम प्रकार के मिथ्यावादी इस प्रकार हैं— क्रोध, लोभ, मय, और हास्य य मूठ के मूलकारण हैं । क्रोध द्वय का और लोभ राग का अंश है, और राग द्वय मोह के प्रधान अङ्ग हैं । अतएव मोह अज्ञानादि सारे हेतु इनमें समाविष्ट हो जाते हैं । अर्थ, धर्म और काम की इन्हीं क्रोध लोभ रूप वा भावों में अन्तर्हित समझना चाहिए ।

क्रोध लोभादि दृष्टि वाले लोगों को गिनात हैं—१ अर्मयमी २ अविरती, ३ कपट से क्रुटिषा और पञ्चल भाव वाले, ४ साक्षी, ५ चोर, ६ चारभट, ६ शंकरचक्र, ८ चूगी लने वाले, ९ जीतने वाला जुधारी, १० धरोहर दाने की शृङ्गा माल, ११ पञ्चना के लिये मीठे बोलने वाले, १२ कुनीर्थिक—धन मात्र चारी, १३ बहिरिक् पाणिज्य करने वाले १४ कूटगुल कूटमाना—सोना तोल माप करने वाले, १५ नरुभा सिक्क से जीतने वाले या कूटधन से जीविका करने वाले, १६ पटकार पुनकर, १७ सुवर्णकार—सुनार १८ काठक—कारीगर, १९ बल्लक ठग, २० चारिक—चोर की खोज निकालने वाले, २१ बाटुकार सुरासम्भ करने वाले, २२ नगर गुप्तक—चोर पाल, २३ परिचारक—सैशुन कर्म में हलाकी करने वाले २४ दुष्टवादी—असत्य पक्ष लेने वाले, २५ सूचक—सुगलखोर २६ शृङ्खल मयिता—बल से शृङ्खल लने वाले—कर्मदार, २७ पूर्व कारिक बचन लक्ष्—बोली घाल के पहले ही अनुमान करके कहने वाले २८ साहसि—बिना सोचे बोलने वाले, २९ लघु—गुच्छ इत्येक, ३० दुर्जन, ३१ गौरविक—शुद्धि आदि के गारब वाले, ३२ असत्य की स्थापना में पित्त वाले, ३३ दब दन्व—बचपन में ऊबे धमिप्राय वाले, ३४ निरङ्कुश बचन वाले ३५ निराम रक्षित या स्वजन रक्षित, ३६ शृङ्खलानुसार बोलने वाले, अथवा स्वच्छा से अपने को सिद्ध कहने वाले, मिथ्य कम्पसरी आदि य लौकिक मृपावादी हैं ।

लोकोपर मृपावादीयों का परिचय दिया जाता है —

७ नास्तिक वादी—

नास्तिकवाद में अस्त्याश की अधिकता है, अतः प्रथम नास्तिकवादी को कहा गया है । यह अंगत से भिन्न ओ आत्मा परमात्मा और धर्म अधर्म आदि दृष्टियों को मही मानस ज्ञानी नास्तिक कहते हैं, जैम कि—“नास्तिजीव परतोको वा इत्येकं

मतिर्यस्य स नास्तिकः ।' जो जीव और परलोक को नहीं मानता है वह नास्तिक है। लोकायतिक या सद्र भूत भी जीवादि पदार्थों को नहीं मानने से वामलोक धादी कहाते हैं। दिखने वाले भौतिक जगत् के अतिरिक्त ये परलोक को नहीं मानते। न पञ्च भूतों से पृथक् आत्मा नाम का पदार्थ ही मानते हैं। जैसा कि, उन्होने कहा है-

एतावानेव लोकोऽयं, यावानिन्द्रिय गोचरः ।

भद्रे ? वृक पदं पश्य, यद्वदन्त्यदिपश्चितः ॥ १ ॥

पिब, खाद च चारु लोचने ? यदतीतं वरगात्रि ? तन्न ते ।

नहि भीरु ? गतं निवर्तते, समुदयमात्रमिदं कलेवरम् । २ ॥

भाव यह है कि जितना प्रत्यक्ष दिव्यता है, उतना ही यहलोक है इससे भिन्न जो स्वर्ग नरक आदि कहे जाते हैं वे सब मात्र प्रलोभन या भय के लिये ही हैं। उनमें कुछभी तत्त्व नहीं है। इसलिये ये लोग खाना, पीना और मौज मनाना ही जीवन का सार समझते हैं। इन नास्तिकों का -यह सिद्धान्त है-" यावज्जीवेत्सुखं जीवेत् ऋण कृ-या घृतपिवेत् । भस्मीभूतस्य-भूतस्य पुनरागमनं कुतः ॥ अर्थात्-जबतक जीवो, सुखसे जीवो ऋण लेकर भो घी पीवो, वेह भस्मीभूत होने पर फिर मिलने का कहा है ? और भी इन का कहना है-" स्वागमार्थेऽपि मात्थाऽस्मिन्, तीर्थिका विचिकित्तय । ततमाचरताऽऽनन्दं स्वच्छन्दं यं यमिच्छथ ॥ अपने आगम रूप अर्थ में संशयात्मा बनकर स्थिर न रहो। उसी आचरण को करो जो कि तुम करना चाहते हो। इस प्रकार स्वच्छन्द आचरण को करो, आगम के विधि निषेध में न पडो।

ये नास्तिक वादी अपने पक्ष की सिद्धि में कहते हैं कि प्रत्यक्ष आदि किसी प्रमाण से आत्मा की सिद्धि नहीं होती और न परलोक की सत्ता ही साधित होती है। जिसका प्रत्यक्ष नहीं उसका अनुमान भी नहीं होता। अतः पञ्चभूत का बना यह जगत् ही सत्य है। पञ्चभूत-पृथ्वी जल अग्नि वायु और आकाश-से पृथक् आत्मा कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है।

उनका कहना है कि पञ्चभूतों में प्रत्यक्ष नहीं दिखने वाली भी चेतना शक्ति- किरणादिभ्यो मदशक्ति वत् जैसे गुड महुआ आदि के मिलने पर सादकता आती

है, वैसे-ही पञ्चभूतों के सम्मिलित होने पर प्रकट होजाती है। शरीर ही प्राण वायु संयुक्त सभी किण्वों को करते दिखाई देता है। हिंसा, मूठ, चोरी और पर पार गमन में कोई पाप नहीं है।

कहा जाता है कि ब्रह्मसृष्टि ने अपने पुत्र की रक्षा के लिये जब मृत्युञ्जय, मन्त्र और मन्त्रीवनी का सायन कर के भी सफलता प्राप्त नहीं की। तब पुत्र वियोग से विकल उनके हृदयने पुरुष पाप और जब तब आवि का मूठा पापित किया। जैसे कि उसने कहा है-

अग्नि होत्र त्रयीदण्डं, त्रिदण्डं भस्म पुण्ड्रकम् ।

प्रश्ना पौरुषहीनानां, जीवो जल्पति जीविकाम् ॥

भाष्य यह है कि-

अग्नि होत्र-नियमपूर्वक हवन करना, त्रयी ऋक् यजुः, साम इन तीनों वेदोंका साङ्ग अभ्यस्यन करना, दृष्टी यादृश्यही बनना, भस्म लगाना, और मुद्रा अङ्कित करना ये सब बुद्धि और पुरुषार्थ से हीन लोगों की जीविका-जीवन चापन की योजना मात्र है और कुछ इन में सार नहीं है, ऐसा ब्रह्मसृष्टि कहता है। ब्रह्मसृष्टि से प्रचारित होने के कारण इस मत को ब्राह्मसृष्ट्य मत भी कहते हैं। क. पितृगत रूप से तो आत्र नास्तिक धार् का प्रचार इजारे मनुष्यों में मिलेगा। पश्चिमी-साम्प्रदाय की वायुने सर्वत्र यह प्रचार कर रक्खा है कि मूलवाद और दृष्ट्यगत मत भिन्न आत्मा परमात्मा तथा परमात्मा नास्तिक में नहीं है। नैतिक नियमों का पालन भी ये लोग समाज व्यवस्था के लिये ही करते हैं।

आत्र के प्रपलित बुद्धा रथ और धाम मार्ग इसी नास्तिक मत के स्पष्टान्तर है अथवा इसी के भयङ्कर परिणाम हैं। नास्तिक दर्शनों से इसकी बात सर्वथा भिन्न है। हम नास्तिकों की दुष्कर्षा जानकर "साधरा किपरीतारपेन् रासता एव केवलम्" यह संस्कृतोक्ति याद आती है। ये लोग अधिभूता से साधर हैं। ये शिव को देव मानते हैं। हमारी शक्तज्ञा ही बपासना है। इस एक पूजा में भर-भारी उपस्थित होते हैं। इनका कहना है अन्य मत न निर्वाण कीटिका गति ने कदापि नहीं होता है किन्तु धाम मार्ग से वह निर्वाण गच्छ गति स अपरय प्राप्त होता है। इसके पाँच प्रकार मोक्षपद माने गए हैं।

जैसे--“मथे मातं च मीनञ्च, मुद्रा मैथुनमेव च ।

एते पञ्च मकारा स्युर्मोक्षदाहि युगे युगे ॥ १ ॥ (काली तन्त्र)

इनके अनेकों तन्त्र ग्रन्थ हैं । वाम मार्ग की साधना—इसके साधक गण किस रीति से करते थे ? ऐसा परिचय जिन्हें प्राप्त करना हो, वे वाणभट्टकृत 'कादम्बरी' में चन्द्रा पीढ़ के कैलास गमन प्रकरण को पढ़ें ।

स्थानुभूति से सिद्ध योग शक्ति निष्णातो के वचनों से प्रमाणित विश्व प्रसिद्ध ऐसे आत्म तत्त्व एव धर्माधर्म का निषेध करने से ये मृषावादी कहे गये हैं ।

८. पञ्चस्कन्ध—

कुछ लोग पञ्चस्कन्ध को ही सब कुछ मानते हैं, उनके विचारानुसार पञ्चस्कन्ध से भिन्न आत्मा कोई स्वतन्त्र वस्तु है ही नहीं । पञ्चस्कन्ध—“विज्ञान १, वेदना २, संज्ञा ३, संस्कार ४, और रूप ५ ये पाचस्कन्ध ही सब कुछ हैं । जैसेकि रूप स्कन्ध में पृथ्वी आदि सभी धातु सारे रस आदि आजाते हैं, वेदना स्कन्ध में सुख दुःख आदि वेदनायें तथा विज्ञान स्कन्ध में रूपरसादि विज्ञानों का समावेश हो जाता है, संज्ञास्कन्ध में—प्रवृत्तात्मक बोध आता है और संस्कार स्कन्धमें पुण्य पाप आदि अनेके बुरे विचार आते हैं, इस प्रकार जगत् के पदार्थ मात्र इनमें-
७ न्तर्निहित होते हैं, इनसे भिन्न आत्मा नामका कोई छटा तत्त्व नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष या अनुमान में से किली भी प्रमाण द्वारा उसकी सिद्धि नहीं होती । पञ्चस्कन्ध भी क्षण योगी है अर्थात् क्षणमात्र स्थायी-क्षणिक-है, इस मत को मानने वाले बौद्ध हैं ।

कुछ बौद्धाचार्य शरीर को चतुर्धातुक मानते हैं । उनके सिद्धान्तानुसार पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु इन चार धातुओं से यह शरीर बना है और कायरूप से इनकी परिणति को ही जीव नाम से कहा जाता है । जैसे कि कहा है—“चतुर्धातुकं मिदं शरीरं नतद्व्यतिरिक्तं आत्मास्तीति—चतुर्धातुक इस शरीर के अतिरिक्त आत्मा कोई तत्त्व नहीं है ।

समय पाकर इन बौद्धों के चार भेद होगये—वैसाषिक १, सौत्रान्तिक २, योगाचार ३, और माध्यमिक ४ । त्रिपिटक के मतानुसार वैसाषिक सभी तत्त्वों को प्रमाण मानते पदार्थ मात्र को क्षणिक तथा आत्मसन्तान परम्परा का छेद अर्थात्—आत्मा

अंडकाओ संभूओलोको—

कर्तृत्व वादी कहा करते हैं कि यह संसार एक अंडे से उत्पन्न हुआ है और भगवान् स्वयम्भूने इस का निर्माण किया है। अंड सृष्टि के मुख्य दो प्रकार हैं। एक बहुत प्राचीन है, जो छान्दोग्योपनिषत् में बताया गया है। दूसरा प्रकार मनुस्मृति में दिखलाया है। दोनों की प्रक्रिया भिन्न २ है और दोनों में बड़ा अन्तर है। उपनिषत् में अंड के साथ स्वयम्भू का कोई सम्पर्क नहीं है जबकि मनुस्मृति की सृष्टि में स्वयम्भू अंडे में प्रवेश करके सृष्टि का निर्माण करते हैं। “संभूओ अडकाओ लोगो” प्रश्न व्याकरण के इस वचनानुसार प्रथम छान्दोग्योपनिषत् की प्रक्रिया ही उपयुक्त ज्ञात होती है। अतः उपनिषद् के अनुसार प्रथम स्वयम्भूत अडसृष्टि का उल्लेख करके फिर मनुस्मृति की अडसृष्टि बतायी जायगी। छान्दोग्योपनिषत् ३, १६ में लिखा है—

असदेवेदमग्र आसीत्—

अर्थ—“सृष्टि से पहले प्रलय कालमें यह जगत् असत् अर्थात् अव्यक्त नाम रूप वाला था। तत्सदासीत्—वह असत् जगत् सन् यानी नाम रूप कार्य की ओर अभिमुख हुआ।

तत्समभवत्—अद्भुती भूत बीज के समान कमसे कुछ थोड़ासा स्थूल बना। तदाखंडं निर्वर्तत—आगे चल कर वह जगत् अंडे के रूपमें बना। तत्सवत्सरस्य मात्रा-साशयत्—”वह एक वर्ष पर्यन्त अणुरूपमें रहा। तन्निरभिद्यत्—वह अणु एक वर्ष के पश्चात् फूटा। ते अण्ड कपाले रजतं च सुवर्णञ्चाऽभवताम्—अंडे के दोनों कपालों में से एक चांदी का और दूसरा सोने का बना। तद्यद् रजतं सेयं पृथिवी—उत्तमें जो चांदी का था उसकी पृथ्वी बनी। यत्सुवर्णं सा यौ—जो कपाल सोनेका था उसका ऊर्ध्वलोक स्वर्ग बना। यज्जरायु ते पर्वता—जो गर्भका वेष्टन था उसके पर्वत बने यदुल्बं स मेघो नीहार—जो सूक्ष्म गर्भ परिवेष्टन था वह मेघ और तुषार बना। या धमनय, तानय—जोधमनिया थीं वे नदियां बन गईं। यद् वास्तेयमुदकं स समुद्र—जो मुत्राशय का जल था उसका समुद्र बना। अथ यत्तद् जायत सोऽसावादित्यः—अन्तर अंडे में से जो गर्भ रूप में पैदा हुआ वह आदित्य बना।

यह अंश की आभूषण पूरा स्वतन्त्र सृष्टि है। इसमें स्वयम्भू-ईश्वर या विष्णु आदि का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। जहाँतक वैदिक साहित्य से हमारा परिचय हुआ है यह इस रंग रंग का वर्णन छान्मोम्योपनिषद् में सफ़लम्भ है।

सपञ्चगा सयंघ निम्निशो—

महर्षि मनु की अंश सृष्टि

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।
 अमृतकर्मविज्ञेयं, प्रसुप्तमिव सर्वतः । ५ ।
 ततः स्वर्णभूर्मगवानप्यक्तो व्यञ्जयभिदम् ।
 महाभूतादि वृषांजा प्रातुरासीत्तमोनुदः । ६ ।
 योऽस्मावतीन्त्रिय ग्राह्य, सृष्टमोऽप्यक्तः सनातनः ।
 सर्वभूतमयोऽचिन्त्य, स एव स्वयमुद्बभूव । ७ ।
 सोऽमिष्याय शरीरात्स्वात्मिसृक्षुर्विविधा प्रजाः ।
 अप एव ससर्जार्दी, तासु भीजमवासृजत् । ८ ।
 तदपहममवर्द्धमे, सहस्रांशुममप्रमम् ।
 तस्मिन्नेव स्युषं प्रज्ञा, सबलोक पितामहः । ९ ।
 आपो नारा इति प्राक्ता, आपो वै नरखनय ।
 ता यदस्यायनं पूर्वं तैव नारायणः स्मृत । १० ।
 यत्तत्कारणमप्यक्त, नित्य सदसदात्मकम् ।
 तद्विमृष्टं न पुरुषो लोके प्रप्रेति कीर्त्यते । ११ ।
 तस्मिन्प्रपद्य न भगवानुपित्वा परियत्सरम् ।
 स्वयमेवात्मनो प्यानातदपहमशरीरं द्विधा । १२ ।
 ताभ्यां न शकसाभ्यां च, दिवं भूमिं च निर्दमे ।
 मण्य प्याम दि-उभाशायणां ग्यानं च शायतम् । १३ ।

अर्थात्--पहले यह संसार अंधकार रूप था, न किसी से जाना जाता और न कोई इसका लक्षण था, तर्क से परे और चारो ओर से गाढ़ निद्रावान् की तरह अज्ञेय था ॥ ५ ॥

तब अव्यक्त रहे हुए भगवान् स्वयंभू पंच महाभूतो को प्रकट करते हुए स्वयं प्रकट हुए ॥ ६ ॥

जो यह अतीन्द्रिय, सूक्ष्म, अव्यक्त, सनातन और सर्वान्तर्यामी अचिन्त्य परमात्मा है, वही स्वयं (इस प्रकार) प्रकट हुआ ॥ ७ ॥

उसने ध्यान करके अपने शरीर से अनेक प्रकार के जीवों को बनाने की इच्छा से सर्व प्रथम जल का निर्माण किया और उसमें बीज डाल दिया ॥ ८ ॥

वह बीज सूर्य के समान प्रभावाला सुवर्णमय अंड बन गया । उससे सब लोक के पितामह ब्रह्मा स्वयं प्रकट हुए ॥ ९ ॥

नर-परमात्मा से उत्पन्न होने के कारण जलको नार कहते हैं, वह नार इसका पूर्व घर (आयन) है इसलिये इसको नारायण कहते हैं ॥ १० ॥

जो सबका कारण है, अव्यक्त और नित्य है तथा सत् व असत् रूप वाला है, उससे उत्पन्न वह पुरुष लोक में ब्रह्मा कहाता है ॥ ११ ॥

एक वर्ष तक उस अंड में रहकर उस भगवान् ने स्वयं ही अपने ध्यान से उस अंड के दो टुकड़े कर दिये ॥ १२ ॥

उन दो टुकड़ों से उसने स्वर्ग और पृथ्वी का निर्माण किया । मध्य भाग में आकाश, आठ दिशार्थ और जल का शाश्वत स्थान निर्माण किया ॥ १३ ॥

इसमें बताया गया है कि पहले भगवान् स्वयंभू प्रकट हुए और जगत बनाने की इच्छा से अपने शरीर से जल पैदा किया, उसमें बीज डालने से वह अंडाकार बन गया ।

ब्रह्मा या नारायण ने अंडे में प्रकट होकर उसको फोड़ दिया, जिससे यह सारा संसार प्रकट हुआ ।

पयावइणा इस्सरेण य कयंति—

प्रजापति-ब्रह्मा ने स्वयं तपस्या करके मनु के द्वारा संसार का निर्माण किया ।
जैसा कि मनुस्मृति में कहा है—

—“द्विधा कृत्वात्मनो देह—मर्देन पुरुषोऽभवत् ।

अर्देन नारी तस्यां स, विराजमसृजत्वञ्च । ३२ ।

जब्या ने, अपने देह के दो टुकड़े किए । एक टुकड़े का पुरुष बनाया और दूसरे भागों टुकड़े की स्त्री बनाई । फिर स्त्री में विराट् पुरुष का निर्माण किया ।

मनु अ० १ श्लो० १२

तपस्त्वत्ताऽपुञ्जश्च ये तु, स स्वयं पुरुषो विराट् ।

त मां विष्ठाऽस्य सर्वस्य, स्रष्टारं द्विजसवमा ॥

जब विराट् पुरुष ने तप करके जिसका निर्माण किया वह मैं हूँ अर्थात् वही मैं मनु हूँ व भेद द्विजों ? निम्नांक समस्त सृष्टि का निमाता मुझे समझ ।

मनु अ० १ श्लो० ३३

अहं प्रजा सिञ्चुस्तु, तपस्तप्त्वा सुदुधरम् ।

पतीन् प्रजानामसृज महर्षी—नादितो दग् । म० अ० १ श्लोक ३४ ।

मनु कहते हैं कि तुम्हारे तप करके प्रजा सर्जन करने की शक्ति मैं देने प्रारम्भ मैं दग महर्षि प्रजापतिजों का उत्पन्न किया ।

मरीचिमन्त्र्यङ्गिरसां पुनस्त्यं पुलह क्रतुम् ।

प्रचेतमं वशिष्टं च, सृगु नारदेष च । म० अ० १ । ३५ ।

जब प्रजापतिजों के नाम थे हैं—(१) मरीचि (२) अग्नि (३) अङ्गिरस् (४) पुलस्त्य (५) पुलह (६) क्रतु (७) प्रचेतस् (८) वशिष्ठ (९) सृगु और (१०) नारद ॥

एत मनुस्तु मत्तान्पान्—असृजद्भूरितजम ।

दवान् देवनिकायां महर्षी धामिर्ताजस । १ । ३५ ।

अथ—इन प्रजापतिजों ने बहुत उजसवी दूसरे मात मनुजों का, दवों का, दवों के स्थान स्वर्गादिकों का तथा अपरिमित तज वाल महर्षिजों को उत्पन्न किया ।

१० ईश्वर मष्टि

यथा चन्द्रमसो धाता, यथा सूर्यमकम्पयत्—

दिपं च पृथिवीं चान्तरिमवथा स्य । अग्न १० । १६० । ३५

अर्थ--यथा पूर्व-पूर्व के समान विधाता ने सूर्य चन्द्र, आकाश, पृथ्वी इन दोनों के मध्यवर्ती भुवन और वाद में सब से ऊपर स्वर्लोक को बनाया ।

न्याय दर्शन में निम्न प्रकार से कहा है--

—“ईश्वरः कारणं पुरुष कर्मा फल्यदर्शनात्—न्या० सू० ४ । १ । १६ ॥

अर्थ--मनुष्य का प्रयत्न न जावे इसलिये कर्म फल प्रदाता के रूप में ईश्वर को कारण मानना आवश्यक है ।

—‘ न पुरुष कर्माभावे फलाऽनिष्पत्तेः । न्या० सू० । ४ । १ । २० ॥

अर्थ--वादी कहता है--यह बात अर्थात् कर्म फलदाता के रूप में ईश्वर की सत्ता की बात नहीं है । क्योंकि पुरुष कर्त्तृक कर्म के अभाव में फल प्राप्ति नहीं होती है इसलिये फल प्राप्ति में कर्म कारण है किन्तु ईश्वर नहीं ।

ईश्वर वादी का कथन--

—“तत्कारितत्वादहेतुः—न्या० सू० ४ । १ । २१ ।

यह कर्म भी तो ईश्वर प्रेरित ही होता है । इसलिये कर्त्तावीन कर्म और कर्माधीन फल मानना हेत्वाभास है, सद्धेतु नहीं ।

पुनश्च--

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति ।

यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म । ५ ।

तै० उप० भृगुवल्ली अनु० १ ।

अर्थ-- जिससे ये प्राणी उत्पन्न होते हैं और जिसी से जीवित रहते हैं । अन्त में सदा के लिये जाते हुए, जिसमें सम्यक् प्रवेश करते हैं, उसी को जानो वही ब्रह्म है ।

इस उपरोक्त अल्प उद्धरणों से उपनिषद् श्रुति, स्मृति एवं न्याय सूत्रों से सृष्टि के विषय में विचार प्रस्तुत किये गये । इनसे भिन्न भी वेद और पुराणों की प्रतिपाद्य विविध प्रकार की मृष्टियां हैं ।

जैसे प्रजापति सृष्टि, आत्म सृष्टि, प्रस्वेद सृष्टि, परस्पर सृष्टि और अङ्कारसृष्टि, आदि इसका परिचय अणु भाष्य में है । इन विषयों को विशेषतया जानने के लिये भारत भूषण शतावधानीजी श्री रत्नचन्द्रजी महाराज कृत मृष्टिवाद और ईश्वर पटें ।

कर्तृत्व वादिमों की विचारणा भ्रान्त और रुचि के अनुसार कल्पित हैं। मुक्ति शून्य हो जाने से ये सारी धारणाएँ मूर्खी हैं।

इनकी असत्यता क लिये देखिए श्रीकृष्ण के उद्गार—

प्रकृतिं पुरुषञ्चैव, विद्वन्नादी उमावपि,
विकारमपि गुणारवैव, विदि प्रकृतिं सम्भवान् ।
कार्यं कारणं कर्तृत्वे, हेतु प्रकृतिरुच्यते ।

पुरुष सुखदुःखानां मोक्तृत्वे हेतुरुच्यते । गी० १३ । १६ । २० ।

अर्थात्—प्रकृति और पुरुष ये दोनों अनादि हैं। विकार १६ और गुण २४ अवस्था ३ इसी प्रकृति से उत्पन्न समझे। कार्य एवं कारण के कर्तृत्व में प्रकृति ही कारण कही जाती है। सुख और दुःखों को मोक्षने के लिये पुरुष हेतु है। इस प्रकार प्रकृति और पुरुष की अनादिता में सारा संसार अनादि सिद्ध होता है।

११ “विष्णुमय जगत्”—

इन्दर को सबव्यापक माननेवाले कहते हैं कि—

जले विष्णु स्थले विष्णु विष्णु पर्वत मस्तके ।
ज्वाला मालाकुले विष्णु, सर्ष विष्णुमयं जगत् ॥१॥
अहं च पृथिवी पार्य ! वाय्वग्नि जलमप्यहम् ।
वनस्पतिगतमाऽहं, सर्षभूतगतोऽप्यहम् ।

अर्थात् जल में स्थल में पर्वत के मस्तक पर और ज्वालामुक्त अग्नि में विष्णु है। सब जगत् विष्णुमय है। हे अशुन ! मैं पृथ्वी हूँ और वायु अग्नि जल भी मैं ही हूँ। वनस्पति में और सब भूता में भी मैं रहा हुआ हूँ। इस प्रकार इन्दर को सब में व्याप्त मानना वांछित है। यदि ‘ज्वालोतीति विष्णु’ इस व्युत्पत्ति से अस्ता को विष्णु मान कर कहा जाय तो सत्य ही सकता है, किन्तु बुद्धिमय जगत् को सबिज्ञानरूप विष्णुमय मानना अनुभव विरुद्ध है। इसलिये अब चैतन-जगत् को एकाग्र विष्णुमय कहनेवाले मृपावादी हैं।

“एक आत्मा अकारका—

अद्वैतवादी कहते हैं कि—“एक एव हि भूतात्मा, भूते भूते व्यवस्थित । एक मा बहुधा चेत्, हरयत् जल चन्द्रवत् ॥ अर्थात्—प्रत्येक प्राणी में एक ही आत्मा

रही हुई है, वह जल में चन्द्रविम्ब की तरह एक और अनेक रूप से दिखाई देती है। धारतव में वह एक और अकारक है। आत्मा में शुभाशुभ कर्म का कर्तृत्व नहीं है। वह मात्र भोक्ता है।

उनकी दृष्टि से आत्मा का स्वरूप निम्न प्रकार है—

अमूर्तश्चेतनो भोगी, नित्यः सर्वगतोऽक्रियः

अकर्ता निर्गुणः सूक्ष्म आत्मा कापिल दर्शने ॥ पण्डितानां

अर्थात् कपिल दर्शन में आत्मा अमूर्त, चेतन, भोक्ता, नित्य सर्वव्यापी और अक्रिय है। अकर्ता सत्य, रज, तम गुणों से रहित और अति सूक्ष्म है।

उपरोक्त कथन प्रमाण से वाधित है। संसार में कोई सुखी तो कोई दुखी देखा जाता है। सब में एक ही आत्मा हो तो सब की एक ही स्थिति होनी चाहिये किन्तु ऐसा नहीं है। इस तरह आत्मा को कर्म का कर्ता न मान कर मात्र भोक्ता ही मानना विरुद्ध है। क्योंकि कर्तृत्व के बिना भोक्तृत्व नहीं होता। बिना क्रिये भोग मानने पर कृत नाश और अकृताभ्यागम रूप दोषोपपत्ति हो जायगी जिससे चोरी न करने पर भी साहूकार को दण्ड पाना होगा जोकि अनुभव विरुद्ध है। दूसरी बात भोग भी तो एक क्रिया है। भोगते समय भी भोग क्रिया का कर्ता तो कहा ही जायगा। अतः आत्मा को एकान्त रूप से एक अकारक और भोक्ता कहनेवाले मूढावादी हैं।

सोम्य आचार्य भी इसी विचार सरणि के हैं। जैसे कि—“प्रकृतिः कर्त्री, पुरुषस्तु पुष्कर पलाशवन्निर्लेपः।

समग्र नय की दृष्टि से समानता को लक्षित कर के जैनागम में भी ‘एगे आया, आत्मा को एक माना है। किन्तु व्यक्तित्व की दृष्टि से उनकी पृथक् सत्ता का निषेध नहीं किया गया है। अतएव वह सत्य है। ऐसे निश्चय नय की दृष्टि से शुद्ध आत्मा कर्मों का कर्ता और भोक्ता भी नहीं है, किन्तु अशुद्ध दशावाली यानी माया युक्त आत्मा कर्म का कर्ता और भोक्ता है। एकान्त कथन में अपेक्षा नहीं रहती। अतः वह मिथ्या है।

टीकाकार ने इसका प्रतिवाद निम्न प्रकार से किया है—

तथा—अकारकः—‘सुखहेतूनां पुण्य पापकर्मणामकर्ताऽऽत्मैत्यन्ये वदन्ति, अमूर्तत्वं नित्यत्वाम्यां कर्तृत्वाऽनुपपत्तेरिति। कुदर्शनता चास्य।

ससार्यात्मनो मूर्तत्वेन परिणामित्वेन च कर्तृत्वोपपत्तेः । अकर्तृत्वे चाऽ
 कृतान्पागम प्रसंगात् । तथा वेदकथ-प्रकृतिजनितस्य सुकृत दुष्कृतस्य च
 प्रतिबिम्बोदय न्यायेन मोक्षा । अमूर्तत्वहि कदाचिदपि वेदकृता न युक्ता
 आकाशम्येवेति कुर्वर्धनता चास्य । तथा सुकृत दुष्कृतस्य च कर्मण करणा-
 नीन्द्रियाणि कारणानि हेतवः सर्वथा सर्वप्रकारैः सर्वत्र च देशे काले च न
 वस्त्वन्तरं कारणमिति भावः करणान्यकादश, तत्र वाक् पाणि पाद पायू-
 पस्य लक्षणाणि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि, स्पर्शनादीनि तु पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि
 एकादशं व मन इति । एषां चाऽचेतनावस्थायामकारकत्वात्पुरुषस्यैव कार-
 कत्वेन कुर्वर्धनत्वमस्य ।

यदाह—“नैनं क्षिदन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पादकः ।

न चैनं प्लवदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः ॥१॥

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एवञ्च ।

नित्य सर्वगत स्थायु-रश्चक्षोऽयं सनातनः ॥२॥

असञ्चैतत्—‘एकान्त नित्यत्वे हि सुख दुःख बन्ध मोक्षाद्यभावप्रसं-
 गात् । तथा निष्क्रियः—सर्व व्यापित्यनाऽवकाशाऽभावात्—गमनाऽगम-
 नादि क्रियावर्जितः । असञ्चैतत्—देहमात्रोपक्षम्पमानं तद्गुणत्वेन
 तन्मियतत्वात् । तथा निर्गुण-सत्परजस्तमोऽलक्ष्य गुणत्रय व्यतिरिक्त-
 त्वात् । प्रकृतेरेव बोधे गुणा इति । यदाह—‘अकृता निर्गुणो मोक्षा
 आम्ना कापिददर्शने । इति । असिद्धता चास्य सर्वथा निर्गुणत्वे, चैतन्यं
 पुरुषस्य स्वरूपमित्यभ्युपगमात् । तथा अनुपलेपकः कर्मबन्धन रहितः ।
 आह—‘यस्माच्च बध्यते नापि मुच्यते नापि संसरन् । संसरति बध्यते
 मुच्यते च नानाभया प्रकृतेः । इति । एतदप्यसत्—मुक्ताऽमुक्तपारम
 विशेषप्रसंगात् ॥ टी०

१२. अट्टारस कम्मकारणा—

चोर और चोर के १८ प्रसूति स्थान—

चौरः १ चौरापको २ मन्त्री ३ भेदज्ञः ४ काणककयी ॥

अन्नदः ६ स्थानदश्चैव ७ चौरःसप्त विधःस्मृतः ॥ टीका ॥

अर्थात् १ स्वयं चोरी करनेवाला, २ चोरी करानेवाला, ३ चोर को गुप्त सलाह देनेवाला, ४ चोरी के लिये भेद बतानेवाला या चोर के भेद को छिपाने वाला, ५ चोरी का भाल खरीदनेवाला, ६ चोर को अन्न देनेवाला, ७ चोर को स्थान देकर रखनेवाला सात प्रकार के ये सब चोर कहे गये हैं ।

१८ चोर के प्रसूति स्थान

भलनं १ कुशलं २ तर्जा ३ राजभागो ४ वलोकनम् ५ ।

अमार्गदर्शनं ६ शय्या ७ पदमङ्गस्तथैव च ॥ १ ॥

विश्राम ८ पादपतनम् ९ आसनं १० गोपनं ११ तथा ।

खण्डस्य खादनं १२ चैव तथा १३ न्यन्माहराजिकम् ।

पत्रा १४ गन्धु १५ दक १७ रज्जुनां १८ प्रदानं ज्ञानपूर्वकम् ।

एता प्रसूतयो ज्ञेया अष्टादश मनीषिभि ॥ ३ ॥

१ तुम क्यों डरते हो ? सब कुछ निपट लूंगा इत्यादि वचन से चोर को प्रोत्साहित करने को भलन कहते हैं । २ मिलने पर कुशल वार्ता पूछना । ३ हाथ आदि से चोरी के लिये चोर को सकेत करना, ४ राज्य के महसूल को छिपाना-नहीं देना । ५ चोरी के लिये सन्धि आदि देखना या चोरी करते देखकर चुप रह जाना, ६ खोजनेवालों को चोरों के गलत मार्ग बताना, ७ चोरों को सोने के लिये शय्या आदि देना, ८ चोर के पद चिह्नों को मिटाना, ९ चोर को द्वार में विश्राम देना, १० चोर को प्रणाम करना-सत्कार देना, ११ चोर को बैठने को आसन देना । १२ चोर को छिपा कर रखना, १३ चोर को पक्वान्न खिलाना, १४ माहराजिक-चोर को आवश्यक पदार्थ गुप्त रूप से पहुँचाना, १५ अकावट मिटाने के लिये चोर को गर्म पानी व तैल आदि देना, १६ अन्न सिंक्राने के लिये चोर को अग्नि देना, १७ पीने के लिये चोर को ठंडा पानी देना, १८ चुरा कर लाये हुए पशुओं को बाधने

के लिये छोरी दना । ये अठारह कर्म करनेवाले भी जोर गिने जाते हैं । इसलिये इन कर्मों को जोरी क प्रवृत्ति स्थान कहते हैं ।

१३ अरिहंता—

राग द्वेष आदि विकारों को चीतकर त्रिहंति चीतरागता प्राप्त की है, केवल ज्ञान, विशिष्ट न्न निग्रहों को अरिहंत कहते हैं । शब्दार्थ के अनुसार सामान्य केवली भी अरिहन्त होते हैं । किन्तु यहाँ उनसे अभिप्राय नहीं है । तीर्थङ्कर न स कर्म को भोगने वाले घमोक्षम पुण्यों से यहाँ प्रयोजन है । वे सुरेन्द्र व नरेन्द्र के पूजनीय एवं अष्ट महाप्रातिहार्य के धारक होते हैं । उनका जन्म माता पिताओं का ही नहीं किंतु त्रिकोटी क संज्ञी मात्र को ज्ञोद उत्पन्न करता है । ये जन्म काल से ही तीन ज्ञान का लेकर आते हैं । वीर्य प्रद करने पर चौथा मन-पर्याय ज्ञान उत्पन्न होता है । फिर भी अब तक कैवल्य प्राप्त नहीं होता । तब तक उपदेश नहीं देते । तपस्या के द्वारा अज्ञान और मोह को जब सबका क्षय कर लें तब चीतराग द्वारा को पाकर ही कल्याण मार्ग का उपदेश देते हैं । और बहुतों को तीर्थ की स्थापना करते हैं ।

जगत के चराचर पदार्थ मात्र, क ज्ञाता और द्रष्टा होने से ये सर्वज्ञ कहते हैं । इनके ज्ञान पर किसी प्रकार का आचरण नहीं रहता । प्रत्येक उत्सर्पिणी और अव सर्पिणी काल में यहाँ क्रमशः २४ अरिहन्त होते हैं ।

विदेह क्षेत्र में न्यूनातिन्यून भी २० तीर्थङ्कर अवश विराजमान होते हैं जो विदेह मान कहलाते हैं, किन्तु भारत भूमि में सदा अरिहन्त नहीं होते । गत काल में यहाँ २४ अरिहन्त हो गये हैं । उनका नाम प्रसिद्ध हैं । विशेष जानने के लिये समस्त-याज्ञ आदि शास्त्र देखना चाहिए ।

१४ चक्रवर्ती-चक्रवर्ती—

चक्रवर्त्त के द्वारा दिग्विजय करमेवाज्ञ साधभोग राजा को चक्रवर्ती कहते हैं । ये पट्टमण्ड रूप समस्त भारत क स्वामी हान हैं । लौकिक पुण्यों में इनसे बढ़ कर पुण्यवन्तवाला दूसरा नहीं जाना । मरुत, पश्यत और महाविदेह, विजय—इन सब पदों में पृथक् २ चक्रवर्ती हान हैं ।

भारत और पश्यत को अवश एक उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी काल में १२ चक्र

वर्ती होते हैं। महाविदेह की तरह यहा सर्वदा इनकी सत्ता नहीं रहती। नव निधान, १४ रत्न और कसेडों ग्रामों के ये अधिपति है। चक्रवर्ती की दो ही गति है। राज्य और कामभोगों को त्याग कर ये दीक्षा ग्रहण करलें तो मोक्ष या देवलोक मे जाते है। जो दीक्षा ग्रहण नहीं करे तो नरक में जाते है, किन्तु कुछ कर्म अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल के बाद तो वे भी मुक्ति प्राप्त कर लेते है। अभी गत काल में यहां १२ चक्रवर्ती हो गये हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१ भरत, २ सगर, ३ मधवा, ४ सनत्कुमार, ५ शान्तिनाथ, ६ कुन्धुनाथ, ७ अरनाथ, ८ सुभूम, ९ महापद्म, १० हरिषेण, ११ जय, १२ ब्रह्मन्त । (समवायाग)

१५. चौदह रत्न

ऊपनी जाति के सर्व भेट्ट पदार्थ को रत्न कहने की रीति है। पार्थिव रत्न की तरह ये भी चौदह है। इनमे ७ पञ्चेन्द्रिय रत्न हैं और सात एकेन्द्रिय रत्न हैं।

जैसे—(१) सेनापति रूपरत्न, (२) गाथापति रत्न, (३) पुरोहित रत्न, (४) अश्व रत्न, (५) धर्मांक रत्न, (६) गज रत्न, (७) स्त्री रत्न, (८) चक्र रत्न, (९) वज्र रत्न, (१०) चर्म रत्न, (११) मणि रत्न, (१२) कागणि रत्न, (१३) खड्ग रत्न, (१४) दण्ड रत्न। प्रत्येक रत्न की हजार २ देव सेवा करते हैं। अतुल पुण्य से ये चक्रवर्ती को प्राप्त होते हैं।

१६. नवनिधि—नवनिधि

विशाल एव अज्ञय खजाने को निधि कहते हैं। जो संख्या मे नौ प्रकार की है, और (ये निधियां) तपस्या के द्वारा चक्रवर्ती को सिद्ध होती हैं। देवाधिष्ठित होने के कारण पुण्य हीन को सुलभ नहीं होती।

गंगा नदी का आरम्भ इनका मूल स्थान हैं। इनके नाम इस प्रकार है—

नैसर्पे पंडुरयण, पिंगलते सन्दरयण महापउमे ।।

कालेय महाकाले, माणवय महानिधी संखे ॥

जैसे—(१) नैसर्प निधि, (२) पाण्डु निधि, (३) पिङ्गल निधि, (४) सर्प रत्न, (५) महापद्म, (६) काल, (७) महा काल, (८) माणवक, (९) शख निधि। विशेष परिचय के लिए स्थानाङ्ग सूत्र के नवमस्थान को देखें।

१७ बलदेव—

1

ये त्रिखरह के भोक्ता वासुदेव के बड़े भाई होते हैं इनके गर्भ में आन पर माता को चार उत्तम स्वप्न दिखाई दते हैं। अक्षयर्तों की तरह ये भी प्रत्येक उत्तरिणी और अपरुपिणी काल में नौ होते हैं। बलदेव वासुदेव का आत्मा प्रेम आधार हाता है। वे सब स्वर्ग या मोक्ष के ही अधिकारी होते हैं। इस अपरुपिणी काल में नौ बलदेव हो गये हैं। उनके नाम निम्न प्रकार हैं—

(१) अचल बलदेव, (२) विजय (३) मद्र, (४) सुप्रभ, (५) सुवर्तन, (६) आनन्द, (७) मन्त्र, (८) पद्म बलदेव (९) वलराम-बलदेव।

१८ वासुदेव—

अपने बलवीर्य से तीन खरह का साधाम्य भोगने वाले बस-वत्स पुरुष को वासुदेव कहते हैं। इनके जन्मकाल में माताजी सात स्वप्न देखती हैं। इनकी आदि अक्षयर्तों से आवी होती है। १६ हजार राजा इनके अधीन होते हैं। बलदेव की तरह ये भी नौ होते हैं। १६ हजार भव इनकी सेवा करते हैं। प्रति वासुदेव का मार कर ये राजा बनते हैं। पूर्व जन्म में निषाण करके ये वासुदेव होते हैं। इसलिये प्रथम प्रहण नहीं कर पाते हैं भारतवर्ष में इस काल ६ वासुदेव हो गये हैं। उनके नाम निम्न लिखित हैं—

(१) त्रिष्ट (२) द्विष्ट (३) स्वयम्भू (४) पुरुषोत्तम (५) पुरुष सिंह (६) पुरुष पुण्डरीक (७) वृष (८) लक्ष्मण और (९) भीष्म।

१९ लक्ष्मण वंशज—

लक्ष्मण यम्बून और गुणों से उत्तम होने पर ही उत्तम पुरुष कहते हैं। यह लक्ष्मण आदि शरीर के अंगों पर स्थित आदि या शुभ चिह्न होते हैं उनको लक्ष्मण कहते हैं। तिल और मप इन्धन कहलाते हैं चैव। श्रीवार्ध गान्धीय आदि गुण हैं। प्रकाशान्तर से मान जमान और प्रमाण से युक्त होना लक्ष्मण कहा गया है।

जैमिनि—“माणुग्माण्यमाण्यदि लक्ष्मणं वंशजं तु मत्तमाह।

मन्त्र च लक्ष्मणं, वंशजं तु पञ्चा मण्डपम् ॥

अथानु—मान, जमान और प्रमाण आदि लक्ष्मण तथा मप, तिल इन्धन

कहाते हैं। अथवा सहज जन्म से होने वाले को लक्षण और पीछे होने वाले को व्यञ्जन कहते हैं।

माणुम्माण्प्रमाण—

मनुष्य की श्रेष्ठता समझने के लिये तीन बातें बताई गई हैं। मान, उन्मान और प्रमाण। इन तीनों से जो परिपूर्ण हो वह श्रेष्ठ समझा जाता है। इनका स्वरूप निम्न प्रकार है—जिस पुरुष की परीक्षा करनी हो उसको जलसे भरे हुए कुण्ड में बिठाया जाय। जब उस कुण्ड में से एक द्रोण प्रमाण पानी बाहर निकल जाय, तब उस पुरुष को मानोपेत समझना चाहिए। दूसरी बात उन्मान—पुरुषों को तुला में बैठा कर तोला जाय यदि वह तुलने में अर्द्धभार प्रमाण हो तो उन्मान युक्त समझना चाहिए। तीसरी परीक्षा प्रमाण से है डोरी से नापने पर जो मनुष्य अपनी अङ्गुल से १८ अङ्गुल ऊँचा हो तो उसे प्रमाणोपेत कहा गया है।

जैसे कि—“जलद्रोण १ अर्द्धभारं २, समुहाडं समूसिओवजो शवड ।

माणुम्माण्प्रमाणं, तिविहं खलुलकखणं एयं ॥

इसी मानोन्मान प्रमाण- सम्पन्नता को लक्षण भी कहा गया है।

दशार

१ समुद्र विजय २ अक्षोभ ३ स्तिमित ४ सागर ५ हिमवन्त ६ अचल ७ धरण ८ पूरण ९ अभिचन्द और १० वसुदेव। ये दश दशार कहल ते हैं*।

२०. बहत्तर कलायें

कलयते-सखयायते वैशिष्ट्य मनया सा कला—जिस के द्वारा क्रिया में विशिष्टता-सुन्दरता-समझी जावे उसको कला कहते हैं। पुरुष की बहत्तर कलायें-कही गयी हैं। विभिन्न शास्त्रों में उसके विभिन्न नाम मिलते हैं। इसके समाधान में समवायान्न के वृत्तिकार अभयदेव सूरि लिखते हैं कि—बहुतराणि च सूत्रे तन्नामान्युपलभ्यन्ते, तत्र च कासाचित् कासुचिद्-तर्भाओवगन्तव्य इति ।”

१ लेखन कला २ गणितकला ३ रूप निर्माणकला ४ नाट्यकला ५ गीत-गान कला ६ वाद्यकला ७ स्वर तान ८ पुष्कर-मृदंग आदि संगीत ज्ञान ९ समताल ज्ञान १० ध्रुतज्ञान ११ जनवाद १२ पर काव्य-आशु कवित्वकला १३ अष्टपद ज्ञान

* मैथुन मूलक तथा ५ था परिशिष्ट में देखें।

१४ एक सृष्टिका १५ पाकज्ञान १६ पान विधि १७ वस्त्र विधि १८ शयन विधि
 १९ धार्या २ प्रहोसिका २१ मागधिका २ गाथा २३ श्लोक निर्माण २४ गन्ध वृत्ति
 २५ मधुसिक्त २६ आमरणाधि ७ तन्त्री परिकर २८ स्त्री लक्षण २९ पुत्रपलक्षण
 ३ हय (अथ) लक्षण ३१ गज लक्षण ३२ गोण (गजापीय) लक्षण ३३ कुट्ट
 लक्षण ३४ मंडा लक्षण ३५ चक्र लक्षण ३६ मंत्र लक्षण ३७ वृक्ष लक्षण ३८ अंसि
 लक्षण ३९ मत्स्य लक्षण ४ काठणी लक्षण ४१ चम लक्षण ४२ चन्द्र लक्षण
 ४३ रवि-चर्चा ४४ राहुचर्चा ४५ मरुचर्चा ४६ सीमाव्यकर ४७ दुर्भागकर ४८ विद्या
 गत ४९ मन्त्र गत ५० रहस्यगत ५१ समा संचार ५२ व्यूर ५३ प्रतिव्यूह ५४ दंडभा
 वार निवेश ५५ नगरमान ५६ वास्तुमान ५७ वास्तु निवेश ५८ नगर निवेश ५९ शु
 शास्त्र ६० चक्र प्रयोग ६१ अथ शिक्षा ६२ इत्नी शिक्षा ६३ अनुवेद ६४ हिरयवपाक
 ६५ सुवर्णपाक ६६ मणिपाक ६७ धातुपाक ६८ युद्ध (बाहुयुद्ध, कवायुद्ध, मुष्टियुद्ध,
 मज्ज युद्ध, महायुद्ध) ६९ सूत्र लेख चंद्रलेख, नाक्षी का लेख, वर्ष लेख ७० पत्र
 लेखन, पत्र लेखन, ७१ संक्षेपन निर्माणकरण ७२ राहुनयन।

(पंचम अक्षर सा. भाषांग ७९ पृ. ७८)

समिति के समवायों में टीकाकार लिखते हैं कि कला विभाग की एक शास्त्री
 से जानना चाहिये। यद्यपि विद्वत् कलाओं से सम्बद्ध पत्रिका के वृत्तरे वृत्तकार
 में ७९ कलाओं का उल्लेख कुछ मित्राकार से मिलता है तथापि अम की दृष्टि से
 दोनों का एक दूसरे में अन्तर्भाव हो जाता है।

२१ महिला-गुण

१ नृत्य कला २ औचित्य कला ३ चित्रकला ४ वस्त्र ५ मन्त्र ६ वस्त्र ७ ज्ञान
 ८ विज्ञान ९ वृद्ध १० अक्षय मन ११ गीतगान १२ वाद्यमान १३ मेघवृष्टि १४ कला
 कृष्टि १५ धाराम, रापण-वगीचा छगाना १६ आकार गपन १७ धर्म विचार
 १८ राहुन विचार १९ क्रिया कल्पन २ संकल्प अथवा २१ मसाद नीति २२ धर्म
 नीति २३ वाली वृद्ध २४ सुवर्ण सिद्धि २५ सुरभि नैत्र २६ सीता सभारण २७ गज
 मुरग परीक्षण २८ स्त्री पुत्र लक्षण २९ सूत्र-२११ अथ ३ अष्ट दश विधि ज्ञान
 ३१ तरुण मुष्टि ३२ वस्तु सिद्धि ३३ वृद्ध क्रिया ३४ कामक्रिया ३५ पत्रमम ३६ सार
 परिकर ३७ अक्षय यग ३८ वृद्धयग ३९ हस्तपत्र ४० वचन पट्ट ४१ माय
 विषय ४२ वाद्ययग विधि ४३ सुवर्ण यग ४४ साक्षि व्ययन ४५ कज कयन ४६ युद्ध

मथन ४७ वक्रोक्ति जल्पन ४८ काव्य राक्ति ८६ स्फार वेश ५० सञ्जल भाषा विशेष
२१ अविधान ज्ञान ५२ आभरण परधान ५३ नृत्योपचार ५४ गृहाचार ५५ शास्त्र
वरण ५६ परनिराकरण ५७ धान्यरन्धन ५८ केश बन्धन ५९ वीणादिनाद ६०
चित्तव्याघाद ६१ अङ्गविचार ६२ लोकव्यवहार ६३ अन्ताक्षरिका ६४ प्रश्नप्रहेलिका ।

(कल्पसूत्र ६ चतुर्थसूत्रगत २१०)

२२. नवकोटि

अहिंसा व्रत की शुद्धि के लिये साधु साध्वी नवकोटि विशुद्ध भिक्षा ग्रहण करते हैं। जैसे—१ हिंसा करना नहीं, २ कराना नहीं, ३ करते हुए का अनुमोदन करना नहीं, ४ स्वयं भोजन पकाना नहीं, ५ पकवाना नहीं, ६ पकानेवाले का अनुमोदन भी करना नहीं, ७ खरीदना नहीं, ८ खरीदवाना नहीं, ९ और खरीदनेवाले का अनुमोदन करना नहीं ।

उपरोक्त नवकोटिया मन, वचन और काय रूप तीनों योग से समझनी चाहिए ।

२३. एषणा के दश दोष—

आहार आदि ग्रहण करने को ग्रहणैषणा अथवा एषणा कहते हैं इसके दश दोष हैं। जैसे कि—‘सचियमविस्वय-निग्रिस्त-पिहिय साहरिय-दायगुम्मी से । अप-रिण्य भित्त-अश्रिय, एसण दोसा, दस हवति ॥१॥

(१) संचिय-आधा बर्ष आदि दायों की शङ्कावाले आहार आदि को लेना शङ्कित दोष है। (२) मक्खिय-सचित्त वस्तु से स्पर्शशुक्त भरे हुए हाथ या चम्मच आदि से दिये गये आहार आदि को लेना अक्षित दोष है—अक्षित के दो भेद हैं, सचित्त अक्षित और अचित्त अक्षित । पृथ्वी, जल और वनस्पति की अपेक्षा सचित्त अक्षित के तीन प्रकार हैं। सचित्त मट्टी से हाथ आदि मर जाना पृथ्वीकाय अक्षित है। अप काय में पुर कर्म है—दान के पहले साधु के निमित्त हाथ आदि सचित्त पानी से धोना पुर कर्म है। दान देकर यदि धोया जाय तो पञ्चात्कर्म है। देते समय हाथ आदि जोड़े से गीले हों तो निग्ध दोष है। जल का सम्बन्ध हाथ आदि पर स्पष्ट दिखे तो वह उदकाद्र दोष है। हाथ आदि में यदि कुछ समय पहले काटे हुए फल या पत्ती आदि का अंश लगा हो तो वनस्पतिकाय अक्षित है। अचित्त अक्षित दो तरह का है। गर्हित और अगर्हित। हाथ आदि में कोई धृष्ट वस्तु लगी हो तो

यह गर्हित है। घृत, दुग्ध आदि लगा हो तो वह अगर्हित है। सञ्चित अञ्चित साधु के लिये सर्वथा अक्षयनीय है। अञ्चित अञ्चित में केवल 'घृणित' वस्तुवाङ्मा गर्हित अक्षयनीय है, किन्तु घृतादि(से सू) अगर्हित नहीं।

(३) निक्षिप्त—सञ्चित पर रखी हुई वस्तु लेना निक्षिप्त होय है, सञ्चित के घृणी आदि छ' प्रकार हैं।

(४) पिष्टिप—वेने योग्य वस्तु सञ्चित के द्वारा ढकी हो तो उस लेना पिष्टिप होय है।

(५) माह्रिय—असूजनी-संपट्टेवाली-वस्तु निकालकर उस वरतन से दिवा हुआ आहार लेना साह्रिय होय है।

(६) हायक—बालक आदि अयोग्य हाता से आहार आदि लेना हायक होय है। घर के मातृक स्वयं बालक से विकारों तो होय नहीं।

(७) वम्मी से—सञ्चित या मित्र के साथ मिली हुआ आहार लेना वम्मीय होय है।

(८) अपरिण्य—अग्निमें पूरा शब्द परिण्यत नहीं हुआ हो वम्मी वस्तु लेना अपरिण्य होय है।

(९) क्षिप्त—तरकाक की लीपि हुई भूमि से लेना क्षिप्त होय है। पक्कन मार्गो द्वारा में दूध-इदी आदि लेपवाली वस्तु लेने में क्षिप्त होय माना है। किन्तु यह ठोका नहीं लगता। प्राचीन उद्धारण और परम्परा से वह बाधित ठहरता है, अतः प्रथम अर्थ ही ठीक है।

(१०) छद्रिय—जो अंश रूप से नीचे गिर रहा हो, जमा आहार लेना छद्रिय होय है। इसमें भीष हिंसा का भय है।

य इस हाप साधु और गृहस्थ दोनों के निमित्त से लगते हैं।

हायक हाप ४ प्रकार के कह गये हैं जिसमें बाल, बूढ़, अंगार, अग्नि गुर्निणी बालपरसा आदि प्रमुख हैं।

२४ उग्गमुप्यायणसणामुद्धं

उद्गम, उत्पादन और उपपत्ति दोनों में उचित शुद्ध मिष्टा ही मुनि को ग्रहण ग्रहण करनी चाहिये। यहाँ तीन प्रकार के हाप कह गये हैं जो उद्गम, उत्पादन उपपत्ति के नाम से समझे जायें हैं। इनका उपपत्ति और ग्रहणपत्ति के होय भी

हते हैं। उत्पत्ति स्थान मे गृहस्थो के द्वारा लगने वाले दोष उद्गम कहाते है। जो प्रकार के है, जैसे कि—

आहाकम्मुदेसिय पूर्वकम्मे य मीसजाए य।

उवणा पाहुडियाए, पाओयर कीय पामिन्वे ॥ १ ॥

परियट्टिए अभिहडे, अविमन्न मालोहडे इय।

अच्छिज्जे अणिसिद्धे, अज्झोयरए य सोलसमे ॥ २ ॥

(१) आवाकर्म--किसी एक खास साधु के निमित्त से पट्काय का आरम्भ करके राचित या अचित्त वस्तु को सिम्झाना आधाकर्म कहलाता है। यह दोष चार प्रकार से लगता है। प्रति सेवन -आधा कर्म आहार का सेवन करना। प्रति-क्षण--आधाकर्म आहार के लिये निमन्त्रण स्वीकार करना। संवसन-आधाकर्म भोगने वालो के साथ वसन। अनुमोदन-आधाकर्म भोगने वालो की प्रशंसा करना, यह आधाकर्म दोष है।

(२) औद्देशिक--समस्त याचको के लिये तैयार किये गये आहार को औद्देशिक कहते हैं। इसके दो भेद है। ओष और विभाग। इनसे अपने लिये होती हुई सोई से भिक्षुओं के लिये भी और अविक मिलाना ओष है। विवाह आदि उत्सव में याचको के लिये अलग निकाल कर रखना विभाग है। (यह उद्दिष्ट, कृत और कर्म के भेद से तीन प्रकार का है। फिर प्रत्येक के उद्देश, समुद्देश आदेश और समादेश इस तरह चार २ भेद हैं।) किसी साधुके लिये बनाया गया। आहार अगर वही साधु ले तो आधा कर्म। दूसरा ले तो औद्देशिक है। आधा कर्म पहले से हो किसी खास निमित्त से बनाया जाता है किन्तु औद्देशिक पहले या बाद में साधारण दान के लिये कल्पित किया जाता है।

(३) पूतिकर्म--शुद्ध आहार से आधाकर्मादि अशुद्ध-आहार का अंश मिलना पूतिकर्म है। पूतिकर्म दोष से दूषित आहार ही नहीं किन्तु वह पात्र भी सयमी के लिये अकल्पनीय है।

(४) मिश्र जात--अपने और साधु उभय के लिये पकाया हुआ आहार मिश्र जात है। यावदर्थिक, पाखडि मिश्र और साधु मिश्र ये मिश्रजात के तीन भेद हैं। अपने और सभी याचको के लिए बना हुआ आहार यावदर्थिक है। स्व के निमित्त

और साधु सन्यासियों के निमित्त बना हुआ पाकवि मित्र है तथा कवल अपने किये और साधु के किये बनाया हुआ आहार साधु मित्र है।

(५) स्थापन—साधु को देने के लिये आहार को अलग रख देना स्थापना होप है।

(६) प्रासुतिका—साधु को सरस आहार पहराने के लिये जीवनवार के समय को भागे पीछे करना प्रासुति का होप है।

(७) प्रादुष्करण—बन्धे में रखी हुई आहार की वस्तु लाने के लिये उजासा करना। अथवा बन्धे में से प्रकाश में लाना प्रादुष्करण होप है।

(८) श्रित—साधुओं के किये आहार खरीद कर लाना श्रित होप है।

(९) प्रामित्य (पामित्ये)—साधु के किये उधार लिया हुआ आहार लाना प्रामित्य होप है।

(१०) परिवर्तित—साधु के किये अवल अवल करके किये हुए आहार में परिवर्तित होप होता है।

(११) अभिहृत—साधु लिये गृहस्थ द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान में लाए हुए आहार में अभिहृत होप है।

(१२) वक्षिप्त—साधु को भी आवि देने के लिये कुम्भी आदि का मुल खोल देना वक्षिप्त होप है।

(१३) माक्षापहत—सुविधा से हाथ नहीं आ सके ऐसे ऊँच नीचे स्थान से निःसरणी आवि साधुओं के द्वारा उतारकर देना माक्षापहत होप है। इसमें ऊपर नीचे, बाम, दक्षिण इन चार स्थानों के ज्ञान में माक्षापहत चार प्रकार का है। इन चारों में प्रत्येक के अर्धस्य, उत्कृष्ट और मध्यम रूप तीन ९ भेद हैं। एही उठाकर हाँके आदि से उतारके देना अर्धस्य और निःसरणी पर से लाकर देना उत्कृष्ट है। होप मध्यम माक्षापहत समझे।

(१४) आच्छेद्य—दुर्बलों से या अभिर्तों से बल प्रयोग पूर्वक लेकर साधुजी को देना आच्छेद्य-होप है। इसका तीन भेद हैं। स्वामिनिषयक, प्रमुक्षिषयक, और श्रतनिषयक। समस्त भ्राम का मालिक स्वामी तथा अपने घर का मालिक प्रमु बहा जाता है। चार और छुट्टों को श्रत पदत हैं। इसमें कोई किसी से कुछ चीज घर साधुजी को द तो ममरा तीन द्राप दगध हैं।

(१५) अनिमृष्ट—किसी वस्तु के एक से अधिक मालिक होने पर सब की इच्छा बिना देना अनिमृष्ट दोष है।

(१६) अध्यवपूरक—साधुओं का आगमन सुन कर अपने लिये होती रसोई में अधिक सामग्री मिला देना अध्यवपूरक दोष है।

उपरोक्त उद्गम के १६ दोषों का निमित्त दाता होता है।

२५. गवेषणा उत्पादना के १६ दोष—

धाई दूई निमित्ते, आजीव वणीमगे तिगिच्छाय ।

कोहे माये माया, लोभे य हवंति दस एए ॥ १ ॥

पूर्व पच्छा संथव, विजा मंते य चुएण जोगेय ।

उप्पायणाइ दोसा, सोलसमे मूलकम्मं य ॥ २ ॥

(१) धात्री—धाई माता के जैसे कार्यों को स्वयं करके अथवा धाई माता को नौकरी दिला कर आहार लाभ करना धात्री दोष है।

(२) दूती—दूती कर्म—गुप्त या प्रकट सन्देश पहुंचाकर आहार पाना दूती दोष है।

(३) निमित्त—शास्त्र से या कल्पना से शुभ अशुभ निमित्त बता कर आहार लाभ करना निमित्त दोष है।

(४) आजीव—प्रकट या अप्रकट रीति से अपनी जाति एवं कुल का परिचय देकर आहार लाभ करना आजीव दोष है।

(५) वनीपक—जैन, बौद्ध, वैष्णव आदि में जहां जिसका आदर हो, वहां बैसा धन कर अथवा अपनी दीनता दिखाकर आहार लाभ करना वनीपक दोष है।

(६) चिह्नित्सा—वैद्यवृत्ति से आहार पाना चिह्नित्सा दोष है।

(७) क्रोध—क्रोध कर के अथवा गृहस्थ को शाप आदि का भय दिखाकर आहार लाभ करना क्रोध दोष है।

(८) मान—अभिमान से अपने को प्रतापी, तेजस्वी, बहुश्रुत बताते हुए प्रभाव जमाकर आहार लाभ करना मान दोष है।

(९) माया—वञ्चना या झूठ आदि से आहार लाभ करना माया है।

(१०) लोभ—आहार में लोभ करना, आहार के लिये जाते समय लालच से

निश्चय कर के जाना कि आज तो असुख वस्तु ही सार्योगे उस वस्तु के न मिलने पर उसके बिने मदकता यह सोम दाप है।

(११) प्राक् पश्चात् संस्तव—आहार दन के पहले या पीछे होनेवाले के शुभ को गाना अर्थात् प्रशंसा करना यह प्राक्पश्चात्संस्तव श्लोक है।

(१२) विद्या—देवी जिसकी अपिष्ठात्री हा और जप या हवन से जो सिद्ध हो, वह विद्या कही जाती है, उस विद्या के प्रयोग से आहार लाभ करना विद्यापिण्ड श्लोक है।

(१३) मन्त्र—युद्ध प्रधान अक्षर रचना, जिसके जप मात्र से सिद्धि सुलभ हो, उसे मन्त्र कहते हैं। मन्त्र के प्रयोग से आहार लेना मन्त्रपिण्ड रूप श्लोक है।

(१४) पूर्ण—अष्टम्य करनेवाले मुख से आदि के प्रयोग से जो आहार लाभ किया जाय, उसे पूर्णपिण्ड श्लोक कहते हैं।

(१५) योग—पैर में लप आदि सिद्धियाँ दियाकर जो आहार लाभ किया जाय, उसे योग पिण्डश्लोक कहते हैं।

(१६) मूल कम—गर्भस्तम्भ, गर्भाधान गर्भपात आदि भय भ्रमस्य के हेतु मूल सावध कम मूल कर्म कहे जाते। इसके द्वारा आहार लाभ करना मूल कम श्लोक है।

उत्पादना के १६ श्लोक साधु को लगते हैं इनका निमित्त साधु ही होता है।

२६ दश विध सत्य—

—“अथर्व १ समय २ दुर्बला ३ नामे ४ रूपे ५ पुरुषस्य सत्ये ६ ।
वैवहार माह ७ ८, ओम १ २ य वसमे ओवस्मसत्त्व १० ॥ १ ॥

—जनपद समय स्थापना नामरूप प्रतीतसत्यञ्च

व्यवहार माय योगाश्च दशम मौपम्य सत्यञ्च ॥ १ ॥

जो पदार्थ जिस रूप में हो उसी रूप से उस कहना यह सत्य का स्वरूप है। अर्थात् जो पदार्थ के भेद से यह सत्य पदार्थ प्रकार का होता है।

जैसे कि (१) जन पद सत्य किसी देश में जल को पिच्छ माता को माई और पिता को माई कहते हैं यह उस देश के लिये सत्य है। इस जनपद सत्य कहते हैं।

(२) समय सत्य या सम्प्रति सत्य—जैसे पञ्चम्य-कीषक से पैदा होनेवाली वस्तु, जैसे कि मेंबरु, शीप शैवाल आदि है किन्तु पञ्चम्य से कबल कमजोर ज़िबा जाता है, यह

सम्मत सत्य हैं। (३) स्थापना सत्य—रूप से मिले या न मिले किन्तु किसी भी पदार्थ में किसी जीव अजीव का संकेत करना जैसे शतरंज की मोहरों में हाथ, घोड़ा आदि कहना यह स्थापना से सत्य है। (४) नाम सत्य—जैसे किसी निर्धन को लक्ष्मीधर कहना कमजोर को भी महावीर कहना नाम सत्य है। (५) रूप सत्य—गुण न होने पर भी वेपमात्र से असाधु को साधु कहना यह रूप सत्य है। (६) प्रतीत-सत्य-अर्थात् अपेक्षा स सत्य जैसे हाथ की अंगुलि को एक की अपेक्षा घड़ी दूसरी की अपेक्षा छोटी कहना यह प्रतीत सत्य है। (७) व्यवहार सत्य—जैसे चल कर पहुँची है गाड़ी, किन्तु लोक कहते हैं कि गाँव आ गया यह व्यवहार सत्य है। (८) भाव सत्य—गुणों की विविधता में भी एक को प्रधान मान कर कहना जैसे शुक में लाल वर्ण होने पर भी उसे हरा कहना भाव सत्य है। (९) योग सत्य—व्यक्ति कोई और है, किन्तु दण्ड छत्र पगड़ी आदि में किसी के सयोग होने से उसे दण्डी, छत्री आदि नाम से पुकारना योग सत्य है। (१०) उपमा सत्य—जैसे तुलनात्मक दृष्टि से किसी का कोई अवयव जिसमें मिलता हो उसे उसी नाम से पुकारना जैसे नाक ऊँची हो तो गरुड, गरदन लम्बा हो तो ऊँट, आख बड़ी हो तो कमल-नयन आदि कहना यह उपमा सत्य है।

२७. द्वादश भाषा—

बोलकर या लिखकर जिसके द्वारा अपने भाव समझाये जाय, उसको बोली या भाषा कहते हैं। इनमें कोई २ विद्वान् भेद कहते हैं जैसे कि साहित्यादि से अप्रुष्ठ बोली है और साहित्य से परिपूर्ण भाषा है। जो कुछ हो, किन्तु यहाँ भारत की प्रसिद्ध भाषाओं से मतलब है। यों शास्त्रों में १ सत्य भाषा, २ मृगभाषा, ३ मिश्र और ४ व्यवहार भाषा, ऐसे चार प्रकार करके इनमें तीन को दश दश प्रकार की बतार्ते हैं और व्यवहार भाषा को १२ प्रकार की कही है। लेकिन यहाँ प्राचीन समय की धार्य भाषा की गणना है, जो संस्कृत, प्राकृत, सौरसेनी, मागधी, पैंशाची और अपभ्रंश, ये छ भाषाएँ गद्य तथा पद्य भेद से बारह प्रकार की गिनी गई है। १८ देशों की भाषा इनसे भिन्न प्रकार की हैं।

२८. सोलह वचन

एच्यतेऽनेन इति वचनम्—वाणी के प्रयोग को वचन कहते हैं। जैसे (१) एक

वचन—जैसे—अणि, जिन, द्रष्टव्य आदि। इसके द्वारा एक ही पदार्थ का वचन होता है। (२) द्विवचन—यह द्विवचन दो सम्बन्धों में वस्तु का वचन करता है। जैसे—पुरुषौ।

(३) बहुवचन—बहुत के लिये कहा गया वचन बहुवचन है जैसे—नमो विद्याय, सिद्धा, इत्यादि।

(४) स्त्री वचन—यह स्त्रीलिंगवाची पद को कहता है। जैसे मनी, बाणी आदि।

(५) पुरुष वचन—पुंल्लिङ्ग को कहनेवाला यह पुरुष वचन है जैसे—अयं त्रिनीज्यं बलोकः।

(६) नपुंसक वचन—गगनं मरुतलम् आदि नपुंसकलिंगवाची वस्तु जिस वचन से कहा जाय।

(७) अप्रत्यक्ष वचन—जिन। इत्यादि के सहसा मन की बात निकल आना अप्रत्यक्ष वचन है।

(८) उपनीत वचन—प्रशंसा वचन जैसे यह साधु किया पात्र है।

(९) अपनीत वचन—जिसके द्वारा वस्तु के दोष प्रकट किये जाय जैसे—यह शिष्ट मवती है।

१) उपनीतापनीत वचन—प्रशंसा के साथ निन्दा करना जैसे—मुनिराज व्यसराजी अच्छे हैं किन्तु क्रिया में शिथिल हैं।

(११) अपनीतोपनीत वचन—बुराई बता कर अलार्ह कहना। जैसे यह मुनि बिद्वान् तो नहीं किन्तु क्रियापात्र हैं।

(१२) अतीत वचन—जिसके द्वारा भूतकाल की बात कही जाय। जैसे मगधान महावीर हीपावली को सोच पमारे थे।

(१३) प्रत्युत्पन्न वचन—इसके द्वारा वर्तमान काल की बात कही जाती है जैसे—वन्धामि वन्दन करता हूँ।

(१४) अनागत वचन—यह भविष्य काल की बात कहता है। जैसे कृष्ण १०वें तीर्थह्वर हाग।

(१५) प्रत्यक्ष वचन—जिसके द्वारा समस्त की बात कही जाय। जैसे एष लोको, अयं पुरुषः।

(१६) परोक्ष वचन—परोक्ष की बात कहना परोक्ष वचन है जैसे वह विदेह मे जन्म लेगा ।

उपरोक्त सोलह वचनों से वस्तु का यथार्थ कथन किया जाता है । उपयोग पूर्वक इन वचनों का प्रयोग करने वाले मुनि उपदेश देने में अविकारी माने गये हैं ।

देखिए आचाराङ्ग सूत्र ।

२६. उपधि उवगरणं—

उप-सामीप्येन संयम दधाति-पोषयति चेत्युपधि —अर्थात् संयम की साधना मे सहायक होनेवाले पदार्थों को उपधि या उपकरण कहते हैं । कर्म-शरीर और बाह्य भाण्डोपकरण तथा सचित्त अचित्त और मिश्र रूप तीन प्रकार की उपधि मे से यहां बाह्य भारद्वाज उपकरण रूप अचित्त उपधि से ही प्रयोजन है । अचित्त उपकरण भी औधिक और औपग्रहिक दो प्रकार के होते है । सामान्य रूप से सब के उपयोगी उपकरणों को औधिक और समय विशेष व व्यक्ति विशेष के लिये काम आनेवाले को औपग्रहिक कहते हैं । यहां स्थविर कल्पी की दृष्टि से औधिक उपकरण गिनाये हैं । जैसे -१ पात्र, २ पात्र धन्यन-मोली, ३ पात्र केसरिका-कम्बल का ढुकड़ा, ४ पात्र स्थापन-पात्र रखने का कपडा, ५-६-७ तीन पटल-पात्र ढकने के बख, ८ रजस्त्राण-पात्र मे लपेटने का बख जिसको आज रस्तान कहते हैं, ९ गोच्छक-पूजनी, १०-११-१२ प्रच्छादक-ओढ़ने के तीन बख जिनमे दो सूती और एक ऊनी, १३ रजोहरण, १४ चोलपट्टा धोती के स्थान पर बाधन का बख, १५ मुखानन्तक-मुखवस्त्रिका आदि ।

जिन कल्पी के लिये औधिक-उपकरणों का ही विधान मिलता है अधिक से अधिक उनके लिये १२ उपकरण बताये गये हैं । जैसे कि--१ पत्त २ पत्ता बंधो ३ पायट्टवणच ४ केसरिया । ५ पडलाइ ६ रयत्ताण ७ गोच्छओ ८-९-१० पायन्ति-ओगे तिन्नेवय पन्छागा ११ रयहरण चेवहोई १२ मुहपात्ति । एसो दुवात्मविद्धो, एवही जिणमग्गियाणु ॥२॥

कम से कम भी रजोहरण मुहपत्ती तो विशेष प्रकार के जिन कल्पी को भी रखना ही चाहिए । कहा भी है—

जिण कग्गिया उदुविधा, पाखीपाता पडिग्गहपराय ।

पाउरण मपाउरणा, एक्केका ते भवे दुविधा ॥

दुर्गतिग चतुर्छर्क, पयार्गं यव दस पयदसर्ग ।

एते अद्भु विगण्या, जिख कण्ये होंति उवहिस्स ॥

जिन कल्पी मुनि दो प्रकार के हैं, करपात्री और पात्रधारी । सबस एषं अवस्र ऐसे प्रत्येक के दो दो प्रकार होते हैं । ओ करपात्री हैं उनके रजोहरण मुखबन्धिका रूप अवस्र दो उपधि हैं । पात्र नहीं रख कर भी ओ वस्रधारी हैं उनके ३ ४ या ५ उपधि होती हैं । पात्रधारी जिन कल्पी के वस्र रहित ३ प्रकार की उपधि होती हैं । वस्रधारी जिन कल्पी के उत्कृष्ट १२ प्रकार की उपधि होती हैं ।

स्वविरहल्पी साधुओं के लिये उपरोक्त १२ के अतिरिक्त एक प्रतिग्रह और चोल पट्ट ऐसे चौदह उपकरण बताए हैं । आर्यिकाओं के लिये ११ उपकरण विशेष हैं जैसे—अवग्रहानन्तक १ पट्ट २ अर्द्धोत्क ३ वलनिका ४ अव्यन्तर निवसनी ५ वदि निवसनी ६ कन्तुक ७ औपकशिकी ८ एक कशिकी ९ सपाठी और स्कंधकरणी १० ११ सब मिल कर पचीस बहे गये हैं ।

औपग्रहिक ग्रहिक उपकरण यष्टि आदि ओ वृद्धावस्था आदि कारण से त्रिष आत हैं, ये अनेक प्रकार के हैं । अन्तराशयनी अन्तराशयनी आदि । जैसे कि कहा है—

उडए लड्डिया जेव, चम्मए चम्मकोमए ।

चम्मल्लयपट्टे चिलिमिली धारएगुरु ॥

अर्थात् दण्ड, लाठी, धम धमकोश, चम्मखेरन, भित्तमिली गुरु धारण करत हैं ।

फिर—धेराण धेरभूमि पत्तार्ण कप्पति दृढण्वा १ संढण्वा २ छत्तगवा ३ मत्त गंवा ४ लड्डियाण्वा ५ भिसिया ६ जेत्तवा ७ चट्टाविति मिट्टियावा ८ चम्मण्वा ९ चम्म कोमवा १० चम्मपल्लियण्वाण्वा ११ अरिगदिह उवासि उवत्ता गाहापति कुत्त मत्ताण्वा पाणाण्वा प त्रिसिप्तण्वा निबिम्भमित्तण्वा ।

धतमान म ओ पुस्तक पट्टी लखनी आदि रक्ते आत हैं व भी ज्ञानवरन की रक्षा में साधन हान से औपग्रहिक उपकरण हैं ।

३० वेयावच्च—

मया माय का वेयावच्च कहत हैं । अर्थात् धम साधना के लिये विधि पूर्वक धमरान व यन्त्रादि प्रदान करना गढ़ वेयावच्च का भाव है । जैसा कि—

‘वैयावच्चं वावडभावो इहधम्म साहणनिमित्तं ।

अन्नाडमाण विहिणा सम्पायण मेस भावाओ ।’

सेवनीय की अपेक्षा सेवा-वैयावच के भी दम प्रकार है। जेमे कि-आयरिय १, उववभाण २, धेर ३, तवग्गी ४, गिलाण ५, सेहाण ६, माहग्गिय ७, कुत्त ८, गण ९, सघ १० नगरं तसिह कायव्व ।

अर्थान्--१ आचार्य, २ उपाध्याय, ३ स्थविर, ४ तपस्वी, ५ ग्लान-रोगी, ६ शिष्य, ७ स्वधर्मो, ८ पुत्र, ९ गण-अनेक कुल, १० सघ-गण समूह । इनकी योग्य सेवा करनी चाहिये ।

शास्त्र में नानामान्य और विज्ञेयस्वरूप में अत्यन्त बाल आदि वैयावृत्त्य के चित्र यथाग्रह हैं। आगे लिखा है कि विना किमी मतलब के निर्जरार्थी मुनि इस प्रकार की वैयावच को बहुत तह से करे। यहा ‘गण सघ चेइयट्ठे य निज्जरट्ठी’ पद दिया गया है। टीकागर अर्थ करते हुए लिखते हैं कि ‘गण-कुल समुदाय, कोटिकादिक सघ स्तस्ममुदाय रूप चत्थानि-जित प्रतिमा एतासा योऽर्थ प्रयोजनं स तथा । तत्र च निर्जरार्थं परमक्यकामः ।’ अर्थात् गण, सघ और जित प्रतिमा के प्रयोजन पर निर्जरार्थी सेवा करे। ऐसा अर्थ किता है। लेकिन ‘चेइयट्ठे य निज्जरट्ठी’ इसमें चेइयट्ठे य और निज्जरट्ठी ऐसे तीन पद हैं, परन्तु उपरोक्त अर्थ से केवल दो पदों का ही बोध होता है, तीसरे का नहीं। अत्र ‘पानादि’ से उपपन्न करने रूप वैयावच का अर्थ भी प्रतिमा के साथ घटित नहीं होता। इसलिये उसके वास्तविक अर्थ की गवेषणा करनी आवश्यक है। चित्संज्ञाने वातु से अत्यन्त में चेतित रूप घनता है और जिसका प्राकृतिक रूप ‘चेइय’ होता है। जिसका अर्थ है ज्ञान। हरिभद्रसूरि ने चित्त सं भी ‘चित्तेत्य भाव कर्म वा’ इस अर्थ में पण् करके चैत्य घनाया है। जैसे कि वे लिखते हैं--‘चित्तम-अन्त करण तस्य भावे कमणि वाप्य-विकृते चैत्यं भवति, तत्रार्हता प्रतिमा-प्रशस्त समाधि चित्तोत्पादनावर्हन्-चैत्यानि भव्यन्ते’ ।

(आच० हरीभद्री वृ० पृ० प० ८८७)

अन्य टीकाकारों ने भी ‘चित्ताल्हावत्वाच्चैत्यम्’ माना है। इस प्रकार प्रसो-दभाव या चित्त में हर्ष उत्पन्न करनेवाले साधु, ज्ञान और प्रतिमा आदि में चैत्य शब्द का अर्थ घटित हो सकता है। यहा पर भी बहुतसे आचार्य ‘चेइयट्ठे’ आदि पदों का अर्थ ज्ञान के लिये निर्जरार्थी ऐसा करते हैं, किन्तु प्रीति भी चित्त का भाव

है इसलिये कुछ गण और सभ के प्रीत्यर्थ निर्जराधी पसा अर्घ करना अधिक संगत होगा। इसलिये यहाँ प्रसन्नता के लिये ऐसा अर्थ किया है। क्योंकि चैत्य की वैभ-
वृत्ति अन्य किसी भी मूल शास्त्र में उपलब्ध नहीं होती। द्वाविष वैभाव्य में तो
चैत्य का स्थान नहीं है। अतः प्रमाणित होता है कि चैत्य मूर्ति की वैभावृत्ति मानना
मौलिकता से बाहर है। (६५ सू० का०)

३१ उगमह

रहने के लिये गृहपति से स्थान आवृत्ति की अनुमति लेने को अवग्रह कहते हैं।
वैसे वसति स्थान भी अवग्रह कहाता है। अनुमति लेने रूप अवग्रह पाँच प्रकार का
है। जैसे—१ इन्द्रावग्रह २ राजावग्रह ३ गाथापति-अवग्रह ४ सागारिक अवग्रह
५ स्वर्गी अवग्रह।

प्रतिदिन मुनि इसीलिये अनुज्ञा लेते हैं कि उनका अवग्रहत विद्युत् बना रहे।
इनमें ऊपर ऊपर का अवग्रह नीचे वाले से बाधित होता है। जैसे—किसी देश में
वहाँ के राजा की अनुमति के अभाव में इन्द्र का अवग्रह काम नहीं दगा वैसे ही
राजा की अनुमति के स्थान में गाथापति और गाथापति की अनुमति वहाँ आव
रक है वहाँ शम्पावर, तथा शम्पावर के अधीन बन्धु के लिये स्वर्गी साधु की
अनुमति काय साधक नहीं होगी।

३२ उपाश्रय

उपासीयते—सेव्यते संयमात्मपात्रनाय, शीतादित्राणापवात्रनेय स उपाश्रय
अर्थात् वहाँ आत्मा और संयम की रक्षा हो वैसे स्थान को उपाश्रय कहते हैं। साधु
के लिये निम्नोक्त उपाश्रय प्रस्ताव कहे गये हैं। १ वेद्यकुल-देहरा, २ समा ३ मया-
प्याऊ, ४ आवसथ मठ, ५ बुधमूल, ६ आराम-योगीषा, ७ कन्दरा ८ आकर-स्थान
९ पहाड़ी गुहा, १० कर्म-कथराज्ञा ११ उषान-फूलवाही १२ यानराज्ञा-रक्षणा
१३ बुधराज्ञा-किराणा रानन का घर, १४ मयइय १५ शून्य घर १६ श्मशान
१७ लयन-पवन में कारा दुमा घर आर १८ दुकान इस प्रकार अन्य भी प्रसम्भा
घर जो व रक्षित सहज वन हुए निर्दोष स्थान मुनियों के लिये प्रदण्ड करन योग्य हैं।

३३ विगई—

विगृहीत विद्या करन बाल पदार्थों का विगई करते हैं। य सब नों हैं किन्तु
यहाँ गिनाय हुए पदार्थ बता रहे हैं।

जैसे कि-१ क्षीर, २ दही, ३ सर्पि-घृत, ४ नवनीत, ५ तेल, ६ गुड-खोंड, ७ मत्स्यण्डी-मिश्री, ८ मधु, ९ मद्य और १० मास, इनमें नवनीत, मधु मद्य और मास सर्वथा वर्जनीय है।

नोट—तीन दंड से लेकर ३३ आशातक तक के बोलों का परिचय भ्रमणावश्यक सूत्र को टिप्पणी में दिया है। अतः जिज्ञासु पाठक उनको सन्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल (सधुर) से प्रकाशित भ्रमणावश्यक सूत्र में देखें।

३४. प्रवचन माता

ब्राह्मशास्त्र रूप प्रवचन को माता के समान रक्षण करने वाली प्रवृत्ति या प्रवचन मत बढ़ाती हैं जो आठ हैं। जैसे— १ ईर्यासमिति २ भाषा समिति ३ एषणा समिति ४ आदान निक्षेपणा समिति ५ परिष्ठापनिका समिति ६ मनोगुप्ति ७ वाग्गुप्ति ८ कायगुप्ति। चत्वारणमार्ग की साधना में इनकी जानकारी अत्यावश्यक मानी गई है। ज्ञेयपरात्म की विविधता से किसी साधक को विशिष्ट ध्रुव का ज्ञान नहीं हो तो भी इतना-अष्ट प्रवचन माता का ज्ञान तो होना ही चाहिये।

विशेष परिचय के लिये उत्तराध्यायन का २४वाँ अध्याय देखें।

३५. अष्ट कर्मग्रन्थि—

१ ज्ञानावरणीय २ दशनावरणोय ३ वेदगीय ४ माहन्तोय ५ प्रायु ६ नाम ७ गोत्र और ८ अन्तराय।

इन आठ कर्मों की आत्मा से सम्बन्धित वर्गणा ही ग्रन्थि कहाती हैं। इनमें ४ घातो कर्म हैं, जिनमें मोह प्रधान है। मोह कर्म के मन्द होने पर ही यह ग्रन्थि शिथिल पड़ती है। जैसेकि कहा है—

गंठिति सुदुर्मेयो, कक्खड-धण-रुद्धगूढ गंठिच्च ।

जीवस्स कम्मजणिओ, धणरागदोस परिणामो ॥



कथा-विभाग

सीता निमित्तक सग्राम कथा—

मिथिला नगरी के राजा जनक को विदेहा नामक भार्या और भामरदत्त नामक पुत्र तथा जानकी सीता नाम की पुत्री थी। विद्याधरों ने द्वाधिष्ठित एक धनुष को स्वयंवर मण्डप में लाकर रक्खा था। तथा सीता ने भी प्रतिज्ञा की कि जो इस धनुष को साहसा से उसी को धरण करेगी। जनक आकारा बिहारी और स्वर्गीय देव समूह भी इस प्रसंग में कुतूहल व्यक्त की आये हुए थे। विविध मूर्तिबों के बल प्रदर्शन के पश्चात् ज्योत्स्नापति महाराज वराह के पुत्र राम और लक्ष्मण ने सब के मनोरथ भंग कर दिया और दत्तवत् ही देखते राम ने धनुष को गुण महित ठीक किया, फिर क्या था, उसी समय साधुबाद के संग सीता राम के साथ ब्याही गई।

महाराजा वराह युद्ध हो चुक था, अतएव बुढ़ावतया के कारण राम की राज्य देकर उन्होंने सन्यास ग्रहण करना चाहा। किन्तु भरत की माँ कैकेयी ने ब्रत पूर्वक राजा का पूर्व प्रतिज्ञान हो वरदानों की श्राव विचार कर उन्हें अपने वश में कर लिये। पितृवचन को पालन करने के लिये श्रीराम ने सहर्ष बनवास स्वीकार किया और राज्य भंग के लिये छोड़ दिया। लक्ष्मण और सीता भी राम के वतबिहार में साथ थे। दण्डकावण्य में विहार करते हुए लक्ष्मण ने एक आकारात्म कर्जुरल देखा, अत्रियोचित स्वभाव से उन्होंने लकड़ लेकर कुतूहल से वश आस पर मारा। सद्यत्ता उसके बीच में चन्द्रनला का बटा और राघव का भारिलेय शम्भु नाम का विद्याधर का विद्या साधन कर रहा था कट गया। पश्चात्ताप करते हुए लक्ष्मण ने इस दुष्कृत्य का धर्जान राम को सुनाया। इधर चन्द्रनला की पुत्र की मृत्यु से बड़ा शोक हुआ। वह खोज करत राम की बुटिया के पास आया। राम लक्ष्मण के रूप को देख कर मोहित हो गई। उसने राम और लक्ष्मण के सम्मुख अपनी मांग प्रस्तुत की। किन्तु हम दोनों ने चन्द्रनला की याचना स्वीकार नहीं की। फलतः सरवृषभ को उसने अपने रंग में ग कर सारा घटना निबहान कर ही। सरवृषभ पक्षी होने का लक्ष्मण से युद्ध करने जताया। इधर परम्परा से राघव को भी अपने भासक की मृत्यु की खबर प्राप्त हुई। आकाश मार्ग से आया हुए धन में अनिष्ट

सुन्दरी सीता के रूप को देख कर वह सारा हाल भूल गया। काम की विकलता से उसने कुल की मर्यादा और सहज विवेक को छोड़ कर सीता के हरण का निश्चय किया। विद्या के प्रभाव से वह इच्छानुसार रूप बना सकता था। इसलिये लक्ष्मण के संग्राम स्थल में राम को छलने के लिये उसने सिहनाद किया। आवाज सुन कर जब राम उधर दौड़े, तब रावण मायामृग के छल में अकेली सीता को हरण कर अपनी नगरी ले चला। मार्ग में राम के प्रीत्यर्थ उससे जटायु ने युद्ध किया। उसको पक्षीन कर दिया गया। रावण के द्वारा सीता को वश में करने का हर प्रकार से प्रयत्न किया गया। लेकिन वह अनुकूल न हुई। पीछे राम ने सीता को गवेषणा करनी आरम्भ की। रत्नजटी के मुख में हनुमान ने सीता का कुशल समझ कर राम को निवेदन किया। राम भी भाई लक्ष्मण और हनुमान, सुग्रीव, भानुशङ्कर आदि विद्याधरों के साथ समुद्र बाव लका गये। वहा रावण के साथ सीता के लिए युद्ध किया। रावण को सख्त नाश कर अपने पक्ष में स्थित उसके भाई विभीषण को लका का राज्य देकर सीता के साथ अपनी नगरी लौट आये। यह सीता निमित्तक युद्ध का सक्षिप्त परिचय है।

२-“द्रौपदी के लिये संग्राम”

कपिलपुर में द्रुपद नाम का राजा था। उसकी राणी का नाम चुलनी था। उसके पुत्र का नाम धृष्टाशुन और पुत्री का नाम द्रौपदी था।

समय पाकर स्वयंवर विधि से धुषिष्ठिर आदि पांच पाण्डवों के साथ द्रौपदी का विवाह हुआ।

पूषकृत निदान कर्मके कारण पांच पाण्डवोंकी पत्नी होने परभी वह सती कहा-जायी। पाण्डु महाराज अपने अन्त-पुरमें बैठहुए एकदिन महारानी कुन्तीऔर पाण्डवों के साथ गोष्ठी कर रहे थे। इस बीच में वहा नारद ऋषि आकाश मार्ग से उतर आए। सपरिवार पाण्डु राज ने उनका उचित सत्कार किया। किन्तु द्रौपदी ने मिथ्यादृष्टि तथा बेपमात्र का ऋषि समझ कर उनका सम्मान नहीं किया। इस पर नारद बहुत क्रुद्ध हुए। उन्होंने अपना चमत्कार दिखाता चाहा। किसी समय वे धातकी खड के पूर्व भरत में अमरकका नामक राजधानी के राजा पद्मानाभ की सभा में जा पहुँचे। राजा ने ऋषि का अभ्युत्थान आदि सत्कार किया और बोला कि ऋषिवर ? आप विविध स्थानों में घूमते हो। क्या मेरे अन्त पुर जैसा अन्य

जिन्सी क वहाँ श्री वर्ग का सौम्य सार देखा है ? अथि न उत्तर दिया-राज्य ! आप कृपमण्डक सी बात कर रहे हैं । इस्तिनापुर के राजा पारसु की पुत्र बभू क सामन तुम्हारी रानिया सौन्दर्य आवि प्रमत्ताहित गुणों में नगर्य हैं । उसके परममण्डक के परावर भी तुम्हारी रानिया मही हो सकती हैं ।

यह सुनकर त्रौपरी के प्रति पद्मनाभ का अनुराग बढ़ गया और पूर्वमाहविक देव की सहायता से वह साती हुए त्रौपरी का ता अपने वगीच में रखवा लिया । जाग्रत हान पर त्रौपरी ने देखा कि एक राजा कामुक बनकर सामन छाड़ा है, और कुछ कह रहा है । उसकी प्रवृत्ति देखकर वह बोली कि राज्य ! मैं अपने पर से प्रथक् होकर दुखी हूँ । मुझ कम से कम छ मास का भयकारा मिलना चाहिए । राजा ने स्वीकार किया । छहर त्रौपरी ने बले की तपस्या और पारसु ने आर्धबलि की प्रतिज्ञा कर ली ।

छहर इस्तिनापुर में त्रौपरी के नहीं मिलने से सन्नाटा छा गया । हुन्तीजी ने छारिका जाकर श्रीकृष्ण का सब निवेदन किया । कृष्ण ने गवेपथा आरम्भ की । एक दिन पारसु से माखम हुआ कि पद्मनाभ के महल में त्रौपरी के समान आकृति का पत्नी थी कृष्ण ने उनकी मारी बात समझी । वे पण्डितों को साथ लेकर त्रौपरी का कान के लिये पत्र पढ़ और समुद्रतट पर जाकर समुद्र के अधिपति सुनियतदेव का आराधन किया । इसके द्वारा मार्ग मिलनेपर श्रीकृष्ण पाँचों पाण्डवों का लेकर एक सहित अमरकका के बाग में जा पहुँचे । पद्मनाभ को जतलाने के लिये कृष्ण ने पहले दाढ़क साधिका भजा । पद्मनाभ ने दूत का तिरस्कार कर युद्ध के लिये मरी बजबा दी । विशाल सैन्य और शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हो उसने पाण्डवों के साथ भयङ्कर युद्ध किया, पाण्डव क्षाय भयरा कर् श्रीकृष्ण के पराज में पराजित हुए । तब स्वयं भी कृष्ण युद्ध के लिये चल पड़े । अश्वों शेर पृका । जिनसे भय का दृढीभारा भाग छूटा । गालवीय धनुष पर भयङ्कर बजाकर टट्टार करती दूसरा भाग भी सैदान छोड़ दिया । जब साथ एक निहाइ बल शेष गया तो पद्मनाभ प्राण भय से नगर में प्रवेश कर गया । सब श्रीकृष्ण ने मरसिंह का रूप धारण कर भूमि पर पैर मारा तब नगर की कंठ और राजमहल तक भय भरा कर भूमि पर गिर पड़े । राजा मर्मागत होकर त्रौपरी के पद में शरण देने से आ गिरा । त्रौपरी के दिग्गम हुए तब से जब पद्मनाभ ने कृष्ण के पास चला माँगी और त्रौपरी को

लौटा दी। तब कृष्ण ने भी उसे जीवन दान देकर मुक्त कर दिया। द्रौपदी को साथ लेकर पाण्डव अपनी नगरी-चले आये।

यह द्रौपदी के लिये युद्ध की सन्धि कथा है।

३ " रुक्मिणी के लिए संग्राम "

कुण्डनपुर नगरी के नृपति भीष्मक को रुक्मिण नाम का पुत्र था, तथा रुक्मिणी नाम की कन्या थी। प्रसंगवश किसी समय नारदजी कृष्ण की महाराणी सत्यभामा के घर द्वारिका आये। कार्यान्तर में व्यग्र (लगी) रहने के कारण सत्यभामा ने ऋषि का समुचित सम्कार नहीं किया। इस पर सहज क्रोधी नारद अत्यन्त क्रुद्ध हो गए और कुण्डनपुर आकर रुक्मिणी को कहने लगे कि तुम कृष्ण की प्रियतमा बनो तभी तुम्हारे जीवन की साधकता है। नारद ने कृष्ण का वर्णन इस प्रकार से किया कि रुक्मिणी का अनुराग कृष्ण के प्रति सहज ही जग गया। साथ ही रुक्मिणी का चित्र द्वारिका लाकर कृष्ण को दिखाया। जिससे कृष्ण का अनुराग भी रुक्मिणी के प्रति जग गया।

कृष्ण ने रुक्मिणी के लिये याचना की, किन्तु उसके भाई रुक्मिण ने स्वीकार नहीं किया। उठते महाबली शिशुपाल को आमन्त्रित कर उसके साथ अपनी बहन के ब्याह की तैयारी करने लगा। रुक्मिणी ने किसी तरह यह संघाद कृष्ण को भिजवाया। खबर पाकर बलदेव के सग कृष्ण भी उस नगर में पहुँच गये। इधर रुक्मिणी भी देवपूजन के वहाने मन्त्रियों के सग वाहर आई। दोनों के दिल मिले थे ही, फिर क्या था, कृष्ण रुक्मिणी को रथपर बैठाकर द्वारिका के लिए चल पड़े। दूतियों के द्वारा समाचार पाकर अभिमानी रुक्मिण ने कृष्ण से युद्ध करना चाहा, शिशुपाल ने भी विशाल सैन्य जो लेकर साथ दिया। युद्ध में बलदेव के हलमुसल रूप दिव्यास्त्र से दोनों के सैन्य भाग छूटे। रुक्मिण और शिशुपाल ने दीन भाव से अपने प्राण बचाये।

" यह रुक्मिणी के लिये युद्ध हुआ। "

४ पद्मावती के लिये संग्राम—

अरिष्ट नगर में महाराज हिरण्यनाभ नामक राजा राज्य करते थे ये बलराम के मामा थे। उनकी पुत्री का नाम पद्मावती था। वही होने पर राजाने उसके लिये

स्वयंवर का आयोजन किया। निमन्त्रण पाकर वहाँ २ राजा और राम केराव के साथ कई राजकुमार भी उस स्वयंवर में उपस्थित हुए। हिरण्यनाभ की भाग्य सुता (भतीजी) का सम्बन्ध बछराम के साथ पहले ही कर दिया था। पद्मावती के लिये स्वयंवर में उपस्थित सभी राजा अभिजातों थे, किन्तु उसने कृष्ण के गले में चरमाका बांध दी। छट्ट होकर सभी राजाओं ने युद्ध में कृष्ण को जीतकर पद्मावती को न चाहा। परिणाम स्वरूप कृष्ण के साथ राजाओं का भयङ्कर सभाम हुआ। कृष्ण मुद्रित भरमें सभी का हरा दिया। पद्मावती का लेकर अपनी राजधानी गए।

वह पद्मावती के लिये मंथन का सन्धिमान बना हुआ।

५ तारा निमित्तक युद्ध—

क्रिष्णिघापुर में आदिश्वरव नामक विद्यावर के दो लड़के थे, एक का नाम बालि और दूसरे का नाम सुग्रीव था। आदिश्वरव के पुत्र बालिन अपना राज्य सुग्रीव का देकर स्वयं दीक्षा पारण करली। राज्य का स्वामी सुग्रीव बना। उसकी स्त्री का नाम तारा था। वह बड़ी सुन्दरी थी। किसी समय तारा की स्वाति से रीवा हुआ साहसगति नामक विद्यावर न सुग्रीव का रूप बनाकर उसके अन्तःपुर में प्रवेश किया। तारा ने चिन्हीं से जानकर मन्त्रि मण्डल का भयानक किया। उसने अपनी काम सिद्धि के लिये आन वासे सुग्रीव को नकली कहकर ठगवा दिया। वे सब दानों सुग्रीव के रूप को देखकर आश्चर्य में पड़ गए। ठीक नियम मही हान से दानों का घर से बाहर निकाल दिये। वे ईर्ष्यावश सड़ा कंगे लड़ा म दानों परावर रहे। तब कृष्णमन्त्रिगरी अमत्य सुग्रीव और मरु सुग्रीव दानों न हनुमान नामक विद्यावर राक्षा के पास जाकर निवेदन किया वह आया और दानों का परावर मही समझ सकने के कारण बिना कुछ उपकार किये ही अपना घर लाट गया।

जब लक्ष्मण के द्वारा पालास छंका जीत लेने पर श्रीराम वहाँ पर राज्य सम्हालने श्रमे तब इस बात का जानकर श्रीराम के घरलों में मार्शमा की गई। तत्काल लक्ष्मण सहित राम-निशिघ्नापुर आये। तबसे सुग्रीव न मुद्रा पर ताल मारा जिसका सुनकर वह मून्का सुग्रीव रक्षाङ्गु हास्य रसिक बना हुआ बछा आया। उन दोनों में काद अन्तर मही दग्गन न रामचन्द्र मन्त्रि भावसे रखे रहे। मरु सुग्रीव का महापता मही पें सफ। जब मरु सुग्रीव दूसरे ने कुन्नी किया गया।

तब राम के पास आकर उसने निवेदन किया कि देव ! आपके देखते भी मुझको कष्ट मिल रहा है तो मुझे कौन बचाएगा ? रामने कहा कि तुम अपना चिन्ह बता कर फिर युद्ध करो । वैसा करने पर भूठे सुग्रीव को रामने शर प्रहार से मार दिया । सत्य सुग्रीव बहुत दिनों तक तारा के साथ साँसारिक सुख का अनुभव करता रहा । रामचन्द्र के द्वारा युद्ध में कृत्रिम सुग्रीव के मारे जान पर तारा और सुग्रीव का संकट टल गया । वे रामका उपकार मानने लगे ।

(यह तारा निर्मितक युद्ध का संचित वर्णन है)

६ रक्त सुभद्रा के लिये संग्राम—

सुभद्रा कृष्ण वासुदेव की बहन थी । वह पाण्डुपुत्र अर्जुन पर कामानुरक्त थी इसलिये उसका नाम रक्त सुभद्रा पड़ा । वह एक दिन अर्जुन के समाप आई । कृष्ण ने उसको लौटाने के लिये बलराम को भेजा । किन्तु सुभद्रा पर अनुरक्त हुए अर्जुन ने रथ रसिवता से बलराम को हराकर सुभद्रा के साथ शादी करली । पोछे अभिमन्यु नामका बालक पैदा हुआ ।

यह रक्त सुभद्रा के लिये संग्राम का संचित वर्णन हुआ ।

७ सुवर्ण-गुलिका के लिये संग्राम

सिन्धु सौवीर देश के नृपति उदायन की राजमहिषी का नाम प्रभावती था । देवदत्ता नामकी उसकी एक दासी थी । किसी समय देवदत्ता को दिव्य प्रभाव वाली गुटिकायें प्राप्त हुईं, जो अद्भुत चमत्कार से भरी थी । उसके खाने से कुरूप सुन्दर तथा मूक वाचाल बन जाते थे । कल्पतरु के समान वह अभिलषित फल देने वाली थी । गोली में से एक खाकर देवदत्ता स्वर्णवर्ण देह वाली हो गई । इससे लोग उसको स्वर्ण-गुलिका कहने लगे । वेह की सुन्दरता पाकर वह चिन्ता करने लगी कि अब मैं किससे क्या कहूँगी, क्योंकि उदायन मेरे पिता तुल्य हैं और शेष लोग गुण की कमीके कारण मेरे योग्य हैं ही नहीं । इस तरह केवल उज्जयिनीनृपति राजा चण्डप्रद्योतन ही उसके मनमुताबिक जचे । उनको ध्यानमें रखवसने फिर दूसरी गोली खाई । इधर गोली के चमत्कार से चण्डप्रद्योतन को भी सुवर्णगुलिका की कार्यवाही ज्ञात हुई । वे हाथी पर चढ़ रात में सुवर्णगुलिका के द्वार पर चले आये । बुझाकर उसको अपने साथ चलने को कहा । (कुछ शर्तों पर) वह भी राजी हो गई और चण्ड

प्रद्योतन के साथ चञ्चयिनी चली गई। प्रातःकाल उद्यायन की पता चला कि सुवर्ष गुलिका का किसी ने अपहरण कर लिया और विशेष खोज से यह भी ज्ञात हुआ कि मारा रेल चरह प्रद्योतन राजा का है। इससे उद्यायन बड़ा क्रुद्ध हुआ, और अन्य मली वरा राजाओं के संग यह उच्चयिनी पर चढ़ आया। चरहप्रद्योतन के द्वारा दासी को नहीं लौटाने पर दानों में भरपूर युद्ध हुआ। धनुर्वेद के प्रभाव से चरहप्रद्योतन के हाथी पर चोन्कर उद्यायन राजा ने चरहप्रद्योतन को अपने वरा कर लिया। जब उद्यायन विजय मिलाकर अपने वेरा की ओर पीछे आते लगा तब पयूपण पर्व के दिन निरुद्ध आ गया थे। अतः वराणपुर-सम्बसौर के पास उमन मैम्य सहित अपना पहाव किया। संवत्सरो के पहल दिन सैन्य को बुलाकर आइरा लिया कि इतने कम महापर्व है। अतएव किसी भी जीव को कष्ट नहीं पहुँचाना। फिर समाह्वय में कहने लग-—कल संवत्सरी महापर्व होने से मैं छ दिन भर पौषघटन की आराधना करने वाला हूँ किन्तु यह चरहप्रद्योतन जो अभी मरे बंधन में है, फिर भी राजा होने से हमको आज्ञा में कोई कष्ट नहीं होने देना। इसकी इच्छा के अनुसार आज्ञा बना देना। किन्तु भय की निवृत्ति? सुवर्णगुलिका के लिये लड़ने वाला उद्यायन भूपति पर्वाराधन में शत्रु को भी मित्र समझता है। समापन। परम समय उक्त चरहप्रद्योतन की प्रीति के लिये दासी सहित उसे बन्धन मुक्त करना स्वीकार किया और दूसरे दिन चरहप्रद्योतन के अस्तक पर मयूरपिच्छ से दासीपति यह नाम अङ्कित कर (विदा किया) डाल दिया।

उद्यायन की समापना आदरी दी।

८ रोहिणी के निमित्त संग्राम

अहिष्टपुर नगर में शिवर नामका राजा राज्य करता था। उसकी सुमित्रा नाम की राणी तथा दिव्यपद्म नाम का पुत्र और राह्यो नामकी एकछत्रा थी। राजाने पुत्रीक विवाह करमर। स्वर्णर करनकी घोषणाकी। अरार्ण और समुद्रविजय आदि विविध राजा स्वर्णर में उपस्थित हुए। अभिन आगमन पर बैठकर रोहिणी की प्रतीक्षा करने लग। समय पर आदिर्णी स्वर्णर मंडप में आई और प्रतिविम्ब में आई मा के द्वारा राजाओं का परिचय भला हुआ आग बड़ी। गुप्त रूप से चतुरेव ने बाधयनि द्वारा राजा आदता परिचय दिया। अिगम गमन भी प्रम भावना समुदेवके गमने पर भना। राज की। इगम अविधन सभी राजा क्रुद्ध हुए। उन्होंने गम बान् बाध म

लड़कर रोहणी को अधीन करना चाहा । वसुदेव भी रोहणी की सहायता से जोरों से लड़ा और सबको परास्त कर रोहणी को ले चला ।

नोट--काश्मिर, अहिजिका, किन्नरी, सुरुपा और विद्युन्मती की कथाएं अज्ञात हैं । ऐसा टीकाकार का कहना है । फिर भी विद्वानों को गवेषणा करनी चाहिए ।

(अनुवादक)

म्लेच्छ जाति और अनार्य देश

१ आन्ध्र देश २ अरोप ३ अखण्ड ४ आभाषिक ५ अरव ६ उद ७ कुहरण ८ कुलाक्ष ९ केकय १० कोकणक-कोकण (११ क्रौंच) १२ खस १३ खासिक १४ गाय १५ गौड-घड्ढाल १६ गंधहारक-गाधार १७ चित्तात-विरात १८ चीन १९ चुंचुक २० चूलेक २१ जल्ल २२ डोयिलक २३ डोय २४ तित्तिक २५ द्राविड-द्रविड २६ नेहर २७ पक्षणि २८ पन्डव २९ पारस ३० पुदिन्द्र-पुलिङ्ग भोपाल से उत्तर ३१ पोक्रण ३२ वक्रुश ३३ धर्वर ३४ बह्लीक ३५ बिल्वल ३६ भड्ड ३७ मलय ३८ महुर ३९ महाराष्ट्र ४० मरुक ४१ मालव ४२ माप ४३ मुरंड ४४ मूढ-मौष्टिक ४५ मेद ४६ यवन-(यूनान) ४७ रुह ४८ रोम ४९ रोमन ५० ल्हासिक ५१ शक जाति ५२ शबर जाति ५३ सिंहल-लंका ५४ हूण जाति (चतुर्थ सूत्र)

इस प्रकार म्लेच्छ जाति और देशों को मिला कर ५४ सख्या गिनाए गए हैं ।

महापुरुषों के उत्तम लक्षण

१ सूर्य २ चन्द्र ३ शखवर ४ चक्र ५ स्वस्तिक ६ पताका ७ शव ८ मत्स्य ९ कूर्म १० रथ ११ योनि १२ भवन १३ विमान १४ तुंग १५ तोरण १६ गोपुर-पुरद्वार १७ मणि १८ रत्न १९ नन्दावर्त नवकोण का स्वस्तिक २० मूसल २१ हत २२ कल्प-वृक्ष २३ सिंह २४ भद्रासन २५ सुरुषि-आमरण २६ स्तूप २७ मुकुट २८ मुक्तावली २९ कुण्डल ३० गज ३१ वृषभ ३२ द्वीप ३३ मन्दिर अथवा मेरु ३४ गरुड ३५ ध्वजा ३६ इन्द्रकेतु ३७ दर्पण ३८ अष्टापद-पाशा ३९ धनुष ४० बाण ४१ नक्षत्र ४२ मेघ ४३ मेखला-कन्दोरा ४४ घीणा ४५ जुआ ४६ छत्र ४७ माला ४८ वामिनी ४९ कम-डल ५० कमल ५१ घंटा ५२ जहाज ५३ सूची ५४ सागर ५५ कुमुद ५६ मगर ५७ द्वार ५८ पृथ्वी ५९ अंकुश ६० शृंगार ६१ धाघर ६२ नूपुर ६३ नग ६४ नगर ६५ वज्र ६६ किन्नर ६७ मयूर ६८ राजहंस ६९ सारस ७० चकोर ७१ चक्रवाक ७२ चामर

७३ संद ७७ पठियसक-बाघ ७५ मीणा ७६ सालवृन्त-पखा ७७ अमिपेक ७८ सङ्ग
७९ कला ८० वदमान-शरावा (तृतीय सूत्र)

(प० भा० द्वा०)

स्त्रियों के वत्तीस लक्षण

१ द्रव २ अञ्जा ३ गुप ४ स्तूप ५ दामिनी-डोरी ६ कमण्डल ७ कलस ८ घापी
९ स्यन्तिक १० पताका ११ यव १२ मन्थ १३ कूर्म १४ प्रधान रथ १५ कामद्व १६
अक १७ बाण १८ अकुला १९ आणपद २० सुप्रतिष्ठक २१ देव या मयूर २२ कल्मी
का अभिषेक २३ तोरण २४ वृष्णी २५ मसुत्र २६ प्रधान भयन २७ प्रधान गिरि २८
वपख २९ गज ३० वृषभ ३१ सिंह ३२ आमर । (प० भा० द्वा०)

देव के नाम

मवनपति जाति के देव

१ असुर कुमार २ नाग कुमार ३ गरुड कुमार ४ विष्णु कुमार ५ अग्नि कुमार
६ द्वीप कुमार ७ वरुधि कुमार ८ विष्णु कुमार ९ पवन कुमार १० सनित कुमार ।

अन्यतर जाति के देव

१ अक्षपामिक २ पक्षपामिक ३ अधिधार्मिक ४ मूलवाधिक ५ कश्चित ६ महा
कश्चित ७ वृष्णीक ८ पतगद्व ९ पिशाच १० मूल ११ यव १२ राक्षस १३ किन्नर
१४ द्विपुत्र १५ महोरग १६ गन्धर्व । ४, ५, अथम द्वार

ज्योतिष्क देव

१ बुधपति २ अम्ब ३ सूर्य ४ शुक्र ५ शनिधर ६ राहु ७ पूमन्दु ८ युध ९ मंगल
कल्पों के नाम

१ सौम्य २ द्वाज ३ वनस्पति ४ माहन्त्र ५ मन्त्रजोक ६ मास्तक ७ महागुण
८ गदगार ९ आणुत १० प्राणुत ११ आरण १२ अण्युत । (प० भा० द्वा०)

आहार के दाय

१ उदित २ व्यापित ३ रगिन ४ पर्यवसान ५ प्रसीण ६ प्रातुत्तरण ७ अपमित्य
८ विगज्ञान ९ द्वीपक १० प्राभूत ११ नानार्क १२ पुष्पार्थ कृत् १३ समणार्थ कृत्
१४ वनोपार्थ कृत् १५ पञ्चाय कृत् १६ पुष्प भय १७ मीति कृत् १८ गृहित १९

अतिरिक्त २० वाचालता युक्त २१ आहित २२ स्वयंगृह (स्वगृहीत) २३ मृत्तिकोप-
लिप्त २४ अच्छेद्य २५ अनिसृष्ट २६ अन्तर्वर्द्धिर्वा स्थापित २७ हिंसा सावद्य युक्त कृत
कारित ।

ब्रह्मचर्य की ३२ उपमायें—

१ तत्तत्र मण्डल में जैसे चन्द्रमा प्रधान है वैसे व्रतो में ब्रह्मचर्य व्रत बड़ा और
प्रधान है । २ मणि आदि रत्नों की खानों में समुद्र के समान । ३ मणियों में वैदूर्य
मणि के समान । ४ आभूषणों में मुकुट के समान । ५ वस्त्रों में कपास के वस्त्र के
समान । ६ पुष्पों में कमल के समान । ७ चन्द्रनों में गोशीर्ष चन्द्रन के समान ।
८ औषधि स्थानों में हिमवान के समान ९ नदियों में शीतोदा नदी के समान ।
१० समुद्रों में स्वयंभूरमण के समान । ११ माण्डलिक पर्वतों में रुचक पर्वत के
समान । १२ हाथियों में ऐरावत हाथी के समान । १३ जंगली पशुओं में सिंह के
समान । १४ सुपर्णकुमारों में वेणुदेव के समान । १५ नागकुमारों में धरणेन्द्र के
समान । १६ बारह देवलोकों में ब्रह्मदेव लोक के समान । १७ सभाओं में सुधर्म
सभा से समान । १८ स्थितियों में अनुत्तर विमानवासी देवों की स्थिति के समान ।
१९ दानों में अभयदान के समान । २० कन्वल्लों में रत्न कन्वल्ल के समान ।
२१ शरीर के सहननों में वज्र ऋषभनाराच सहनन के समान । २२ संस्थानों में सम-
चतुरस्र सरान के समान । २३ चार ध्यानो में शुक्ल ध्यान के समान । २४ पाच
ज्ञानों में केवल ज्ञान के समान २५ छह लेश्याओं में शुक्ल लेश्या के समान । २६
मुनियों में तीर्थंकर के समान । २७ क्षेत्रों में महाविदेह क्षेत्र के समान । २८ पर्वतों
में सुमेरु पर्वत के समान २९ वनों में तन्दन वन के समान । ३० वृक्षों में जम्बू
वृक्ष के समान । ३१ तुरगपतिओं में राजा के समान । ३२ रथिकों में महारथी के
समान ब्रह्मचर्य व्रत सब व्रतों में बड़ा और प्रधान है ।

ऐतिहासिक पुरुष

राम, केशव, वासुदेव, देवर्षि-देवकी, रुक्मिणी, रक्त सुभद्रा, रोहिणी, पद्मावती
द्रौपदी, सीता, समुद्रविजय, प्रद्युम्नकुमार, प्रदीपकुमार, समकुमार, अनिरुद्र कुमार
निसर्ग कुमार, चल्मुक कुमार, गज कुमार, सारंगकुमार, सुमुखकुमार, दुर्मुख कुमार,
चाणूरमल्ल, महाशकुनि, पूतना, कंस, जरासघ, केशरीसिंह दत्त नाग-काली नाग,
अरिष्टवृषभ, स्वयंभू, प्रजापति, महावीर, जम्बू कुमार, वसुदेव ।

वाद्य

१ मुरज २ मूर्तग ३ पणव-पडहा ४ वपुर ५ कच्छभि ६ वीणा ७ विपचि
८ कल्लकी पोखा बिरोप ९ पतीसक १० सुधोप-धंग ११ मंही-बाख्ख प्रकार का धुर्य
माण १२ सुस्वरा १३ परिबादिनी १४ बश-बांसुरी १५ तूणक १६ पबक १७ संत्री
१८ सलताल-हस्तताल १९ त्रुटित ।

किसी वाद्य-कला के आचार्य से इनका परिचय प्राप्त करना चाहिये ।

सुगन्धित द्रव्य—

१ पुष्प २ कोष्ठ ३ सगर ४ पत्र समान पत्रादि ५ त्वचा-झाल ६ दमनक ७ मरुआ
८ पधारम ९ पिङ्गमंस-वका हुआ गव १ गोरीपं-सरस चन्दन ११ कदूर १२ लवंग
१३ अगर १४ कुंजूम १५ कंकोल १६ खीर १७ रपेत चन्दन १८ सारंग इत्यादि ।

(पंचम संस्करण द्वारा)

जलाशय

१ झुझिका २ पुष्करणी ३ पापि-पुष्पकोय बावली ५ दीर्घिका ६ गंजालिका
७ मर ८ मरपटि ९ सागर १० बिल कुआ ११ सार्दे १२ नदी १३ उलाव-खोह के
बनाया हुआ १४ बनिख-नहर, कचारा ।



प्रश्न व्याकरण सूत्र की पाठान्तर सूची !

मूलपाठ	पाठान्तर	प्रति
पणवहं	पाणिबहं	अ
पाणवहो	पाणिबहो	"
मरणवेमणस्तो	मरणचेव मणस्तो	"
कोलसुणरु	कोलसुणका	"
धीबया	धीबिय	"
सरब	सरग	ग०
गोधुदर	गोधूदुर	अ
सुगुप्त	सुगुप्ती	"
खादित्त	खडहिला	"
घाडपय	घाडपय	ग०
सेताय	सेतीय	अ
चकीव	कीव	"
सउण पिपीलिय	सउण पीविय	ग०
जीवजीवक	जीव जीवग	अ
कधोयक	कधोयकाग	"
वेसर	मेसर	"
सालग (करक)	कर करक	"
दतट्टा	दतट्टी	"
चित्तिवेतिय खात्तिय	वेदिखात्तिय	ग०
जलावण	जलग जलावण	अ
केते	किते	"

मूलपाठ	पाठान्तर	प्रति
मुरंदा बभङ्ग	मुरंढो षड् भङ्ग	ग०
विस्मय	विस्मय	अ
मदुर	मग्गर	१
मुद्विष्य भारण	मुद्विष्य मरुदाता मद्दा अरः	४
मसगा	मसग	१०
रुद्विष्यि यय	रुद्विरा किम	११
उस्त्रासेव	उस्त्रसित	११
मुषह समरामि	मुषमे मरामि	११
गंहुय	तदेव वैद्विष्यु गहुय	अ
मग्गयगासय	मग्गय तासय गासय	४
अभयगा	आवङ्गगा	अ
हीयाहीयमत्ता	हीय वीयसत्ता	४
मया व नत्वि अहिवाहि	मयाति सुयति नत्वि	अ
आहृदा	आहृदा	११
विरयणं अलिय	विरयणं माया अलिय	४
पुण्यम्भवरं	मय पुण्यम्भवरं	अ
अउरग विमत्तवत्त	अउरग समत्तवत्त	११
गावृत्तं छप्पहारणुत्तयकरे	गावृत्तं छप्पहार कर णुत्तयकरे	४
हरिय	दप्पिय	११
अपहृदु	वायहृदु	११
वृत्ततरफेहि	हृत्ततरफेहि	११
कह कहितपहसित	कहकहकरतपहसिम	अ
कास	कस्स	११
संकाड मोडणाहि	संकोडण मोडणाहि	अ
मेत्तप्पहारसय	येत्तप्पहारसव	४
काप्परपहार संमगा	काप्परपहार पायविवा संमगा	४
मग्गपाण भीता	मग्गपाण्णोया	अ

मूलपाठ	पाठान्तर	प्रति
स्वरफरुसएहिं	स्वरकर सएहि	
समभिदुत्ते	समभिभूए	अ
पुणोविपदञ्जति	पुणोविपडिवञ्जति	व
सायगारवो यहार गहिय कम्मपडि०	सायगारवो असुहम्मवसायहि	
	अपहार कम्म पडिवद्ध०	व
रुहं	रुद	अ
अफलवतकाय	अपवतकाय	॥
मणसंखेवो	मणसंखोभो	॥
चाणूर मूरगा	चूरगा	॥
सद्दूलसिह	सद्दूलरिसह	॥
सुपइट्ट अमरसिरिया०	सुपइट्टमयूर'सिरिया	व
लोभकलिकसाय	लोभकलिसगामकसाय	॥
भवनवर विमाण	भवन वाणन्वतर विमाण	
चउत्थमत्तिएहि एवं जावछम्मास भत्तिएहि-	चउत्थमत्तिएहिं छट्ठ भत्तिएहि	
	अट्ठभत्तिएहिं दसम भत्तिएहिं एवं	
	दुवालस चोइस सोलस अद्धमास	
	दोमास तिमास चउमास पच	
	मास छम्मास भत्तिएहिं ।	व
पावियाते पावग न किंचिवि	पावियाते पावक अहम्मिय दारुणं	
	निसस चहवध परिकिलेस बहुलं	
	जराभरण परिकिलेस सकिलिट्ठं न	
	कयावि बइए पावियाएउ पावगं	
	किंचिवि	अ
अक्खोवज्जणानु लेवणभूय	अक्खो वज्जणवणानु लेवण भूयं	ग
महासमुदमज्जेविमूढा	महासमुदमज्जेविठति न य	
	निमज्जाति मूढा	अ
असिपल्लरगया	असिपजर सत्तिपजरगया	॥

मूलपाठ	पाठान्तर	प्रति
मुरंटा वमडग	मुरंटा चड मडग	ग०
विस्वस	विस्वस	अ
महुर	मगर	१
मुद्विच भारव	मुद्विच मरहाटा मट्टा अ र क	ब
मसगा	मसग	११
रुद्विच किम	रुद्विच किम	११
उस्सासेठ	उस्ससितं	११
मुवह ममराभि	मुव्वम मरामि	११
गह्वस	उहेव वेंदियेसु गह्वस	अ
भग्नयगालय	भग्नय तालय गालय	ब
अधयगा	आधयगा	अ
होषाहीणमता	होष हीणमता	ब
भग्न व नत्वि अद्विवाहि	भग्नानि मुखति नत्वि	अ
आइटा	आइटा	११
विरयणं अलिय	विरयणं आवा अलिय	ब
पुण्यमयकरं	अन पुण्यमयकरं	अ
चउरग विमत्तवत्त	चउरग ममत्तवत्त	११
गादददठ धपहारगुञ्जयकर	गादददठपहार कर गुञ्जयकरे	ब
रुविच	रुविच	११
अपड्ड	आण्ड्ड	११
इण्डतरफदि	इत्यतरफदि	११
बह वदिनपहमित	बहवहकसपहमित	११
काम	कमस	अ
संकाच भाटणदि	संकाच भाटणदि	ब
मत्तपहारतय	मत्तपहारतन	अ
वाणरपहार मभगा	वाणरपहार वायविचा मभगा	ब
वाणरग भीता	वाणरगणभीता	अ

मूलपाठ	पाठान्तर	प्रति
स्वरफरुसएहिं	स्वरकर सएहिं	
समभिदुत्ते	समभिभूए	अ
पुणोविपवज्जति	पुणोविपडिवज्जति	व
सायगारवो यहार गहिय कम्मपडि०	सायगारवो असुहज्जवसायहिं	
	अपहार कम्म पडिवद्ध०	व
रुहं	रुद	अ
अफलवतकाय	अपवतकाय	॥
मणसखेवो	मणसंखोभो	॥
चारूर मूरगा	चूरगा	॥
सद्धूलसिह	सद्धूलरिसह	॥
सुपहट्ट अमरसिरिया०	सुपहट्टमयूरसिरिया	व
लोभकलिकसाय	लोभकलिसगामकसाय	॥
भवत्तवर विमाण	भवत्त वाणव्वतर विमाण	
चउल्यभत्तिएहिं एवं जावछम्मास भत्तिएहिं— चउल्यभत्तिएहिं छट्ठ भत्तिएहिं	अट्ठभत्तिएहिं दसम भत्तिएहिं एवं	
	दुवालस चोदस सोलस अछमास	
	दोमास तिमास चउमास पच	
	मास छम्मास भत्तिएहिं ।	व
पावियाते पावगं न किंचिवि	पावियाते पावक अहम्मिथ दारुणं	
	निससं बहवथ परिकिलेस बह्वलं	
	जरामरण परिकिलेस सकलिट्ठं न	
	कयायि वइए पावियाएउ पावगं	
	किंचिवि	अ
अवस्खोवजणानु लेवणभूयं	अवस्खो वजणवणानु लेवण भूयं	ग
महासमुदमज्जेविमूढा	मज्जेविठति न य	-
	१ मूढा	अ
असिपल्लरगया	र सत्तिपजरगया	॥

मूलपाठ	पाठान्तर	प्रति
सुपण्हियं एष जाव आपणियं	सुपण्हियं इमेहि पंचहिभि कार यहिं मण्वयण काय परिक्खिण्हिं णिण्वं आमरणं तं ऋओगो ए यण्वो विईमयामईमवा अणासवो अकल्लसो अण्हिण्वो अपरिस्ताई असंकिणिट्ठा सण्वज्जिमणुय्णवो एवं तइयं संरवहारं फासियं पाजियं सोहियं तीरियं किट्ठियं अणुपासियं आणाए आराहिण्वं भवइ एवं आयमुय्णिका भगववा पण्वियं परुवियं पसिइं सिद्धवर सासण मिण्व आपणियं	ब ग ११ अ अ-ब ग ब अ ११ ब अ ११ ब अ ब
सुमासियं	सुसाहिय	ग
धीर सूर	धीर सूर	११
सुकयन्तम्मम	सुकयरन्तय अम्मम	अ
संनद्धोच्छइय	संनद्धवद्धोच्छगिय, संनद्धवद्धोच्छगिय अ-ब	अ-ब
महियं बुभिय	महियमहियं बुभिय १-महियं बुभिय ग	ग
वाटसिक (य) इसिय	वाटसिक न वत्त केस समारवणा इय इसिय	ब ब
अविट्ठिसुय एव	अविरत्तीसुय अणोसुय एव	११
विमुद्ध मूलो	विमुयवद्ध मूलो	अ
अस निदिड पीण पवर	असनिधिय पीण पीवर	११
तव संजम	तवसंवर भंजम०	ब
जंगमाण विट्ठा	जगार्णं विट्ठा	अ
इसमसगसीय परिरक्खण्हण्ण	इंसमसग सोणसिणपरिरक्खण ट्ठण्ण	ब ब
सोमभाषणाए	सोमभाषणाए	११

मूलपाठ	पाठान्तर	प्रति
पयपर निलये	पयपर पर निलये	घ
निर्ममभि	निर्ममिभि	ग
हृदिय	हृदिय	घ
नरजियव्यं जाय न सः	नरजियव्यं न निमित्तव्यं न मुक्तिव्यं न विणिषायमाधजि- व्यं न लुभियव्यं न तुलियव्यं न हर्मियव्यं न सः	घ
अंतरया जाय परेज	अंतरया मगुणा मगुन मुदिभ हृदिभ राग दोस पणिदियया माहु मगु वयण कायुत्तं सवुदे पणि- दिदिदा परेज	घ
रुमियव्यं जाय	रुमियव्यं न हिलियव्यं जाय	घ
नमुभित्तव्यं न विणिषाय	न मुभित्तव्यं न हर्मियव्यं न लुभियव्यं न तुमियव्यं न विणि- षाय	"
दियव्यं मज्ज	दिय यंत दंत भंजण	"
एकसरगा	एका रमगा	"
वसमुचेवदियसेसु	वसमुचेवदियसेसु	"



पाठान्तर-सूची

५०	५०	मूल पाठ हस्त०	पाठ मेह आ० मंदिर
३	१६	छट्टेइ २ ता	छट्टेइता
३	१९	सवागच्छइ २	सवागच्छइता
३	२०	करेइ २	करेइता
३	२०	नमसइ	नमसइता
३	२२	अगम	अति अगस्त
३	२७	अज सुहम्म धरे	अज सुहम्मधरे
८	२७	धियामो	बिसाखो
११	०	विहाणक कय	विहाणकय
११	१६	का वदर	का ओइर
११	२३	आहामेतीव	आहामती
११	२३	सज्ज दिपीलिय वीयिय	सज्ज वीयिय (पीलिय)
११	१८	एवमायी	एवमायी
१०	१६	पुठविमये	पुठवीमव
१२	१६	पुठविमंसिय	पुठवीसंसिये
१०	१	सुइमुइ	सुवीमुइ
१२	४	पोंउरीय सालग करक	पाइरीय सालग (करक)
१२	१४	वथोइर	वथोइर
२५	१५	देहिन्त्या	देहिइत्या (वीयिया)
२६	११	ठिमिम्मसु	ठिमिम्मसु
६	१९	अगुमपुक्कविसाई	अगुमपुक्कविसाई
२७	५	गामिमाय	गामिमाय
२९	१६	इमता	पामता
२६	१	सुक्कर	सुक्कव
२६	१६	विगुणिरंगमंगा	विगुणिरंगमंग (निगणरंगजीवा पा.)
२०	१८ १९	हाइलागिय वुइइगय	हाइलागिय व इगय
२०	१८-१९	निमज्जलागि	निमज्जलागि प

पृ०	पं०	मूल पाठ हस्त०	पाठ भेद आ० मंदिर
४६	२४	संपज्जता (तद्देव वेइदिण्णसु	निमज्जणाणिय संपज्जता
४७	४	पुण्यो २ तर्हि २	पुण्ये तर्हि
४७	६	भज्जण	मज्जण
४७	१५	मूकाय	मूकाय (अविज्जल मूया पा
४७	१६	विणिहय सचिह्नया	विणिहय णप्पे (पिस पा
४७	१६	खरगाओ उव्वट्टिया	खरगाओ उव्वट्ट ति०
४७	२२	पारलोइओ	परलोइओ
४८	२	मरणवेमणस्सो	मरणवेमणसो
४६	२०	कूढ कवड मत्थुग	कूढ कवड मत्थुगं
४६	२५	निययो (डी)	निययी
४६	२६	अवहीय	अवहीयं (अवायिअं पा.)
४६	२७	अणुयलेयओत्ति	अणुव (अओअपा) लेयओत्ति
६०	१-२	एयं जदिच्छाएवा	एय वा जदिच्छाएवा
६०	३	किंचि कयकं तत्त	किंचि कयकतत्तं
६०	६	इमो विधिरसभवाइओ	इमोवि विसधायओ
६०	१७	अहरगति गमणं अन्न पि	अहरगति गमणं कारणं अन्नं पि
६०	१८	परमट्ट भेदकमसकं (असत्कं)	परमट्ट भेदकमसकं
६०	२१	अलियाहि सधि सनि०	अलिया हिंसति सनि०
६१	५	साहिति मगराणं	साहिति मगराण (मगिणं)
६१	६	वालवीणं	वालवीणं (वायलियाणं पा.)
६१	६	वध वध जायणं	वधवध जायणं
६२	२	दुज्जतु	दुज्जतु
६१	२	साहिति य	साहिति
६१	१६	आदेवण आवि	आदेव (हिंव पा) ण आवि
६१	१८	पावकम्म करणं	पावकम्म करणं
६१	१८	गामपातियाओ	गामघातवाओ
६१	२५	पियय दासि	पियय (खादत, पिबतुदत्त पा) दासि

पृ०	पं०	मूल पाठ इत्यं	पाठ मे० भा० महिर
६१	१७	करिषु कम्मं	करिषु (करिषु पा) कम्मं
६१	१८	वज्जराइं उत्तय	वज्जराइं (विज्जराइं मम्मि वज्जराइं पा) उत्तय
६१	६	उत्पण्णिज्जंतु	उत्पण्णिज्जंतु
६२	१०	मुहुरेसु नक्कसत्तेमुत्तिहिंसु	मुहुरेसु तिहिंसु
६२	१२	पूवायकार	पूवायकर
		अक्षियाणा	अक्षियप्पायो
६२	१-२०	होति	होति
७७	२१	वहिरावसाय	वहिरावसाय
७७	२२	अर्चं विट्ठय करणा	अर्चं (रुपा) ठ विट्ठयकरणा
७७	२८	अण्डित्ततर	अण्डित्ततर
८२	१३	पत्थाइ मइयं	पत्थाइ मइयं
८४	१०	कूरिकर्ह	कूरिकर्ह (कुसुदुयकयं पा)
८४	११	सक्कसत्तयति	सक्कसत्तयति
८४	११-१२	इत्थल्लल्लु, चयं	इत्थल्लल्लु (ल्लुच पा)
८४	१३	ओभीओ	अ (प्र ओ, वीओ)
८४	१७	ओक्कवम्म	ओक्कवम्म
८७	१	एप्पिण्हिं सेन्नेहिं सपरिबुद्धा	एप्पिण्हिं (सेन्नेहिं पा) संपरिबुद्धा
८८	१२	पह्वा हय	पह्वा हय
८८	२-३	मादिबरवम्म गुडिपा	मादिबर (गुड पा) वम्मगुडिपा
८८	५	सुवत्तं पय	सुवत्तं मत्ति पा) पय
८८	२३	समरमळा आवडिय	समर मळावडिय
८८	२५	पुरफळगावरयं	पुरफळगावरयं
९०	१	कण्ठिवाक्षिय	कण्ठिवाक्षिय
९०	२०	कण्ठोत्त संकुल	कण्ठोत्त संकुल
९०	२६	पूरसुवत्तं गंभीर	पूरसुवत्तं गंभीर
९०	२६	सुग सुगंतं सरं	सुग सुगंतं सरं

पृ०	प०	मूलपाठ हस्त०	पाठ भेद आ० मदिर
६१	५	हृथदच्छ तरकेहि	हृथ तरकेहि
१०२	६३	भेसणगभयाभिभूया	भेसणगा (गभया पा०) भिभूया
१०३	१	मद पुण्णा	मद-पुञ्जा
१०३	७-८	उरक्खोढी दिन्नगाढ	उरक्खोढो दिन्न गाढ
१०३	२३	तुरिय उग्घाडिया पुरवरे	तुरिय उग्घाडिया पुरव रे
१०४	८-६	वज्झयाण भीता	वज्झयाण पोया (या० भीता पा०)
		तिल तेलचेव-	तिलं तिलं चेव
१०४	२४	निरिक्खया	नि रिक्खि (रक्कि) या
१०४	२५	(अलज्जाविया) अलजा-अलजा	
१०४	२६	वेयण दुग्घट्ट घट्टिया	वेयण दुग्घट्ट ट्टिया
१०४	७	सयणस्स वि	सयण रस विय
११३	२३	कहिं पि	कहिं वि
११४	१३-१४	पधावित वसण	पधावित (वाहिय पा० वसण
११४	१८	अत्ताणा सरण	अत्ताणस्सरण
११४	२४	गमण कुडिल	गमण कुडिल
११५	२६-२७	उम्मग निमग	उम्मग निमग
११५	२८	उब्बुद्ध निबुद्ध	उब्बुद्ध निबुद्ध
११६	१-२	अदिण्णा दाणं हरदद	अदिजादाणं हरदद
११६	४	समत्त तिवेमि	समत्त तिवेमि
११६	१३	छोभा सिप्प	शाभा सिप्प
११६	२६	संसारावत्त	ससार (रा) वत्त
११६	११	चिर परिगम्य मणुमय	चिर परिचित मणुगयं
१२६	१६	सेवणाधिकारो	सेवणाधिकारो
१२८	९-१०	उस्सयाणा तामसेण	उस्सया तामसेण
१२८	५	कोसेज्ज सङ्गी सुत्तक	को० सो० सु० (कुंडलपा०)
		विमूसिमंगा	गय
१२६	७	रत्त मांलकउग गय	र०मा०क० (कुंडलपा) गय

पृ०	पं	मूल पाठ हस्त०	पाठ मेव आ० मरिह
१६	१९-२०	अणु मवेत्ता ते वि	अणुमवेत्ता (म्ता) तेवि
१३४	२२	भायरो सपरिभा	भा० सुपरिभा
१३२	५	श्विम्बुष मुनिवेज्या	श्विम्बुष पमुदित अण
१३२	१२	महुर मण्डिग अम्बुवग	महुर मणेषा (महुर परिपुष्प- सम्ब वज्या पा०) अम्बुवग ।
१३२	१८-१६	धरासिंघ माण महणातेहिय अविरल	अ० मा म० ने (अम्ब पडल पिग लुज्ज सहिपा०) अविरल
१३६	४-२	विसदगंधुदूषामिरामाहि	वि० अ ध्यामि रामाहि
१६	६-७	हल मुस ३ कण्ठ पाण्यो	ह० मु० (कण्ठ पा०) पाणी
१३६	७	पव कज्जल मुकन विमल	प० मुकंठ वि०
१३३	१६	अयोगवास सयमासुवतो	अणाग वास सयमासुवतो
१३६	१८	अणु मवेत्ता	अणु मवेत्ता (म्ता)
१४२	२४	अणुमवेत्ता	अणुमवेत्ता (न्ता)
१४२	२७	पायचारिण्यो	पाय चारिण्यो
१४३	२	अणु पुम्ब सुसंहरंगुलीया	अणु सुसं (आयपवरं पा) गु
१४३	४	समुमा निसमा	स० निममा
१४१	२	कल निम्बनला	कल निम्ब यकला
१०३	२३ २४	सद्वल्ल सीह	सद्वल्ल सिंह
१४४	४	तवण्णिरत्त तलातालु बीहा	तवण्णिरत्त तलतालु बीहा
१४४	१४	पयाहिणावत्तमुदसिरया सुंवात्त सुभिमत्त संग यंगा	पयाहिणावत्त मुदया सु० सु० संगयंग मगा
१४४	१६-१७	सीहस्सरा (ओप) सरामेपसरा	सीहस्सरावग्ग (ओप) सरा मेपसरा
१४४	२३	तिपल्लिओबमट्टिठिका	तिपल्लिओबमट्टिठीका
१४४	२४-२२	अभितत्ता कामाणं	अभितत्ता कामाणं
१४२	१२	सम सहिय लट्ट चुचुय आमेकग	सम सहिय लट्ट चुचुय आमेकग

पृ०	पं०	मूल पाठ हस्त०	पाठ भेद आ० मंदिर
१६	४	मच्छ कुम्भ रहवर मकर	म. कु रयवर मकर
१५९	२८	हम्मति, विमुणिया	हम्मति विमुणिया
१६०	२	मारैति एकमेक	मारैति एकमेकं
१६०	५	पावेति अयसक्ति	पावेति अ (जस पा.) किति
१६०	७	परस्स दाराओ	परस्स दारओ
१६५	५	णाणामणिरयण कणग	णाणामणि कणग रयण
१६७	२७	लोहपा, महद्धा	लोहप्पा महइ (द्धी पा.)
१६६	१२	असुर भुयग गरुत्त विज्जु- जलण	असुर भु० ग० सुवयण विज्जु- जलण
१७५	१७	परिग्गहस्स य अट्ठाए	परिग्गहस्सेव य अट्ठाए
१७५	१८	सडणरुथावसाणाओ, चउसट्ठि	स० रु० गणियप्प हाणाओ चउ०
१७५	२०	अत्थ सत्थ इसत्थच्छ रुप्पगयं	अत्थइसत्थच्छ रुपवाय
१७५	२७	कामगुण अयहगाय	कामगुण अयहवगा
१७८	२५	न य अवेतिऽत्ता	न अवेतति त्ता
१७८	२५	अत्थिहु मोक्खोत्ति	अत्थिहु मोक्खेति
२८०	११	पच्चहि असंवरहि	पंचहि असंवरहि
१८०	११	रयमादिणत्तु अणु समयं	रयमादिणित्तु मणुसमयं
१८०	१२	चउविहगति पेरतं	चउविहगइ पज्जतं
१८०	१५	काहेति अणंत ए-	काहिति अणंतए
१८०	१६	सोऊणयजे पमार्यति	सुणिऊण यजे पमार्यति
१८०	१६	मिच्छादिट्ठीणरा (यजेणरा अबुद्धीया	मिच्छादिट्ठीय जे नरा अहमा
१८१	१	पंचेवय उग्गिऊणं	पंचेवउग्गिऊणं
१८४	२५	महव्वयाइ लोकहिय- सव्वयाइ	महव्वयाइ (लोकहिसव्वयाइ)
१८५	३	कापुरिस दुरुत्तराइ सप्पु- रिस निसेवियाइ	कापुरिस दुरुत्तराइ (सुपरि- सतीरियाइ पा०) विचाइ
१८५	४	मग्ग सग्ग पणाय गाइम, सवरदाराइ	मग्ग सग्गपणायकाइ (याण गाइ पा०) संवरदाराइ
१८६	८	अस्तासो	असासो
१८६	१२	अठवी भग्गेतिसत्थगमण	अ० म० सत्थगमण

पृ०	पं०	मूल पाठ हस्त०	पाठ भद्र आ० मंदिर
१८६	१६	सुद दु विट्ठा	सुद दु विट्ठा (उपलब्धा)
१९०	३ ४	अन्तर्जीविदि विविक्त जीविदि	अन्तर्जीवीदि विविक्त जीवीदि
१६	५	पश्चिम ठाडहि	पश्चिम ठाडहि
१६	६	निष्कष्ययवयसाय पञ्चतक्यमतीया	नि० व० (पण्डीय पा०) पञ्चतक्य मतीया
१६५	७	न निमिग्न	ननिमिग्न
१६५	८	निमित्त कद् कप्पठत्तं	निमित्त कद्कप्पठत्तं
१६५	९	विचममणं	विचपसमण
२०१	१६	पाणस्यं पावर्गं	अपावस्यं पावर्गं
२०१	१७	पावियात्त पावर्ग	अपावियात्त पावर्गं
२०२	१०	अणादल्ल अलुद्धं	अणादल्ल अलुद्धं
२०३	११	आदान निक्खेवणं समिहं	आदाण निक्खेवणा समिहं
२०३	१२	एय नाव सुणिया	एय नाव सुणिया
२०३	१३	महासमुदमग्गेविमुत्ता	महासमुदमग्गेविमुत्ता
		विम्यावि	मग्गंतिमुत्ताविम्यावि
२०३	२-३	परिमाहिया असि पञ्जरगया	परिमाहिया असि पञ्जरगया
२०३	४	निदति अण्णहा	नियति अण्णहा
२०३	५	समयप्पदिन्नं वेदिन् नरिन्	समयप्पदिन्नं (मग्गरिसि सम अपह्म चिन्तं पा) इदिन् वरिन्
२०३	११-१२	चारयगमणं समयसिद्धं विज्ज	चारयगमणं समयसिद्धं विज्ज
२०५	२०	अण्णज्जं	अण्णत्थं अण्णज्जं
२०५	६	अभत्त वा एवमाहियस्स	अभत्त वा एवमाहियस्स (एव माहियस्सवा पा)
२०५	२४	सुवेसितं	सुवसियं
२०५	२५	रत्तमंतरगतं वा किंभी	रत्त (अल्ल वत्तगयं जेत पा) मंतरगतं वा किंभी
२२१	१	मासं जं च सुकयं	ना. (सी) जं च सु
२२१	२	मग्गदरितं च	मग्गदरितं च
२२८	१	विज्जोव समणं	विज्जोव समणं
२२८	१-२	तटियस्स होति	तटियस्स वयस्स होति
२२८	५	अत्थं पद्दती	अत्थं पद्दती
२२८	१४	सेवज्जोवहिस्स अद्दा	से व अद्दे

१३८	१५	गेहिउं जे, हणि	गिहेउं जेहणि
२४२	१६	सजण्ण ममियं	सजमेणं स०
२४२	२१	साहारण पिडपातलाभे	सा० पिडवाय लाभे
२४२	२२	अदित्रादाणवयनियमवेर- मणं (विरमणवय नियमणं)	अदित्रादाण (विरमणवय नियमणं वय नियमवेरमण पा.) एव
२४३	१	गुरुसु माहसु	गुरुसु माहसु विणओ
२४७	५	जयू १ पत्तो	जयु पत्तो
२४७	८	पमत्थ गभीर विमित मज्झ	पसत्थ गभीर अतुच्छवि- मित मज्झ
२४७	२१	तारगाणं वा	तारगाणं व
२४७	२४	हिमवन्तो चेव ओसहीणं	हिमवन्तोचेव तगाणं ओस- हीण
२४८	२	पवकाण चेव	पवकाण चेव
२४८	५	किमिराउचेव	किमिराओचेव
२४८	१२	एक्कमि वंभचेरे	एकमि वंभचरे गुणे
२४८	१२-१३	आराहिय वयमिणं सव्वं	आ० व० सच्च
२५४	१३	वे लघक जाणिय	वे० जाणिय
२५४	१७	मूणवयकेसलोएय	मूणवयकेसलोय
२५७	२५	चउत्थयस्स हांति	चउत्थवयस्स होति
२५८	६-७	जितेन्दिए वंभचेर गुत्ते	जितिंदिए वंभचेर गुत्ते
२५८	१२	कहाओ सिंगार कलुणाओ	(अ) सिंगार कहाओ कलु- णाओ
२५८	१६	हसित भणित चेदिठय विप्पेक्खित्त	हसित भणित चे० वि० गइ.
२६६	६	छज्जीव निकाया, छच्चलेसाओ	छजीव ति० छच्च० ले०
२६६	११	भिक्खु पडिमा	भिक्षुण पडिमा
२६६	२२	गय गवेलगवा (च)न जाणजुग्ग	गय गवेलग कवल जाणजुग्ग
२६६	२५	मणिसिग सेल	मणिसिग सेल (लेस पा०)
२७३	६	आदेण कुम्मासगंज	ओ० कु० गज
२७३	६-७	वेडिम वर सरक चुन्न	वेडिम वसरक चुन्न
२७३	१३	मट्टि उवलित्त	मट्टि ओवलित्त
		खत्ते दत्ते य हि निरत्ते	ख० द० य हिय (धितिपा) निरत्ते

२७३	२	द्विभ गंधे निरुवक्षणे	द्वि गंधे (मोष पा०) नि०
२७४	३	हरयो विष समिय भाषे	हरण्विष समिय ताषे
२७६	१७-१८	गामे गाम एगरायं नगरे २ य पंधरायं	गामे एक रायं नगरेय पंध रायं
२७६	१८-१९	निष्मन्धो, विऊ सच्छिप्ता	नि० वि० (सुखो पा०) सच्छिप्ता
२७६	२०	जीविष मरणास विष्पमुक्के	जी० मरणास मय वि०
२७६	२०	निस्संधि, निष्वरण	मिस्संधि नि०
२९१	१२	गधिम वेधिम	गठिम वेधिम
२९३	१६	पठम परिमंडिपाभिरामे	पउमसठ परिमंडिपाभिरामे

अभिधान राजेन्द्र में मुद्रित प्रश्न० के पाठान्तर

धीरकसरंग	धीरक सरंग (अमि को ५ भा पृ ८३४)
सुगुंस	सुगुंसा " "
पीरालिय	परोलिय " "
कावुंयक कक वल्लाका	कावुंय कक वल्लाका " "
मिडिंग	मडंग
बिहंगमियासि	बिहंग मयणासिय
कुसिय संवण	कुसिय संवण
विष्णुय ईडक निवातो	विष्णुय ईडक निवातो " (१८)
पायालसइस्स सू० ११	पायालकलससइस्स (अमि को १ भा पृ ४२८)
माइयतवर	पाइय (पासिय) वर— " २६

दूसरा आश्रव का टिप्पण—

‘मणं च मणजीविया—

(१) कुछ बौद्धाचार्य पञ्चस्कन्धोक्त अतिरिक्त मनको ही जीव तरीके मानते हैं । ये योग रूपादिज्ञान लक्षणों का उपादान मनको मानकर परलोक का स्वीकार करते हैं । सर्वथा साथ नहीं जाने वाले मनको जीव मान लेने से परलोक की सिद्धि नहीं होती, योकि वह मन क्षणान्तर के समान क्षणिक है । मनोमात्र को जीव मानना परलोक ही असिद्धि से मृषा है ।

हा परलोक में साथ जाने वाले मनमें यदि जीवत्व मान लिया जाय तो किसी तरह यह सत्य हो सकता है ।

(२) वायु जीवी—

कुछ आचार्य उच्छ्वास आदि लक्षण वायु को ही जीव मानते हैं, परन्तु वायु के जड़ होने से चैतन्यरूप जीवका उसमें योग नहीं हो सकता । अतः यह कथन भी मृषा है ।

(३) नास्तिक का प्रकार—

शरीर आदि और सान्त है, केवल यह भव ही एक भव है, अन्य नहीं । इसमें सर्वथा जन्मान्तर का अभाव मानने से मृषावादिता है ।

(४) स्वभाव, काल, या पुरुषार्थ आदि को एकान्त कार्य कर मानना भी इसी प्रकार मृषा समझना चाहिए ।

पूज्य श्री हस्तिमङ्गलमुनि निर्मितच्छायाऽनुवादीपेतं पञ्चमण्डलधर श्री सुधर्माचार्य
विरचित सिरि पद्मावागमसुत्त समाप्तिमगात् ।